बृहद् विमानशास्त्र

—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक

प्रियग्रन्थमालापुष्प ४६

ब्रह्ममुनिग्रन्थमाला—पुष्पसंख्या १७

महर्षिभरद्वाजप्रणीत

बृहद् विमानशास्त्र

अर्थात्

महर्षिभरद्वाजप्रणीत "यन्त्रसर्वस्व" ग्रन्थान्तर्गत
यतिबोधानन्दकृतश्लोकबद्धवृत्तिसहित "वैमानिक प्रकरण"

जिस में—

पुरातन विमानकला का शिल्पकार (लोहार–मिस्त्री) से लेकर ब्रह्मा (इञ्जिनियर) पर्यन्त कार्य का वर्णन दिया है, तथा रक्षाविधान अर्थात् शत्रु के द्वारा भूतल से फेंके हुए एवं भूमि के अन्तर्गुप्त प्रहारों से और आकाश में विमानोंद्वारा किए गए आक्रमणों से रक्षा करने के उपाय साथ ही आकाशीय पदार्थों वर्षा, वात, विद्युत्, शब्द, उल्का, पुच्छलतारों तथा ग्रहतारों की कक्षासन्धियों से होने वाले आघातों से रक्षा करना एवं यन्त्रविधान अर्थात् भिन्न भिन्न कलपुर्जों और अनेक आवश्यक रूपाकर्षक शब्दाकर्षक गतिमापक कालमापक आदि यन्त्रों के स्थापन तथा शकुन, रुक्म, सुन्दर, त्रिपुर आदि विविध विमानों का अपूर्व अद्भुत वर्णन है।

सम्पादक एवं भाषानुवादक—

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक
गुरुकुलकांगडी (हरिद्वार)

सम्पादन स्थान—
गुरुकुलकांगडी

प्रकाशक—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द भवन, नई दिल्ली १

प्रथम संस्करण १०००

माघ २०१५ वि०
फरवरी १९५९ ई०

मूल्य तेरह रुपये

प्रकाशकीय निवेदन

आर्य जगत् की शिरोमणि सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा की ओर से महर्षि भरद्वाजकृत तीन सहस्र श्लोकों से युक्त बृहद् विमानशास्त्र के भाषाभाष्य को जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे बडी प्रसन्नता है।

यह ग्रन्थ विमान-विद्याविषयक अलभ्य सामग्री से परिपूर्ण है जिसमें उक्त विद्या की बडी सूक्ष्मता से विवेचना की गई है। इस ग्रन्थ में विमानों के बहुसंख्यक प्रकारों, नामों, उनके निर्माण और संचालन के विविध उपायों के वर्णन को पढकर मनुष्य आश्चर्यचकित हुए विना नहीं रह सकता। निश्चय ही यह ग्रन्थ यन्त्रविद्या और विज्ञान के क्षेत्र में एक बडी क्रान्ति का सन्देशहर सिद्ध होगा।

रामायण में आए पुष्पक विमान का वर्णन विज्ञान के पण्डितों द्वारा कपोलकल्पना और धर्मभीरु भोले भाले जन-समाज के द्वारा दैव चमत्कार समझा जाता था। आधुनिक काल में जब वेदोद्धारक आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने वेदों के आधार पर इस विद्या की चर्चा की और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में एक अध्याय इस विषय के अर्पण किया तो वैज्ञानिकों को मुख्यतः पाश्चात्य विद्वन्मण्डली को विश्वास न हुआ। परन्तु भौतिक विज्ञान और यन्त्रविज्ञान की ज्यों ज्यों प्रगति हुई त्यों त्यों महर्षि दयानन्द के कथन की प्रामाणिकता और प्राचीन भारत में इस विद्या के पूर्ण विकास की सम्भावनाएं प्रतिलक्षित होती गई और वे अमरिका-वासी विदुषी लिसेज ह्वीलर विल्लोक्स के शब्दों में इन संभावनाओं को निम्न प्रकार अभिव्यक्त करने के लिये विवश हुए :—

"हमने प्राचीन भारत के धर्म के विषय में सुना और पढा है। यह उन महान् वेदों की भूमि है जहां अत्यन्त अद्भुत ग्रन्थ हैं जिन में न केवल पूर्ण जीवन के लिए ही उपयोगी धर्मतत्त्व बताए गए हैं अपितु उन तथ्यों का भी प्रतिपादन किया गया है जिन्हें समस्त विज्ञान ने सत्य प्रमाणित किया है। बिजली, रेडियम, एलैक्ट्रन्स विमान (हवाई जहाज) आदि सब चीजें वेदों के द्रष्टा ऋषियों को ज्ञात प्रतीत होती हैं।"

अर्वाचीन काल में राइट बन्धुओं को वायु-यान के आविष्कार का श्रेय प्राप्त है। जब उनके बनाए हुए विमान आकाश में उडने लगे तब विज्ञानवेत्ताओं को वैदिक ज्ञान विज्ञान की प्रामाणिकता और महर्षि दयानन्द की स्थापनाओं की सत्यता को स्वीकार करना पडा।

महर्षि भरद्वाजकृत प्रस्तुत ग्रन्थ में "निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः। नवनीतं समुद्धृत्य

यन्त्रसर्वस्वरूपकम्" श्लोक में इस विद्या का भण्डार वेद बताए गए हैं। उपर्युक्त उद्धरण से बढ़कर महर्षि दयानन्द की इस स्थापना का कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" तथा विमानविद्या का स्थान स्थान पर वेदों में वर्णन है और क्या प्रमाण हो सकता है? जिस प्रकार इस ग्रन्थरत्न ने महर्षि दयानन्द की वेदविषयक विशुद्ध विचारसरणि में वैदिक शोध के कार्य को प्रेरणा दी है उसी प्रकार यह विमानविद्याविषयक अनुसंधानों और आविष्कारों को महती प्रेरणा प्रदान करेगा।

श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी विद्यामार्तण्ड वैदिक अनुसन्धान का मूल्यवान् कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत भाष्य उनके उसी प्रशंसनीय कार्यों का सुफल है जिसके लिए वे आर्य जगत् और विद्वत्समाज के धन्यवाद के अधिकारी हैं। सार्वदेशिक सभा पर उनकी सदैव कृपा दृष्टि रहती है। सभा को उनके अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन का गौरव प्राप्त है, इस भाष्य को सभा की ओर से प्रकाशित करने का निष्प्रतिकार अवसर प्रदान करके उन्होंने अपनी उसी कृपादृष्टि का परिचय दिया और सभा को उपकृत किया है।

यह प्रकाशन बड़ा व्ययसाध्य था फिर भी सभा ने इसे प्रकाशित करके अपने एक महान् दायित्व की पूर्ति की है। आशा है जनता इससे यथोचित लाभ उठाएगी और शीघ्र सभा को व्ययभार से मुक्त करके इसी प्रकार के अन्य उपयोगी प्रकाशनों को हाथ में लेने में समर्थ बनाएगी।

स्वतन्त्र भारत में इस कोटि के अलभ्य एवं अत्यन्त मूल्यवान् ग्रन्थों का प्रकाशन हमारे राज्य का एक विशिष्ट कर्तव्य है। सभा ने इस भाष्य को प्रकाशित करके राज्य और देश का ही एक बड़ा कार्य सम्पन्न किया है जो हमारे देश के गौरव को बढ़ाने वाला सिद्ध होगा। क्या हम आशा करें कि राज्य और देश, सभा के इस कार्य का समुचित आदर करेगा?

दयानन्द भवन, रामलीला मैदान,
नई दिल्ली—१
माघ कृष्णा २०१५ वि०
तदनुसार २-२-१९५९ ई०

रामगोपाल
प्रधान मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

* भूमिका *

वाल्मीकिरामायण का पुष्पक विमान आबालवृद्ध प्रसिद्ध एवं लोकविदित ही है†, पुनः महाराजा भोज के "समराङ्गणसूत्रधार" ग्रन्थ में भी पारे से उडने वाले विमान का उल्लेख है‡, ऐसे ही "युक्तिकल्पतरु" में भी विमान की चर्चा आती है*। अतएव विमानकला आर्यों एवं आयावर्त (भारत) की पुरातनकला है। उसी पुरातनकलापरम्परा में यह प्रस्तुत ग्रन्थ भी जानना चाहिए। आर्य आस्तिक थे उनका प्रत्येक कार्य आस्तिकभाव से ओत प्रोत रहता था—ईश्वर की स्तुति से प्रारम्भ होता था, ऐसा ही आचार इस ग्रन्थ में भी उपलब्ध होता है—

यद्विमानगतास्सर्वे यान्नि ब्रह्म परं पदम्।
तन्नत्वा परमानन्दं श्रुतिमस्तकगोचरम् ॥१॥
(मङ्गलाचरणश्लोक० १)

माण्डूक्ये च यदोङ्कारः परापरविभागतः।
विमानत्वेन मुनिना तदेवात्राभिवर्णितः ॥१५॥
वाचकः प्रणवो ह्यत्र विमान इति वर्णितः ॥१६॥
तमारुह्य यथाशास्त्रं गुरूक्तेनैव वर्त्मना।
ये विशन्ति ब्रह्मपदं ब्रह्मचर्यादिसाधनात्।

---

† यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम्।
वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम् ॥
(वाल्मीकि० रा० आरण्य० ४८।६)

‡ लघु दारुमयं महाविहङ्गं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चाग्निचूर्णम् ॥
(समराङ्गण० यन्त्रवि० ३१।९५)

* व्योमयानं विमानं वा पूर्वमासीन्महीभुजाम् ॥
(युक्तिकल्पतरु० यानप्र० ५०)

तदत्र मङ्गलश्लोकरूपेण प्रतिपादितः ॥२०॥
(वृत्तिकारः)

पुरातन ऋषि महर्षि चाहे वे धर्मप्रवर्तक हों किसी विद्या या कला के आविष्कारक हों वे सभी अपने विषय को वेद से अनुमोदित या आविष्कृत हुआ घोषित करते हैं। धर्मप्रवर्तक मनुजहाराज कहते हैं "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" (मनु० २।१३) धर्म का ज्ञान करने के इच्छुकों के लिये परम प्रमाण वेद है। राजनीति के व्यवस्थापक वे ही मनुमहाराज कहते हैं "सेनापत्यं च....राज्यं च वेदशास्त्रविदर्हति" (मनु०१२।१००) सेनाके स्वामी होने और राज्यशासन करनेकी योग्यता वेदका वेत्ता प्राप्त कर सकता है। तथा "वेदो ह्यार्थवर्णः चिकित्सां प्राह" (चरक० सू० ३०।२०) चिकित्सा को अथर्ववेद कहता है। इसी प्रकार इस प्रस्तुत विमानकला के प्रवर्तक या आविष्कारक महर्षि भरद्वाज ने भी वेद से विमानकला का आविष्कार किया है "निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः। नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम्" (वृत्तिकारः १०) भरद्वाज महामुनि ने वेद समुद्र का निर्मन्थन करके "यन्त्रसर्वस्व" ग्रन्थ (जिसका एक भाग यह वैमानिक प्रकरण है) मक्खनरूप में निकालकर दिया है। वेद में विमानकला के विधायक अनेक मन्त्र हैं, उदाहरणार्थ दो तीन मन्त्र यहां प्रस्तुत करते हैं—

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेदा नावः समुद्रियाः ॥ [ऋ० १।२५।७]

जो आकाशमें उडते हुए पक्षियों के स्वरूप को जानता है वह समुद्रिय-आकाशीय † नौकाओं को–विमानों को जानता है।

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥

[ऋ० १।११६।३]

बाहिर से सामान लानेवाला लादू पोत (जहाज) जलतरङ्गों के उत्पातपूर्ण समुद्र में कदाचित् डूबता हुआ भोगसामग्री के अध्यक्ष को मरते हुए धन को छोडते हुए की भांति छोड देता है तब उस व्यापाराध्यक्ष को अश्विनौ–ज्योतिर्मय और रसमय दो शक्तियां जलसम्पर्करहित बलवती 'अन्तरिक्षप्रुद्भिः' आकाश में उडनेवाली नौकाओं से वहन करती हैं–उडा ले जाती हैं।

न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः।
परि द्यामन्यदीयते ॥

[ऋ० १।३०।१९]

अबाध्य रथ–विमान की मूर्धा में लगा अन्यत् चक्र जो और चक्रों से अलग है–भूमिवाले चक्रों से अलग है जिसे दो अश्विनौ शक्तियां नियन्त्रित करती है जो कि 'द्यां परि-ईयते' आकाश में घूमता है।

---

† "समुद्रः-अन्तरिक्षनाम" (निघं० १।३)

इसी प्रकार 'वातरंहा, त्रिवन्धुरेण, त्रिवृता रथेन, त्रिचक्रेण' इत्यादि विशेषणों से युक्त विमानकालद्योतक अन्य अनेक मन्त्र हैं।

कहीं कहीं वेदमन्त्रों की प्रतीक भी विषयप्रसङ्ग में इस ग्रन्थ में आजाती है। यथा "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" (ऋ० ८।१०।५), "नमस्ते रुद्र मन्यवे" (यजु० १६।१) एवं कुछ ब्राह्मणग्रन्थों के वचन भी आ जाते हैं।

यह 'वैमानिकप्रकरण' "यन्त्रसर्वस्व" ग्रन्थ का एक भाग है जिसमें ऐसे ही यन्त्रविषयक ४० प्रकरण थे। "यन्त्रसर्वस्व" ग्रन्थ के रचयिता महर्षि भरद्वाज होने से इस "वैमानिक प्रकरण" के भी रचयिता महर्षि भरद्वाज हुए। महर्षि भरद्वाज से पूर्व विमानकलासम्बन्धी शास्त्रों के रचयिता अन्य भो हुए हैं जैसे नारायणमुनि, शौनक,गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि,धुण्डिनाथ जोकि क्रमशः विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेटयानप्रदीपिका, व्योमयानार्कप्रकाश। इन विमानविषयक शास्त्रों के रचयिता थे†। विमान के बनाने वाले विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मय आदि हुए हैं‡।

यह "वैमानिक प्रकरणः" ८ अध्यायों १०० अधिकरणों और ५०० सूत्रों में महर्षि भरद्वाज ने रचा था, जैसा कि महर्षि भरद्वाज ने स्वयं अपने मङ्गलाचरण वचन में कहा है—

सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं शताधिकरणैस्तथा।
अष्टाध्यायसमायुक्तमतिगूढं मनोहरम् ॥

---

† पूर्वाचार्यांश्च तद्ग्रन्थान् द्वितीयश्लोकतोऽब्रवीत्।
विश्वनाथोक्तनामानि तेषां वक्ष्ये यथाक्रमम् ॥३३॥
नारायणः शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा।
चाक्रायणिर्धुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृतस्स्वयम् ॥३४॥
विमानचन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च।
यन्त्रकल्पो यानविन्दुः खेटयानप्रदीपिका ॥३५॥
व्योमयानार्कप्रकाशश्चेति शास्त्राणि षट् क्रमात्।
नारायणादिमुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः ॥३६॥
विचार्यैतानि विधिवद् भरद्वाजः कृपानिधिः।
वैमानिकप्रकरणं सर्वलोकोपकारकम्।
पारिभाषिकरूपेण रचयामास विस्तरात् ॥३७॥
(वृत्तिकारः)

‡ विश्वकर्मा छायापुरुषमनुमयादि.........................।
(वृत्तिकारः)

कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्मणा।
दिवं गते वायुपथे प्रतिष्ठितं व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्मवत्।
(वाल्मीकि रा० सुन्दर० ८।१।२)

वैमानिप्रकरणं कथ्यतेस्मिन् यथामति ।

समस्त सूत्रपाठ कहां है यह तो पता नहीं लगता, हां प्रारम्भ से क्रमशः १४ सूत्र तो इस में दिए हुए हैं, क्वचित् क्वचित् बीच में भी दिए हुए मिलते हैं और अन्यवस्थितरूप में किन्तु वृत्तिकार बोधानन्द के वृत्तिश्लोक ही मिलते हैं। वृत्तिकार बोधानन्द यति हैं† लगभग तीन सहस्र श्लोक इस में हैं और यह ग्रन्थ २३ कापियों में प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ का काल क्या है यह कुछ नहीं बताया जा सकता है, मूलहस्त लेख हमें नहीं मिला किन्तु प्रतिलिपि (Transcript) हमें मिला है। ट्रांस्क्रिप्ट कापी १६१८ ई० की हमें बडोदा राजकीय संस्कृत लाईब्रेरी में मिली थी पुनः १६१६ ई० की प्रतिलिपि (Transcript) यह अब मिली जो आज से ४० वर्ष पूर्व की है, हस्तकापी के मोटे कागज पुराने ढंग के हैं जो अन्य पक्के कागज की पट्टियों में चिपके हुए हैं। पूना कालिज (से प्राप्त कापी) के फिल्म फोटो भी प्राप्तहुए हैं उनपर लिखा है "गो वेङ्कटाचल शर्मा १६-८-१६१६, ३-६-१६१६ तारीखें प्रतिलिपिकर्ता ने दी हैं। सूत्रों में ही क्या श्लोकों में भी भाषा पुरानी जचती है, 'एध' धातु का प्रयोग बढने अर्थ में नहीं किन्तु प्राप्त होने अर्थ में आता है" नाशमेधते, लयमेधते। सन्धियां भी आधुनिक ही नहीं आतीं। पतत्यदा, त्रयाम०, एकमप्यदि, यन्त्राण्यथाक्रमम्, केन्द्रेष्वात०"‡ आदि प्रयोग आते हैं। 'लोहतन्त्र, दर्पणप्रकरण, शक्तितन्त्र' आदि लगभग १०० पुरातन ग्रन्थों के उल्लेख भी दिए हैं। नारायण गालव आदि ३६ आचार्यों के नाम भी विमानकलाविषयक शास्त्रनिर्मातृत्व और मतप्रदर्शन के प्रसङ्ग में आए हैं जिनकी सूचि साथ में दी है। विमान में अनेक अप्रसिद्ध नवीन अद्भुत यन्त्र बनाकर रखने का विधान भी किया है। इस से ग्रन्थ की पुरातनता प्रतीत होती है।

विमान शब्द का अर्थ--

महर्षि भरद्वाज के सूत्र और अन्य आचार्य विश्वम्भर आदि के मत में वि–पक्षी की भांति गति के मान से एक देश से दूसरे देश एक द्वीप से दूसरे द्वीप और एक लोक से दूसरे लोक को जो आकाश में उडकर जानेवाला यान हो वह विमान कहा जाता है*। एक लोक से दूसरे लोक में विमान पहुंचने

---

† महादेवं महादेवीं वाणीं गणपतिं गुरुम्।
शास्त्रकारं भरद्वाजं प्रणिपत्य यथामति ॥ १ ॥
बालानां सुखबोधाय बोधानन्दयतीश्वरः।
संग्रहाद् वैमानिकप्रकरणस्य यथाविधि ॥
लिलेख बोधानन्दवृत्त्याख्यां व्याख्यां मनोहराम् ॥४॥
(वृत्तिकारः)

‡ पतित यदा, त्रि याम० एकमपि यदि, यन्त्राणि यथाक्रमम, केन्द्रेषु वात०।

* वेगसाम्याद् विमानोण्डजानामिति ॥ अ० १ । १ ॥
देशाद् देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुमर्हति।
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदां वरैः ॥
(इति विश्वम्भरः)

की कल्पना आज की ही नहीं किन्तु १६४३ ई० में तो हमने इसे अपनी बडोदावाली "विमानशास्त्र" नामक प्रकाशित पुस्तक में आज से १६ वर्ष पूर्व दिया था और उक्त लेख का ट्रांस्क्रिप्ट (प्रतिलिपि) १६१८ ई० अर्थात् आज से चालीस वर्ष पूर्व वर्तमान था पुनः उस ट्रांस्क्रिप्ट के मूल म्येनुस्क्रिप्ट में न जाने कब का पुराना है। अपितु मङ्गल, बुध, शुक्र आदि ग्रहों और नक्षत्रों की कक्षासन्धियों में आ जाने पर विपत्तियों से बचाने का वर्णन भी आता है।

विमान के जातिभेद—

मान्त्रिक (योगसिद्धि से सम्पन्न), तान्त्रिक (औषधयुक्ति एवं शक्तिमय वस्तुप्रयोग से सम्पन्न), कृतक—यान्त्रिक (कला मशीन एंजिन आदि से प्रयुक्त) ये तीन प्रकार के होते हैं। कृतक जाति में शकुन विमान (पक्षी के आकार का पंखपुच्छसहित विमान), रुक्म विमान (खनिज पदार्थों के योग से रुक्म अर्थात् सोने जैसी आभा सम्पादित किए लोहे से बना विमान), सुन्दर विमान (शुण्डाल से धूएं के आधार पर चलनेवाला जेट विमान) कहे हैं तथा त्रिपुर विमान (तीनों स्थल जल गगन में चलने तरने उडनेवाला विमान) आदि २५ कहे हैं ॥

विमान की गतियां और मार्ग--

विमान की भिन्न भिन्न गतियां 'चालन, कम्पन, ऊर्ध्वगमन, अधोगमन, मण्डल गति–चक्रगति–घूमगति, विचित्रगति, अनुलोमगति—दक्षिणगति, विलोमगति—वामगति, पराङ्मुखगति, स्तम्भनगति, तिर्यग्गति—तिरछीगति, विविधगति या नानागति' हैं जो कि विद्युत् के योग या विद्युत्–शक्ति से होती हैं। विमान के मार्ग आकाश में रेखापथ, मण्डल, कक्ष्य, शक्ति, केन्द्र, ये पांच कहे हैं। विमानगति के अवरोधक भी आकाशीय पांच आवर्त्त (बव्वण्डर) बतलाए हैं।

रक्षाविधान और यन्त्रविधान--

इस वैमानिक प्रकरण में शत्रुद्वाराप्रयुक्त प्रहारक उपायों से एवं आकाशीय पदार्थों से भी स्वविमान की रक्षा का विधान है। यथा—शत्रु ने जब अपने विमान के मार्ग में दम्भोलि (तारपीडो जैसी वस्तु) आदि फेंक दी हो तो उसके प्रहार से बचने के लिए अपने विमान की तिर्यग्गति (तिरछीगति) कर दो या अपने विमान को कृत्रिम मेघों में छिपादो अथवा शत्रुजन पर तामस यन्त्र से तमः—अन्धकार छोडदो। शत्रुद्वारा भूमि में छिपाए हुए प्रहारक अग्निगोल आदि पदार्थों को गुहागर्भादर्श यन्त्र से जानकर उन से स्वविमान को बचा लेना उस दूरबीन जैसे गुहागर्भादर्श यन्त्र से ऐसे स्थान पर सूर्यकिरणें ऐक्सरे की भांति अन्दर प्रविष्ट हो कर उन छिपे हुए पदार्थों को चित्ररूप में दिखलादेती हैं। एवं आकाश में भी शत्रुओं के आक्रमण से बचने के अनेक उपाय बतालाए हैं जैसे—शत्रु के विमानों ने स्वविमान को चारों ओर से घेर लिया हो तो अपने विमान की द्विचक्र कीली को चलाने से ८७ लिङ्क (डिग्री) की ज्वालाशक्ति प्रकट होगी उसे गोलाकार में घुमादेने पर वे शत्रु के विमान जलकर नष्ट हो जावेंगे तथा दूर से आते हुए शत्रु के विमान की ओर ४०८७ तरङ्गे फेंक कर उसे उडने में असमर्थ कर देना। नीचे खडी हुई शत्रुसेना पर स्वविमान से शब्द खण्डन–महाशब्दप्रहार करना जिससे वे सैनिक भयभीत होजावें बहरे बनजावें हृदयभङ्ग को प्राप्त होजावें। एवं आकाशीय पदार्थों वर्षा, वात, विद्युत्, आतप, शब्द, उल्का,

पुच्छलतारों के अवशेषों तथा ग्रह-नक्षत्रों की कक्षासन्धियों से रक्षा करना भी कहा है। वर्षोपसंहार यन्त्र से विमानसे सम्बद्ध वायु ऊपर वेग से प्रगति करेगी उससे पुरोवात(वर्षा लानेवालीवायु)संघर्ष को प्राप्तकरके दो टुकडों में विभक्त हो जावेगी जोकि जल की दो शक्तियां हैं द्रव (पतलापन) और प्राणन (गीला करनेवाली) पुनः विमान पर जल न द्रवित होगा—बहेगा—गिरेगा और न गीला कर सकेगा। महावात के आघात से बचने को व्यास्यवातनिरसन यन्त्र लगाना उस से वायु को त्रिमुखी—तीन टुकडों में कर दूर भगा देना। विद्युत् के प्रभाव को दूर रखनेवाला शिरःकीलक यन्त्र विमान के मस्तक में लगाना जो कि छत्री की भांति घूमता हुआ विद्युत् के प्रभाव को कोसों दूर रखता है। आतप (धूपताप) की क्षति से विमान को बचाने के लिए आतपोपसंहार यन्त्र लगाना जिस से उष्णता का नाश शीतता का प्रसार हो। शक्त्याकर्षणयन्त्र से आकाशतरङ्गों वातसूत्रों से होने वाली क्षति से विमान को बचाना। एवं शब्द, उल्का, पुच्छलतारों के अवशेषों और ग्रहों की कक्षासन्धियों के प्रभावों से विमान को बचाने के लिए विविध यन्त्र लगाना। सूर्यकिरणों को स्वाधीन करने के लिये परिवेषक्रियायन्त्र लगाना आदि कहा गया है। एवं सूर्यकिरणों को आकर्षित करके विविध उपयोग लेना भी कहा है। इसी प्रकार रूपाकर्षणयन्त्र रूपों का चित्र लेने के लिये, विश्वक्रियादर्पण, पद्मपत्रमुखयन्त्र, धूमप्रसारण, औष्म्ययन्त्र (एंजिन), त्रिपुरविमान में घूमनेवाले घर बनाना और सीत्कारीयन्त्र बाहिर की वायु को खींचने के लिये लगाना जिस से त्रिपुर विमान के यात्री जल में भी श्वास ले सकें, वायु विद्युत धूम के यथोचित उपयोगार्थ प्राणकुण्डलिनीयन्त्र वेगमापक, उष्णतामापक कालमापकयन्त्र लगाए जावें एवं विद्युत् से चालित या विद्युत् के योगसे ३२ यन्त्र प्रयुक्त किए जावें। विमान के प्रत्येक अङ्ग को भिन्न भिन्न कृत्रिम लोहे से तैयार करके बनाना, लोहों का खनि से ही प्राप्त होना नहीं किन्तु उसकी प्राप्ति के १२ स्थान बतलाए गए हैं। भूगर्भ में खनिज पदार्थों की सहस्रों रेखा पंक्तियां कही हैं। इत्यादि बातें इस वैमानिक प्रकरण में अपने अपने स्थान पर मिलेंगी।

धन्यवाद--

सर्वप्रथम हम ऋषि दयानन्द का महान् धन्यवाद करते हैं जिन्होंने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका ग्रन्थ और वेदभाष्य में स्थान स्थान पर विमानयान और उसके द्वारा आकाश में उडान एवं यात्रा करने का वर्णन ऐसे समय में किया† जबकि किसी को इस युग में स्वप्न में भी इस बात की कल्पना न थी। उस ऋषिके वचनों से प्रेरित हो विमानविषयक पुरातन ग्रन्थों की खोज में हम प्रवृत्त हुए। लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व बडोदा राजकीय संस्कृत पुस्तकभवन (लाईब्रेरी) से हस्तलिखित इस वैमानिक प्रकरण का कुछ भाग हमें प्राप्त हुआ था उसका हिन्दी अनुवाद 'विमानशास्त्र' नाम से हमने प्रकाशित भी कर दिया था उसी के आधारपर अन्य खोज हुई बडोदा, पूना, उत्तर, दक्षिण आदि से यह श्लोकसामग्री हमें प्राप्तहुई,एतदर्थ श्री विनयतोष जी भट्टाचार्य P. H. D. अध्यक्ष राजकीय संस्कृत लाईब्रेरी बडोदा का हम धन्यवाद करते हैं और श्री सुरेन्द्रनाथ जी गोयल एयर कमोडर के सहयोग की भी हम सराहना करते हैं। पुनः गुरुकुलकांगडी के अधिकारियों विशेषतः गुरुकुल के कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति का भी मैं अत्यधिक हार्दिक धन्यवाद करता हूं जिन्होंने इस अनुवादकार्य के सम्पादनार्थ गुरुकुल में स्थान तथा पुस्तकभवन

† ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य में "शब्दायमानान् विमानान्–शब्द करते हुए विमान" ऐसा भी लिखा है जैसा कि विमान उडते हुए शब्द करते हैं।

(लाईब्रेरी) से पुस्तकों के उपयोग आदि की सब सुविधाएं हमें प्रदान करने की महती कृपा की है। अन्त में सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा का भी मैं धन्यवाद करता हूँ जिसने मेरे द्वारा समर्पित इस भेंट का स्वागत कर इसे प्रकाशित किया है। पुनः रसायनाचार्य,आयुर्वेदाचार्य,खनिजशास्त्री, भूगर्भशास्त्री, खगोल-विद्यावेत्ता ज्योतिषी एवं वैज्ञानिक विद्वान् महानुभाव इस का अवलोकन कर इस में आए विविध यन्त्रों धातुप्रसङ्गों विद्युत् शक्तियों रेडियो-संकेतों राकेट जैसी बातों का विचार कर उनके सम्बन्ध में प्रशस्त प्रकाश डालें और अपने विचार एवं सम्मतियां हमारे पास भेजने की कृपा करें। एतदर्थ ही हम इस कार्य में निःस्वार्थ लगे और इसे प्रकाशित किया है।

विज्ञप्ति—ग्रन्थ के सन्दिग्ध शब्दों और शब्दार्थों के आगे प्रश्न द्योतक चिह्न ? दे दिया गया है।

भवदीय—
स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक
१०-९-१९५८ ई०

वैमानिक प्रकरण में निर्दिष्ट पुरातन ग्रन्थों की सूची

१—क्रियासार:
२—यन्त्रसर्वस्वम् (भरद्वाजकृतम्)
३—शौनकीयम् (शौनककृतम्)
४—लोहतन्त्रम्
५—दर्पणप्रकरणम्
६—विमानचन्द्रिका
७—व्योयानतन्त्रम्
८—यन्त्रकल्प:
९—व्योमयानार्कप्रकाश:
१०—खेटयानप्रदीपिका
११—यानविन्दु:
१२—माणिभद्रकारिका
१३—लोहप्रकरणम्
१४—शक्तितन्त्रम्
१५—दर्पणशास्त्रम्
१६—लोहसर्वस्वम्
१७—धातुसर्वस्वम् (बोधायनकृतम्)
१८—संस्काररत्नाकर:
१९—मणिप्रकरणम्
२०—शब्दमहोदधि:
२१—पटकल्प:
२२—यन्त्रप्रकरणम्
२३—अगतत्त्वलहरी (आश्वलायनकृता)
२४—पटप्रदीपिका
२५—चारनिबन्धनग्रन्थ:
२६—शक्तिसर्वस्वम्
२७—ऋतुकल्प:
२८—वर्णसर्वस्वम्
२९—मूलार्कप्रकाशिका
३०—क्षीरीपटकल्प:
३१—शणनिर्यासचन्द्रिका
३२—नालिकानिर्णय:
३३—मणिकल्पप्रदीपिका
३४—बृहत्काण्डम्
३५—पट्टिकानिबन्धनम्
३६—खेटविलासग्रन्थ:
३७—पार्थिवपाककल्प:
३८—उद्भिज्जतत्त्वसारायणम्
३९—गतिनिर्णयाध्याय:
४०—लोहतत्त्वप्रकरणम्
४१—सौदामिनीकला (ईश्वरकृता)
४२—शब्दनिबन्धनम्
४३—निर्यासकल्प:
४४—नामार्थकल्पसूत्रम् (अत्रिकृतम्)
४५—सर्वशब्दनिबन्धनम्
४६—खेटसर्वस्वम्
४७—द्रावकप्रकरणम्
४८—खेटयन्त्रम्
४९—लोहरत्नाकर:
५०—निर्णयाधिकार:
५१—मूषकल्प:
५२—कुण्डकल्प:
५३—कुण्डनिर्णय:
५४—भस्त्रिकानिबन्धनम्

५५—मुकुरकल्पः
५६—दर्पणकल्पः
५७—पराङ्कुशः
५८—सम्मोहक्रियाकाण्डम्
५९—अंशुबोधिनी
६०—प्रपञ्चसारः
६१—शक्तिबीजम्
६२—शक्तिकौस्तुभम्
६३—यन्त्रकल्पतरुः (लल्लप्रणीतः)
६४—मणिरत्नाकरः
६५—पटसंस्काररत्नाकरः
६६—विषनिर्णयाधिकारः
६७—अशनकल्पः
६८—पाकसर्वस्वम्
६९—लोहाधिकरणम्
७०—बोधानन्दकारिका (बोधानन्दकृता)
७१—लोहरहस्यम्
७२—परिभाषाचन्द्रिका
७३—विश्वम्भरकारिका (विश्वभरकृता)
७४—संस्कारदर्पणम्
७५—प्रलयपटलम्
७६—षड्गर्भविवेकः
७७—रघूदयः
७८—शक्तिसूत्रम् (अगस्त्यकृतम्)
७९—शुद्धविद्याकलापम् (आश्वलायनकृतम्)
८०—ब्रह्माण्डसारः (व्यासप्रणीतः)
८१—अंशुमत्तन्त्रम् (भरद्वाजकृतम्)
८२—छन्दःकौस्तुभः (पराशरप्रणीतः)
८३—कौमुदी (सिंहकोठकृता)
८४—रूपशक्तिप्रकरणम् (अङ्गिरस्कृतम्)
८५—करकप्रकरणम् (अङ्गिरस्कृतम्)
८६—आकाशतन्त्रम् (भरद्वाजकृतम्)
८७—लोकसंग्रहः (विसरणकृतः)
८८—प्रपञ्चलहरी (वसिष्ठकृता)
८९—जीवसर्वस्वम् (जैमिनिकृतम्)
९०—कर्माब्धिपारः (आपस्तम्भकृतः)
९१—रुक्हृदयम् (अत्रिकृतम्)
९२—वायुतत्त्वप्रकरणम् (शकटायनकृतम्)
९३—वैश्वानरतन्त्रम् (नारदकृतम्)
९४—धूमप्रकरणम् (नारदकृम्)
९५—ओषधिकल्पः (अत्रिकृतः)
९६—वाल्मीकिगणितम् (वाल्मीकिकृतम्)
९७—लोहशास्त्रम् (शाकटायनकृतम्)

❀ वैमानिक प्रकरण में आये आचार्यों के नाम ❀

१—नारायण मुनि
२—शौनक
३—गर्ग
४—वाचस्पति
५—चाक्रायणि
६—धुण्डिनाथ
७—विश्वनाथ
८—गौतम
९—लल्ल
१०—विश्वम्भर
११—अगस्त्य
१२—बुडिल
१३—गोभिल
१४—शाकटायन
१५—अत्रि
१६—कपर्दी
१७—गालव
१८—अग्निमित्र
१९—वाताप
२०—साम्ब
२१—बोधानन्द
२२—भरद्वाज
२३—सिद्धनाथ
२४—ईश्वर
२५—आश्वलायन
२६—व्यास
२७—पराशर
२८—सिंहकोठ
२९—अङ्गिरा
३०—विसरण
३१—वसिष्ठ
३२—जैमिनि
३३—आपस्तम्ब
३४—बौधायन
३५—नारद
३६—वाल्मीकि

बृहद् विमानशास्त्र
की
संक्षिप्त विषयसूचि

कापी संख्या १--

विषय पृष्ठ

महर्षिभरद्वाजकृत "यन्त्रसर्वस्व" ग्रन्थ का एक प्रकरण यह "वैमानिक प्रकरण" है जिसमें ऐसे ४० प्रकरण थे। "वैमानिक प्रकरण" का ८ अध्यायों १०० अधिकरणों ५०० सूत्रों में निबद्ध होना कहा गया है। यन्त्रकला जैसे इस ग्रन्थमें भी आस्तिकता का प्रदर्शन करने के लिये ओ३म् को मुमुक्षुओं का विमान वतलाया। वैमानिक प्रकरण से पूर्व 'विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेटयानप्रदीपिका, व्योमयानार्कप्रकाश' इन विमानविषयक छः शास्त्रों का विद्यमान होना जोकि क्रमशः नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि, धुण्डिनाथ महर्षियों के रचे हुए थे। महर्षि भरद्वाज द्वारा वेद का निर्मन्थन कर "यन्त्रसर्वस्व" ग्रन्थ को मक्खन के रूप में निकाल कर दिए जाने का कथन†। विमान शब्द का अर्थ सूत्रकार महर्षि भरद्वाज तथा आचार्य विश्वम्भर आदि के अनुसार वि-पक्षी की भांति गति के मान से एक देश से दूसरे देश एक द्वीप से दूसरे द्वोप और एक लोक से दूसरे लोक को आकाश में उडान लेने --पहुँचने में समर्थ यान है। अपितु पृथिवी जल और आकाश में तीनों स्थानों में गति करने वाला वतलाया गया (जिसे आगे त्रिपुर विमान नाम दिया है)। विमान के ३२ रहस्यों का निर्देश करना, यथा-विमान का अदृश्यकरण, शब्दप्रसारण, लङ्घन, रूपाकर्षण, शब्दाकर्षण, शत्रुओं पर धूमप्रसारण शत्रु से बचाने को स्वविमान का मेघावृत करना, शत्रु के विमानों द्वारा घिर जाने पर उन पर ज्वालाशक्ति को प्रसारित करना—फेंकना, दूर से आतेहुए शत्रुविमान पर ४०८७ तरङ्गे फेंक कर उडने में असमर्थ कर देना, शत्रुसेना पर असह्य महाशब्द संघणरूप (शब्दबम) फेंक कर उसे भयभीत वधिर शिथिल तथा हृद्रोग से पीडित कर देना आदि। आकाश में विमान के सम्मुख विमानविनाशक आकाशीय पांच आवर्त (बवण्डरों) का

† निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः।
नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम् ॥१०॥

विषय पृष्ठ

हस्तलिखितग्रन्थप्रदर्शित विषयानुक्रमणिका

* हस्तलेख में कापी करने वाले के प्रमाद से पुनरुक्ति है ।

अध्याय ५

अध्याय ६

अध्याय ७

अध्याय ८

इति विषयसूचिका समाप्ता ॥

विज्ञप्ति—यह सूचिका बडोदा राजकीय संस्कृत पुस्तक-भवन से प्राप्त हुई है।

कापी संख्या १—

यन्त्रसर्वस्वे

* वैमानिकप्रकरणम् *

मङ्गलाचरणम्

यद्विमानगतास्सर्वे यान्ति ब्रह्म परं पदम् ।
तन्नत्वा परमानन्दं श्रु [शृ ?] तिमस्तकगोचरम् ॥ ×
पूर्वाचार्यकृतान् शास्त्रानवलोक्य यथामति ।
सर्वलोकोपकाराय सर्वानर्थविनाशकम् ॥
त्रयीहृदयसन्दो [ब्दो ?] हसाररूपं सुखप्रदम् ।
सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं शताधिकरणैस्तथा ॥
अष्टाध्यायसमायुक्तमतिगूढं मनोहरम् ।†
जगतामतिसन्धानकारणं शुभदं नृणाम् ॥
अनायासाद् व्योमयानस्वरूपज्ञानसाधनम् ।
वैमानिकप्रकरणं कथ्यतेऽस्मिन् यथामति ॥

मङ्गलाचरणवचनों की बोधानन्दकृत व्याख्या—

व्याख्यानश्लोकाः +

महादेवं महादेवीं वाणीं गणपतिं गुरुम् ।
शास्त्रकारं भरद्वाजं प्रणिपत्य यथामति ॥ १ ॥

× गुजराती में 'ऋ' का 'रु' उच्चारण करते हैं अतः यहां 'श्रुति' का 'शृति' उच्चारणसमता से लिपिप्रमाद है जो कि वृत्तिकार के पश्चात् किसी गुजराती कापी करने वाले का काम है ।

† भरद्वाज महर्षि ने 'वैमानिक प्रकरण' को पांच सौ सूत्रों, सौ अधिकरणों और आठ अध्यायों में लिखा है यह इस कथन से स्पष्ट होता है ।

+ मङ्गलाचरण वचन महर्षि भरद्वाज के हैं 'महादेवं.....' से व्याख्यानश्लोक वृत्तिकार बोधानन्द यति के हैं ।

स्वतस्सिद्धन्यायशास्त्रं वाल्मीकिगणितं तथा ।
परिभाषाचन्द्रिकां च पश्चान्नामार्थकल्पकम् ॥ २ ॥
पञ्चवारं विचार्याथ तत्प्रमाणानुसारतः ।
बालानां सुखबोधाय बोधानन्दयतीश्वरः ॥ ३ ॥
संग्रहाद् वैमानिकाधिकरणस्य यथाविधि ।
लिलेख बोधानन्दवृत्त्याख्यां व्याख्यां मनोहराम् ॥ ४ ॥
व्याख्या लक्षणरीत्यास्य पाणिनीया[य्या?]*दिमानतः ।
पारिभाषिकरूपत्वाद् व्याख्यातुं नैव शक्यते ॥ ५ ॥

महान् देव परमेश्वर महती देवतारूप वाणी-वेदवाणी, निज गुरुवर गणपति को तथा 'यन्त्र-सर्वस्व' नामक शास्त्र एवं तत्रस्थ 'वैमानिक प्रकरण' के रचयिता महर्षि भरद्वाज को श्रद्धापूर्वक एवं यथावत् प्रणाम करके स्वतःसिद्ध न्यायशास्त्र तथा वाल्मीकि गणित और परिभाषाचन्द्रिका ग्रन्थ को पुनः नामार्थकल्प ग्रन्थ को पांच वार विचार करके तथा उनके प्रमाणानुसार विद्यार्थियों के सुखबोध–सरल ज्ञान के लिए मुक्त बोधानन्द यतीश्वर ने वैमानिक प्रकरण की बोधानन्दवृत्ति नाम की मनोहर व्याख्या को संक्षेप से यथाविधि लिखा है। इस ग्रन्थ की व्याख्या पारिभाषिकरूप होने से पाणिनीय आदि के अनुसार लक्षणरीति से स्पष्ट नहीं की जा सकती है+ ॥ १–५ ॥

प्रारीप्सितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नेन यथाक्रमम् ।
परिसमाप्तिप्रचयगमनाभ्यां यथाविधि ॥ ६ ॥
शिष्टाचारपरिप्राप्तमङ्गलाचरणं स्वतः ।
अनुष्ठाय यथाशास्त्रं शिष्यशिक्षार्थमादरात् ॥ ७ ॥
यद्विमानगतास्सर्वेत्युक्तश्लोकाद्यथाक्रमात् ।
स्वेष्टदेवनमस्काररूपमङ्गलमातनोत् ॥ ८ ॥
अर्थात्सूचयति ग्रन्थादनुबन्धचतुष्टयम् ।
ब्रह्मानुग्रहसंलब्धवेदराशिः कृपाकरः ॥ ९ ॥

प्रारम्भ करने में अभीष्ट ग्रन्थ की यथाक्रम निर्विघ्नरूप से यथाविधि परिसमाप्ति और विस्तार प्रचार के लिये एवं शिष्यों की शिक्षा के अर्थ शास्त्रानुसार आदर से शिष्टाचारपरम्परा से प्राप्त मङ्गलाचरण का स्वयं अनुष्ठान करके 'यद्विमानगतास्सर्वे' उक्त श्लोक से क्रमानुसार निज इष्टदेव का नमस्काररूप मङ्गल का महर्षि भरद्वाज ने सेवन किया है। परमेश्वर के अनुग्रह से समस्त वेदज्ञान को प्राप्त हुआ, दयालु ग्रन्थकार निज ग्रन्थ से अनुबन्धचतुष्टय को प्रकरण एवं प्रसङ्ग से सूचित करता है ॥१-९॥

निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः ।
नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम् ॥ १० ॥

---

* यहां हस्तलेख में 'पाणिनीय्यादिमानतः' प्रयोग से 'नीय्य' यकारद्वित्व है और ऐसा अनेक स्थलों पर आया है, हो सकता है यह शैली दाक्षिणात्य हो।

+ इस ग्रन्थ का समस्त हिन्दी भाषा का अनुवाद हमारा (स्वामी ब्रह्ममुनि का) है।

प्रायच्छत्सर्वलोकानामीप्सितार्थफलप्रदम् ।
तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम् ॥ ११ ॥
नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम् ।
अष्टाध्यायैर्विभाजितं शताधिकरणैर्युतम् ॥ १२ ॥
सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं व्योमयानप्रधानकम् ।
वैमानिकप्रकरणमुक्तं भगवता स्फुटम् ॥ १३ ॥

महर्षि भरद्वाज ने उस वेदरूप समुद्र का निर्मन्थन करके सब मनुष्यों के अभीष्ट फलप्रद 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थरूप मक्खन को निकाल कर दिया। चालीस अधिकारों-प्रकरणों से युक्त उस 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ में भिन्न भिन्न विमानों की विचित्रता और रचनाक्रम का बोधक आठ अध्यायों से विभाजित सौ अधिकरणों वाला पांच सौ सूत्रों से युक्त आकाशयान विमान-प्रधानरूप से जिसमें वर्णित है ऐसा 'वैमानिक प्रकरण' भगवान् भरद्वाज ऋषि ने सम्प्रदर्शित किया एवं स्पष्ट कहा है ॥ १०–१३ ॥

तत्रादौ मङ्गलश्लोकतात्पर्यं (यर्स् ?) सन्निरूप्यते ।
उत्तरे तापनीये च शैव्यप्रश्ने च काठके (टके ?) ॥१४॥
माण्डूक्ये च यदोङ्कारः परापरविभागतः ।
उक्तं स्यादारुरुक्षूणां ब्रह्मप्राप्त्यर्थमादरात् ॥ १५ ॥
विमानत्वेन मुनिना तदेवात्राभिवर्णितम् ।
वाच्यार्थलक्ष्यार्थभेदात्तद्द्वि(द्वि?)धा भिद्यते श्रु (श्रृ?)तौ ॥१६॥
तुरीय एव लक्ष्यार्थः प्रणवस्येति कीर्तितः ।
तदेवाखण्डैकरसः परमात्मेति चोच्यते ॥ १७ ॥
एत(क ?)दालम्बनं श्रेष्ठमित्यादि श्रु (श्रृ ?)तिमानतः ।
गमनार्थं साधकानां भक्त्या तत्परमं पदम् ॥ १८ ॥

अब प्रथम मङ्गलश्लोकों का तात्पर्य निरूपण किया जाता है उत्तर तापनीय, शैव्य प्रश्न, कठप्रोक्त और माण्डूक्य उपनिषद् में जो ओङ्कार –'ओम्' पर अपर विभाग से वर्णित है वह आरोहण करने को उत्सुकों की ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ आदर से कहा गया है। भरद्वाज मुनि ने इस मङ्गलाचरण में उसी ओम् ब्रह्म का विमान रूप से वर्णन किया है, उक्त ओम् रूप ब्रह्म वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के भेद से उपनिषद् रूप श्रुति में दो प्रकारों में विभक्त हो जाता है। प्रणव अर्थात् ओम् का तुरीयरूप अर्थात् चतुर्थ अमात्र रूप या वस्तुरूप ही लक्ष्यार्थ है ऐसा कहा है वही अखण्ड एकरस परमात्मा है ऐसा भी कहा है। यही ओङ्काररूप आलम्बन श्रेष्ठ है 'एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्' इत्यादि उपनिषद् वचनों के प्रमाणानुसार उपासकों का भक्ति से प्राप्त करने योग्य वह परम पद है ॥१४–१८॥

वाचक (:) प्रणवो ह्यत्र विमान इति वर्णितः ।
तमारुह्य यथाशास्त्रं गुरूक्तेनैव वर्त्मना ॥ १९ ॥
ये विशन्ति ब्रह्मपदं ब्रह्मचर्यादिसाधनात् ।
तदत्र मङ्गलश्लोकरूपेण प्रतिपादितः ॥ २० ॥

यहां वाचकरूप ओम् ही विमान है ऐसा वर्णित किया है गुरुद्वारा उपदिष्ट मार्ग से उस पर शास्त्रानुसार आरोहण कर जो उपासक जन ब्रह्मचर्य आदि साधन द्वारा ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं वह ऐसा ब्रह्मपद यहां मङ्गलश्लोकरूप वचन से विमान प्रतिपादित किया है ॥ १९—२० ॥

तदर्थबोधकपदान्यष्ट श्लोके स्मृतानि हि ।
द्वितीय (य्य ?)† पदतस्तेषु सम्यगुक्ता मुमुक्षवः ॥ २१ ॥
स एव कर्तृवाची स्याज्जीववाचीति चोच्यते ।
यद्विमानगतेप्यत्र वाचकः प्रणवस्स्मृतः ॥ २२ ॥
विमानत्वेनात्र सम्यक्तदेव प्रतिपादितः ।
एष एवादिमपदो भवेत् कर्तृविशेषणम् ॥ २३ ॥
तुरीयपदतः प्रोक्तमवाङ्मानसगोचरम् ।
अखण्डैकरसं ब्रह्म प्राप्तव्यस्थानमुत्तमम् ॥ २४ ॥
उक्तमेतत्कर्मपदमिति श्लोकान्वयक्रमात् ।
प्रणवाख्यविमानेन गमनं यत्प्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥
तत्तृतीयपदेनोक्तं वाच्यलक्ष्यैक्यबोधकम् ।
क्रियापदमिति प्रोक्तम (क्तं अ?)न्वयक्रमतः (त?) स्फुटम् ॥२६॥
विशेषणपदानि स्युः कर्मणस्त्रीण्यथाक्रमम् । +
प्रसिद्धि (द्ध?) द्योतनार्थाय पञ्चमं पदमीरितम् ॥ २७ ॥
तथैव सप्तपदं नित्यानन्दप्रबोधकम् ।
सर्ववेदान्तमानत्वबोधार्थं चाष्टमं पदम् ॥ २८ ॥

उसके अर्थबोधक आठ पद यहां श्लोक में स्मरण किए गये हैं—कहे हैं, उनमें द्वितीय पद से मुमुक्षु भली प्रकार कहे हैं। वह ही ओम् कर्तृवाची अर्थात् जगत्कर्ता परमेश्वर का वाचक है और जीववाची अर्थात् जीव का वाचक भी कहा जाता है ‡, यहां जिस विमानपदप्राप्ति पर भी ओम् वाचक निश्चित है। यहां मङ्गलाचरण में विमानरूप से वह ही भली प्रकार प्रतिपादित किया है वह ही आदि का पद अर्थात् ब्रह्मात्मा का प्रथम पाद या ओम् में अकार कर्तृविशेषण है। तुरीय पद अर्थात्—ब्रह्मात्मा के चतुर्थ पाद या ओम् के अमात्ररूप से वाणी और मन के व्यवहार से रहित अर्थात्—अवर्णनीय और अचिन्त्य अखण्ड एकरस उत्तम प्राप्तव्य स्थानरूप ब्रह्म कहा है। यह कर्मपद इस प्रकार श्लोकान्वय क्रम में कह दिया ओम् रूप विमान से गमन करना पहुँचना या प्राप्त करना जो कहा गया है। तृतीय पद से

---

† यहां 'द्वितीय्य' में यकारद्वय पूर्व की भांति दाक्षिणात्य हो सकता है।

+ यहां 'त्रीण्यथाक्रमम्' त्रीणि यथाक्रमम् में त्रीणि के अन्तिम इकार का लोप पुरातन छान्दस है।

‡ ओम् को जीववाची भी कहना यह वृत्तिकार बोधानन्द का है हमारा नहीं हमने तो उसके श्लोक का अनुवाद किया है।

वह वाच्य लक्ष्य की एकता का बोधक कहा है वह अन्वयक्रम से क्रियापद स्पष्ट कहा गया है। तीन विशेषण पद कर्म के यथाक्रम हैं पांचवां पद प्रसिद्धि दर्शाने के अर्थ कहा गया है। उसी प्रकार सातवां पद नित्यानन्द का बोधक है और आठवां पद समस्त वेदान्त-उपनिषद् वचनों द्वारा माननीयता के दर्शाने के अर्थ है ॥ २१—२८ ॥

नत्वेति यत्पदं प्रोक्तं तत्प्रह्वीभावबोधकम् ।
एतेन तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थोक्तमभूत्क्रमात् ॥ २९ ॥
यद्विमानगतेत्यत्र त्वंपदत्वेन वर्णितम् ।
तत्पदार्थत्वेन ब्रह्मपरं पदमितीरितम् ॥ ३० ॥
नत्वेत्यैक्यपरामर्शार्थोऽसि पदार्थबोधकः ।
इत्थं श्लोकात्तत्त्वमसि वाक्यार्थस्सन्निरूपितः ॥ ३१ ॥
तदर्थैक्यानुसन्धानरूपमङ्गलमातनोत् ।
एवं विधाय विधिवन्मङ्गलाचरणं मुनिः ॥ ३२ ॥
पूर्वाचार्यांश्च तद्ग्रन्थान् द्वितीयश्लोकतोब्रवीत् ।
विश्वनाथोक्तनामानि तेषां वक्ष्ये यथाक्रमम् ॥ ३३ ॥
नारायणः (णो ?) शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा ।
चाक्रायणिर्धुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृतस्स्वयम् ॥३४॥
विमानचन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च ।
यन्त्रकल्पो यानबिन्दुः खेटयानप्रदीपिका ॥ ३५ ॥
व्योमयानार्कप्रकाशश्चेति शास्त्राणि षट् क्रमात् ।
नारायणादिमुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः ॥ ३६ ॥
विचार्यैतानि विधिवद् भरद्वाजः कृपानिधिः ।
वैमानिकप्रकरणं सर्वलोकोपकारकम् ।
पारिभाषिकरूपेण रचयामास विस्तरात् ॥ ३७ ॥

मङ्गल वचनों में 'नत्वा' यह पद जो भरद्वाज ऋषि ने कहा है वह आदर-विनय भाव का दर्शक है इससे 'तत्वमसि' आदि उपनिषद् वाक्यार्थों से कहा हुआ ब्रह्म क्रम से समझना चाहिये। 'यद्विमान गत०' यहां त्वं पदरूप से उपनिषद् वचन में 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' कहा गया है 'तत्' पदार्थ-रूप से ब्रह्मपरक पद है ऐसा कहा है। 'नत्वा' यह ऐक्य परामर्श (जीवब्रह्म की एकता) के साथ सम्बन्ध रखने वाला 'असि' का पदार्थबोधक है इस प्रकार श्लोक से 'तत्त्वमसि' वाक्य का अर्थ निरूपित किया है+। भरद्वाज मुनि ने इस प्रकार विधिवत् मङ्गलाचरण करके उस ऐक्यार्थ के अनुसन्धानरूप मङ्गल का विस्तार किया है ॥ पूर्व आचार्यों और उनके ग्रन्थों को दूसरे श्लोक से कहा है, विश्वनाथ आचार्य के

+ यहां जीवब्रह्म की एकता का सिद्धान्त वृत्तिकार बोधानन्द का है हमारा नहीं हमने तो उसके वचनों का अनुवाद किया है।

द्वारा कहे हुए उनके नामों को मैं क्रम से कहूँगा। नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि और धुण्डिनाथ ये ऋषि स्वयं शास्त्रकार हैं। विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेटयान-प्रदीपिका और व्योमयानार्कप्रकाश ये छः शास्त्र क्रम से विशेष ज्ञानवेत्ता नारायण आदि मुनियों ने कहे हैं। दयानिधि भरद्वाज ऋषि ने इन शास्त्रों को भली प्रकार विचार कर सर्वलोकोपकारक 'वैमानिक प्रकरण' पारिभाषिक रूप से विस्तार से रचा है * ॥ २६—३७ ॥

अथ विमानशब्दार्थविचार :—

वेगसाम्याद् विमानोऽण्डजानामिति ॥ अ० १ । सू० १ ॥

सूत्रशब्दार्थ—अण्डजों अर्थात् पक्षियों के वेगसाम्य से विमान कहलाता है।

बोधानन्दवृत्ति :—

अण्डजेत्यत्र सूत्रेऽस्मिन् गृध्राद्याः पक्षिणः स्मृताः ।
आकाशगमने तेषां वेगशक्ति स्ववेगतः ॥ १ ॥
यः समर्थो विशेषेण मातुं गणितसंख्यया ।
स विमान इति प्रोक्तो वेगसाम्याच्च शास्त्रतः ॥ २ ॥

यद्वा—

गृध्रादिपक्षिणां वेगसाम्यं यस्यास्ति वेगतः ।
स विमान इति प्रोक्त (क्तो ?) आकाशगमने क्रमात् ॥३॥

इस सूत्र में "अण्डजानाम्" पद से गृध्र आदि पक्षी कहे गये हैं आकाशगमन में उनकी वेगशक्ति को जो स्ववेग से गणितसंख्या द्वारा विशेषरूपेण मापने तुलित करने में समर्थ हो वह वि–मान पक्षी के मान होने से अर्थात् वेगसाम्य से और शास्त्रानुसार (शब्दशास्त्रानुसार) विमान कहा गया है। अथवा आकाशगमन में गृध्र आदि पक्षियों के वेग की समता क्रमशः जिसके वेग से हो सकती है वह विमान कहा गया है + ॥ १—३ ॥

इत्थम्भावेति × शब्दस्स्याद् (दस्याद् ?) विमानार्थविनिर्णये—

लल्लोपि—

विसोप (म) ानं गमने येषामस्ति खमण्डले ।
ते विमाना इति प्रोक्ता यानशास्त्रविशारदैः ॥ ४ ॥

---

* महर्षि भरद्वाज के रचे 'वैमानिक प्रकरण' से पूर्व विमानशास्त्र के ग्रन्थ 'विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेटयानप्रदीपिका, व्योमयानार्कप्रकाश' ये छः थे।

+ ऋग्वेद में भी श्येन की उपमा उड़ने में विमान यान को दी है "आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृलीकः स्ववां यात्वर्वाङ् ।" (ऋ० १।११८।१)

× इत्थम्भात्र इति—इत्थम्भावेति सन्धिरार्षः पुरातनप्रयोगो वा।

नारायणोपि—

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतः स्वयम् ।
यस्समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृतः ॥ इत्यादि ॥५॥

शङ्खोपि—

स्थानात्स्थानान्तरं गन्तुं यस्समर्थः खमण्डले ।
स विमान इति प्रोक्तो यानशास्त्रविशारदैः ॥ ६ ॥ इत्यादि

विश्वम्भरः—

देशाद्देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा ।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योम्बरे गन्तुमर्हति ।
स विमान इति प्रोक्तः (ो ?) खेटशास्त्रविदां वरैः ॥७॥

विमानार्थ के निर्णय में इस प्रकार भाववाला यह विमान शब्द है । लल्ल आचार्य ने भी कहा है—आकाश-मण्डल में गमन करने में पक्षियों के साथ जिन की उपमा एवं तुल्यता हो वे यान-शास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा विमान कहे गये हैं। नारायण आचार्य ने भी कहा है—पृथिवी जल आकाश में पक्षियों के वेग की भांति स्वयं (यन्त्रादि द्वारा) जो गमन करने को समर्थ हो वह विमान कहा गया है। आचार्य शङ्ख ने भी कहा है—आकाशमण्डल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने को जो समर्थ हो वह यानशास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा विमान कहा गया है। एवं विश्वम्भर आचार्य ने भी कहा है—आकाश में देश से देश को द्वीप से द्वीप को और लोक से लोक को जो जा सकता हो वह यानशास्त्रज्ञ उच्च विद्वानों द्वारा विमान कहा गया है ॥ ४—७ ॥

एवं विमानशब्दार्थमुक्त्वा शास्त्रानुसारतः ।
अथेदानीं तद्रहस्यविचारस्स प्रकीर्त्यते—

रहस्यज्ञाधिकारी ॥ अ० १ । सू० २ ॥

सूत्रशब्दार्थ—रहस्यों का जाननेवाला विमान चलाने में अधिकारी है ।

बोधानन्दवृत्ति :—

वैमानिकरहस्यानि (णि?) यानि प्रोक्तानि शास्त्रतः ।
द्वात्रिंशदिति तान्येव यानयन्तृत्वकर्मणि ॥ १ ॥
साधकानि भवन्तीति यदुक्तं ज्ञानिभिः पुरा ।
तत्सूत्रस्यादिमपदात्सूचितं भवति स्फुटम् ॥ २ ॥
एतद्रहस्यविज्ञानं विदितं येन शास्त्रतः ।
द्वितीयपदतः प्रोक्तं सोधिकारी भवेदिति ॥ ३ ॥
एतेन यानयन्तृत्वे रहस्यज्ञानमन्तरा ।
सूत्रेधिकारसंसिद्धि र्नेति सम्यग्विनिर्णितम् ॥ ४ ॥

विमानरचने व्योमारोहणे चालने तथा ।
स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये ॥ ५ ॥
वैमानिकरहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा ।
यतोधिकारसंसिद्धि र्नेति सूत्रेण वर्णितम् ॥ ६ ॥
ततोधिकारसंसिद्धयै तद्रहस्याण्यथाक्रमम् ।
यथोक्तानि रहस्यलहर्यां लल्लादिभिः पुरा ॥ ७ ॥
तथैवोदाहरिष्यामि संग्रहेण यथामति ।

इस प्रकार शास्त्रानुसार विमानशब्दार्थ कहकर पुनः अब विमानरहस्य विचार वर्णित किया जाता है—शास्त्र द्वारा जो वैमानिक रहस्य बत्तीस कहे हैं वे ही यान-चालककर्म में साधक होते हैं यह जो विद्वानों ने पुराकाल में कहा है वह सूत्र के आदिम पद से स्पष्ट सूचित होता है। इस बत्तीस रहस्यविज्ञान को जिसने शास्त्रद्वारा जान लिया है वह विमान का अधिकारी है यह द्वितीय पद से कहा है। इससे यानचालक कर्म में रहस्यज्ञान के विना विमानाधिकार नहीं है यह भली प्रकार निर्णय दिया है ॥ विमान के रचने, आकाश में चढ़ने, चलाने, स्तम्भन करने—नियन्त्रण में रखने, उड़ाने चित्रगति और वेग आदि देने के निर्णय में वैमानिक रहस्यार्थज्ञानरूप साधन के विना अधिकारसंसिद्धि नहीं है अतः उसे सूत्र में कहा है। अधिकारसंसिद्धि के लिये उन रहस्यों को लल्ल आदि आचार्यों ने पुराकाल में क्रमशः जैसे 'रहस्यलहरी' ग्रन्थ में कहा है वैसे ही संक्षेप से यहां यथावत् उदाहृत करूंगा ॥ १—७ ॥

उक्तं हि रहस्यलहर्याम्—

मान्त्रिकस् [को ?] तान्त्रिकस्तद्वत्कृतकश्चान्तरालकः ।
गूढो दृश्यमदृश्यं च परोक्षश्चापरोक्षकः ॥ १ ॥ [८]
सङ्कोचो विस्तृतश्चैव विरूपकरणस्तथा ।
रूपान्तरस्सुरूपश्च ज्योतिर्भावस्तमोमयः ॥ २ ॥ [९]
प्रलयो विमुखस्तारो महाशब्दविमोहनः ।
लङ्घनस्सार्पगमनश्चपलस्सर्वतो मुखः ॥ ३ ॥ [१०]
परशब्दग्राहकश्च रूपाकर्षणस्तथा ।
क्रियारहस्यग्रहणो दिक्प्रदर्शनमेव च ॥ ४ ॥ [११]
* ... ...
स्तब्धकः]को ?] कर्षणश्चेति रहस्यानि यथाक्रमम् [१२]
एतानि द्वात्रिंशद्रहस्यानि [णि ?] गुरोर्मुखात् ॥ ५ ॥

---

* हस्तलेख में श्लोकार्द्ध छुटा हुआ है जो किसी कापी करने वाले से छूटा है, जिस श्लोकार्द्ध में 'आकाशाकार, जलदरूप' ये दो रहस्य थे तभी पूरी संख्या ३२ होगी, तथा आगे रहस्यविवरण में २९ ३० संख्या में उक्त दोनों रहस्यों को दिया हुआ भी है।

विज्ञाय विधिवत्सर्वं पश्चात् कार्यं समारभेत् [१३]
एतद्रहस्यानुभवो यस्यास्ति गुरुबोधनः ॥ ६ ॥
स एव व्योमयानाधिकारी स्यान्नेतरे जनाः (३) [१४]
एतेषां सिद्धनाथोक्तरहस्यार्थविवेचनम् ।
संग्रहेण प्रवक्ष्यामि रहस्यज्ञानसिद्धये [१५]

'रहस्यलहरी' में कहा है कि—मान्त्रिक, तान्त्रिक, कृतक, अन्तरालक, गूढ, दृश्य, अदृश्य, परोक्ष, अपरोक्षक, सङ्कोच, विस्तृत, विरूपकरण, रूपान्तर, सुरूप, ज्योतिर्भाव, तमोमय, प्रलय, विमुख, महाशब्दविमोहन, लङ्घन, सार्पगमन, चपल, सर्वतोमुख, परशब्दग्राहक, रूपाकर्षण, क्रियारहस्यग्रहण, दिक्प्रदर्शन, (आकाशाकार, जलदरूप), स्तब्धक, कर्षण। यथाक्रम इन बत्तीस रहस्यों को गुरुमुख से जानकर पुनः विधिवत् समस्त कार्य प्रारम्भ करना चाहिये॥ गुरु से सीखा हुआ यह रहस्यानुभव जिसको है वह ही व्योमयान अर्थात् आकाशयान विमान चलाने का अधिकारी हो सकता है अन्य जन नहीं ८—१५॥

इन बत्तीस प्रकार के विमानविषयक रहस्यों के सिद्धनाथ आचार्य द्वारा वर्णित विवेचन को मैं रहस्यज्ञानसिद्धि के लिये संक्षेप से कहूँगा ॥१५॥

(१) तत्र मान्त्रिकरहस्यो नाम—मन्त्राधिकारोक्तरीत्या छिन्नमस्ताभैरवीवेगिनोसिद्धाम्बादिमन्त्रानुष्ठानैरुपलब्धसिद्धमार्गोक्तघुटिकापादुकादृश्यादृश्यादिशक्तिभिस्त (भिः त ?) था सिद्धाम्बा—ओषध्यैश्व (धीश्व ?) र्यादिमन्त्रानुष्ठानैः सम्प्राप्त ओषधिभिस्तद्द्रा (द्रा ?) वकतैलादिभिश्च भुवनैश्च (नेश्च) र्यादिमन्त्रानुष्ठानलब्धमन्त्रशक्तिक्रियाशक्त्यादिभिश्च कलासंयोजनद्वाराऽभेद्यत्वाच्छेद्यत्वादाह्यत्वाविनाशित्वादिगुणविशिष्टविमानरचनाक्रियारहस्यम् × ॥

(१) मान्त्रिक रहस्य विचार—मन्त्राधिकार में कही रीति के अनुसार छिन्नमस्ता भैरवी वेगिनी सिद्धाम्बा † आदि के मन्त्रानुष्ठानों से उपलब्ध सिद्ध मार्गों में कही हुई घुटिका, पादुका, दृश्य अदृश्य ‡ आदि की शक्तियों द्वारा तथा सिद्धाम्बा ओषधि + ऐश्वर्य आदि के मन्त्रानुष्ठानों से प्राप्त ओषधियों

× हस्तलेख में 'द्वारा अभेद्यत्वअच्छेद्यत्व अविनाशित्वादि' ऐसा सन्धिरहित पाठ है।

† छिन्नमस्ता आदि चार प्रकार की विद्युत् के नाम पारिभाषिक प्रतीत होते हैं जो यन्त्र में प्रयुक्त की जाती है।

‡ घुटिका आदि शक्तिरूप साधनों के जातिवाचक नाम हैं।

+ राजनिघण्टु में 'सिद्धौषधियां' पांच ओषधियों के नाम बतलाये हैं।
तैलकन्दसुधाकन्दरुदन्ता सर्पपाशीषु ।
तैलकन्दः सुधाकन्दः क्रोडदन्ती रुदन्तिका ॥
सर्पनेत्रयुताः पञ्च सिद्धौषधिसंज्ञका ॥ (रा० नि०)

एवं उनके द्रावक तैल+ आदि से भुवन ऐश्वर्य आदि मन्त्रानुष्ठानों से प्राप्त मन्त्रशक्ति (विद्यायुक्त विचारशक्ति) एवं क्रियाशक्ति आदि से कलासंयोजन द्वारा अभेद्यता अच्छेद्यता अदाह्यता अविनाशिता आदि गुणविशिष्ट विमानरचनारूप क्रियारहस्य विचार है ।

(२) तान्त्रिकरहस्यो नाम––महामायाशम्बरादितान्त्रिकशास्त्रोक्तानुष्ठानमार्गात्तत्तच्छक्तचनुसन्धानरहस्यम् ।।

(२) तान्त्रिकरहस्यविचार—महामाया शम्बर आदि तान्त्रिक शास्त्र में कहे अनुष्ठान मार्ग से उस शक्ति का अनुसन्धानरहस्य विचार है ।।

(३) कृतकरहस्यो नाम––विश्वकर्मछायापुरुषमनुमयादिशास्त्रानुष्ठान- (नु ?) द्वारा तत्तच्छक्त्यनुसन्धानपूर्वकं तात्कालिकसङ्कल्पानुसारेण विमानरचनाक्रमरहस्यम् ।।

(३) कृतक रहस्य विचार—विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मय ‡ आदि (यन्त्राविष्कारक महर्षियों के) शास्त्रों के अनुष्ठान द्वारा उस शक्ति का अनुसन्धान खोज ध्यान तात्कालिक सङ्कल्प अर्थात् तुरन्त नूतन कल्पना के अनुसार विमानरचनाक्रम रहस्य विचार है ।

(४) अन्तरालरहस्यो नाम––आकाशपरिधिमण्डलशक्तिसन्धिस्थानेषु विमानप्रवेशो यदा भवति तदोभय (तदा उभय ?) शक्तिसम्मर्दनेन चूर्णितो भवति । अतो (तः ?) विमानस्य तत्सन्धिप्रवेशसूचनात्तदन्तरालेषु विमानस्तम्भनक्रियाकरणरहस्यम् ।।

(४) अन्तरालरहस्य विचार—आकाशपरिधिमण्डल की शक्तियों के सन्धिस्थानों में जब विमान-प्रवेश हो जाता है तो दोनों शक्तियों के सम्मर्दन से विमान चूर्णित हो जाता है टूट जाता है । अतः विमान के उस सन्धिप्रवेश की सूचना करने से उन अन्तरालों में विमानस्तम्भनक्रिया करने रूप रहस्य का विचार होना चाहिये ।

(५) गूढ़रहस्यो नाम––वायुतत्त्वप्रकरणोक्तरीत्या वातस्तम्भाष्टमपरिधिरेखापथस्य यासावियासाप्रयासादिवातशक्तिभिः सूर्यकिरणान्तर्गततमश्शक्तिमाकृष्य तत्संजोजनद्वारा विमानाच्छादनरहस्यम् ।।

(५) गूढ़रहस्यविचार—वायुतत्त्व प्रकरण में कही रीति के अनुसार वातस्तम्भ की आठवीं परिधि के रेखामार्ग की यासा वियासा प्रयासा आदि वातशक्तियों के द्वारा सूर्यकिरणान्तर्गत अन्धकार शक्ति को आकृष्ट कर उसके संयोजनद्वारा विमानाच्छादन करना रहस्य है ।।

+ यन्त्र में तैल का उपयोग आवश्यक है अतः कहा गया है ।

‡ विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मय आदि प्राचीन विमान आदि यान यन्त्र के आविष्कारक तथा उन उन शास्त्रों के रचयिता थे । वाल्मीकि रामायण में पुष्पक विमान का आविष्कारक विश्वकर्मा कहा ही है ।

(६) दृश्यरहस्यो नाम––आकाशमण्डले विद्युद्वातकिरणशक्तयोः परस्परसम्मेलनात्सञ्जातबिम्बकृच्छक्तेर्विमानपीठपुरोभागस्य विश्वक्रियादर्पणविले प्रतिफलं कृत्वा पश्चात्तत्प्रकाशसन्निवेशनद्वारा मायाविमानप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(६) दृश्य रहस्य विचार—आकाशमण्डल में विद्युत्किरण वातकिरण (वातलहर) इन दोनों की शक्तियों के परस्पर सम्मेलन से उत्पन्न हुई बिम्बकरने वाली शक्ति से विमान-पीठ के सामने-वाले भाग के विश्वक्रियादर्पणरूप विल में प्रतिफल छाया करके पश्चात् उस प्रकाश के पड़ने से माया-विमान के दिखलाई पड़ने का रहस्य है ॥

(७) अदृश्यरहस्यो नाम—शक्तितन्त्रोक्तरीत्या सूर्यरथेषादण्डप्राङ्-मुखपृष्ठकेन्द्रस्थवैणरथ्यविकरणादिशक्तिभिरा (भिः आ ?) काशतरङ्गस्य शक्तिप्रवाहमाकृष्य वातमण्डलस्थबलाहाविकरणादिशक्तिपञ्चके नियोज्य तद्द्वा (द्वा ?) राश्वेताभ्रमण्डलाकारं कृत्वा तदावरणाद्विमानादृश्यकरण-रहस्यम् ॥

(७) अदृश्य रहस्य विचार —शक्तितन्त्र की कही रीति के अनुसार सूर्यकिरण के उषादण्ड के सामने पृष्ठ केन्द्र में रहने वाले वैणरथ्य विकरण* आदि शक्तियों से आकाशतरङ्ग के शक्तिप्रवाह को खींच कर वायुमण्डल में रहने वाली बलाहा (बलाहका) विकरण आदि पांच शक्तियों को नियुक्त करके उनके द्वारा सफेद अभ्र मण्डलाकार करके उस आवरण से विमान के अदृश्य करने का रहस्य है ॥७॥

(८) परोक्षरहस्यो नाम—मेघोत्पत्तिप्रकरणोक्तशरन्मेघावरणषट्केषु द्वितोया (य्या ?) वरणपथे विमानमन्तर्धाय विमानस्थशक्त्याकर्षणदर्पण-मुखात्तन्मेघशक्तिमाहृत्य पश्चाद्विमानपरिवेषचक्रमुखे नियोजयेत् । तेन स्तम्भन-शक्तिप्रसारणं भवति, पश्चात्तद्द्वा (द्वा ?) रा लोकस्तम्भनक्रियारहस्यम् ॥

(८) परोक्षरहस्य विचार—मेघोत्पत्ति प्रकरण में कहे शरद् ऋतुसम्बन्धी छः मेघावरणों के द्वितीय आवरण मार्ग में विमान छिपकर विमानस्थ शक्ति का आकर्षण करने वाले दर्पण के मुख से उस मेघशक्ति को लेकर पश्चात् विमान के घेरे वाले चक्रमुख में नियुक्त करे उससे स्तम्भनशक्ति का फैलाव हो जाता है पुनः उसके द्वारा स्तम्भनक्रिया रहस्य हो जाता है ॥

(९) अपरोक्षरहस्यो नाम––शक्तितन्त्रोक्तरोहिणीविद्युत्प्रसारणेन विमानाभिमुखस्थवस्तूनां प्रत्यक्षनिदर्शनक्रियारहस्यम् ॥

(९) अपरोक्ष रहस्य विचार—शक्तितन्त्र में कहीं रोहिणी विद्युत्—के फैलाने से+ विमान के सामने आने वाली वस्तुओं का प्रत्यक्ष दिखलाई देना रूप अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) क्रिया रहस्य है ॥

---

* सूर्य पृथिवी के मध्य पृथिवी की गति रेखा के अनुसार कार्य करने वाला सूर्य-रथ-ईषा दण्ड, यह कोई अङ्ग विमान का पारिभाषिक नाम से कहा गया है जिसके आगे पीछे और केन्द्र से वैणरथ्य आदि शक्तियां निकलती हों उनसे आकाश से शक्तिप्रवाह खींचा जाता हो ।

+ यह रोहिणी विद्युत्—कोई फेंकने वाली सर्च लाईट की भांति लाईट होगी ।

(१०) सङ्कोचनरहस्यो नाम—यन्त्राङ्गोपसंहाराधिकारोक्तरीत्या [अन्त ?] ऽन्तरिक्षेति [अति ?] वेगात्पलायमानानां विस्तृतखेटयानानाम-पायसम्भवे विमानस्थसप्तमकीलीचालनद्वारा तदङ्गोपसंहारक्रियारहस्यम् ॥

(१०) सङ्कोचन रहस्य विचार—यन्त्रोपसंहाराधिकार में कही रीति के अनुसार आकाश में दौड़ते हुए बड़े विमानों के अतिवेग से अपने विमान के नाश की सम्भावना होने पर विमानस्थ सातवीं कीली अर्थात् घुण्डी (बटन-पेंच) के चलाने द्वारा उसके अङ्गों का उपसंहार अर्थात् सङ्कोचन क्रिया रहस्य है ॥*

(११) विस्तृतरहस्यो नाम—आकाशतन्त्रोक्तप्रकारेणाका [ण आ ?] शतृतीयपञ्चमपरिधिमण्डलस्थानीय [य्य ?] मूलवातपरिधिकेन्द्रस्थविमानानां वाल्मीकिगणितोक्तविमानप्रस्ताररेखाविन्यासमनुसृत्य विमानस्थैका [स्थ एका] दशरेखामुखस्थानीयकीलीचालनद्वारा तात्कालिकोपयुक्तप्रमाणमनुसृत्य विमानविवृतक्रियाकरणरहस्यम् ॥

(११) विस्तृत रहस्य विचार—आकाशतन्त्र में कहे प्रकारानुसार आकाश के तृतीय पञ्चम परिधिमण्डलस्थानीय मूलवात-परिधिकेन्द्रस्थ विमानों का वाल्मीकि गणित में कहे विमानप्रस्ताररेखा-विन्यास का अनुसरण कर विमानस्थ ग्यारहवीं रेखा के मुखस्थानीय कीली—घुण्डी (बटन-पेंच) के चलाने द्वारा तात्कालिक उपयुक्त प्रमाण का अनुसरण करके विमान का विस्तृत क्रिया रहस्य है ॥

(१२) विरूपकरणरहस्यो नाम—धूमप्रकरणोक्तप्रकारेण द्वात्रिंशज्जा-तीयधूमराशिं यन्त्रद्वारा परिकल्प्य तस्मिन् तरङ्गशक्त्युष्णसञ्जनितप्रकाशं मेलयित्वा पश्चाद्विमानशिरोभागस्थभैरवीतैलसंस्कारितवैरूपदर्पणमुखे पद्मक-चक्रमुखनालद्वारा पूर्वोक्तप्रकाशशक्तिं सन्धार्य द्वात्रिंशदुत्तरशतकक्ष्यप्रमाण-वेगात् परिभ्राम्यमाणे सति मण्डलाकारेण महाभयप्रदविकाराकारो जायते विमानद्रष्टॄणां तत्प्रदर्शनद्वारा महाभयोत्पादनकार्यरहस्यम् ॥

(१२) विरूपकरण रहस्य विचार—धूम प्रकरण में कहे प्रकारानुसार बत्तीस प्रकार के धूमों की राशि को यन्त्र द्वारा उत्पन्न कर उसमें तरङ्ग शक्ति की उष्णता से उत्पन्न प्रकाश का मिलाकर पश्चात विमान के सिर वाले भाग में रहने वाले भैरवी तैल (कोई पेट्रौल जैसा तैल होगा) से संस्कारित वैरूप दर्पण मुख में पद्मक चक्रमुख की नाल द्वारा पूर्वोक्त प्रकाशशक्ति को युक्त करके एक सौ बत्तीस घोड़ों या दर्जे के वेग से घुमाने पर गोल घेरे रूप से महाभयप्रद विकार का आकार उत्पन्न हो जाता है, विमान देखने वालों को उसके देखने से महाभयोत्पादन कार्य का रहस्य है ॥

(१३) रूपान्तररहस्यो नाम—तैलप्रकरणोक्तप्रकारेण गृध्रजिह्वा-कुम्भिणीकाकजङ्घादितैलसंस्कारितवैरूप्यदर्पणे-एकोनविंशज्जातीयधूमं संयोज्य तस्मिन् यानस्थकुण्टिणीशक्तिसंयोजनद्वारा विमानद्रष्टॄणां सिंहव्याघ्रभल्लूक-सर्पगिरिनदीवृक्षादिविकारेणा [ण अ?] न्यथाकल्पितरूपान्तरप्रदर्शनरहस्यम् ॥

* इससे वचने, भाग निकलने का तात्पर्य विदित होता है ।

(१३) रूपान्तर रहस्य विचार—तैल प्रकरण में कहे प्रकारानुसार गृध्रजिह्वा,* कुम्भिणी × काकजङ्घा ‡ आदि तैल से संस्कारित वैरूप्यदर्पण में उन्नीस प्रकार के धूम को संयुक्त करके उसमें यानस्थ-कुण्टिणी शक्तिसंयोजन द्वारा विमान के देखने वालों को सिंह; बाघ, भालू, सर्प, पहाड़ी, नदी, वृक्ष आदि विकार से अन्यथा कल्पित रूपान्तर दीखने का रहस्य ॥

(१४) सुरूपरहस्यो नाम—करकप्रकरणोक्तत्रयोदशजातीयकरकशक्तिमाकृष्य हिमोद्गारवायुना सन्धार्य पश्चाद्विमानदक्षिणकेन्द्रमुखस्थितपुष्पिणीपिञ्जुलादिदर्पणमुखे पूर्वोक्तशक्तिं वातप्रकरणनालद्वारा संयोज्य तस्मिन् सुरघाख्यकिरणशक्तिं सन्धार्य तद्द्वा [द्वा ?] रा विमानसन्दर्शकानां विविधपुष्पमाल्योपसेवितदिव्याप्सरस्स्वरूपकतद्वि [कद्वि ?] कारसंदर्शनक्रियारहस्यम् ॥

(१४) सुरूप रहस्य विचार—करकप्रकरण में कही तेरह प्रकार की करकशक्ति को आकृष्ट करके हिमोद्गार वायु अर्थात् निकलती हुई ठण्डी भाप के द्वारा संयुक्त कर पश्चात् विमान के दक्षिण केन्द्र मुख में स्थित पुष्पिणी पिञ्जुल+ आदि (के) दर्पणमुख में पूर्व कही शक्ति को वायु फैलाने वाली नाल के द्वारा संयुक्त करके उसमें सुरघा (तीव्र गति वाली) नाम की किरणशक्ति को युक्त करके उसके द्वारा विमान देखने वालों को नाना पुष्पमालाओं से सेवित दिव्य अप्सरा स्वरूप वाले विकार के दीखने का रहस्य है ॥

(१५) ज्योतिर्भावरहस्यो नाम—अंशुबोधिन्यामु[न्यां उ ?]क्तप्रकारेण संज्ञानादिषोडशसूर्यकलासु द्वादशाद्याषोडशान्तकलाप्रभाकर्षणं कृत्वा—आकाशचतुर्थपथस्थमयूखकक्ष्यस्थितवायुमण्डले नियोजयेत् । तथैव खतरङ्गशक्तिप्रभामाहृत्य वातमण्डलसप्तमावरणस्थप्रकाशशक्त्यां सम्मेलयेत् । पश्चादेतच्छक्तिद्वयं विमानस्थनालपञ्चकद्वारा विमानगुहागर्भदर्पणयन्त्रतृतीयकोशे सन्धार्य तद्द्वा [द्वा ?] रा विमानद्रष्टॄणां बालातपवत्प्रकाशप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(१५) ज्योतिर्भाव रहस्य विचार—अंशुबोधिनी में कहे प्रकारानुसार सूर्य की संज्ञान आदि सोलह कलाओं में से बारहवीं से लेकर सोलहवीं तक कलाओं की प्रभा का आकर्षण करके आकाश के चतुर्थपथ में रहने वाले किरणरूप अश्व या किरणक्षेत्र में स्थित वायुमण्डल में नियुक्त करे । उसी प्रकार आकाशतरङ्ग की शक्ति की प्रभा का आहरण करके वातमण्डल के सातवें आवरण में स्थित प्रभाशक्ति में मिला दे । पश्चात् इन दोनों शक्तियों को विमानस्थ पांच नालों द्वारा विमानगुहा के मध्य दर्पणयन्त्र के तृतीय कोश में लाकर उसके द्वारा विमान देखने वालों को बाल सूर्य की भांति प्रकाश दीखने का रहस्य है ।।

---

* आयुर्वेदिक निघण्टुओं में 'गृध्रजिह्वा' नाम से कोई ओषधि नहीं कही किन्तु 'गृध्रपत्रा' (धूमपत्रा) और गृध्रनखी (नाखुना) कही है ।

× कुम्भिणीफल (जमालघोटा) तम्बाकू कुम्भिणी कुम्भीगूगल से अभीष्ट हो सकता है ।

‡ गुन्जा (रत्ति-चौण्टली) को काकजङ्घा कहते हैं ।

\+ प्रकाशरूप वैद्युत शक्ति के उत्पादक दर्पण यन्त्र ।

(१६) तमोमयरहस्यो नाम—दर्पणप्रकरणोक्ततमश्श[मो श ?] क्त्या [क्त्यप ?] कर्षणदर्पणद्वारा तमश्शक्तिमाहृत्य विमानपञ्जरवायव्य-केन्द्रस्थतमोयन्त्रमुखात्तमो विद्युति सन्धाय तत्कीलीचालनान्मध्याह्नकालेऽमा [अमा ?] रात्रिवत्तमोविकारप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(१६) तमोमय रहस्य विचार—दर्पणप्रकरण में कही अन्धकारशक्ति के आकर्षण (या फैलाव ?) के द्वारा अन्धकार शक्ति का आहरण करके विमानपञ्जर के वायव्यकेन्द्रस्थ तमोयन्त्र के मुख से अन्धकार को विद्युत् में मिलाकर उसकी कीली (घुण्डी-बटन) के चलाने से मध्याह्नकाल में अमावस्या की रात्रि की भांति अन्धकाररूप विकार के दीखने का रहस्य है।

(१७) प्रलयरहस्यो नाम—ऐन्द्रजालिकप्रलयपटलोक्तरीत्या यानपुरो-भागकेन्द्रस्थोपसंहारयन्त्रनालात्सप्तजातीयधूममाकृष्य षड्गर्भविवेकोक्तमेघ-धूमेऽन्त [अन्त ?] र्धाय तद्धूमं विद्युत्संसर्गात्पञ्चस्कन्धवातनालमुखेषु प्रसार्य तद्द्वा [द्वा ?] रा सर्वपदार्थानां प्रलयवन्नाशक्रियाकरणरहस्यम् ॥

(१७) प्रलय रहस्य विचार—ऐन्द्रजालिक प्रलयपटल में कही रीति के अनुसार यान के सामने के केन्द्र में रहने वाले सङ्कोचक यन्त्रनाल से सात प्रकार के धूम का आकर्षण करके 'षड्गर्भ-विवेक' में कहे मेघधूम में छिपा कर उस धूम को विद्युत्संसर्ग से पांचस्कन्ध वाले वायुनाल मुखों में फैला कर उसके द्वारा सर्व पदार्थों का प्रलय जैसा नाशक्रियारहस्य है॥

(१८) विमुखरहस्यो नाम—रुघ्रू [घ्रृ ?] दयोक्तप्रकारेण कुवेर-विमुखवैश्वानरादिविषचूर्णशक्ती [: ?] रौद्रीदर्पणपञ्जरतृतीयनाले नियम्य वातस्कन्धकीलीचालनद्वारा मूर्च्छावस्थाप्रदानेन विवर्णकरणक्रियारहस्यम् ॥

(१८) विमुखरहस्य विचार—रुघ्रूदय में कहे प्रकारानुसार कुवेर विमुख वैश्वानर* आदि विष-चूर्ण से उत्पन्न रौद्री शक्ति दर्पणपञ्जर तृतीयनाल में नियन्त्रित करके वातस्कन्ध कीली के चालनद्वारा मूर्च्छावस्था प्रदान करने से विवर्णकरणक्रिया रहस्य है॥

(१९) ताररहस्यो नाम—वातजलसूर्यकिरणप्रभाशक्तीनां दशसप्त-षोडशांशान् खतरङ्गशक्त्या संयोज्य तच्छक्ति तारमुखदर्पणद्वारा विमानमुख-केन्द्रशक्तिनालमुखप्रसारणात्सर्वेषां नक्षत्रमण्डलवत्प्रदर्शनक्रियारहस्यम् ॥

(१९) ताररहस्य विचार—वायु, जल, सूर्यकिरणप्रभा की शक्तियों के दश, सप्त, षोडश अंशों को आकाशतरङ्ग की शक्ति से संयुक्त करके उस शक्ति को तारमुखदर्पण द्वारा विमान मुख की केन्द्रशक्ति के नालमुख को फैलाने से समस्त नक्षत्रमण्डल के समान प्रदर्शन क्रियारहस्य है॥

(२०) महाशब्दविमोहनरहस्यो नाम—विमानस्थसप्तनालवायुमेकीकृत्य शब्दकेन्द्रमुखेऽन्त (अन्त ?) र्धाय पश्चात् कीलीं (लिं ?) प्रचालयेत् तद्वेगाच्छ-ब्दप्रकाशिकोक्तरीत्या द्विषष्टिध्मानकलासंघट्टणशब्दवन्महाशब्दो जायते तद्रव-

---

* कुवेरविमुख वैश्वानर ये किन्हीं विषचूर्णों के पारिभाषिक नाम हैं।

स्मरणात् सर्वेषां हृदयकम्पनं भवति किष्कुत्रयप्रमाणकम्पनं यदा भवति स्मृतिविस्मरणं भवति तद्द्वा (द्वा ?) रा परेषां विमोहनक्रियारहस्यम् ॥

(२०) महाशब्दविमोहनरहस्य विचार—विमानस्थ सात नालों के वायु को एक करके शब्द-केन्द्रमुख में बन्द करके पश्चात् कीली (घुण्डी) को चलावे, उसके वेग से शब्दप्रकाशिका में कही रीति के अनुसार बासठ धौंकने वाली कलाओं के संघट्टण शब्द (गूंज) के समान महाशब्द उत्पन्न होता है उस शब्द के स्मरण से सब का हृदय कांप जाता है, तीन किष्कुओं (तीन बालिश्त या तीन हाथ-तीन फीट) के प्रमाण-जितना कम्पन जब होता है तब स्मृतिनाश हो जाता है उसके द्वारा दूसरों को विमोहित मूर्च्छित करने का रहस्य है।

(२१) लङ्घनरहस्यो नाम—वायुतत्त्वप्रकरणोक्तप्रकारेण वातमण्डल-परिधिरेखासु विमानसञ्चारकाले यदा सूर्यगोलवाडवामुखकिरणज्वालाप्रवाहो (हः ?) विमानाभिमुखो भवति तेन विमानः प्रज्वलितो भवति । अतः तन्निवारणा (र्णा ?) र्थंविमानस्थविद्युद्वातशक्तिमेकीकृत्य विमानस्थप्राण-कुण्डलीस्थाने सन्धाय पश्चात् कीलीचालनेन विमानोड्डीयनद्वारा कुल्यालङ्घन-वद्रेखाद्रेखान्तरलङ्घनक्रियारहस्यम् ॥

(२१) लङ्घन रहस्य विचार—वायु तत्त्व प्रकरण में कहे प्रकारानुसार वातमण्डल परिधि-रेखाओं में विमान संचार समय जब सूर्यगोले के वाडवामुख* (का) किरण ज्वालाप्रवाह विमान जल उठता है, अतः उसके निवारणार्थ विमानस्थ विद्युत् और वायु की शक्ति को मिलाकर विमान के प्राण-कुण्डली स्थान (मटोर मशीन) में युक्त करके पीछे कीली-घुण्डी चलाने से विमान के ऊर्ध्वगमन—ऊपर उछलने (Jumping) द्वारा नहर नदी के लंघन की भांति एक रेखा से दूसरी रेखा पर लङ्घन करने-फान्दने कूदने (Jumping) का रहस्य है ॥

(२२) सार्पगमनरहस्यो नाम—दण्डवक्रादिसप्तविधमातरिश्वार्ककिरण-शक्तीराकृष्य यानमुखस्थवक्रप्रसारणकेन्द्रमुखे नियोज्य पश्चात्तदाहृत्य शक्त्युद्ग (दग ?) मनकाले प्रवेशयेत् । ततः तत्कीलीचालनाद्विमानस्य सर्पवद् गमन-क्रियारहस्यम् ॥

(२२) सार्पगमनरहस्य विचार—दण्ड वक्र आदि सात प्रकार के वायु और सूर्यकिरण की शक्तियों को आकर्षित करके यानमुख में स्थित वक्रप्रसारण केन्द्रमुख में अर्थात् टेढ़ा फैंकने वाले केन्द्र-मुख में नियुक्त करके पश्चात् उसका आहरण करके शक्ति को उत्पन्न करने निकालने वाले नाल में प्रवेश करे तब उस कीली (घुण्डी-बटन) को चलाने से विमान का सर्प के समान गमनक्रिया रहस्य है ॥

(२३) चापलरहस्यो नाम—शत्रुविमानसन्दर्शनकाले विमानमध्यकेन्द्र-स्थशक्तिपञ्जरकीलीचालने-एकछोटिकावच्छिन्नकाले सप्ताशीत्युत्तरचतुस्सहस्र-तरङ्गवेगो जायते तत्प्रसारणाच्छत्रुविमानकम्पनक्रियारहस्यम् ॥

* हो सकता हैं यह कोई विमानभेदी तोप की विमानप्रज्वालक सर्च लाईट की भांति का कोई ज्वालोत्पादक साधन हो।

(२३) चापलरहस्य विचार—शत्रु का विमान दिखलाई पड़ने पर अपने विमान के मध्य केन्द्रस्थ शक्तिपञ्जर की कीली चलाने से एक छोटिकामात्र (तर्जनी अङ्ग ष्ठ ध्वनि—चुटकी—क्षणभर) काल में चार हजार सतासी तरङ्गों का वेग उत्पन्न हो जाता है उसके फैलाने से शत्रुविमान के डांवाडोल होने उलट गिरने का रहस्य है ॥

(२४) सर्वतोमुखरहस्यो नाम——स्वपथे स्वविमानविनाशार्थं परविमानशतैरा (: श्रा ?) वृते सति तदा स्वविमानशिरःकेन्द्रकीलीचालनादनेकविमानवत्सर्वतोमुखसंचारक्रियारहस्यम् ॥

(२४) सर्वतो मुखरहस्य विचार—अपने मार्ग में अपने विमान के विनाशार्थ दूसरे के सैकड़ों विमानों से घिर जाने पर अपने विमान के शिर की कीली (घुण्डी-बटन) के चलाने से अनेक विमानों की भांति सब ओर संचार करने का क्रिया रहस्य है ॥

(२५) परशब्दग्राहकरहस्यो नाम——सौदामिनीकलोक्तप्रकारेण विमानस्थशब्दग्राहकयन्त्रद्वारा परविमानस्थजनसंभाषणादिसर्वशब्दाकर्षणरहस्यम् ॥

(२५) पर शब्दग्राहक रहस्य विचार—'सौदामिनीकला' (विद्युत्कला पुस्तक) में कहे प्रकारानुसार विमानस्थ शब्दग्राहक यन्त्र के द्वारा आकाश के प्रथम मण्डल की परिधि को आरम्भ करके सात परिधि मण्डलपर्यन्त परविमानस्थ जन सम्भाषण आदि समस्त शब्दों का आकर्षण रहस्य है ॥

(२६) रूपाकर्षणरहस्यो नाम——विमानस्थरूपाकर्षणयन्त्रद्वारा परविमानस्थितवस्तुरूपाकर्षणरहस्यम् ॥

(२६) रूपाकर्षणरहस्य विचार—विमान में स्थित रूप का आकर्षण यन्त्रद्वारा परविमानस्थित वस्तुओं के रूप के आकर्षण का रहस्य है ॥

(२७) क्रियाग्रहणरहस्यो नाम——विमानाधःकीलीचालनाच्छुद्धपटप्रसारणं भवति । ईशान्यकोणस्थद्रावकत्रये शक्तिसंयोजनं कृत्वा तच्छक्तिसप्तवर्गसूर्यकिरणेषु सन्धार्य पूर्वोक्तशुद्धटलं दर्पणाभिमुखीकरणं कृत्वा तन्मुखात्पूर्वोक्तशक्तिप्रसारणपूर्वकोर्ध्वकीलीचालनद्वारा विमानाधोभागस्थितपृथिव्य (ब) न्तरिक्षेषु यद्यत्क्रियारहस्यान्यन्यैः क्रिय (क्रीय्य ?) न्ते तत्स्वरूपप्रतिबिम्बं शुद्धपटले मूर्तवच्चित्रितं (तो ?) भवति तद्द्वा [द्वा] रा क्रियाग्रहणरहस्यम् ॥

(२७) क्रियाग्रहण रहस्य विचार—विमान के नीचे की कीली-घुण्डी के चलाने से शुद्ध पट फैल जाता है, ईशान्यकोणस्थ तीन द्रावकों * में शक्तिसंयोजन करके उस शक्ति को सप्तवर्गसूर्यकिरणों में सन्धान करके पूर्वोक्त शुद्ध पटल को दर्पण के सामने की ओर करके उसके मुख से पूर्वोक्त शक्ति फैलने के साथ ऊपर की कीली-घुन्डी चलाने के द्वारा विमान के नीचे के भाग में स्थित पृथिवी, जल, अन्तरिक्ष में जो जो क्रियारहस्य अन्यों द्वारा किये जाते हैं उनका स्वरूपप्रतिबिम्ब शुद्ध पटल पर मूर्त के समान चित्रित हो जाता है उसके द्वारा क्रियाग्रहण रहस्य है ॥

---

* ये द्रावक किसी रूप आदि शक्ति के फैलाने वाले द्रावक पात्र साधन प्रतीत होते हैं ।

(२८) दिक्प्रदर्शनरहस्यो नाम—विमानमुखकेन्द्रकीलीचालनेन दिशाम्पतियन्त्रनालपत्रद्वारा परयानागमनदिक्प्रदर्शनक्रियारहस्यम् ॥

(२८) दिक्प्रदर्शन रहस्य विचार—विमानमुखकेन्द्र की कीली चलाने से 'दिशाम्पति' नामक (दिशाओं के पति) यन्त्र के नालपत्र के द्वारा दूसरे के यान की आगमनदिशा का प्रदर्शन रहस्य है ॥

(२९) आकाशाकारहस्यो नाम—आकाशतन्त्रोक्तरीत्या कृष्णाभ्रवारिणां पिचुकन्दमूलभूनागद्रावकाभ्यां यानावरणाभ्रकपट्टिकामालिप्य तस्मिन् वायुपथकिरणशक्तिसंयोजनद्वारा विमानाकाशाकारवत्प्रदर्शनरहस्यम् ॥

(२९) आकाशाकाररहस्य विचार—आकाशतन्त्र में कही रीति के अनुसार कृष्ण अभ्रक जल तथा पिचुकन्दमूल + और भूनाग × के द्रावक रस से यान के आवरण अभ्रकपट्टिका को लेप कर देने से उस वायुपथ में किरणशक्तिसंयोजनद्वारा विमान के आकाशाकार होने का प्रदर्शन रहस्य है ॥

(३०) जलदरूपरहस्यो नाम—करकाम्लबिल्वतैलशुल्वलवणधूमसारग्रन्थिकरससर्षपपिष्टमीनावरणद्रवाणां शास्त्रोक्तप्रकारेण भागांशसम्मेलनं कृत्वा मुक्ताफलशुक्तिका लवणसारे संयोज्य सम्मिलितशक्ति धूमाकारं कृत्वा विमानावरणोपरिस्थितकिरणप्रभामुखसन्धौ-अन्तर्धाय पूर्वोक्तधू (क्त अधू?) माकारद्रावकेण (के न?) विमानावरणलेपनं कृत्वा तदुपरि धूमप्रसारणद्वारा जलदाकारवद्विमानप्रदर्शनरहस्यम् ॥

(३०) जलदरूपरहस्य विचार—करकाम्ल ✻ दाडिमाम्ल (दाडिम का तेजाव), बिल्वतैल, शुल्वलवण (ताम्बे का लवण नीलाथोथा), धूमसार (गृहधूम), ग्रन्थिकरस (गूगल का द्राव या मण्डूर और पारा), सर्षपपिष्ट (सरसों की पीठी) मीनावरण (मछली का आवरण) इनके शास्त्रोक्त प्रकार से भागांशों को मिलाकर मुक्ताफलशुक्तिका (मोती की सीपी) लवणसार† में संयुक्त करके सम्मिलित शक्ति को धूमाकार करके विमानावरण के ऊपर रहनेवाली किरणप्रभामुखसन्धि में छिपाकर या लगाकर पूर्वोक्त धूमाकार के द्रावक द्वारा विमानावरण के ऊपर लेपन करके उसके ऊपर धूम फैलाने के द्वारा जलदाकार अर्थात् (मेघाकार) के समान विमानप्रदर्शनरहस्य है ॥

(३१) स्तब्धकरहस्यो नाम—विमानोत्तरपार्श्वस्थसधिन्मुखनालादपस्मारधूमं संग्राह्य स्तम्भनयन्त्रद्वारा तद्धूमप्रसारणात् परविमानस्थसर्वजनानां स्तब्धीकरणरहस्यम् ॥

+ आयुर्वेदिक निघण्टुओं में 'पिचुकन्द' नाम की ओषधि नहीं है किन्तु पिचुमन्द (निम्ब वृक्ष) हो या कपास की जड़।

× 'वैद्यक शब्द सिन्धु' कोष में 'भूनाग' केंचुए और सीसे धातु के लिये आया है, हो सकता है यहां सीसे धातु का रासायनिक द्राव अभीष्ट हो।

✻ 'करकः-दाडिमे, शुल्वं ताम्रे, धूमसारः—गृहधूमे, ग्रन्थिकः-गुग्गुले मण्डूरे च, रसः पारदे (वैद्यक शब्द सिन्धुः)

† आयुर्वेदिक निघण्टुओं में लवणसार शब्द नहीं है किन्तु लवण क्षार' है जल से उत्पन्न नमक विशेष के लिये आया है। हो सकता है लवणसार से सोडा अभीष्ट हो।

(३१) स्तब्धकरहस्य विचार—विमान के उत्तर पार्श्वस्थ सन्धिमुखनाल से अपस्मार का धूम संग्रह करके स्तम्भन यन्त्र द्वारा उस धूम के फैलाने से परविमानस्थ सर्वमनुष्यों के स्तब्ध कर देने जड-मूर्छित बना देने का रहस्य है ॥

(३२) कर्षणरहस्यो नाम—स्वविमानसंहारार्थं परविमानपरम्परागमने विमानाभिमुखस्थवैश्वानरनलान्तर्गतज्वालिनीप्रज्वालनं कृत्वा सप्ताशीतिलिङ्क-प्रमाणोष्णं यथा भवेत् तथा चक्रद्वयकीलीचालनात् शत्रुविमानोपरि वर्तुलाकारेण तच्छक्तिप्रसारणद्वारा शत्रुविमाननाशनक्रियारहस्यम् ॥

(३२) कर्षणरहस्य विचार—अपने विमान के नाशार्थ दूसरे के विमानयानों के लगातार आने पर विमान के सामने वाले वैश्वानर नाल के अन्तर्गत ज्वालिनी + जलाकर सतासी लिङ्क (डिग्री) प्रमाण की उष्णता जिससे हो जावे वैसे दो चक्रों की कीली चलाने के द्वारा शत्रुविमान के ऊपर गोलाकार से उस शक्ति को फैलाने के द्वारा शत्रुविमान के नाश करने का क्रिया रहस्य है ॥

पञ्चज्ञश्च ॥ अ० १ । सू० ३ ॥

सूत्रशब्दार्थ—और पांच का जानने वाला 'अधिकारी' है ।

बोधानन्दवृत्तिः—

यथारहस्यविज्ञानं पूर्वसूत्रे निरूपितम् ।
पञ्चावर्तस्वरूपञ्च तथैवास्मिन्निरूप्यते ॥ १ ॥
एतेनोभयविज्ञानादेव यन्तृत्वतामियात् ।
इतिसूत्रद्वयविचारात्सिद्धं भवति ध्रु (धृ ?) वम् ॥ २ ॥
पञ्चावर्तविचारस्तु शौनकोक्तप्रकारतः ।
रेखादिपञ्चमार्गानुसारादत्र प्रकीर्त्यते ॥ ३ ॥
रेखापथो मण्डलश्च कक्ष्यश्श (ेश ?) क्तिस्तथैव च ।
केन्द्रश्च्ये (च्चे ?) ति विमानानां मार्गाः खे पञ्चधा स्मृताः ॥ ४ ॥

पूर्वसूत्र में जिस प्रकार रहस्यविज्ञान निरूपित किया गया है उसी प्रकार इस सूत्र में पञ्चावर्त-स्वरूप (पांच आवर्तों-भँवरों-बवण्डरों का स्वरूप) भी निरूपित किया जाता है । इस भांति दोनों के विज्ञान से ही विमानचालकता को प्राप्त किया जा सकता है यह बात उक्त दोनों सूत्रों के विचार से निश्चित सिद्ध हो जाती है । पञ्चावर्त विचार शौनक ऋषि के कहे प्रकार से रेखा आदि पांच मार्गों के अनुसार यहां वर्णन किया जाता है । रेखापथ, मण्डल, कक्ष्य, शक्ति, केन्द्र ये पांच प्रकार के मार्ग विमानों के आकाश में बतलाए गये हैं ॥ १—४ ॥

तदुक्तं शौनकीये—

अथाकाशमार्गाण्यनुक्रमिष्यामो रेखामण्डलकक्ष्यशक्तिकेन्द्रभेदाद्-भूतशक्ति-प्रवाहमार्गाण्याक्रूर्मादावारुणान्तं वाणमवष्टभ्यैकचत्वारि छं श (रिंग् श)

+ विद्युन्मय बत्ती प्रतीत होती है ।

त्कोदयै (ये ?) कपञ्चाशल्लक्षनवसहस्राष्टशतसंख्याकानि भवन्ति तेषु भूरादि सप्तलोकविमानास्सञ्चरन्तीति ॥

यह बात शौनकीय शास्त्र में कही है—

अब आकाशमर्गों को कहेंगे। रेखा, मण्डल, कक्ष्य, शक्ति, केन्द्र के भेद से भूतशक्तिप्रवाह-मार्ग कूर्म से लेकर अरुण पर्यन्त (आकूर्मादौ आ-अरुणान्तं' इस प्रकार पदच्छेद होने पर) या कूर्म से लेकर वरुणपर्यन्त (आकूर्माद् आ वारुणान्तं' पदच्छेद होने पर *) वाण (आयतन) का अवष्टम्भन करके इक्तालीस से इक्यावन लक्ष नौ सहस्र आठ सौ होते हैं। उनमें 'भूः' आदि सातलोकरूपविमान सञ्चार करते हैं ॥

एतेषु सूत्रोक्तपञ्चमार्गभेदा यथाक्रमम् ।
यथोक्तं धुण्डिनाथेन तथैवात्र निरूप्यते—
रेखामार्गास्सप्तकोटित्रिलक्षाष्टशतास् (ता?) स्मृताः ।
+द्वाविंशत्कोट्यष्टलक्षद्विशतं मण्डले क्रमात् ॥ १ ॥
द्विकोटिनवलक्षत्रिशतं कक्ष्ये निरूपिता ।
दशकोट्येकलक्षत्रिशतं शक्तिपथेरिताः ॥ २ ॥
त्रिशल्लक्षाष्टसाहस्रद्विशतं केन्द्रमण्डले ।
एवं रेखादिकेन्द्रान्तमण्डलेषु यथाक्रमम् ॥ ३ ॥
वाल्मीकिगणितान्मार्गसंख्या श्लोकैर्नि (नि ?) रूपिता ।

इनमें सूत्रोक्त पांच मार्गभेद यथाक्रम धुण्डिनाथ ने जैसे कहा है यहां निरूपित किया जाता है—

'रेखामार्ग' सात कोटि तीन लाख आठसौ कहे गये हैं, बाईस कोटि आठ लाख दो सौ 'मण्डल' में क्रम से, दो कोटि नौ लाख तीन सौ 'कक्ष्य' में कहे हैं, दश कोटि एक लक्ष तीन सौ 'शक्तिपथ' में कहे हैं, तीन लाख आठ सहस्र दो सौ केन्द्रमण्डल में इस प्रकार 'रेखामार्ग' से लेकर 'केन्द्र' तक मण्डलों में क्रमानुसार वाल्मीकि गणित से मार्ग संख्या श्लोकों से बतलाई गई है ॥ १—३ ॥

एतेषु यानसञ्चारमार्गनिर्णयमुच्यते ॥—
प्रथमाद्याचतुर्थान्तं मार्गं [र्गा?] रेखापथे क्रमात् ।
भुवर्लोकसुवर्लोकमहोलोकनिवासिनाम् ॥ १ ॥
विमानसञ्चारमार्गा इति शास्त्रेषु वर्णिताः ।
जनो लोकविमानानां गमने मार्गनिर्णयः ॥ २ ॥
द्वितीयाद्यापञ्चमान्तमु (तं उ ?) क्तं कक्ष्यपथे क्रमात् ।
प्रथमाद्याषडन्तास्स्यु (ता स्यु ?) मार्गाश्शक्तिपथे क्रमात् ॥ ३ ॥
तपोलोकविमानानामिति शास्त्रविनिर्णयः ।
तृतीया (य्या ?) द्येकादशान्तं ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ॥ ४ ॥

---

* इस पक्ष में 'वारुण' में 'वा' लेखकदोष या स्वार्थ में अण् से आकार है।

\+ 'द्वाविंशत्' इत्येतत्पदं चिन्त्यम्। द्वात्रिंशत् इत्यनेन भवितव्यं किंवा द्वाविंशति' इत्यस्य इकारलोप आर्षश्छन्दस्संख्यापूर्त्यर्थत्वाच्छान्दसो वा।

विमानसञ्चारमार्गाः प्रोक्ताः केन्द्रपथे क्रमात् ।
वाल्मीकिगणितेनैवं गणितागमपारगैः ॥ ५ ॥
विमानानां यथाशास्त्रं कृतो (तं ?) मार्गविनिर्णयः ।

अथावर्त निर्णयः—

आवर्ताश्च ॥ अ० १ । सू० ४ ॥

एवमुक्त्वा विमानानां पञ्चमार्गाण्यथाक्रमम् । ‡
अथेदानीं तदावर्तनिर्णयस्सन्निरूप्यते ॥ ६ ॥
आवर्ता (र्तं ?) बहुधा प्रोक्ता मार्गसंख्यानुसारतः ।
तेषु यानपथावर्ताः पञ्चैवेति विनिर्णिताः ॥ ७ ॥

इनमें यान संचारमार्गों का निर्णय कहा जाता है—

प्रथम से आदि करके चतुर्थ तक मार्ग रेखापथ में क्रम से 'भुवः' लोक, 'सुवः' लोक 'महः' लोक निवासियों के विमान सञ्चार मार्ग इस प्रकार शास्त्रों में वर्णित हैं, 'जनः' लोक विमानों के गमन में मार्ग निर्णय है। द्वितीय से आदि करके पञ्चम तक कक्ष्यपन्न में क्रम से कहा है। प्रथम से आदि कर छः तक मार्ग शक्तिपथ में क्रम से कहे हैं। 'तपः' लोक विमानों का है यह शास्त्रनिर्णय है तृतीय से आदि करके एकादश तक 'ब्रह्म' लोक निवासियों के विमान सञ्चार मार्ग केन्द्रपथ में क्रम से कहे हैं। इस प्रकार वाल्मीकि गणित से ही गणित शास्त्र के पारंगत विद्वानों ने विमानों का मार्गनिर्णय शास्त्रानुसार किया है ॥ १—५ ॥

आवर्त निर्णय—

इस प्रकार विमानों के पाच आवर्तों को क्रमानुसार कहकर अब इस समय उन आवर्तों का निर्णय निरूपति किया जाता है। मार्गसंख्या के अनुसार आवर्त बहुत कहे हैं उनमें यानपथ के आवर्त पांच ही निर्णय किये हैं ॥ ६—७ ॥

तदुक्तं शौनकीये—

प्रवाहद्वयसंसर्गादावर्तनमिति तान्यनुक्रमिष्यामः। रेखापथे शक्तयावर्तनं मण्डले वातावर्तनं कक्ष्ये किरणावर्तनं शक्तिपथे शैत्यावर्तनं केन्द्रे घर्षणावर्तनमित्यावर्ताः पञ्चधा भवन्तीति। आवर्ताः पञ्चसु पञ्चेति हि ब्राह्मणम् † ॥

वह यह शौनकीय ग्रन्थ में कही है—

दो प्रवाहों के संसर्ग—संघर्ष से आवर्त—होते हैं, उन्हें यहां कहेंगे। रेखापथ में शक्तियावर्त, मण्डल में वातावर्त, कक्ष्य में किरणावर्त, शक्तिपथ में शैत्यावर्त, केन्द्र में घर्षणावर्त। इस प्रकार आवर्त पाँच प्रकार के हैं। आवर्त पांच में पांच हैं ऐसा ब्रह्मण ग्रन्थ में कहा है।

एवं रेखादिमार्गेषु शक्तिद्वयसमाकुलात् ।
आवर्ताः सम्प्रजायन्ते खेटयानविनाशकाः ॥

इस प्रकार रेखा आदि मार्गों में दो शक्तियों के टक्कर से आवर्त उत्पन्न हो जाते हैं जो कि विमानयानों के विनाशक बन जाते हैं।

---

‡ वहां 'मार्गाणि' नपुसंक लिङ्ग के इकार का लोप छन्दः पूर्ति के लिये पूर्व के समान है।

† लुप्तब्राह्मणम् ।

उक्तं हि मार्गनिबन्धने—

लहयोर्वहयोश्चैव यहयोरहयोस्तथा ।
महयोरन्तरालेषु शक्तचावर्ता इतीरिताः ॥ १ ॥ (लल्लकारिका)
लकारेणात्र भूप्रोक्ता हकारादम्बरं स्मृतम् ।
प्रोक्तास्तयोरन्तराले रेखामार्गा (ग ?) स्त्वनेकशः ॥ २ ॥
शक्त्यावर्तास्तेष्वनन्तास्सं (न्ता सं ?) भवन्त्य (वत्य ?) तिवेगतः ।
तैर्भूलोकविमानानां विनाश इति निश्चितः ॥ ३ ॥
अम्बरे वर्णिते स्याद्वहकारात्मना क्रमात् ।
तयोर्मध्ये मण्डलाख्यमार्गाः प्रोक्ता विशेषतः ॥ ४ ॥
वातावर्तास्तेष्वनन्तास्सं भवन्त्यतिवेगतः ।
लोकत्रयविमानानां विनाशस्तेषु वर्णितः ॥ ५ ॥
तथैव यहवर्णाभ्यां वाय्वाकाशे निरूपिते ।
तयोर्मध्ये कक्ष्यमार्गास्त्वनेकास्संप्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥
भवन्ति किरणावर्तास्तेष्वंशूनां प्रवाहतः ।
जनो लोकविमानानां विनाशस्तत्र वर्णितः ॥ ७ ॥

'मार्गनिबन्धन' में कहा है—

ल, ह के व, ह के य, ह के तथा र, ह के म, ह के अन्तरालों में शक्त्यावर्त होते हैं ऐसा कहा है। 'ल' से भूमि कही है 'ह' से अम्बर समझा गया, उन दोनों के अन्तराल में रेखामार्ग अनेक हैं। शक्त्यावर्त उनमें अनेक अतिवेग से उत्पन्न हो जाते हैं। उनके द्वारा भूलोकविमानों का विनाश निश्चित हो जाता है। दो अम्बर व, ह से क्रमशः कहे हैं उनके मध्य में मण्डलनामक मार्ग विशेषतः कहे गये हैं। उनमें अनन्त आवर्त अतिवेग से उत्पन्न हो जाते हैं जिनमें तीनों लोकों के विमानों का विनाश वर्णन किया है। इसी प्रकार य, ह वर्ण से वायु आकाश निरूपित किये हैं, उनके मध्य में कक्ष्य मार्ग अनेक हैं। उनके अन्दर किरणावर्त अंशुओं के प्रवाह से हो जाते हैं वहां 'जनः' लोक विमानों का विनाश वर्णन किया है ॥ १—७ ॥

रवर्णेन रविः प्रोक्तो हवर्णादम्बरं स्मृतम् (तः ?) ।
तयोर्मध्ये शक्तिमार्गा बहुधा सम्प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥
शैत्यावर्तास्तेषु शक्तिसंसर्गादतिवेगतः ।
सम्भवन्ति विशेषेण खेटयानविनाशकाः ॥ ९ ॥
महामार्तण्डशक्तिस्थप्रवाहांशो मकारतः ।
हकारेणाम्बरञ्चैव वर्णितं स्याद्यथाक्रमम् ॥१०॥
तयोर्मध्ये केन्द्रमार्गा बहुधा सम्प्रकीर्तिताः ।
भवन्ति घर्षणावर्तास्तेषु नानामुखाः क्रमात् ॥११॥

ब्रह्मलोकविमानानां विनाशस्तैर्निरूपितः ।
शैत्योष्णशक्तिन्यूनातिरिक्ताभ्यां मार्गसन्धिषु ॥१२॥

'र' वर्ण से रवि कहा है 'ह' वर्ण से आकाश बतलाया गया, दोनों के मध्य में शक्तिमार्ग बहुत कहे हैं। उनमें शैत्यावर्त अतिवेग से शक्तियों के संसर्ग से विशेष करके उत्पन्न हो जाते हैं जो विमानयानों के नाशक होते हैं। महामार्तण्ड शक्तिस्थ प्रवाहांश 'म' से लिया गया है और 'ह' से आकाश यथाक्रम से वर्णित किये गये हैं। उन दोनों के मध्य में केन्द्रमार्ग प्रायः कहे हैं, उनमें घर्षणावत नानाप्रकार के क्रम से होते हैं। उनसे ब्रह्मलोक विमानों का विनाश शैत्य-उष्णशक्तियों के न्यूनाधिक होने से मार्गसन्धियों में निरूपित किया गया है ॥ ८—१२ ॥

प्रवाहद्वयसंयोगवेगादावर्तनं क्रमादिति ।
एवं रेखादिमार्गेषु-आवर्तास्सन्निरूपिताः ॥ १३ ॥
तैर्विनाशो विमानानामिति शास्त्रविनिर्णयः ।
पूर्वसूत्रोक्तद्वात्रिंशद्रहस्यज्ञानवत्क्रमात् ॥ १४ ॥
मार्गावर्तस्वरूपे च सूत्राभ्यां सन्निरूपिते +
एतेनोभयविज्ञानादधिकारनिरूपणम् ॥ १५ ॥
सूत्रद्वयेन विधिवद्वर्णितं यानकर्मणि ।
आवर्ताश्शक्तिवातांशुशैत्यघर्षणसंज्ञकाः ॥ १६ ॥
उक्तावर्तेषु विधिवद्विज्ञातव्या विशेषतः ।
पञ्चावर्ता एव यानमार्गसंरुद्धका यतः ॥ १७ ॥

दो प्रवाहों के संयोग के वेग से आवर्त होते हैं एवं रेखादिमार्गों में क्रम से आवर्त निरूपित किये हैं। उनसे विमानों का विनाश होता है ऐसा शास्त्र का निर्णय है। पूर्वसूत्र में कहे बत्तीस रहस्य-ज्ञान वाला पांच आवर्तों का स्वरूप क्रम से इस सूत्र में निरूपित किया है। इससे दोनों के विज्ञान से अधिकार निरूपण होता है। दो सूत्रों से विधिवत् यानकर्म वर्णन किया है, शक्ति, वात, अंशु, शैत्य, घर्षण संज्ञावाले आवर्त कहे हैं। उक्त आवर्तों में विधिवत् विशेषतः जानने योग्य पांच आवर्त ही हैं जिनसे कि ये यानमार्ग के संरोधक हैं ॥ १३—१७ ॥

अथ विमानाङ्गनिर्णय :—

अङ्गान्येकत्रिंशत् ॥ अ० १ । सू० ५ ॥

सूत्रशब्दार्थ—'विमान के' अङ्ग इकत्तीस होते हैं।

बोधानन्दवृत्ति :—

शास्त्रे सर्वविमानानाम (नां अ ?) ङ्गाङ्गीभावतस्स्फु (स्फ?) टम् ।
उक्तं यानविदां श्रेष्ठैर्विमानाकारनिर्णये ॥ ॥ १ ॥

+ 'पञ्चावर्तस्वरूपञ्च सूत्रेस्मिन् सन्निरूपितम्' क्वचित् पाठः ।

यथा सर्वाङ्गसंयुक्तो देहस्स (ह स ?) वार्थसाधने ।
समर्थस्स्या (र्थ स्या ?) द्विमानश्च सर्वाङ्गैस्संयुतस्तथा ॥२॥
विश्वक्रियादर्पणयन्त्रमारभ्य यथाविधि ।
एकत्रिंशद्विमानाङ्गस्थानान्युक्तानि भूरिशः ॥ ३ ॥
तानि सर्वाणि विधिवत्संग्रहेण यथाक्रमम् ।
छायापुरुषशास्त्रोक्तप्रकारेणात्र वर्ण्यते ॥ ४ ॥

विमानाङ्ग निर्णय :—

शास्त्र में समस्त विमानों के अङ्गाङ्गी भाव से स्फुट यानवेत्ता कुशल विद्वानों ने विमानाकार के निर्णय में कहा है कि जैसे सब अङ्गों से युक्त देह सर्वार्थ साधन में समर्थ होता है इसी प्रकार विमान भी सब अङ्गों से युक्त होकर समर्थ होता है। यथाविधि विश्वक्रियादर्पण यन्त्र को आरम्भ करके इकत्तीस विमानाङ्ग स्थानों को अधिक करके या उत्तमता से कहा है उन सबको विधिवत संक्षेप से यथाक्रम छायापुरुषशास्त्र में कहे प्रकार से यहां वर्णित किया जाता है॥ १—४॥

आदौ विश्वक्रियादर्शस्थानमित्यभिधीयते ।
शक्त्याकर्षणदर्पणस्थानं च ततः × परम् ॥ ५ ॥
परिवेषस्थानमुक्तं विमानावरणोपरि ।*
अङ्गोपसंहारयन्त्रस्सप्तमे विन्दुकीलके ॥ ६ ॥
स्याद्विस्तृतक्रियास्थानं रेखैकादशमध्यगे ।
वैरूप्यदर्पणस्थानं पद्मचक्रमुखं तथा ॥ ७ ॥
शिरोभागे विजानीयाद्विमानस्य बुधः (धैः?) क्रमात् ।
कण्ठे तु कुण्टिणीशक्तिस्थानमित्युच्यते बुधैः ॥ ८ ॥
पुष्पिणीपिञ्जुलादर्शस्थानं दक्षिणकेन्द्रके ।
वामपार्श्वमुखे नालपञ्चकस्थानमुच्यते ॥ ९ ॥

आदि में विश्वक्रियादर्शस्थान कहा जाता है इसके आगे शक्त्याकर्षण स्थान कहा है। परिवेषस्थान (परिधिस्थान) विमानावरण के चारों ओर या ऊपर विमान के अङ्गों का सङ्कोचनयन्त्र सातवें विन्दुकील में। विस्तृत क्रियास्थान ग्यारहवीं रेखा के मध्य में होना चाहिये, वैरूप्यदर्पणस्थान तथा पद्मचक्र मुख ये दोनों विमान के शिरोभाग में बुद्धिमान् क्रमशः जाने। विमान के कण्ठ में कुण्ठिणीशक्तिस्थान होना बुद्धिमानों ने कहा है। पुष्पिणीपिञ्जुलादर्श स्थान दक्षिणकेन्द्र में तथा नालपञ्चकस्थान (पांच नालों का स्थान) वाम पार्श्व में कहा जाता है॥ ५—९॥

गुहागर्भादर्शयन्त्रस्थानं कुक्षिमुखे क्रमात् ।
तमोयन्त्रस्य संस्थानं भवेद् वायव्यकेन्द्रके ॥ १० ॥
पञ्चवातस्कन्धनालस्थानं पश्चिमकेन्द्रके ।
रौद्रीदर्पणसंस्थानं वातस्कन्धाख्यकीलकम् ॥ ११ ॥
अधःकेन्द्रे विजानीयाद्विमानस्य यथाक्रमम् ।
शक्तिस्थानं विमानस्य मुखदक्षिणकेन्द्रयोः ॥ १२ ॥

× च तदनन्तरम् (क्वचित्)।
* यहां 'विमानावरणतोपरि' में विमानावरणतः परि न होकर विमानावरणतः उपरि' भी हो सकता है विसर्ग लोप हो जाने पर त-उ की सन्धि छन्दपति के लिये समझना चाहिये।

शब्दकेन्द्रमुखस्थानं वामभागे निरूपितम् ।
विद्युद्द्वा (द्वा?) दशकस्थानं विमानैशान्यकोणके ॥१३॥

गुहागर्भादर्श यन्त्र का स्थान कुक्षिमुख में क्रमशः कहा है, तमोयन्त्र (अन्धकार करनेवाले यन्त्र) का स्थान वायव्य केन्द्र में होना चाहिये। पञ्चवातस्कन्धनाल का स्थान पश्चिम केन्द्र में हो। रौद्रीदर्पण स्थान वातस्कन्ध नामक कील में विमान के अधःकेन्द्र में यथाक्रम जानना चाहिये। शब्द केन्द्रमुख स्थान वाम भाग में निरूपित किया है बारह विद्युत् का स्थान विमान के ऐशानीकोण में होना चाहिये ॥ १०—१३ ॥

प्राणकुण्डलिसंस्थानं यानमूले निरूपितम् ।
भवेच्छक्तयु् द्गमस्थानं नाभिकेन्द्रे तथैव च ॥१४॥
वक्रप्रसारणस्थानं विमानाधारपार्श्वके ।
मध्यकेन्द्रे भवेच्छक्तिपञ्जरस्थानकीलकम् ॥ १५ ॥
स्थानं शिरःकीलाख्यं भवेद्यानशिरोपरि । *
शब्दाकर्षणयन्त्रस्य स्थानं पश्चिमपार्श्वके ॥ १६ ॥
रूपाकर्षणयन्त्रस्य स्थानं यानभुजे क्रमात् ।
पटप्रसारणस्थानं यानाधोभागमध्यमे ॥ १७ ॥

प्राणकुण्डलीस्थान (गतियन्त्र) यान के मूल में निरूपित किया है तथा शक्त्युद्गमस्थान नाभिकेन्द्र में कहा है। वक्रप्रसारण स्थान विमानाधारपार्श्व में और शक्तिपञ्जरस्थान कील मध्य केन्द्र में होना चाहिये। शिरःकील नामक स्थान यान के शिर के ऊपर हो, शब्दाकर्षण यन्त्र का स्थान पश्चिम पार्श्व में होना चाहिये। पटप्रसारणस्थान यान के अधोभाग के मध्य में होना चाहिये॥ १४–१७॥

दिशाम्पतियन्त्रस्थानं वामकेन्द्रभुजे विदुः ।
पट्टिकाक्रमसंस्थानं (न ?) यानावरणमध्यमे ॥ १८ ॥
विमानस्योपरि सूर्यस्य शक्त्याकर्षणपञ्जरम् ।
अपस्मारधूमस्थानं सन्धिनालमुखोत्तरे ॥ १९ ॥
अधोभागे स्तम्भनाख्ययन्त्रस्थानमितीर्यते ।
वैश्वानराख्यनालस्य स्थानं नाभिमुखे विदुः ॥ २० ॥
इत्येकत्रिंशतिकस्थाननिर्णयः परिकीर्तितः ।

दिशाम्पति (दिशाओं के पति) यन्त्र का स्थान वामकेन्द्रभुजा में जानें पट्टिकाभ्रक (अभ्रक की पट्टिका) का स्थान यानावरण के मध्य में होना चाहिये। विमान के ऊपर सूर्य की शक्ति को आकर्षण करने वाला पञ्जर हो, अपस्मार धूम का स्थान सन्धिनालमुख के उत्तर भाग में होना चाहिये। अधोभाग में स्तम्भन नामक यन्त्र का स्थान कहा गया है और वैश्वानर नामक नाल का स्थान नाभिमुख में जाने ॥ यह एकत्तीस अङ्गस्थानों का निर्णय कहा ॥ १८–२० ॥

—:o:—

* 'शिरोपरि' में 'शिरः-उपरि' विसर्गलोप होकर सन्धि छन्द की पूर्ति के लिये है।

कापी संख्या २—

अथ वस्त्राधिकरणम् ।

अब वस्त्र का अधिकरण प्रस्तुत करते हैं ।

यन्तृप्रावरणीयौ पृथक् पृथगृतुभेदात् ॥ अ० १ सू० ६ ॥

बो० वृ०

वस्त्रप्रबोधकपदान्यन्तॄणामृतुभेदतः ।
उक्तानि त्रीणि सूत्रेस्मिन् तेषामर्थो विविच्यते ॥१॥
धारणाच्छादनवस्त्रप्रभेदो यन्तॄणां क्रमात् ।
सूत्रादिमपदेनोक्तं द्वितीयपदतस्तथा ॥ २ ॥
तेषां संस्कारतद्वर्णगुणजात्यादयः स्मृताः ।
सूत्रतृतीयपदतः कालभेदो निरूपितः ॥ ३ ॥
इत्थं सूत्रार्थमुक्त्वाथ विशेषार्थो निरूप्यते ।
अनन्तसूर्यकिरणशक्तिवैचित्र्यभेदतः ॥ ४ ॥
वसन्ताद्याःषड्तवः प्रभवन्त्यदितेर्मुखात् ।
यजुराण्यके सूर्यानन्तत्वप्रतिपादने ॥ ५ ॥
यद् द्याव इन्द्र ते † शतमितिवाक्याच्छ्रुतिर्जगौ ।

ऋतुभेद से विमानचालक यात्रियों के वस्त्रों के प्रबोधक पद तीन सूत्र में कहे हैं उनके अर्थ का विवेचन किया जाता है। यात्रियों के पहिनने और ओढने का वस्त्रभेद क्रम से सूत्र के आदिम पद से कहा दूसरे पद से संस्कार उसके वर्ण गुण जाति आदि कहे हैं, तीसरे पद से कालभेद कहा है इस प्रकार सूत्रार्थ कह कर विशेष अर्थ निरूपित किया जाता है, अदिति-व्याप्त अग्नि के मुख से एवं अनन्त सूर्यकिरण शक्तियों की विचित्रता के भेद से वसन्त आदि छः ऋतुएं होती हैं। यजुर्वेद के आरण्यक में सूर्य किरणों की अनन्तता प्रतिपादन होने से "यद् द्याव इन्द्र ते शतम्" (तै० आ० १। ७। ५) हे इन्द्र सूर्य तेरी किरणें सैकड़ों सहस्रों हैं †। इस प्रकार वाक्य श्रुति ने गान किया-कहा है ॥ १—५ ॥

---

† "शतं बहुनाम" (निघ०)

तस्मादनन्तसूर्याणामंशुशक्तिसमाकुलात् ।
विषामृतविभागेन भिद्यन्ते ऋतुशक्तयः ॥ ६ ॥
छेदिनीरक्तपामेधस्सिराहारादयः क्रमात् ।
पञ्चविंशतिसंख्याका ऋतूनां विषशक्तयः ॥ ७ ॥
त्वङ् मांसमेधामज्जास्थिस्नायुरक्तरसादिकान् ।
वेरबीजान् नश्यन्ति खपथे यानयन्तॄणाम् ॥ ८ ॥
तस्मात्तद्वेरबीजादिरक्षणार्थं कपार्दिना ।
ऋतुशक्तयनुसारेण वस्त्रभेदा निरूपिताः ॥ ९ ॥

अतः अनन्त सूर्यों के शक्तिसमूह से विष और अमृत के विभाग से ऋतुशक्तियां भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। छेदिनी अङ्गछेदन करनेवाली, रक्तपा–रक्त पीनेवाली, मेधा–मद:मांस चिकनाई सिरा आहार वाली क्रम से संख्या में ऋतुओं की विषशक्तियां हैं जो कि आकाशमार्ग में विमानयात्रियों के त्वचा मांस मेदः मज्जा-चर्बी हड्डी नाडी रक्त सिरा आदि वेर बीजों–शरीर के तत्त्वों को नष्ट करती हैं। अतः शरीर के तत्त्वों की रक्षा के अर्थ कपर्दी ने ऋतुशक्ति के अनुसार वस्त्रों के भेद निरूपित किये हैं।६-९।

उक्तं हि पटसंस्काररत्नाकरे—कहा ही है पटसंस्कार रत्नाकर ग्रन्थ में—

पट्टकार्पासशैवाललोमाभ्रकत्वगादिकान् ।
सप्तविंशतिसंस्कारशुद्धानभ्रकवारिणा ॥ १० ॥
क्षालयित्वाथ तान् सर्वान् यन्त्रे सन्धाय शास्त्रतः ।
गालवोक्तविधानेन तन्तून् सम्यक् प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥
केतकीवटतालार्कनारिकेलशणादयः ।
तत्तच्छुद्धिप्रकारेण शोधायित्वाष्टवारतः ॥ १२ ॥
एकोनविंशत्संस्कारैस्संस्कृत्य विधिवत् क्रमात् ।
तत्तद्वल्कलमादाय यन्त्रे तन्तुमुखाभिधे (दे?) ॥ १३ ॥
समग्रेणाथ सन्धार्य तन्तून् कृत्वा यथाविधि ।
गालवोक्तेन मार्गेण कुर्याद् वस्त्राण्यथाक्रमम् ॥ १४ ॥
पश्चाद् वस्त्रान् समाहृत्य पञ्चतैलैस्तु पाचयेत् ।
अतसीतुलसीधात्रीशमीमालूरुचक्रिकाः ॥ १५ ॥

रेशम, रूई, जलकाई, बाल, अभ्रकपरत आदि को २७ संस्कार शुद्ध करे हुओं को अभ्रक-जल या कपूरजल या नागरमोथे के जल से प्रक्षालित करके सबको शास्त्र से यन्त्र में रखकर गालव की विधि से धागों को बनावे। केतकी—केवड़ा, (बांस केवड़ा) बड़, ताड़, आख, नारियल, सण आदि उस उसके शुद्धिप्रकार से ८ बार शोध कर १९ संस्कारों से विधिवत् करके उसके उस उसके बकल लेकर तन्तुमुख नामक यन्त्र में रखकर तन्तुओं को बनाकर गालव के कहे मार्ग से वस्त्र यथाक्रम करे पश्चात् वस्त्रों को लेकर पांच तैलों से पकावे जो कि पांच तैल हैं अलसी, तुलसी, आमला, शमी, मालु-काली तुलसी, रुचिका–सरसों ॥ १०—१५ ॥

एतदोषधिबीजानां तैलात् सप्ताहमातपे ।
प्रत्यहं पञ्चधातप्त्वा शुष्कं कृत्वा ततः परम् ॥ १६ ॥
गोपीलाक्षाचण्डमुखीमधुपिष्टाभ्रकास्समम् ।
सम्मेल्य एणाक्षारेण बृहन्मुषामुखे क्रमात् ॥ १७ ॥
सम्पूर्य विधिवत् सर्वं कूर्मव्यासटिकान्तरे ।
निधाय त्रिमुखीभस्त्राद् ध्मनेच्छिञ्जीरवेगतः ॥ १८ ॥
तन्मध्येगस्तिपत्राणां रसप्रस्थाष्टकं न्यसेत् ।
माक्षिकाभ्रकसिञ्जीरवज्रटङ्कणवाकुटैः ॥ १९ ॥
तैलमाहृत्य विधिवत् तस्मिन् पश्चाग्नियोजयेत् ।
पश्चात् संगृह्य तत्काञ्जं गर्भतापनयन्त्रके ॥ २० ॥
सन्ताप्य तत्तैललिप्तवस्त्राण्यथ समाहरेत् ।

इन ओषधियों के बीजों के तैल से सप्ताहभर धूप में प्रतिदिन पांच वार तपाकर सुखाकर गोपी–गोपिका–कृष्ण सारिवा, लाख चण्डमुखी–इमली, मधु, पिष्ट–तिल की खल, अभ्रक ये समान लेकर एणक्षार ?–ऐणाक्षार·हरिणश्रृङ्ग भस्म के क्षार से मिला कर बड़ी मूषा (कृत्रिम बोतल) के मुख में भर कर कूर्मव्यासटिका–कछवे के आकारवाले कुण्ड के अन्दर रखकर तीन मुखवाली भस्त्रा से सिञ्जीर ? के वेग से धमन करे। उसके मध्य में अगस्त्य वृक्ष के पत्तों का ८ सेर रस डाल दे स्वर्णमाक्षिक अभ्रक सिञ्जीर ? थूहर, सुहागा, वाकुट–वाकुची ? या वाकुल–वकुल का फल वस्तुओं से विधिवत् तैल लेकर उस में डाल दे पश्चात् लेकर गर्भपात यन्त्र में उनके काञ्ज ?-रस तपाकर उस तैल से लिप्त वस्त्र लेले ॥१६-२०

अग्निमित्रोक्तविधिना पटजात्यनुसारतः ।
ऋतुधर्मानुसारेण कवचादीन् प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥
तत्तत्कालोचितान् वस्त्रकवचादीन् यथाक्रमम् ।
यानयन्त्रत्वाधिकारवरिष्ठेभ्यो मनोहरान् ॥ २२ ॥
दत्त्वा स्वस्त्ययनं कृत्वा रक्षाकरणपूर्वकम् ।
पश्चात् सम्प्रेषयेद् यानयन्त्रकर्माणि हर्षतः ॥ २३ ॥
सर्वदोषविनाशस्स्यात् तत्पट्टै र्बलवर्धनम् ।
मेधोवृद्धिर्धातुवृद्धिरङ्गपुष्टिरजाड्यता ॥ २४ ॥

अग्निमित्र की कही विधि में पट जाति के अनुसार ऋतु धर्मानुसार कवच आदि बनावें, उस उस काल के योग्य वस्त्र कवच आदि यथाक्रम मनोहर विमानचालन अधिकार में श्रेष्ठों के लिये देकर स्वस्त्ययन रक्षाकरणपूर्वक करके उन्हें हर्ष से विमानचालन के कार्य में प्रेरित करे, सर्व दोषों का विनाश हो उन वस्त्रों से विमानयात्रियों का बल बढ़े, मेधा बढे, धातु वृद्धि हो अङ्ग पुष्टि स्फुर्ति अङ्गरक्षण आदि हो ॥ २१—२४ ॥

आहाराधिकरणम् ।

भोजन का अधिकरण ।

आहारः कल्पभेदात् ॥ अ० १ सू० ७ ॥

बो० वृ०

यन्तॄणामाहारभेदनिर्णयार्थं पदद्वयम् ।
सूत्रेस्मिन् कथितं सम्यक् तदर्थस्सम्प्रचक्षते ॥ २५ ॥
कल्पशास्त्रोक्तरीत्यात्र ऋतुकालानुसारतः ।
यन्तॄणामाहारभेदास्त्रिविधा इति निर्णिताः ॥ २६ ॥

चालक यात्रियों के आहारभेद के लिये इस सूत्र में दो पद कहे हैं उनका अर्थ कहा जाता है, कल्पशास्त्र में कही रीति से यहां ऋतुकाल के अनुसार चालक यात्रियों के आहारभेद तीन प्रकार के निर्णीत किए हैं ॥ २५—२६ ॥

तदुक्तमशनकल्पे—वह भोजनकल्प ग्रन्थ में कहा है—

रसवर्गे माहिषीया धान्येष्वाढकशालिकौ ।
मांसेष्वाविक (कि ?) मांसं च वसन्तग्रीष्मयोरिति ॥२७॥
रसेषु गव्यसम्बन्धा धान्ये गोधूममुद्गकाः ।
मांसेषु कालज्ञानीयं वर्षाशरदृतावपि ॥ २८ ॥
रसेष्वजा रसाश्चैव धान्येषु यवमुद्गकाः ।
मांसेषु कलविंकाश्च हेमन्तशिशिरे क्रमात् ॥ २९ ॥ इत्यादि
विनामिषं द्विजातीनां भुक्तिस्समभितीरितम् ।

दुग्ध वर्ग में भैंस के दूध धान्य में अरहर शाली चावल मांसो में भेड का मांस भोजन है वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में। दूधों में गौ के दूध धान्य में गेहूं मूंग मांस में कालज्ञानीय-मुर्गे का मांस वर्षा और शरद् ऋतु में। दूधों में बकरी के दूध धान्यों में जो मूंग मांसों में चिडिया कबूतर का मांस हेमन्त शिशिर ऋतु में क्रम से हैं। द्विजों का मांस के विना भोजन समान कहा है ॥ २७—२९ ॥

विषनाशस्त्रिभ्यः ॥ अ० १ सू० ८ ॥

बो० वृ०

सूत्रे पदद्वयं प्रोक्तं विषनाशार्थबोधकम् ।
तदर्थं सम्प्रवक्ष्यामि समासेन न विस्तरात् ॥३०॥
पञ्चविंशतिसख्याका ऋतुजा विषशक्तयः ।
पूर्वोक्ताहारभेदेन विनाशं यान्ति नान्यथा ॥३१॥

सूत्र में विषनाशार्थ बोधक दो पद कहे हैं उनके अर्थ संक्षेप से कहूंगा विस्तार से नहीं।

ऋतु से उत्पन्न होने वाली २५ विषशक्तियां हैं जो पूर्व कहे आहार के भेद से विनाश को प्राप्त हो जाती हैं अन्यथा नहीं ॥ ३०—३१ ॥

तदुक्तं विषनिर्णयाधिकारे—वह कहा है विषनिर्णयाधिकार में—

ऋतवष्षड्विधास्तेषां कालशक्त्यादयः क्रमात् ।
बहुधा सम्प्रभिद्यन्ते रयवारुणचापलात् ॥३२॥
मरुच्चापलशक्त्यंशशतैकं तद्वदेव हि ।
वारुणायाष्षोडशैकभागांशस्सप्तमेन्तरे ॥३३॥
सम्मेलनं यदि भवेत् तदानन्तप्रकारतः ।
सिनीवालीकुहूर्योगाद् विषामृतप्रभेदतः ॥३४॥
प्रभिद्यन्ते विशेषेण ऋतूनां कालशक्तयः ।
यास्सिनीवालिसंग्रस्तास्सर्वामृतशक्तयः ॥३५॥
कुहुसंग्रसिता यास्स्युस्तास्सर्वा विषशक्तयः ।
सप्तकोट्यष्टपञ्चाशल्लक्षसप्तशतामृताः ॥३६॥
तावन्त्येव विषाः प्रोक्ता वाल्मीकिगणितोदिताः ।
भेदिन्याद्यास्तेषु ? पञ्चविंशास्स्युर्विषशक्तयः ॥३७॥
ऋतुकालानुसारेण यन्तृदेहविनाशकाः ।
तन्नाशश्चाहारभेदादिति शातातपोब्रवीत् ॥३८॥ इति
तस्मादाहारभेदोस्मिन् सूत्रे त्रेधा निरूपितः ।
तत्सेवनात् कायपुष्टिर्यन्तॄणां प्रभवेद् ध्रुवम् ॥३९॥

ऋतुएं छः प्रकार की हैं उनकी कालशक्ति आदि क्रम से वरुण—आकाश में फैले जल के वेग की चपलता से बहुत भेदों में होते हैं उसी प्रकार मरुत्–आकाशीय वायु को चपलशक्ति के भाग १०१ हैं, वारुण शक्ति के १६ अंश (सौ) सातवें अन्तर में हैं सम्मेल यदि हो तो तब अनन्त प्रकार से हो, सिनीवालीपूर्वा अमावस्या और कुहू—उत्तरा अमावस्या के योग से विष अमृत के भेद से भिन्न-भिन्न हो जाती है। जो तो सिनीवाली से सम्बन्ध रखती हुईं हैं वे सब अमृत शक्तियां हैं और जो कुहू से संग्रस्त हैं वे सब विषशक्तियां हैं। सात करोड़ अठावन लाख सात सौ अमृत शक्तियां हैं और उतनी ही विष शक्तिकां वाल्मीकि गणित से कही हुई हैं, उनमें भेदिनियां २५ विषशक्तियां हैं जो ऋतुकालानुसार चालक यात्रियों के देह का विनाश करने वाली हैं। उनका नाश आहारभेद से हो जाता है ऐसे शतातप के पुत्र शातातप ऋषि ने कहा है। अतः आहारभेद इस सूत्र में तीन स्थानों पर कहा है, उनके सेवन से यात्रियों की शरीरपुष्टि निश्चित हो जावे ॥ ३२—३९ ॥

तत्कालानुसारादिति ॥ अ० १ सू० ६ ॥

पदत्रयं तु सूत्रेऽस्मिन् भुक्तिकालनिर्णये ।
उक्तं स्यात् संग्रहेणाद्य तदर्थस्सन्निरूप्यते ।।४०।।
पूर्वोक्तत्रिविधाहारास्तच्छब्देनात्र वर्णिताः ।
भुक्तिकालविधिस्सम्यग् द्वितीयपदतस्स्मृतः ।।४१।।
इत्थम्भावेति†शब्दः स्यादिति शब्दार्थनिर्णयः ।
आहारोत्र प्रभेदेन यन्तॄणां पञ्चधा स्मृतः (म् ?) ।।४२।।

इस सूत्र में भोजनकालनिर्णयप्रसङ्ग में तीन पद कहे हैं, अब संक्षेप से अर्थ कहा जाता है । पूर्वोक्त तीन प्रकार के आहार तत् शब्द से यहां वर्णित किए हैं भोजनकाल का विधान दूसरे पद से कहा है, इत्थम्भाव के अर्थ में इति शब्द है यह शब्दार्थ का निर्णय है, चालक यात्रियों का आहार यहां भेद से पांच प्रकार का कहा है ॥

तदुक्तं शौनकीये—वह कहा है शौनकीय सूत्र में—

अथ भोजनकालविधिं व्याख्यास्यामः कालाकालविभागेन गृहिणां द्वावेकमित्येकं मस्करिणां चतुर्धेतरेषां पञ्चधा यानयन्तॄणां यथेच्छं योगिनामिति ।।

अब भोजन की कालविधि को काल अकाल विभाग से कहूंगा गृहस्थों का दो काल एक काल, संन्यासियों का एक काल, अन्यों का चार वार, विमान के चालक यात्रियों का पांच वार करना और योगियों का इच्छानुसार करना ।।

लल्लकारिका—लल्लकारिका है—

कालयोर्भोजनमिति सूत्रवाक्यानुसारतः ।
अह्नि द्वितीययामान्ते रात्रौ प्राथमिकान्तरे ।।४३।।
सकालभोजने प्राहुर्गृहिणां कालनिर्णयः ।
अकालभोजने तेषामेकभुक्तविधौ क्रमात् ।।४४।।
दिवि तृतीययामाद्या चतुर्थान्तमिति स्मृतः ।
एकभुक्ताधिकारत्वाद् यमिनामेकमेव हि ।।४५।।
अहोरात्रविभागेन शूद्रादीनां तु भोजने ।
अह्नि त्रिधैकधा रात्राविति कालविनिर्णयः ।।४६।।
भोजने नास्त्यतस्तेषां ययेच्छं भोजनं विदुः । इति
अह्नि त्रिधा द्विधा रात्रावाकाशे यन्तॄणां क्रमात् ।
पञ्चधा भुक्तिकालस्य निर्णयः परिकीर्तितः ।।४७।।

सूत्रवाक्यानुसार दो कालों में भोजन है । दिन में दूसरे प्रहर के अन्त में रात्रि में प्रथम प्रहर के अन्दर । गृहस्थों का कालनिर्णय सकाल भोजन में अर्थात् निश्चितकाल पर करना, उनका एक

† 'इत्थम्भाव इति' उभयोरेकादेश आर्षः ।

वार भोजनविधि में अकाल भोजन है दिन में तीसरे प्रहर से लेकर चतुर्थ प्रहर तक कहा है, संन्यासियों का एक वार भोजन का अधिकार होने से एक काल पर ही करना, शूद्रों आदि का तो भोजन में दिनरात के विभाग से दिन में तीन वार रात्रि में एक वार यह कालनिर्णय है, उनका भोजन में काल नियम नहीं यथेच्छ भोजन को जानते हैं। इत्यादि। दिन में तीन वार रात्रि में दो वार भोजन आकाश में चालक यात्रियों का क्रम से होता है जोकि पांच वार भोजन में कालनिर्णय है ।।४७।।

तदभावे सत्त्वं गोलो वा ।। अ० १ सू० १० ।।

बो० वृ०

पदत्रयं भवत्यस्मिन्नाहारान्तरबोधकम् ।
तदर्थं (ह ?) सम्प्रवक्ष्यामि समासेन यथामति ।।४८।।
आहारासम्भवे तेषां तत्सारेण कृतान् मृदून् ।
प्रदद्याद् घननिस्वाकानाहारार्थं यथाविधि ।।४९।।

इस सूत्र में तीन पद हैं आहारान्तर—अन्य आहार के स्थान को बोधन कराने वाले उनके अर्थ को मैं यथामति संक्षेप से कहूँगा, आहार की सम्भावना न होने पर उनके सार—आटे आदि के बने कोमल घननिस्वाक—पिण्डों—लड्डुओं को आहारार्थ यथाविधि दे ।।४९।।

तदुक्तमशनकल्पे—वह कहा है अशनकल्प ग्रन्थ में—

आहाराः पञ्चधा प्रोक्ता देहपुष्टिकराश्शुभाः ।
अन्नकाञ्जिकपिष्टतद्रोटिकासाररूपतः ।।५०।।
तेषु श्रेष्ठतरौ सत्त्वगोलान्नाविति कीर्तितौ ।

देह की पुष्टि करने वाले आहार—भोजन पांच प्रकार के कहे हैं। अन्न, काञ्जिक—धान्याम्ल (खट्टा अन्नरस), पिष्ट-लुगदी, रोटिका, सार-चूर्णरूप में उनमें सत्त्व-सार-चूर्ण-भुनाचून-कसार और गोल-लड्डू कहे हैं ।।५०।।

उक्तं हि पाकसर्वस्वे—कहा ही पाकसर्वस्व में—

धान्याद्याहारवस्तूनां स्वत्त्वमाहृत्य यन्त्रतः ।
पाकं कृत्वा पाचनाख्ययन्त्रभाण्डे यथाविधि ।।५१।।
उक्ताष्टमेन पाकेन सत्त्वगोलान् प्रकल्पयेत् ।
सुगन्धं मधुरं स्निग्धमाहारं पुष्टिवर्धनम् ।।५२।। इति

धान्य आदि आहार वस्तुओं के चूर्ण —आटे को चक्की यन्त्र से लेकर पाचना नामक-कढाई आदि में यथाविधि पाक करके कहे आठवें भाग पाक से सत्त्वगोल-लड्डु बनावे, उसमें सुगन्ध मधुर स्निग्ध डालकर पुष्टिवर्धक आहार बनावे ।। ५१—५२ ।।

फलमूलकन्दसारो वा ।। अ० १ सू० ११ ।।

बो० वृ०

पूर्वसूत्रे धान्यसत्त्वाहारमुक्तं हि यन्तॄणाम् ।
तथैवास्मिन् कन्दमूलफलसत्त्वमपीर्यते ॥५३॥
प्रथमं कन्दसत्त्वस्स्याद् द्वितीयो मूलसत्त्वकः ।
फलसत्त्वस्तृतीयस्स्यादिति सूत्रार्थनिर्णयः ॥५४॥

पूर्व सूत्र में धान्य—गेहूं आदि अन्न के चूर्ण—भुने आटे आदि का वना विमानचालक यात्रियों का आहार कहा गया है वैसे ही उस सूत्र में कन्द मूल फल के सत्त्व—गूदे मीगी आदि को आहार कहा है। प्रथम कन्दसत्त्व हो दूसरे मूल का सत्त्व हो तीसरे फलसत्त्व हो यह सूत्रार्थ है ॥५३-५४॥

तदुक्तमशनकल्पे—वह कहा है अशनकल्प में—

अलाभे धान्यसत्त्वस्य सत्त्वत्रयमुदाहृतम् ।
कन्दसत्त्वो मूलसत्त्वः फलसत्त्व इति क्रमात् ॥५५॥
पिष्टशर्करामञ्जूषमधुक्षीरघृतादयः ।
स्निग्धोडुकक्षरकटुकमञ्जूषाम्लम्लुचाः क्रमात् ॥५६॥
एकमप्यदि संसिद्धि र्भवेत् संशोधनात् स्वतः ।
सत्त्वाहरणकार्ये तत्कन्दं श्रेष्ठतमं विदुः ॥५७॥
पञ्चाशदाहारकन्दवर्गेषु विधिवत्सुधीः ।
संशोध्य सम्यक् पिष्टादिपदार्थाननुभूतितः ॥५८॥
निश्चित्य पश्चात् तत्कन्दवर्गात् सत्त्वं समाहरेत् ।
कारयेत् तेन निस्वाकानाहारार्थं तु पूर्ववत् ॥ ५९ ॥
एकमेवाहारमूलफलवर्गेषु च क्रमात् ।
परीक्ष्य सत्त्वमाहृत्य निस्वाकान् परिकल्पयेत् ॥ ६० ॥

धान्यसत्त्व के अभाव में अलाभ में न मिलने पर तीन सत्त्व कहे गए हैं जो कि कन्दसत्त्व, मूलसत्त्व, फलसत्त्व क्रम से हैं, पिष्ट-पिसा चूर्ण आटा, शर्करा-दलिया या खाण्ड ? मञ्जूष-गुद्दा एवं मीगी, मधु-रस, दूध, घृत आदि स्निग्ध तैल, उडु-जल, क्षर-क्षार जल, कटु-कटुरस, मञ्जूषाम्ल-गुद्दे या मीगी का मुरब्बा, अचार, शरबत अर्क रूप में म्लुच ? ये क्रम से एक की भी यदि हो जावे तो संशोधन से स्वतः सत्त्व के आहार कार्य में कन्द को श्रेष्ठतम जानते हैं। ९५ आहार के कन्दवर्गों में विधिवत् बुद्धिमान् संशोधन कर के पिसे आटे आदि पदार्थों को अनुभूति से निश्चित कर पश्चात् उस कन्दवर्ग से सत्त्वचूर्ण को ग्रहण करे उस से निस्वाकों-लडडुओं को लिये पूर्व की भांति इस प्रकार आहार मूलक-वर्गों में भी परीक्षा करके क्रमशः सत्त्व को लेकर लड्डु बनावे ॥ ५५—६० ॥

आहारमूलवर्गास्तु शास्त्रे षोडशधा स्मृताः ।
तथैवाहारफलवर्गाश्च द्वात्रिंशतिः स्मृताः ॥ ६१ ॥
मेधो मज्जास्थिवीर्याद्या वर्धन्ते कन्दसत्त्वतः ।
ओजो बलकायपुष्टिः प्राणः कोशादयः क्रमात् ॥ ६२ ॥

मूलसत्त्वाद् वृद्धिमेतीत्याहुर्ज्ञानविदां वराः ।
मनोबुद्धीन्द्रियग्रामज्ञानासृङ् मांससिञ्जिराः ॥ ६३ ॥
फलसत्त्वाद् वृद्धिमेतीत्याहुश्शास्त्रविदां वराः ।
एतत्सत्त्वत्रयाहारो यन्तॄणां भोजने बुधाः ॥ ६४ ॥
शास्त्रोक्ताहारवर्गेषु श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतमं विदुः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्सत्त्वं संग्रहेत् सुधीः ॥ ६५ ॥ इत्यादि

आहार मूल वर्ग तो शास्त्र में १६ प्रकार के कहे हैं, वैसे ही आहार फल वर्ग ३२ कहे हैं कन्दसत्त्व से मेद मज्जा हड्डी वीर्य आदि बढ़ते हैं मूलसत्त्व से ओज, बल काय की पुष्टि प्राण कोश आदि बढ़ते हैं, फलसत्त्व से मन ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान रक्त मांस सिञ्जिर-रस बढ़ते हैं ऐसा श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ कहते हैं, यह तीन सत्त्वों का आहार विमान के चालक यात्रियों के भोजन में विद्वानों ने शास्त्रोक्त आहार वर्गों में श्रेष्ठतम माना है। अतः सर्व प्रयत्न से बुद्धिमान् उस सत्त्व का संग्रह करे ॥ ६१—६५ ॥

अपि च तृणादीनाम् ॥ अ० १, सू० १२ ॥

बो० वृ०

पूर्वसूत्रे कन्दमूलफलसत्त्वमुदाहृतम् ।
तृणगुल्मलतादीनां सत्त्वमस्मिन्निरूप्यते ॥६६॥

पूर्व सूत्र में कन्द मूल फल का सत्त्व कहा है, इस सूत्र में तृण गुल्म लता आदियों का सत्त्व निरूपित किया जाता है।

तदुक्तमशनकल्पे—वह कहा है अशनकल्प ग्रन्थ में—

तृणगुल्मलतादीनां सत्त्वाहारं च यन्तॄणाम् ।
पूर्वोक्तसत्त्ववद् देहारोग्यायुष्यादिवर्धनम् ॥६७॥
तस्मात् सत्त्वमप्यन्तृभोजनार्थं समाहरेत् ।
दूर्वाषट्कं मुञ्जषट्कं कुशषट्कं तथैव हि ॥६८॥
शौण्डीरस्याश्वकर्णस्य षट्कं षट्कमतः परम् ।
शतमूलत्रयं चैव भोजनेत्यन्तशोभनाः ॥६९॥
कारुवेल्ली चन्द्रवेल्ली मधुवेल्ली तथैव च ।
वर्चुली माकुटीवेल्ली सुगन्धा सूर्यवेल्लिका ॥७०॥

तृण, गुल्म, लता आदि का सत्त्व—लुगदी या रस चालक यात्रियों का भोजन है। पूर्वोक्त सत्त्व—कन्द मूल फल के सत्त्व की भांति देह का आरोग्य आयुष्य आदि बढाने वाला है अतः (इनका) सत्त्व भी भोजनार्थ ले ले। दूब ६ भाग, मूञ्ज ६ भाग, कुशा ६ भाग, शौण्डीर ?—देवधान्य—कंगुनी या स्वयं उत्पन्न जंगली तृण धान्य ? ६ भाग, अश्वकर्ण—लताशाल ६ भाग, शतमूलं—शतमूलिका—महा-मूषाकर्णी ३ भाग, भोजन में अत्यन्त अच्छे हैं। कारुवेल्ली—कारवल्ली—छोटा करेला, चन्द्रवेल्ली—ब्राह्मी, मधु वेल्ली—मुलहठी, वर्चुली ?, माकुटीवेल्ली ?, सुगन्धा—तुलसी, सूर्यवेल्ली—सूर्यवल्ली—क्षीरकाकोली ॥ ६७–७० ॥

एते गुल्मास्सदा यन्तृभोजने पुष्टिवर्धनाः ।
सोमवल्ली चक्रिकादतुम्बिकारसवल्लिका ॥७१॥
कूष्माण्डवल्लिका चेक्षुवल्लिका पिष्टवल्लरी ।
सूर्यकान्ता चन्द्रकान्ता मेघनादः पुनर्नवः ॥७२॥
अवन्ती वास्तु मत्स्या क्षीररुक्माद्याः पुष्टिवर्धनाः ।
पूर्वोक्तपिष्टमञ्जूषशर्कराद्या यथाक्रमम् ॥७३॥
विधिवच्छोदिते शास्त्रमुखात् संलभ्यते यदि ।
यो वा को वा भवेद् गुल्मलतादूर्वादयः क्रमात् ॥७४॥
सत्त्वाहरणयोग्यास्ते बलपुष्टिविवर्धनाः ।
शाकपुष्पतत्पत्रपल्लवादीनां तथैव हि ॥७५॥
सत्त्वमत्युत्तमं विद्यादाहारे यन्तृणामिति ।

ये गुल्म सदा चालक यात्रियों के भोजन में पुष्टिवर्धक हैं । सोमवल्ली–सोमलता, चक्रिकाद ?, तुम्बिका–घिया लौकी ?, रसवल्लिका ?, पेठा कद्दू लता, इक्षुवल्लिका–इक्षुवल्ली—कृष्णक्षीरविदारी, पिष्टवल्लरी—पिष्टपर्णी, सूर्यकान्ता—आदित्यपर्णी, चन्द्रकान्ता—निगुण्डी—सम्भालू, मेघनाद—चौलाई, पुनर्नवा, अवन्ती—राई, वास्तु—बथवा, मत्स्या—कुटकी, क्षीररुक्मा ?—क्षीरपुष्पी—शङ्खपुष्पी, ये पुष्टि-वर्धक हैं । पूर्व कहे चूर्ण लुगदी—गुद्दा दलिया या खण्ड यथाक्रम विधिवत् शास्त्रमुख से प्राप्त होते हैं । जो भी कोई भी गुल्म, लता, दूब आदि ही क्रम से सत्त्व लेने योग्य हों वे बलपुष्टि बढ़ाने वाले हैं शाक फूल पत्ते कोंपल आदि आहार में उनके सत्त्व को यात्रियों के आहार में जाने ॥ ७१-७४ ॥

अथ लोहाधिकरणम् ॥

अब लोहे का अधिकरण प्रस्तुत किया जाता है ।

अथ यानलोहानि ॥ अ० १, सू० १३ ॥

बो० वृ०

यन्तृणामाहारभेदः पूर्वाधिकरणे स्मृतः ।
अथेदानीं यानलोहस्वरूपोस्मिन्निरूप्यते ॥७१॥
पदद्वयं भवेदस्मिन् यानलोहविनिर्णये ।
तयोरानन्तर्यवाची स्यादादिमपदस्तथा ॥७७॥
यानक्रियार्हलोहानि प्रोक्तानि स्युर्द्वितीयतः ।
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ॥७८॥
उक्तानि यानलोहानि शौनकीये यथाक्रमम् ।
तान्येवोदाहरिष्यामि विमानरचनाविधौ ॥७९॥

विमानचालक यात्रियों का आहारभेद पूर्व अधिकरण में कह दिया । अब यान के लोहे का स्वरूप इस प्रकरण में निरूपित किया जाता है । इस सूत्र में दो पद विमानलोहे के निर्णय में हैं ।

उन दोनों में आदिम पद 'अथ' अनन्तरार्थ का वाची है। दूसरे पद से विमानकार्य के योग्य लोहे कहे हैं। पदों का अर्थ ऐसे कहकर अब विशेषार्थ कहा जाता है। शौनकीय सूत्र में जैसे लोहे कहे हैं वैसे ही यथाक्रम उन्हें विमानरचनाविधि में कहूंगा ।। ७६—७६ ।।

तदुक्तं शौनकोये—वह कहा है शौनकीय सूत्र में—

अथ वैमानिकान् लोहाननुक्रमिष्यामस्सौमकसौण्डालिकमौर्त्विकाश्चै-
तत्सम्मेलनादूष्मपाष्षोडशधा भवन्तोति ते वैमानिका इति ।।

अब वैमानिक—विमान के हितकर लोहों को कहेंगे जो कि सौमक, सौण्डालिक, मौर्त्विक हैं। इनके सम्मेलन से ऊष्मप लोहे १६ प्रकार के होते हैं अतः वे वैमानिक लोहे होते हैं ।।

अथ नामानि—अब उनके नाम हैं—

उष्णम्भरोष्णपोष्णहनराजाम्लतृड् वीरहापञ्चघ्नोग्नितृड्भारहनश्शीत-
हनोगरलघ्नाम्लहनो विषम्भरविशल्यकृद् द्विजमित्रश्चेतीत्यादिः ।।

उष्णम्भर; उष्णप, उष्णहन, राजाम्लतृट्, वीरहा, पञ्चघ्न, अग्नितृट्, भारहन, शीतहन, गरलघ्न, अम्लहन, विषम्भर, विशल्यकृत्, द्विजमित्र इत्यादि ।।

मणिभद्रकारिका—मणिभद्रकारिका—

विमानार्हाणि लोहानि भारहीनानि षोडश ।
ऊष्माण्युक्तानि सूत्रेस्मिन् शौनकेन महात्मना ।।८०।।
एतत्षोडशलोहान्येव यानरचनाविधौ ।
वरिष्ठानीति शास्त्रेषु निर्णितानि महर्षिभिः ।।८१।।

विमान के योग्य भारहीन लोहे १६ हैं। इस सूत्र में शौनक महात्मा ने ऊष्म कहे हैं, ये १६ लोहे विमान यान रचनाविधि में श्रेष्ठ हैं शास्त्रों में महर्षियों ने निर्णय किए हैं ।। ८०—८१ ।।

साम्बोपि—साम्ब आचार्य ने भी कहा है—

सौमसौण्डालमौर्त्विकवंशजा बीजलोहकाः ।
तत्संयोगात्समुत्पन्ना ऊष्मपा इति कीर्तिताः ।।

तथैव व्योमयानाङ्गरचना नान्यथा भवेत् ।। इत्यादि ।।

सौम, सौण्डाल, मौर्त्विक के वंशज बीज दोहे हैं उनके संयोग से जो उत्पन्न होते हैं वे ऊष्मपा कहे गए हैं। वैसे हि विमान के अङ्गों की रचना ठीक होगी ।।

एवमुक्त्वाथोष्मपानां यानार्हत्वं प्रमाणतः ।
तेषां स्वरूपं निर्णेतुं पूर्वमार्गानुसारतः ।।८२।।
तद्बीजलोहस्वरूपमादौ सम्यग् विचार्यते ।
भूगर्भस्थितखनिजरेखापंक्तिषु सप्तमे ।।८३।।
तृतीयखनिजस्था ये ते लोहास्सौमजातयः ।
ते त्वष्टत्रिंशतिः प्रोक्तास्तेषु लोहत्रयं क्रमात् ।।८४।।
ऊष्मलोहोत्पत्तिविधौ मुख्यत्वेन विनिश्चिताः ।

इस प्रकार ऊष्मप लोहों का विमान योग्य होना प्रमाण से कहकर उनके स्वरूप का निर्णय करने को पूर्व मार्गानुसार उनके बीज लोहों के स्वरूप आदि के विषय में भली प्रकार विचार किया जाता है। भूगर्भस्थित खनिज रेखाओं की पंक्तियों में सातवें पंक्तिस्तर में तीन खनिज रेखास्तरों में जो लोहे सौमजातीय ऊष्म लोह की उत्पत्तिविधि में मुख्यत्व से निश्चित किए हैं ।।८१–८४।।

तदुक्तं लोहतन्त्रे—वह लोहतन्त्र में कहा है —

रेखासप्तमस्य तृतीयखनिजलोहाः पञ्चशक्तिमयास्सौमजातीयास्ते बीजलोहा इति ।।

सातवीं रेखा में स्थित तीन खनिस्तर में उत्पन्न लोहे पांच शक्तियों से पूर्ण सौमजातीय बीज लोहे हैं ।।

बोधानन्दकारिका—बोधानन्दकारिका—

भूगर्भखनिजरेखास्त्रिसहस्राधिकास्स्मृताः ।
त्रिशतोत्तरसहस्ररेखास्तेषूत्तमाः क्रमात् ।।८५।।
रेखानुगुणतस्तासु खनिजास्सन्निरूपिताः ।
तेषु सप्तमरेखास्थखनिजास्सप्तविंशतिः ।।८६।।
तेषु तृतीयखनिजगर्भकोशसमुद्भवाः ।
पञ्चशक्तिमया ये स्युस्ते लोहा बीजसंज्ञकाः ।।८७।।
तानेव सौमसौण्डालमौर्त्विकाद्यैश्च नामभिः ।
प्रवदन्ति विशेषेण लोहशास्त्रविशारदाः ।।८८।।
लोहेषु सौमजातीनामुत्पत्तिक्रमनिर्णयः ।
लोहकल्पानुसारेण किञ्चिदत्र निरूप्यते ।।८९।।

भूगर्भ की खनिज रेखाएं तीन सहस्र से अधिक कहीं हैं, उनमें क्रम से एक हजार तीन सौ रेखाएं उत्तम हैं उनमें रेखानुसार खनिज कहे हैं उनमें सातवीं रेखा में स्थित खनिज २७ हैं उनमें तीन खनिज गर्भकोशों में उत्पन्न होने वाले पांच शक्तियों से पूर्ण जो लोह हैं उन्हें ही सौम सौण्डाल-मौर्त्विक आदि नामों से लोहशास्त्रज्ञ विशेषतः कहते हैं। लोहों में सौम आदि के उत्पत्तिक्रम का निर्णय 'लोहकल्प' शास्त्र के अनुसार कुछ यहां निरूपित किया जाता है ।। ८५—८९ ।।

उक्तं हि लोहरहस्ये—लोहरहस्य में कहा है—

कूर्मकश्यपमार्तण्डभूतभानां तथैव हि ।
अर्केन्दुवाडवानां च शक्तयस्स्वांशतः क्रमात् ।। ९० ।।
त्र्यष्टैकादशपञ्चद्विषट्चतुर्नवसंख्यकाः ।
खनिजान्तर्गर्भकेन्द्रशक्त्याकर्षणतस्स्वयम् ।। ९१ ।।
शनैश्शनैस्समागत्य गर्भकोशं विशन्ति हि ।
तत्र वारुणीशेषगजशक्त्यूष्मभिः क्रमात् ।। ९२ ।।

मिलित्वा लोहतां यान्ति शक्तिसम्मेलनं यथा ।
बीजलोहेष्विमे सौमलोहा इति विनिर्णिताः ॥ ६३ ॥
एतेषां नामशक्त्यादिनिर्णयस्तु यथामति ।
यथोक्तमत्रिणा साक्षात् तथैवात्र निरूप्यते ॥ ६४ ॥

कूर्म—पृथिवी गर्भ की आकर्षण शक्ति,* कश्यप–पृथिवी की बाहिरी कक्षाशक्ति, मार्तण्ड–सूर्य-किरण प्रवाह, भूत – तन्मात्राएं विशेषतः वातप्रवाह, भ—ग्रहशक्ति, अर्क—सूर्य की आन्तरिक आकर्षण शक्ति, इन्दु—चन्द्रमा, वाडवा–कालगति या सूर्य और पृथिवी आदि के मध्य पृथिवी आदि को वहन करनेवाली शक्ति । ये सब अपने अपने अंश से ३, ८, ११, ५, २, ६, ४, ८ शक्तियां खनिज अन्तर्गत गर्भकेन्द्र शक्ति के आकर्षण से स्वयं धीरे धीरे मिलकर गर्भकोश को प्रविष्ट हो जाती हैं । वहां वारुणी-पृथिवी की आर्द्र शक्ति या स्निग्धशक्ति, शेष—मेरुदण्डशक्ति—निजी पिण्डीकरणशक्ति, गज—क्षितिज-प्रवाह शक्तियों की ऊष्माओं से मिलकर लोहे के रूप को प्राप्त होते हैं जैसे ही शक्ति का सम्मेलन हो जावे । बीज लोहों में ये सौम लोहे निर्णय किए गए हैं । इनके नाम शक्ति आदि निर्णय यथामति अत्रि ने कहे हैं वैसे ही यहां निरूपित किए जाते हैं ॥ ६० – ६४ ॥

उक्तं हि नामार्थकल्पे—कहा ही है नामार्थकल्प ग्रन्थ में –

सौमस्सौम्यकसुन्दास्यसोमः पञ्चाननस्तथा ।
उष्णारिरुष्मपशृङ्गसौण्डीरो लाघवोर्मिपः ॥ ६५ ॥
प्राणनश्शङ्खकपिल इति नामान्यथाक्रमम् ।
सौमाख्यबीजलोहस्य वर्णितानि विशेषतः ॥ ६६ ॥
तथैव बीजलोहानां नामसंक्लृप्तशक्तयः ।
एकैकनामतस्सम्यङ् निर्णितास्स्युर्यथाविधि ॥ ६७ ॥
सौमाख्यनामसङ्क्लृप्तशक्तीर्यास्सम्प्रकीर्तिताः ।
ता एव सन्निरूप्यन्ते संग्रहादत्र साम्प्रतम् ॥ ६८ ॥

सौम, सोम्यक, सुन्दास्य, सोम, पञ्चानन, उष्णारि, ऊष्मप, शृङ्ग, सौण्डीर, लाघव, ऊर्मिप, प्राणन, शङ्ख, कपिल ये नाम यथाक्रम सोम नामक बीज लोहे के कहे हैं वैसे ही बीज लोहे की नाम द्वारा निष्पन्न शक्तियां जो कही हैं वे यहां अब निश्चित की जाती हैं ॥ ६५–९८ ॥

उक्तं हि नामार्थकल्पे—कहा है नामार्थकल्प ग्रन्थ में—

सू० सौमस्स औमविसर्ग+ (नुस्वार ?) शक्तिभ्यः ॥ इति

बोधानन्दकारिका—

विमानरचनार्थाय ये लोहाः कृतकाः स्मृताः ।
तेषां सौमादयो बीजलोहा इति विनिर्णिताः ॥ ६९ ॥
स औमविसर्ग† (नुस्वार ?) शक्तिभागसम्मेलनाद्यतः ।
लोहत्वमभजत् तस्मान्नाम सौम इतीरितम् ॥ १०० ॥

---

* "कूर्मो बिभर्ति धरणीं खलु चात्मपृष्ठे" (शुक० ४४।११)

† अनुस्वार, हस्तलेख में, प्रमादतः पाठ है (देखो श्लोक ११२)

एतल्लोहस्य शक्तीनां वर्णसङ्केतनिर्णयः ।
परिभाषाचन्द्रिकोक्तरीत्या किञ्चिन्निरूप्यते ॥ १०१ ॥

विमानरचना के लिये जो लोहे कृतक कहे हैं उनके बीज लोहे सौम आदि निश्चित किए गए हैं। "स, औं, म," अक्षरों की शक्ति भागों के मेल से इनके सहयोग के कारण लोहरूप को प्राप्त हुआ अतः सौम इस नाम से कहा गया है। यह लोहे की वर्ण शक्तियों का संकेत निर्णय है, परिभाषाचन्द्रिका की कही रीति से किञ्चित् निरूपण किया जाता है ॥ ९९-१०१ ॥

उक्तं हि परिभाषाचन्द्रिकायाम्—कहा ही है परिभाषाचन्द्रिका में—

सू० साङ्केतकाश्चतुर्वर्गीयाः ॥

विश्वम्भरकारिका—इस पर विश्वम्भरकारिका है—

वारुणीसूर्यकिरणादिति ध्रुवप्रभेदतः ।
सर्वेषां बीजलोहानां शक्तिवर्गाश्चतुर्विधाः ॥ १०२ ॥
एकैकवर्गसङ्क्लृप्ताश्शक्तयस्तेषु शास्त्रतः ।
लक्षैकं च सहस्राणां सप्तषष्टितमास्तथा ॥ १०३ ॥
शतानां सप्ततदुपर्यष्टषष्टितमः क्रमात् ।
इति वाल्मीकिगणितप्रमाणात् सन्निरूपिताः ॥ १०४ ॥
तेषु वारुणीवर्गस्य कूर्मकश्यपशक्तिषु ।
सप्तषष्टितमा शक्तिरुषाख्या कूर्मगर्भजा ॥ १०५ ॥
पञ्चाशीतितमा शक्तिः कालाख्या काश्यपी तथा ।
साङ्केतकादिमौ शक्ती सकारे सन्निरूपिते ॥ १०६ ॥

वारुणी—वरुणशक्ति और सूर्यकिरण से इस प्रकार स्थिर भेद से सब बीज लोहों के शक्तिवर्ग चार प्रकार के हैं। एक एक वर्ग से विभक्त शास्त्र से उन में शक्तियां १ लाख ६७ सहस्र ७ सौ ६८ हैं यह वाल्मीकि गणित से निरूपित की गई हैं। उनमें वारुणी वर्ग की कूर्मकश्यप शक्तियों में ६७वीं शक्ति उषा नामक कूर्मगर्भ से उत्पन्न होने वाली है, ८५वीं काश्यपी कालनाम की शक्ति तथा संकेतवाली आदिम दो शक्तियां 'स' अक्षर में कही हैं ॥ १०२-१०६ ॥

अर्कांशुवर्गे मार्तण्डभूतसञ्जातशक्तिषु ।
एकसप्ततिमा शक्तिर्मार्तण्डस्याम्बरा तथा ॥ १०७ ॥
रुचिकाख्या भूतशक्तिष्षष्ट्युत्तरशतात्मिका ।
उभौ साङ्केतरूपेण औकारे सम्प्रदर्शिते ॥ १०८ ॥
तथैवादितिगर्भस्थसूर्यनक्षत्रशक्तिषु ।
सुन्दाख्या नवमी शक्तिरादित्यस्य तथैव हि ॥ १०९ ॥
ऋक्षस्य शक्तिर्भौमाख्या एकोत्तरशतात्मिका ।
एते साङ्केतकादत्र मकारेणाभिवर्णिते ॥ ११० ॥

तथैव ध्रुववर्गस्थसोमवाडवशक्तिषु ।
इन्दुशक्तिस्सौमकाख्या नवोत्तरशतात्मिका ॥ १११ ॥

सूर्यकिरणवर्ग में मार्तण्ड और भूतों से उत्पन्न शक्तियों में ७१वीं शक्ति मार्तण्ड की अम्बरा है, रुचिका नामक भूतशक्ति १६०वीं है, ये दोनों शक्तियां सङ्केतरूप से 'औ' अक्षर में दिखलाई हैं, तथा अदितिगर्भ में स्थित सूर्यनक्षत्रों में सुन्दाख्य नौवीं शक्ति आदित्य की वैसी ही नक्षत्र की शक्ति भौमाख्य १०१ कहीं, ये दोनों शक्तियां यहां 'म' अक्षर से वर्णित करी हैं। वैसे ही ध्रुव वर्ग में स्थित सोमवाडव शक्तियों में इन्दु-चन्द्रमा की शक्ति सौमनाम १०९वीं कही है॥ १०७—१११॥

तथैव वाडवाशक्तिर्मेलनाख्या चतुर्दशी ।
इमौ साङ्केतकादत्र विसर्गे सन्निरूपिते ॥ ११२ ॥
एवं चत्वारि वर्गस्थशक्तयस्ताः परस्परम् ।
खनिजानां गर्भकोशे मिलित्वा कालपाकतः ॥ ११३ ॥
सौमजातीयलोहत्वं प्राप्नोत्येव† न संशयः ।
आहत्याष्टौ शक्तयोस्मिन् विचारे सम्प्रदृश्यन्ते ॥ ११४ ॥
एवमुक्त्वा सौमलोहशक्तिसङ्केतनिर्णयम् (यः ?)
अथ सौण्डाललोहस्य शक्तिसङ्केतमुच्यते ॥ ११५ ॥
कूर्मस्थधनदा नाम शक्तिरेकादशात्मिका ।
क्रमात् साङ्केतकादत्र सकारेणाभिवर्णिता ॥ ११६ ॥

वसे ही वाडवाशक्तिमेलन नामक १४वीं है, ये दोनों शक्तियां सङ्केत से यहां विसर्ग ':' से निरूपित की हैं। इस प्रकार चार वर्गों में स्थित शक्तियां परस्पर खनिजों गर्भकोशों में मिलकर कालपाक से सौम जाति के लोहपन को प्राप्त हो जाती हैं इसमें संशय नहीं। आठों शक्तियां मिलकर इस विचार में दिखलाई पड़ती हैं। इस प्रकार सौम लोहशक्तियों के सङ्केत का निर्णय कहकर अब सौण्डाल लोह की शक्तियों का सङ्केत निर्णय कहा जाता है। कूर्मस्थ धनदा—कुबेरों की शक्ति ११वीं है (११ रूपों में है) सङ्केत से यहां 'स' अक्षर से कही है॥ ११२—११६॥

ऋङ्नामा काश्यपी शक्तिर्दशोत्तरशतात्मिका ।
पूर्ववत्सङ्केतिता स्यादौकारेण यथाक्रमम् ॥ ११७ ॥
शक्तिर्द्रवमुखी नाम मार्तण्डस्य शतात्मिका ।
आण्वी नाम तथा भूतशक्तिस्सप्तशतात्मिका ॥ ११८ ॥
द्वाविमौ साङ्केतिते चात्रानुस्वारेण शाश्वतः ।
सूर्यस्यैकोनपञ्चाशच्छक्तिः कान्ताभिधा तथा ॥ ११९ ॥
नक्षत्राणां पञ्चविंशच्छक्तिर्वर्चाभिधानका ।
उभौ साङ्केतिते चात्र डकारेण यथाक्रमम् ॥ १२० ॥

---

† प्राप्नोति—'एकवचनं' वचनव्यत्ययेन बहुवचने ।

तथैव ध्रुववर्गस्थसोमवाडवशक्तिषु ।
इन्दोश्चतुष्षष्ट्युत्तरत्रिशता शक्तिरुज्ज्वला ॥ १२१ ॥
साङ्केतिका डकारोपर्याकारेणात्र शाश्वतः ।
वाडवायाः पञ्चशतशक्तिः कालाभिधा तथा ॥ १२२ ॥

ऋक् नाम वाली काश्यपी शक्ति ११० प्रकार की पूर्व की भांति संकेतित कर दी है 'औ' अक्षर से यथाक्रम। मार्तण्ड की द्रवमुखी शक्ति १०० रूपों वाली, आग्वीनामक भूतशक्ति १०५ रूपोंवाली है इस प्रकार ये दोनों शक्तियां यहां अनुस्वार ' ं ' से सांकेतित की हैं, सूर्य को ४६ शक्तियां कान्ता नाम की है, नक्षत्रों की २५ शक्तियां वर्चानामवाली हैं दोनों सांकेतित हैं 'ड' अक्षर से यथाक्रम। वैसे ही ध्रुववर्ग में स्थित सोमवाडव शक्तियों में चन्द्रमा की ३६४ उज्ज्वल हैं, डकार के ऊपर 'आ' अक्षर सांकेतित किया है, वाडवा की ५०० शक्तियां कालनामक—॥ ११७—१२२ ॥

साङ्केतिता लकारेण वर्णसङ्केतनिर्णये ।
एवमुक्त्वा सौण्डालसंकेतशक्ती यथाविधि ॥ १२३ ॥
इदानीं मौर्त्विकलोहशक्तिसङ्केतमुच्यते ।
त्रिशतोत्तरसहस्रसंख्याका पार्थिवाभिधा ॥ १२४ ॥
कूर्मशक्तिर्मकारेण पुनस्साङ्केतिता तथा ।
एकोत्तरद्विसहस्रसंख्याका कालाभिधा ॥ १२५ ॥
सङ्केतिता काश्यपस्य शक्तिरोकारतस्तथा ।
षष्ट्युत्तरद्विशतसंख्याका लाघवाभिधा ॥ १२६ ॥

'ल' अक्षर से वर्णसंकेतनिर्णय में साङ्केतित करदी है। इस प्रकार सौण्डाल शक्तियों को यथाविधि कहकर अब मौर्त्विक लोहशक्तियों का संकेत कहा जाता है। १३०० शक्तियां पार्थिव नामवाली कूर्मशक्ति 'म' अक्षर से सङ्केतित की है पुनः २००१ कालनामक काश्यप की शक्ति सङ्केत की है 'औ' अक्षर' से, तथा २६० लाघवनाम की—॥ १२३—१२६ ॥

मार्तण्डशक्तिस्सङ्केताद्रवर्णेन निरूपिता ।
सप्तत्रिंशतिसंख्याका वर्चुलीनामिका तथा ॥ १२७ ॥
भूतशक्तिस्तकारेण सङ्केतात् सन्निरूपिता ।
त्रिषष्ट्युत्तरसहस्रसंख्याका रूक्ष्मकाभिधा ॥ १२८ ॥
नक्षत्रशक्तिस्सङ्केताद् वकारेणात्र वर्णिता ।
त्रयोदशोत्तरशतसंख्याका वरुणाभिधा ॥ १२९ ॥
अर्कशक्तिरिकारेण सङ्केतान्निर्णिता तथा ।
नवोत्तराष्टसहस्रसंख्याका रुजकाभिधा ॥ १३० ॥
निरूपितात्र सङ्केतादिन्द्रशक्तिः ककारतः ।
द्वादशोत्तरसहस्रसंख्याका पूष्णिकाभिधा ॥ १३१ ॥

मार्तण्डशक्ति संकेत से 'र' अक्षर से निरूपित की है, ३७ वर्चुली नामक भूतशक्ति 'त' अक्षर संकेत से निरूपित की है। १०६३ रुक्मका नामक नक्षत्र शक्ति संकेत से 'व' अक्षर से यहाँ वर्णित है। ११३ वरुण नामक अर्क शक्ति 'इ' अक्षर संकेत से रुजका नामक निरूपित की है, इन्दु–शन्द्रशक्ति 'क' अक्षर से १०१२ पूष्णिका नाम वाली कही है ॥ १२७-१३१ ॥

संकेतितानुसारेण तथैवात्र यथाक्रमम् ।
एवं त्रिलोहशक्तीनां वर्णसंकेतनिर्णयम् ॥ १३२ ॥
निरूप्य तल्लोहशुद्धिक्रममत्र ततः परम् ।
प्रसङ्गानुप्रसङ्गत्या किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥ १३३ ॥ इति

संकेतों के अनुसार वैसे ही यहां यथाक्रम इस प्रकार तीन लोहों की शक्तियों के अक्षर संकेत-निर्णय निरूपित करके उससे आगे उन लोहों की शुद्धि यहां प्रसङ्गानुप्रसङ्ग से कुछ निरूपित की जाती है ॥ १३२-१३३ ॥

तच्छुद्धिर्यथाशोधनाधिकारे ॥ अ० १ सू० १४ ॥

बो० वृ०.

तल्लोहशुद्धिं निर्णेतुं सूत्रोयं परिकीर्तितः ।
पदानि त्रीणि सूत्रेस्मिन् कथितानि यथाक्रमम् ॥ १३४ ॥
तेष्वादिमपदाल्लोहत्रयशुद्धिर्निरूपिता ।
तच्छोदनप्रकारस्तु द्वितीयपदतः स्फुटम् ॥ १३५ ॥
तत्प्रबोधकशास्त्रं तु तृतीयेनात्र सूचितम् ।
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ॥ १३६ ॥
संस्कारदर्पणविधिमनुसृत्य यथामति ।
सौमसौण्डालमौत्विकलोहानां शुद्धिनिर्णयः ॥ १३७ ॥

उन लोहों की शुद्धि के निर्णय को यह सूत्र कहा गया है, इस सूत्र में तीन पद यथाक्रम कहे हैं उनमें आदिम पद से तीन लोहों की शुद्धि निरूपित की है उनका शोधन प्रकार तो दूसरे पद से स्फुट किया है उनका प्रबोधक शास्त्र तो तीसरे पद से यहां सूचित किया है। पदों का अर्थ इस प्रकार कहा है विशेष अर्थ अब कहा जाता है। संस्कार दर्पणविधि का अनुसरण करके यथामति सौम सौण्डाल मौत्विक लोहों की शुद्धि का निर्णय करते हैं ॥ १३४-१३७ ॥

पृथक् पृथग्विधानेन संग्रहात् सन्निरूप्यते ।
तत्रादौ सौमलोहस्य शोधनाक्रममुच्यते ॥ १३८ ॥
सौमलोहं समाहृत्य पाचके सम्प्रपूरयेत् ।
सप्तविंशतिकक्ष्योष्णवेगात् सम्पाचयेद् द्रवात् ॥ १३९ ॥
जम्बीरलिकुचव्याघ्रचिञ्चाजम्बूरसैस्तथा ।
विस्तृतास्येन नालयन्त्रे पाचयेद् दिवसावधि ॥ १४० ॥

तत् संगृह्याथ विधिवत् क्षालयित्वा ततः परम् ।
पञ्चतैलैश्चतुर्द्रावैः काषायैस्सप्तभिस्तथा ।। १४१ ।।
पृथक् पृथग् गालयित्वा लोहं पश्चात् समाहरेत् ।

जो कि पृथक् पृथक् विधान से संक्षेप से निरूपित किया जाता है। उनमें प्रथम सौम लोहे के शोधन क्रम को कहा जाता है, सौम लोहे को लेकर पाचक यन्त्र में भर दे २७ दर्जे के उष्ण वेग से पकावे द्रव से जम्बीरी निम्बू, लिकुचखटलब्रढल, व्याघ्र—करञ्जवा या लाल एरण्ड, चिञ्चा—इमली, जम्बू—जामुन के रसों से विस्तृत मुख वाले नालयन्त्र से दिन भर पकावे उसे विधिवत् लेकर धोकर पांच तैलों में चार द्राव—टङ्कण द्राव आदि से सात काढों से पृथक् पृथक् लोहे को गलाकर लेले ।।१३८-१४१।।

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पण प्रकरण में—

गुञ्जाकञ्जलचञ्चुकुञ्जरकरञ्जादितैलैस्तथा ।
प्राणक्षारविरञ्चिकञ्चुकिखुरद्रावैश्च शुद्धैः क्रमात् ।।
हिंगूपर्पटिघोण्टिकावरजटामांसी विदाराङ्गिणी ।
मत्स्याक्षीरवररक्तकण्टकुवररीकाषायतश्शोधयेत् ।।

गुञ्जा—घूंघची, कञ्जल ?—कञ्जर—आंवला, चञ्चु—एरण्ड, कुञ्जर—पीपल या कण्ठकुचई ?, करञ्ज—करञ्जवा आदि के तैलों से प्राणक्षार-नौसादर†, विरञ्चि ?—सज्जी क्षार ? कञ्चुकि-यव—यवक्षार, खुरक्षारसे शुद्ध हुए। हींग, पर्पटि—पर्पटी-पद्मावती सुगन्धद्रव्य, घोण्टिका—सुपारीफल, जटामांसी—बालछड़, विदाराङ्गिणी ?—विदारण—कनिगर गन्ध वृक्ष या विदारीकन्द ?, मत्स्याक्षी—मछेछी, रक्तकण्ठकुवरी—लाल रंग का थूहर के कांटों से शोधे ।।

एवमुक्त्वा सौमलोहशुद्धिक्रममतः परम् ।
सौण्डालाख्यलोहस्य शोधनक्रममुच्यते ।। १४२ ।।
पाचनादिक्रियास्सर्वनालयन्त्रान्तमादरात् ।
सौण्डालस्य यथाशास्त्रं कर्तव्यं सौमलोहवत् ।। १४३ ।।
द्रवकाषायतैलादिसंस्कारो भिद्यते क्रमात् ।
षड्द्रावैस्सप्ततैलेश्च काषायैः पञ्चभिस्तथा ।। १४४ ।।
प्रत्येकं गालयेत् तैः पश्चाल्लोहं समाहरेत् ।

इस प्रकार सौम लोह के शुद्धिक्रम को कह कर उससे आगे सौण्डाल लोहे का शोधन कहा जाता है। सौण्डाल की पाचन आदि क्रिया सब नालयन्त्र तक की ठीक सौम लोहे की भांति यथाशास्त्र कहनी चाहिये। द्रव काषाय तैल आदि संस्कार ही भिन्न होता है, ६ द्रावों ७ तैलों ५ कषायों से प्रत्येक को गलावे फिर लोहे को ले ले ।। १४२-१४४ ।।

उक्तं हि संस्कारदर्पणे—कहा ही है संस्कारदर्पण में—

इंगालगौरीसुवराटिकास्तथा मृद्वीरताप्योल्वणशुद्धतैलैः ।
तथैव चाङ्कोलसुमुष्टिशङ्खभल्लातकाकोलविरञ्चकद्रवैः ।।

---

† नृसार या नरसार प्राण हैं, प्राणनामक क्षार या प्राणों का क्षार है मूत्र, अतः प्राण क्षार मूत्र क्षार—"नृसारः, नरसारः, (नोसादर) लोहद्रावकस्तथा" (रसलरङ्गिणी)।

कुलित्थनिष्पावकसर्षपाढकगोधूमकाषायकाञ्जिकैश्च ।
संशोधयेत् सौण्डालिकलोहदोषं शास्त्रोक्तमार्गेण शनैश्शनैः क्रमात् ।। इति

इङ्गाल—इंगुदी, गौरो—मजीठ, सुवराटिका—वराटिका—कौड़ी, मृद्वी—मुनक्का से पूर्ण तैलों से तथा अङ्कोल—अङ्कोलवृक्ष—ढेरा, मुष्टि घण्टा—पाटलावृक्ष, शङ्ख, भिलावा, काकोल—काकोली, विरञ्चक ? द्रवों से कुलित्थ—लालकुलथी, निष्पावक—श्वेतान्नफली, सरसों, अरहर, गेहूँ के कषायों और काञ्जियों से शास्त्रोक्त मार्ग से सौण्डाल लोहे के दोषों को धीरे धीरे क्रम से शोधे ।।

उक्त्वा सौण्डालसंशुद्धिरेवं शास्त्रानुसारतः ।
अथेथानीं मौर्त्विकाख्यलोहशुद्धिक्रमोच्यते ।। १४५ ।।
तैलद्रावककाषायत्रयैस्सम्यक् सुशोधयेत् ।
सौण्डालवत् पाचनादिक्रियाश्चास्यापि वर्णिताः ।।१४६।।

सौण्डालशुद्धि इस प्रकार शास्त्रानुसार कह कर अब मौर्त्विक लोहे की शुद्धि का क्रम तैलद्रावक काषायों से सम्यक् सौण्डाल की भांति शोधन पाचन आदि क्रिया भी उसकी कही हैं ।। १४५-१४६ ।।

तदुक्तं संस्कारदर्पणे—वह कहा है संस्कारदर्पण में—

शिवारितैलात् कुडुपस्य द्रावकाद् विषम्भरीचर्मकाषायतस्तथा संशोधये-
न्मौर्त्विकलोहजं मलं शास्त्रोक्तमार्गक्रमतो विशेषतः ।। इत्यादि ।।
एवं संशोध्य मौर्त्विकलोहं पश्चात् समाहरेत् ।
संस्कारं बीजलोहानामेवमुक्त्वा यथाविधि ।। १४७ ।।
अथेदानीमूष्मपानामुत्पत्तिक्रममुच्यते ।।

शिवारि तैल ? से, कुडुप ? के द्रावक से, विषम्भरी चर्म—विषम्भरी छाल ? के काषाय से संशोधन करे मौर्त्विक लोहज मल को शास्त्रोक्त मार्गक्रम से शोध कर लें । बीज लोहों का संस्कार इस प्रकार यथाविधि कहकर अब ऊष्मप लोहों का उत्पत्तिक्रम कहा जाता है ।। १४७ ।।

फोटो कापी (पूना) संख्या १ वस्तुत: कापी संख्या ३—

अथोष्मपोत्पत्तिनिर्णयः—अब ऊष्मप लोहों की उत्पत्ति का निर्णय देते हैं—

ऊष्मपास्त्रिलोहमयाः ॥ अ० २ । सू० १ ॥

बो० वृ०

ऊष्मपा इति ये प्रोक्ताः पूर्वं*यानक्रियाविधौ ।
तेषां स्वरूपं निर्णेतुं सूत्रोयं परिकीर्तितः ॥ १ ॥
पदद्वयं भवेदस्मिन्नूष्मलोहप्रबोधकम् ।
तत्रादिमपदाद् यानलोहास्संसूचिताः क्रमात् ॥ २ ॥
द्वितीयपदतस्तेषां स्वरूपाद्यास्तथैव हि ।
ऊष्मनामोष्णमित्याहुरादित्यकिरणोद्भवम् ॥ ३ ॥
ये पिबन्ति स्वभावेन ते प्रोक्ता ऊष्मपा इति ।
सौमसौण्डालमौर्त्विकास्त्रिलोहेत्यत्र‡ वर्णिताः ॥ ४ ॥
तेषां लोहत्रयाणां तु समाहारोत्र वर्णितः ।
तल्लोहयोगजन्यत्वाद् विकारार्थे मयट् स्मृतः ॥ ५ ॥

ऊष्मप जो पूर्व विमान यान क्रियाविधि में कहे हैं उनका स्वरूप निर्णय करने को यह सूत्र कहा है। इसमें ऊष्म लोहे के प्रबोधक दो पद हैं, उनमें आदिम पद से विमान यान के लोहे सूचित किये हैं द्वितीय पद से उनके स्वरूप आदि कहे हैं। ऊष्म नाम सूर्य किरणों से उत्पन्न उष्ण—उष्णत्व को कहते हैं उसे जो स्वभाव से पीते हैं ऊष्मपा कहे गये हैं। सौम, सौण्डाल, मौर्त्विक ये तीन लोहे यहां कहे हैं। उन तीनों लोहों का यहां समाहार वर्णित किया है, उन लोहों से उत्पन्न होने वाला - बनने वाला होने से विकारार्थ में मयट् प्रत्यय कहा गया है ॥ १-५ ॥

यस्मात् त्रिलोहवर्गीयलोहसंयोगतः क्रमात् ।
प्रभवन्त्यूष्मपास्तस्मात् तन्मया इति कीर्तिताः ॥ ६ ॥

---

* 'पूर्वं' शब्दः प्रथमाध्यायमपेक्ष्यात्र द्वितीयाध्यायं सूचयति ।

‡ लोहा इत्यत्र=लोहेत्यत्र एकादेश आर्षः ।

पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ।
सौमसौण्डालमौर्त्विकवर्गजाश्शास्त्रतः क्रमात् ।। ७ ।।
ऊष्मपाणां(ना ?) बीजलोहास्त्रयस्त्रिंशदितीरिताः ।

जिससे त्रिवर्गीय लोहों के संयोग से क्रमशः ऊष्मप तैयार होते हैं अतः तन्मय—त्रिलोहमय कहे गये हैं। पदों का अर्थ कह दिया विशेषार्थ कहा जाता है सौम, सौण्डाल, मौर्त्विक वर्ग में होने वाले लोहे शास्त्र से क्रमशः ऊष्म लोहों के बीज लोहे ३३ कहे हैं ।। ६-७ ।।

उक्तं हि लोहरत्नाकरे—कहा ही है लोहरत्नाकर पुस्तक में—

ऊष्मपानां बीजलोहास्त्रयस्त्रिंशदितीरिताः ।। ८ ।।
सौमसौण्डालमौर्त्विकवर्गभेदाद् यथाक्रमम् ।
एकैकवर्गसंक्लृप्तलोहा एकादश क्रमात् ।। ९ ।।
तेषां नामानि नामार्थकल्पोक्तानि यथाक्रमम् ।
संगृह्यात्र प्रवक्ष्यामि संग्रहेण यथामति ।। १० ।।

ऊष्मप लोहों के बीज लोहे ३३ कहे हैं, सौम; सौण्डाल, मौर्त्विक वर्ग भेद से यथाक्रम एक एक वर्ग से सम्बन्धित लोहे क्रम से ११ हैं। उनके नाम नामार्थकल्प ग्रन्थ में कहे यथाक्रम (वहां से) लेकर संक्षेप से यहां यथामति कहूँगा ।। ८-१० ।।

सौमस्सौम्यकसुन्दास्यस्सोमः पञ्चाननोष्मपः ।
शक्तिगर्भो जाङ्गलिकः प्राणनश्शङ्खलाघवः ।। ११ ।।
इत्येकादशनामानि शक्तिसंकेतवर्णकैः ।
सौमवर्गीयलोहानां प्रोक्तान्यत्र यथाक्रमम् ।। १२ ।।
विरञ्चिसौर्यपश्शंकुरुष्णसूरणशिञ्जिकाः ।
कङ्करञ्जिकसौण्डीरमुग्धघुण्डरकस्तथा ।। १३ ।।
इत्येकाशनामानि शास्त्रोक्तान्यत्र पूर्ववत् ।
सौण्डीरवर्गलोहानां सम्प्रोक्तानि यथाक्रमम् ।। १४ ।।
अणुको द्वयणुकः कङ्कस्त्र्यणुकश्श्वेताम्बरः ।
मृदम्बरो बालगर्भकुवर्चःकण्टकास्तथा ।। १५ ।।

सौम, सौम्यक, सुन्दास्य, सोम, पञ्चानन, ऊष्मप, शक्तिगर्भ, जाङ्गलिक, प्राणन, शङ्खलाघव ये ११ नाम शक्ति संकेत के रंगों से युक्त सौम वर्ग वाले लोहों के यथाक्रम कहे हैं। विरञ्चि, सौर्यप, शंकु, उष्ण, सूरण, शिञ्जिक, कंकु, रञ्जिक, सौण्डीर, मुग्ध, घुण्डारक, ये ११ नाम यथाक्रम सौण्डीर (सौण्डाल) वर्ग वाले लोहों के हैं। अणुक, द्वयणुक, कङ्क, त्रयणुक, श्वेताम्बर, मृदम्बर, बालगर्भ, कुवर्च, कण्टक ।। ११-१५ ।।

क्ष्विङ्कलध्विक इत्वेकादशनामानि पूर्ववत् ।
मौर्त्विकवर्गलोहानामुक्तान्यत्र यथाक्रमम् ।। १६ ।।

त्रयस्त्रिशद्बीजसोहा एवं वर्गत्रयास्स्मृताः ।
पूर्वोक्तलोहत्रयशक्तय एव स्वभावतः ॥ १७ ॥
तन्मयत्वात् त्रयत्रिंशद्बीजलोहेष्वपीरिताः ।
एवमुक्त्वा बीजलोहस्वरूपं शास्त्रतः स्फुटम् ॥ १८ ॥

अथ तेषां गालनार्थं मेलनक्रममुच्यते ।

क्ष्विङ्क, लघ्विक, ये ११ नाम पूर्ववत् मौर्त्विक वर्ग लोहों के यथाक्रम यहां कहे हैं। ३३ बीज लोहे के हैं इस प्रकार तीन वर्ग कहे गए। पूर्वोक्त तीन लोहों की शक्तियां स्वभावतः तन्मय—त्रिलोह-मय होने से ३३ बीज लोहों में भी कही गई है। इस प्रकार बीज लोहों का स्वरूप शास्त्र से स्फुट है, अब उनके गलाने के लिए मेल का क्रम कहते हैं ॥ १६—१८ ॥

मेलनात् ॥ अ० २ सू० २ ॥

बो० वृ०

पूर्वोक्तबीजलोहानां तत्तद्भागांशतः क्रमात् ॥१४॥
संयोजनक्रमं वक्तुं सूत्रोयं परिकीर्तितः ।
त्रिवर्गेष्वेकैकलीहं तत्तत्संख्यानुसारतः ॥२०॥
ऊष्मलोहोत्पत्तिविधौ मूषायां योजयेदिति ।
सङ्कीर्त्यतेत्र तत्तद्भागसंख्याविधिनिर्णयः ॥२१॥

पूर्वोक्त बीज लोहों के उस उस भागांश से क्रम से संयोग क्रम - मेलक्रम कहने को यह सूत्र कहा है। तीन वर्गों में से एक एक लोहे को उस उसकी संख्या के अनुसार ऊष्म लोहे की उत्पत्तिविधि के अर्थ उसे मूषा—कृत्रिमविशेष बोतल में डालदे इस विषय में उस उस भाग की संख्याविधि का निर्णय यहां कहा जाता है ॥ १९—२१ ।

तदुक्तं लोहतन्त्रे—वह कहा है लोहतन्त्र में—

अथेदानीमूष्मपानामुत्पत्तिक्रमनिर्णये ।
सर्वेषां बीजलोहानां शास्त्रोक्तविधानात् ॥२२॥
लोहानुसारतस्तेषां भागसंख्या विधीयते ।
ऊष्मपेषूष्मम्भराख्यलोहोत्पत्तिक्रियाविधौ ॥२३॥
सौमसौण्डालमौर्त्विकलोहवर्गत्रये क्रमात् ।
एकत्रिसप्तलोहांशान् त्रयंशटङ्कणमिश्रितान् ॥२४॥
मूषायां योजयेत् सम्यग् दशपञ्चाष्टसंख्यकान् ।
ऊष्मपेषूष्मोत्पत्तिविधाने शास्त्रतः क्रमात् ॥२५॥
चतुरेकाष्टलोहांशान् त्रिवर्गेषु सटङ्कणान् ।
त्रिपञ्चसप्तसंख्याकान् मूषायां मेलयेत् सुधीः ॥२६॥

तथैवोष्णहनोत्पत्तौ त्रिवर्गेषु यथाक्रमम् ।
द्विपञ्चनवमलोहभागांशान् षट्त्रिसप्तकन् ॥२७॥

अत्र ऊष्मप लोहों के उत्पत्तिक्रम निर्णय में सब बीज लोहों का शास्त्रोक्त विधान से लोहानुसार उनकी भागसंख्या विधान की जाती है। ऊष्मपों में ऊष्मम्भरनामक लोहे की उत्पत्ति-क्रियाविधि के निमित्त सौम सौण्डाल मौर्त्विक तीनों लोहवर्गों में क्रम से १, ३, ७ लोहांशों को ३ अंश-टङ्कण-सुहागा मिले हुओं को मूषा-मिट्टी आदि से बनी बोतल में युक्त करके १०, ५, ८ संख्यावालों को ऊष्मपों के उत्पत्ति विधान में शास्त्र से क्रम से ४, १, ८ लोहांशों को तीन वर्गों में सुहागा क्रम से ३, ५, ७ भाग संख्या वालों को मूषा-बोतल में बुद्धिमान् मिलादे इसी प्रकार उष्णघातक की उत्पत्ति में तीन वर्गों में यथाक्रम २, ५, ६ लोहांशों को तथा ६, ३, ७ भागों में- ॥ २२—२७ ॥

टङ्कणेन सुसंयोज्य मूषायां मेलयेत् ततः ।
राजाख्योष्मपलोहोत्पत्त्यर्थं शास्त्रविधानतः ॥ २८ ॥
त्र्यष्टद्विलोहभागांशान् टङ्कणेन समन्वितान् ।
मूषायां पूरयेत् पश्चात् त्रिवर्गेष्वपि पूर्ववत् ॥ २९ ॥
तथैवाम्लतृड्डुत्पत्तावूष्मपेषु यथाक्रमम् ।
नवसप्तैकलोहांशान् त्रिवर्गेषु सटङ्कणान् ॥ ३० ॥
दशसप्ताष्टसंख्याकान् मूषायां सन्नियोजयेत् ।
तथैव वीरहाख्योष्मपलोहोत्पत्तिनिर्णये ॥ ३१ ॥
षट्चतुःपञ्चलोहांशान् त्रिवर्गेषु सटङ्कणान् ।
तारवाणार्कसंख्याकान् मूषायां सम्प्रपूरयेत् ॥ ३२ ॥

–टङ्कण-सुहागे से युक्त कर मूषा-बनी बोतल में मिलादे, राजाख्यऊष्मप लोहे की उत्पत्ति के अर्थ शास्त्रविधान से सुहागे सहित ३, ८, २ लोहे भागांशो को मूषा में भर दे पश्चात् तीनों वर्गों में भी पूर्व की भांति तथैव अम्लतृट् ? –घोलद्राव को पी लेने वाली शक्ति की उत्पत्ति में ऊष्मप लोहों में यथा-क्रम ६, ७, १ लोहांशों को तीन वर्गों में तथा सुहागा १०, ७, ८ संख्या में मूषा में डाल दे, तथा वीरहा-नामक ऊष्म लोहे की उत्पत्ति के निर्णय में ६, ४, ५ लोहांशों को तीन वर्गों में ५, ५, १२ भाग संख्या सुहागे को मूषा में भर दे ॥ २८-३२ ॥

पञ्चघ्नाख्योष्मपोत्पत्तौ त्रिवर्गेष्वपि पूर्ववत् ।
अष्टषट्चत्वारिलोहभागांशान् टङ्कणान्वितान् ॥ ३३ ॥
विंशाष्टादशषड्विंशन्मूषायां सन्नियोजयेत् ।
ऊष्मपेष्वग्नितृट् सृष्ट्यां त्रिवर्गेषु यथाक्रमम् ॥ ३४ ॥
पञ्चद्विदशलोहांशान् त्रिंशद्विंशद्दशान्वितान् ।
मूषायां मेलयत् सम्यक् टङ्कणेन समाकुलान् ॥ ३५ ॥
एवं भारहनोत्पत्तौ चोष्मपेषु यथाक्रमम् ।
सप्तैकादशषड्लोहभागांशान् टङ्कणान्वितान् ॥३६॥

तारभान्वब्धिसंख्याकान् त्रिवर्गेषु यथाविधि ।
मूषायां मेलयेत् सम्यग्गालनार्थमतः परम् ॥३७॥
तथा शीतहनोत्पत्तावूष्मपेषु यथाक्रमम् ।
दशनवत्रिलोहांशान् त्रिवर्गेष्वपि पूर्ववत् ॥३८॥
मूषायां मेलयेत् सम्यग् द्वाविंशाष्टदश क्रमात् ।
एकादशदशैकादशलोहांशान् यथाक्रमम् ॥३९॥
गरलहनोष्मपोत्पत्तौ त्रिवर्गेष्वपि पूर्ववत् ।
विंशत्त्रिंशाष्टसंख्याकान् मूषायां मेलयेत् सुधीः ॥४०॥

पञ्चघ्न नामक ऊष्मप की उत्पत्ति में तीन वर्गों में पूर्व की भांति ८, ६, ४ लोहभागांशों को २०, १८, ६ भाग सुहागे सहित मूषा में डाल दे। ऊष्मप लोहों में अग्नितृट् सृष्टि-उत्पत्ति में तीन वर्गों में यथाक्रम ५, २, १० लोहांशों को ३०, २०, १० भाग सुहागा से युक्त हुओं को मूषा में मिला दे। इसी प्रकार भारहन की उत्पत्ति में ऊष्मप लोहों में यथाक्रम ७, ११, ६ लोहे के भागांशों को ५, १२, ७ संख्या-वाले सुहागे के भागों को तीन वर्गों में यथाविधि मूषा में गलाने के अर्थ मिलावे, तथा शीतहन लोहे की उत्पत्ति में ऊष्मप लोहों में यथाक्रम १०, ९, ३ लोहांगों को तीन वर्गों में पूर्व की भांति मूषा में मिलावें २२, ८, १० क्रम से (टङ्कण–सुहागा) मिलावे। ११, १०, ११ लोहांशों को यथाक्रम गरलघ्न ऊष्मप की उत्पत्ति में तीनों वर्गों में पूर्व की भांति २०, ३०, ८ संख्यावालों को मूषा में बुद्धिमान् मिलावे ॥३३--४०॥

एवमाम्लहनोत्पत्त्यामूष्मपेषु यथाविध ।
एकादशाष्टचत्वारिलोहभागान् सटङ्कणान् ॥४१॥
त्रिवर्गेष्वपि विंशाष्टादशषट्त्रिंशकान्ततः ।
मूषायां पूरयेत् सम्यगिति शास्त्रविनिर्णयः ॥४२॥
तथा विषम्भरोत्पत्त्यामूष्मपेषु तथैव हि ।
पञ्चसप्ताष्टलोहांशान् त्रिवर्गेषु सटङ्कणान् ॥४३॥
एकोनविंशाष्टदशमूषायां मेलयेत् क्रमात् ।
विशल्यकृल्लोहसृष्ट्यामूष्मपेषु तथैव हि ॥४४॥
मूषयां पूरयेत् सम्यग् विंशद्द्वादशषट्क्रमात् ॥४५॥
द्विजमित्रोत्पत्तिविधावूष्मपेषु तथैव हि ।
अष्टत्रिनवलोहांशान् त्रिवर्गेषु यथाक्रमम् ॥४६॥
ताराष्टदशसंख्याकान् मूषायां मेलयेत् सुधीः ।
तथैव वातमित्राख्योष्मपलोहक्रियाविधौ ॥४७॥
त्रिवर्गेष्वष्टषट्पञ्चलोहांशान् टङ्कणान्वितान् ।
मूषायां मेलयेत् सम्यग् द्वाविंशाष्टदशक्रमात् ॥४८॥

एवमुक्त्वा बीजलोहमेलनादीन्यथाक्रमम् ।
अथेदानीं गालनार्थं मूषालक्षणमुच्यते ॥४९॥

इस प्रकार आम्लहन लोह की उत्पत्ति में ऊष्मप लोहों में यथाविधि ११, ८, ४, लोहभागों की तीन वर्गों में से सुहागा २०, १२, ३६ भागों को मूषा–बोतल में भली प्रकार भर दे यहां शास्त्रनिर्णय है, तथा विषम्भर की उत्पत्ति में ५, ७, ८ ऊष्म लोहांशों को तीन वर्गों में सुहागा १९, ८, १० भाग मिला दे। विशल्यकृत् लोह की सृष्टि–उत्पत्ति में ऊष्मप लोहों में ३, ५, ११ लोह भाग और २०, १२, ६ भाग सुहागासहित मूषा में भरे। द्विजमित्र की उत्पत्तिविधि में ऊष्मप लोहों में ८, ३, ९ लोहांशों को तीन वर्गों में से यथाक्रम ५, ८, १० (सुहागा) मूषा में बुद्धिमान् मिलावे। तथा वातमित्र नामक ऊष्मप लोहे की उत्पत्ति क्रियाविधिमें तीन वर्गों में ८, ६, ५ लोहांशों को २२, ८, १० भाग सुहागा मूषा–बोतल में मिलावे। इस प्रकार बीज लोहों के मेल यथाक्रम कहकर अब गलाने के लिये मूषा–बोतल का लक्षण करते हैं ॥४१—४९॥

अथ मूषाधिकरणम् ।

अब मूषा का अधिकरण प्रस्तुत करते हैं।

पञ्चमाद् द्वितीये ॥ अ० २ सू० ३ ॥

बो० वृ०

मूषास्वरूपं निर्णेतुं सूत्रोयं परिकीर्तितः ।
पदद्वयं भवेदस्मिन् मूषानिर्णयबोधकम् ॥५०॥
तत्रादिमपदान्मूषा संख्यातस्सन्निरूपिता ।
तथैव तद्वर्गसंख्या द्वितीयपदतस्स्फुटम् ॥५१॥
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ।
षोडशोष्मलोहानामुत्पत्तौ गालनक्रमः ॥५२॥
पूर्वोक्तबीजलोहानामेतस्यामेव वर्णितम् ।

मूषास्वरूप के निर्णय करने को यह सूत्र कहा है, इसमें दो पद मूषानिर्णय के बोधक हैं। उनमें आदि पद से मूषा को संख्या से निरूपित यिया है, तथा द्वितीय पद से उसकी वर्गसंख्या को स्पष्ट किया है। पदों का अर्थ इस प्रकार कह दिया अब विशेष अर्थ कहा जाता है। सोलह ऊष्मप लोहों को उत्पत्ति में गलाने का क्रम पूर्वोक्त बीज लोहों का इसी में कहा गया है ॥ ५०—५३ ॥

तदुक्तं निर्णयाधिकारे—वह कहा है निर्णय अधिकार में—

उत्तमाधममध्यापभ्रंशानां गालनविधौ ।
मूषास्सप्तोत्तरचतुश्शतभेदा इतीरिताः ॥५४॥
तासां द्वादशवर्गास्स्युर्जातिनिर्णयतः क्रमात् ।
लोहेषु ये बीजलोहास्तेषां गालनकर्मणि ॥५५॥
द्वितीयवर्गोक्तमूषा एव श्रेष्ठा इतीरिताः । इत्यादि

उत्तम मध्यम अधम 'लोहादि' अपभ्रंशों के गलाने की विधि में ४०७ भेद से मूषाएं कही गई हैं। उनके १२ वर्ग जाति निर्णय से हैं, लोहों में जो बीज लोहे हैं उनके गलाने कर्म में द्वितीय वर्ग में कही मूषाएं श्रेष्ठ हैं ऐसा कहा है ॥ ४५—५५ ॥

लल्लोपि—लल्ल ने भी कहा है—

कृतकापभ्रंशकाश्च स्थलजाः खनिजास्तथा ।
जलजा धातुजास्तद्वदोषधीवर्गजापि* च ॥५६॥
क्रिमिमांसक्षारबालाण्डजलोहा इति क्रमात् ।
उक्तं द्वादशधा शास्त्रे लोहतत्त्वविदां वरैः ॥५०॥
एतेषां गालने मूषाः प्रत्येकं वर्गतस्स्मृताः ।
तेषु द्वितीयवर्गस्थमूषाभेदा महर्षिभिः ॥५८॥
चत्वारिंशदिति प्रोक्ता मूषाकल्पा यथाक्रमम् ।
तासु या पञ्चमीत्युक्ता मूषान्तर्मुखनामिका ॥५९॥
गालने बीजलोहानां सुप्रशस्ता इतीरिताः ॥६०॥ इत्यादि

कृतक, अपभ्रंशक, स्थलज, खनिज, जलज, धातुज, ओषधिवर्गज, क्रिमिज, मांसज, क्षारज, बालज, अण्डज १२ लोहे क्रम से शास्त्र में लोहतत्त्व को जानने वालों ने कहे हैं। इनके गलाने के निमित्त मूषाएं प्रत्येक वर्ग से कही हैं, उनमें द्वितीयवर्गस्थ मूषा के भेद मूषाकल्प के यथाक्रम से महर्षियों ने ४० कहे हैं। उनमें जो पञ्चमी अन्तर्मुखनामवाली मूषा कही है वह बीज लोहों के गलाने में सुप्रशस्त कही है ॥ ५६—६८ ॥

तदुक्तं मूषाकल्पे—वह कहा है मूषाकल्प में—

पिष्टाष्टकं किट्टचतुष्टयं च लोहत्रयं लाङ्गुलिकत्रयं च ।
निर्यासषट्कं रुरुकद्वयं च क्षारत्रयमोषधिपञ्चकं तथा ॥६१॥
इङ्गालषट्कं सृणिकाण्डपञ्चकं शालीतुषाभस्मचतुष्टयं च ।
शिलाद्वयं नागमुखद्वयं च वरोलिकाटङ्कणपञ्चकं तथा ॥६२॥
बालद्वय पञ्चरसं तथैव गुञ्जाद्वयं फेनचतुष्टयं क्रमात् ।
संयोज्य चैतानथ पेषणीमुखे कुर्यात् सुसूक्ष्मं मृदुशुद्धपिष्टम् ॥ ६३ ॥
निर्यासमृत्पञ्चकधूसरं ततस्तस्मिन् समांशं सुनियोज्य पश्चात् ।
नियम्य तत्पाचकयन्त्रतः क्रमाच्छिवारितैलात्प्रहरत्रयं पचेत् ॥६४॥
संवीक्ष्य पाकं विधिवत् सुपक्वं मूषामुखे नालमुखात् प्रपूरयेत् ।
एवं कृतेन्तर्मुखनाममूषा दृढातिशुद्धा भवति स्वभावतः ॥६५॥ इत्यादि ।

पिष्ट—तिल की खल या उडद की दाल की पिट्ठी ? ८ भाग, किट्ट—लोहमल—मण्डूर ४ भाग, लोह ३ भाग, लाङ्गुलिक—लाङ्गूल—शालिचावल ? या लाङ्गूलिक—कौंच के बीज ३ भाग,

* वर्गजा अपि, बहुवचने सन्धिरेकादेश आर्षः ।

निर्यास—गोन्द ६ भाग, रुरुक ?-वनरोहेडा २ भाग, क्षार—यवक्षार-जौखार ३ भाग या सज्जीखार जौखार सुहागा मिश्रित ३ भाग, श्रोषधि ?—गेहूं ५ भाग, इङ्गाल—अङ्गारे बुझे कोयले या राख ६ भाग सुणिकाण्ड ? ५ भाग, शालीतुषाभस्म—शालीधान के तुषों की राख ४ भाग, शिला—दूब घास या गेरू ? २ भाग, नागमुख ?—नागकेसर का मूल ? २ भाग, बरोलिका ?-कुन्दपुष्प सुहागा ५ भाग, वाल—सुगन्धवाला २ भाग, रस ? सिन्दूर या शिङ्गरफ ५ भाग, गुञ्जा—घूंघची (सफेद घूंघची ?) २ भाग, समुद्रफेन ४ भाग। इन्हें मिलाकर पेषणीयन्त्र-चक्की के अन्दर डाल दे अत्यन्त सूक्ष्म कोमल शुद्ध पीस कर उसमें गोन्द और मृत्तिका ५ भाग, पीली मिट्टी बराबर अंश मिलाकर पाचक—पकानेवाले यन्त्र से शिवारितेल ? से तीन पहर पकावे, पाक को देखकर अच्छे पके हुए को मूषा बोतल में नालमुख से भर दे। ऐसा करने पर अन्तर्मुखनामक मूषा दृढ़ अति शुद्धस्वभावतः बन जाती है ॥ ६१—६५ ॥

एवमुक्त्वान्तर्मुखाख्यमूषोत्पत्तिविधिं क्रमात् ।
अथेदानीं व्यासटिकाविधिरत्र निरूप्यते ॥ ६६ ॥

इस प्रकार अन्तर्मुखनामक मूषा की उत्पत्ति विधिक्रम से कहकर अब व्यासटिकाविधि कुण्डविधि निरूपित की जाती है ॥ ६६ ॥

अथ व्यासटिकाधिकरणम्

अथ कुण्डस्सप्तमे नव ॥ अ० २ सू० ४ ॥

बो० वृ०

पूर्वसूत्रेन्तर्मुखाख्यमूषामुक्त्वा यथाविधि ।
तथा व्यासटिकां वक्तुं सूत्रोयं परिकीर्तितः ॥ ६७ ॥
तत्सूचितपदान्यस्मिञ्चत्वार्युक्त्वान्यथाक्रमम् ।
तेष्वानन्तर्यवाची स्यादथशब्द इति स्मृतः ॥ ६८ ॥
तथा व्यासटिकारूपं द्वितीयपदतस्स्मृतः ।
तृतीयपदतस्तस्यवर्गसंख्या निर्दशिता ॥ ६९ ॥
संख्या व्यासटिकायाश्च चतुर्थपदतस्स्मृता ।
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ॥ ७० ॥

पूर्व सूत्र में अन्तर्मुख मूषानामक को यथाविधि कहकर व्यासटिका (कुण्ड) को कहने के लिये यह सूत्र कहा है, उसके सूचित पद इसमें चार यथाक्रम कहे हैं। उनमें अथ शब्द आनन्तर्य—अनन्तर का वाची है। दूसरे पद से व्यासटिका का रूप कहा है, तीसरे पद से उसकी वर्ग संख्या दिखलाई है, चौथे पद से व्यासटिका-कुण्ड की संख्या कही, इस प्रकार पदों का अर्थ कहकर विशेषार्थ अब कहा जाता है ॥ ६७—७० ॥

द्वात्रिंशदुत्तरपञ्चशतकुण्डा इति क्रमात् ।
बहुधा वर्णिताश्शास्त्रे कुण्डतत्त्वविशारदैः ॥ ७१ ॥
सर्वेषां बीजलोहानां गालने शास्त्रवित्तमैः ।
कूर्मव्यासटिका नाम तेषु सम्यङ् निरूपिता ॥ ७२ ॥

५३२ कुण्ड क्रम से प्रायः शास्त्र में कुण्डतत्त्वकुशल जनों द्वारा कहे गए हैं। सब बीज लोहों के गलाने में शास्त्रवेत्ताओं ने उनमें कूर्मव्यासटिका को अच्छा कहा है॥ ७१—७२॥

तदुक्तं कुण्डकल्पे—वह कहा है कुण्डकल्प में—

सर्वेषां बीजलोहानां गालनार्थं यथाविधि ॥ ७३ ॥
द्वात्रिंशदुत्तरपञ्चशतव्यासटिकास्स्मृताः ।
तासां वर्गविभागस्तु सप्तधा वर्णितो (तः ?) बुधैः ॥७४॥
तेष्वेकैकवर्गस्थितकुण्डाष्षट्सप्ततिः स्मृताः ।
तेषु सप्तमवर्गीयकुण्डेषु यथाक्रमम् ॥ ७५ ॥
नवमी कुण्डिका या स्यात् कूर्मव्यासटिकेति हि ।
सैवोच्यते बीजलोहगालने शस्त्रवित्तमैः ॥ ७६ ॥ इति

सब बीजलोहों के गलाने के लिये यथाविधि ५३२ व्यासटिकाएं–कुण्डियां–भट्टियां कही हैं उनमें वर्ग-विभाग तो ७ प्रकार का विद्वानों ने कहा है। उनमें एक एक वर्ग में स्थित ७६ कही हैं उनमें ७वें वर्ग के कुण्डों में यथाक्रम नौवीं कुण्डिका–भट्टी जो है वह कूर्म व्यासटिका बीज लोहों के गलाने में शास्त्रवेत्ताओं ने कही है॥ ७४–७६ ॥

नारायणोपि––नारायण ने भी कहा है––

उक्तेषु सर्वकुण्डेषु कूर्मव्यासटिकां विना ।
सर्वेषां बीजलोहानां गालनं न कदाचन ॥ ७७ ॥
कूर्मव्यासटिकामेवमुक्त्वा शास्त्रानुसारतः ।
तत्स्वरूपपरिज्ञानार्थमाकारं सम्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

उक्त सब कुण्डों में कूर्मव्यासटिका के विना सब बीज लोहों का गलाना कभी नहीं होता। शास्त्रानुसार इस प्रकार कूर्मव्यासटिका कहकर उसके स्वरूप ज्ञानार्थ आकार को कहते हैं॥ ७७–७८॥

उक्तं हि कुण्डनिर्णये–कुण्डनिर्णय में कहा है––

चतुरस्रं वर्तुलं वा कूर्माकारं यथाविधि ।
वितस्तिदशकं कुण्डं कारयेद् भुवि शोभनम् ॥ ७९ ॥
भस्त्रिकास्थापनाय तत्पुरोभागतस्स्फुटम् ।
कूर्माङ्गवत्पञ्चमुखं पीठमेकं प्रकल्पयेत् ॥ ८० ॥
तत्कुण्डस्यान्तराले तु मूषाकुण्डं च वर्तुलम् ।
कल्पयित्वा बहिर्भागे कुण्डस्यावरणद्वयम् ॥ ८१ ॥
इङ्गालपूरणार्थाय यथाशास्त्रं प्रकारयेत् ।
पार्श्वयोरुभयोस्तस्य यन्त्रस्थापनं प्रकल्पयेत् ॥ ८२ ॥
सम्यग्गालितलोहानां रससम्पूरणे सुधीः ।
रचना कूर्मकुडण्स्य उक्तमेवं महर्षिभिः ॥ ८३ ॥

एवमुक्त्वा व्यासटिकां यथाशास्त्रं समासतः ।
अथेदानीं तद्भस्त्रिकाजातिनिर्णयमुच्यते ॥ ८४ ॥

चौरस या गोल कूर्माकार—कछवे के आकार वाला यथाविधि भूमि में १० बालिश्त सुन्दर कुण्ड बनावे भस्त्रिकास्थापन के लिये, उसके सामने वाले भाग में कूर्माङ्गी पांच मुख वाला एक पीठ बनावे, उस कुण्ड के भीतरी भाग में गोलमूषा कुण्ड बना कर कुण्ड के बाहिरी भाग में दो आवरण बना कर अङ्गारे भरने को यथाशास्त्र करे, उसके दोनों पार्श्वों में गलाये हुए लोहे के पिघले रस को भरने के लिए यन्त्रस्थान बनावे। इस प्रकार महर्षियों ने कूर्मकुण्ड की रचना विधि कही। इस प्रकार यथाशास्त्र संक्षेप से व्यासटिका को कह कर अब उसकी भस्त्रिका जाति का निर्णय कहा जाता है ॥ ७६—८४ ॥

अथ भस्त्रिकाधिकरणम्

अब भस्त्रिका का अधिकरण कहते हैं ।

स्याद् भस्त्रिकाष्टमे षोडशी ॥ अ० २ सू० ५ (अ० १ । सू० १२ ॥?)

बो० वृ०

कूर्मव्यासटिकामुक्त्वा पूर्वसूत्रे यथाविधि ।
भस्त्रिकानिर्णयार्थं सूत्रोयं प्ररिकीर्तितः ॥ ८५ ॥
भस्त्रप्रबोधकपदान्यस्मिन् सूत्रे चतुः*क्रमात् ।
तेष्वादिमपदात् तत्र क्रियार्थस्सन्निरूपितः ॥ ८६ ॥
द्वितीयपदतो भस्त्रालक्षणं सूचितं भवेत् ।
तथैव तद्वर्गसंख्या तृतीयपदतस्स्मृता ॥ ८७ ॥
एवं भस्त्रिकसंख्या च चतुर्थपदतः क्रमात् ।
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ॥ ८८ ॥
द्वात्रिंशदुत्तरपञ्चशतभस्त्राः प्रकीर्तिताः ।
कूर्मभस्त्रा तेषु मुख्या बीजलोहविगालने ॥ ८९ ॥

पूर्वसूत्र में कूर्म व्यासटिका को यथाविधि कहकर भस्त्रिका निर्णयार्थ यह सूत्र कहा है। इस सूत्र में भस्त्राप्रबोधक चार पद हैं, उनमें आदिम पद से क्रियार्थ का निरूपण किया है, दूसरे पद से भस्त्रा का लक्षण सूचित किया, वैसे ही उसकी वर्गसंख्या तीसरे पद से कही है। इस प्रकार भस्त्रिका संख्या चौथे पद से बतलाई। इस प्रकार पदों का अर्थ कह दिया, विशेष अर्थ अब कहा जाता है। ५३२ भस्त्रिकाएं कही हैं उनमें कूर्मभस्त्रा बीज लोहों के गलाने में मुख्य है—प्रमुख है ॥ ८५—८९ ॥

तदुक्तं भस्त्रिकानिबन्धने—वह कहा है भस्त्रिकानिबन्धन में—

यावन्त्यः कुण्डिकाः प्रोक्तास्तावन्त्येव हि भस्त्रिकाः ।
कूर्मभस्त्रा तासु कूर्मकुण्डिकायाः प्रकीर्तिता ॥ ९० ॥

जितनी कुण्डिकाएं—व्यासटिकाएं कही हैं उतनी ही भस्त्रिकाएं भी हैं। उनमें कूर्म भस्त्रिका कूर्मकुण्डिका—कूर्म व्यासटिका की कही है ॥ ९० ॥

---

* 'चतुः' अविभक्तिकनिर्देशश्छान्दस आर्षो वा ।

नारायणोपि—नारायण ने भी कहा है—

सर्वेषां लोहवर्गाणां गालनार्थं विशेषतः ।
द्वात्रिंशदुत्तरपञ्चशतभस्त्रा इतीरिताः ॥ ९१ ॥
तासां वर्गभेदस्तु अष्टधा सम्प्रकीर्तितः ।
वर्गेष्वष्टमवर्गीयभस्त्रिकासु यथाक्रमम् ॥ ९२ ॥
निर्णिता कूर्मकुण्डस्य षोडशी कूर्मभस्त्रिका । इति
सर्वेषां भस्त्रिकानां तु रचनाक्रमनिर्णयः ॥ ९३ ॥
भस्त्रिकानिबन्धनाख्यग्रन्थे सम्यङ् निरूपितः ।
तत्संगृह्य यथाकामं किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥ ९४ ॥

सब लोहवर्गों के गलाने के अर्थ ५३२ भस्त्रिकाएं कही गई हैं, उनका वर्गभेद तो ८ प्रकार का कहा है, वर्गों में आठवें वर्ग की भस्त्रिकाओं में यथाक्रम कूर्मकुण्ड—कूर्म व्यासटिका की १६ वीं कूर्मभस्त्रिका उपयुक्त है। सब भस्त्रिकाओं का रचनाक्रम निर्णय भस्त्रिका निबन्धन नामक ग्रन्थ में भली प्रकार कहा है वहां से लेकर यथाकाम—जितनी इच्छा है उतना—यहां निरूपित किया जाता है ॥ ९१—९४ ॥

उक्तं हि भस्त्रिकानिबन्धने—भस्त्रिकानिबन्धन ग्रन्थ में कहा है—

सुवल्कलैश्चर्मपटप्रवर्ग्यैः क्षीरादित्वग्भिर्वरपूगवल्ककैः ।
त्रिणेत्रशुण्डीरसुरञ्जिशाल्मलीशेणीरमुञ्जाकरघुण्टिकाशणैः ॥९५॥
कृतैस्सुसंस्कारजशक्तिमद्भिः पटैश्च पञ्चोत्तरषट्शतैः क्रमात् ।
तथैव लोहैर्वरदारुताम्रविकारकीलैस्सुदृढं यथाविधि ॥ ९६ ॥
प्रकल्पयेच्चित्रविचित्रवर्णमुखादिभिश्शोभितभस्त्रिकाः क्रमात् ॥ ९७ ॥ इत्यादि

अच्छी वृक्ष की छालों, चर्म—चमड़ों, वस्त्रों, वृक्ष के दूध की परतों, सुपारी वृक्ष की छालों से त्रिणेत्र ? शुण्डीर ?—हाथीशुण्डी ?, सुरञ्जि—मरोरफली या श्वेत काकमाची ?, शाल्मली—सिम्भल, शेणीर ?, मुञ्जाकर—मूंज की जड़, घुण्टिका—कंघी घास, शण से किए सुसंस्कार से उत्पन्न शक्ति वाले ६०५ पटों—वस्त्रों से क्रम से लोहों से अच्छे काष्ठों, ताम्बे के पत्रों कीलों—पेचों से सुदृढ़ चित्र विचित्र रंग मुख आदि से सुन्दर भस्त्रिका बनावे ॥ ९५—९७ ॥

कूर्मभस्त्रिकालक्षणं तु तत्रैवोक्तम्—कूर्मभस्त्रिका लक्षण तो वहां ही कहा है—

पञ्चाङ्गपञ्चास्यसुपक्षपञ्चकोशैस्तथा कीलकपञ्चकैर्युता ।
विचित्रवर्णैस्सुविराजिता या साकूर्मभस्त्रा इति वर्णिता स्यात् ॥

पांच अङ्गों पाँच मुखों अच्छे पक्ष वाले पांच कोशों से तथा पांच कीलों से युक्त विचित्र वर्णों से युक्त लोहे की कूर्मभस्त्रिका हो ॥

लल्लोपि—लल्ल ने भी कहा है—

शास्त्रोक्ताष्टमवर्गीयभस्त्रिकासु यथाक्रमम् ।
या षोडशी भवेद् भस्त्रा कूर्मभस्त्रेति सा स्मृता ।। ९८ ।।
कूर्मव्यासटिकायास्तु सैव भस्त्रा न चान्यथा ।। ९९ ।। इत्यादि ।।

शास्त्र में कहे आठवें वर्ग वाली भस्त्रिकाओं में यथाक्रम जो १६वीं भस्त्रा है वह कूर्मभस्त्रा कही है । कूर्मव्यासटिका—कूर्माकार कुण्डी की भस्त्रिका वह ही है अन्य नहीं ।। ९९ ।।

इति महर्षिभरद्वाजप्रणीते वैमानिकप्रकरणे प्रथमोऽध्यायः ।।१

"इति महर्षि भरद्वाज प्रणीत वैमानिक प्रकरण में प्रथम अध्याय समाप्त हो गया" (यह कापी करने वाले का वचन प्रामाणिक जचता है)

प्रथम रजिस्टर कापी संख्या २ वस्तुतः कापी संख्या ४—

तृतीयाध्यायप्रारम्भः†

दर्पणाधिकरणम्

दर्पणाधिकरण प्रस्तुत है।

दर्पणाश्च ।। अध्याय ३ । सूत्रम् १ ।।

बोधानन्दवृत्तिव्याख्याश्लोकाः ।।

पूर्वाध्याये भस्त्रिकान्तमुक्त्वा सूत्रैर्यथाक्रमम् ।
अथ तृ (द्वि?)तीयाध्यायेस्मिन्नुच्यन्ते यानदर्पणाः ।। १ ।।
पदद्वयं भवेदस्मिन् सूत्रे दर्पणबोधकम् ।
तत्रादिमपदात् सम्यग्दर्पणास्सूचितास्तथा ।। २ ।।
तद्विशेषप्रभेदाद्याश्चकारात् सन्निदर्शिताः ।
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ।। ३ ।।
वैमानिकाङ्गमुकुरास्सप्तोक्ताश्शास्त्रतः क्रमात् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि लल्लोक्तानि यथाक्रमम् ।। ४ ।।

पूर्वाध्याय में सूत्रों से भस्त्रिकापर्यन्त विषय कहकर अब इस द्वितीय अध्याय में विमान के दर्पण कहे जाते हैं। इस सूत्र में दो पद दर्पण बोधक हैं। उनमें आदिम पद से सम्यक् दर्पण सूचित किये हैं, उसके विशेष भेदादि 'च' से दिखलाये हैं। पदों का अर्थ इस प्रकार कह दिया, विशेष अर्थ अब कहा जाता है। विमान के अङ्ग मुकुर—दर्पण शास्त्र से सात कहे हैं उनके नाम लल्ल के कहे हुए यथाक्रम कहूंगा ।। १—४ ।।

उक्तं हि मुकुरकल्पे—मुकुरकल्प में कहा है—

विश्वक्रियादर्पणोथ शक्त्याकर्षणदर्पणः ।
वैरुप्यदर्पणस्तद्वत्कुण्टिणीदर्पणस्तथा ।। ५ ।।

---

† पूना फोटो के अनुसार यह कापी २ होने से द्वितीयाध्याय दिया है परन्तु पूर्व की दक्षिण कापी होने से तृतीयाध्याय है।

पिञ्जलादर्पणश्चैव गुहागर्भाख्यदर्पणः ।
रौद्रीदर्पण इत्येते(इत्येतत् ?)सप्तोक्ता यानदर्पणाः ॥६॥
तेषु विश्वक्रियादर्शं इति यत्सम्प्रकीर्तितः ।
तद्यानपीठोर्ध्वमुखस्थाने आवर्तनक्रमात् ॥ ७ ॥
प्रपञ्चे प्राणिभिस्सर्वैर्यत्कर्म कृतं भवेत् ।
तत्साक्षाद् वीक्षणार्थं यद् यन्तॄणां स्थापितो भवेत् ॥८॥
विश्वक्रियादर्श इति तमेवाहुर्मनीषिणः ।

विश्वक्रियादर्पण, शक्त्याकर्षणदर्पण, वैरूप्यदर्पण, कुण्टिणीदर्पण, पिञ्जलादर्पण, गुहागर्भदर्पण, रौद्रीदर्पण ये सात विमान के दर्पण कहे हैं। उनमें विश्वक्रियादर्श जो कहा है उसे विमान के पीठस्थान के उपस्थान में आवर्तन क्रम से मनुष्यों द्वारा प्रपञ्च—संहार के निमित्त जो जो कार्य किया गया हो उसे साक्षात् देखने के लिए चालकों की ओर से स्थापित किया जाना चाहिए, इसे विश्वक्रियादर्श मनीषियों ने कहा है ॥ १-८ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—यह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है—

सत्त्वद्वयं शुण्डिलकद्वयं च गृध्रास्थिमेकं वरपारपञ्चकम् ।
सिञ्चोरणीपादनखद्वयं तथा शुद्धाभ्रषट्कं वरशोणपञ्चकम् ॥ ९ ॥
मुक्ताष्टकं सौम्यमीननेत्रमष्टादशाङ्गारकसत्त्वमेकम् ।
सर्पत्वगष्टाञ्जनिकत्रयं तथा मातृण्णषट्कं वरशर्करा दश ॥ १० ॥
क्षाराष्टकं नागचतुष्टयं च फेनद्वयं गारुडवल्कलत्रयम् ।
वैणव्यकं सप्त तथा सुशोधितं वैराजश्वेतौदुम्बरपञ्चकं च ॥ ११ ॥
एतानि संशोध्य यथाविधि क्रमात् सन्तोल्य चञ्चूपुटमूषिकायाम् ।
सम्पूर्य चण्डोदरकुण्डमध्ये विन्यस्य कक्ष्याष्टशतोष्णवेगतः ॥ १२ ॥
सञ्चालयित्वा करदर्पणास्ययन्त्रोर्ध्वनालस्य मुखे प्रपूरयेत् ।
एवं कृते विश्वक्रियाख्यदर्पणो भवेत् सुशुद्धो दृढसूक्ष्मरूपः ॥१३॥

सत्त्व ?—क्षार—सज्जीखार ? २ भाग, शुण्डिलक ?—हाथीशुण्डावृक्ष २ भाग ?, गृध्रास्थि—गिद्ध की हड्डी १ भाग, वरपार—शुद्धपारा ५ भाग, सिञ्चोरणी ? के पैर का नाखून २ भाग, शुद्ध अभ्रक ६ भाग, वरशोण—अच्छा सिन्दूर ५ भाग, मोती ८ भाग, सौम्यक मीन नेत्र ? १८ भाग, अङ्गार का सत्त्व १ भाग, सर्पत्वक्—केंचुली ८ भाग, आञ्जनिक—सुरमा ३ भाग, मातृण्ण ?—कातृण्ण ?—गन्धतृण्ण ? ६ भाग, अच्छा पाषाण चूरा १० भाग, क्षार—सुहागा ८ भाग, नाग—सीसा ४ भाग, फेन—समुद्रफेन २ भाग, गरुड़ वल्कल ?—गरुड़शालि का वल्कल—छिल्के ? ३ भाग, वैणव्यकं—वंशलोचन ७ भाग, शोधितवैराज श्वेत उदुम्बर का दूध या गोंद या क्षार ? ५ भाग, इन्हें क्रम से यथाविधि शोध कर तोल कर चञ्चुपुट मूषिका—बोतल में भर कर चण्डोदर कुण्ड के मध्य रख कर ८ दर्जे की उष्णता के वेग से गला कर बड़े दर्पण के मुखयन्त्र के उपरिनाल के मुख में भर दे। ऐसा करने पर विश्वक्रियादर्पण सुशुद्ध दृढ़ सूक्ष्म हो जावे ॥ ९-१३ ॥

अथ शक्त्याकर्षणदर्पणनिर्णयः—अब शक्त्याकर्षण दर्पण का निर्णय देते हैं—

उक्त्वा विश्वक्रियादर्शस्वरूपं शास्त्रतस्स्फुटम् ।
अथ शक्त्याकर्षणदर्पणस्सन्निरूप्यते ॥ १४ ॥

विश्वक्रियादर्श—विश्वक्रियादर्पण का स्वरूप शास्त्र से स्फुट कह कर अब शक्त्याकर्षण दर्पण निरूपित किया जाता है ॥ १४ ॥

तदुक्तं दर्पणकल्पे—वह कहा है दर्पणकल्प ग्रन्थ में—

आकाशपरिधिकेन्द्रस्थितयानपथि क्रमात् ।
देहनाशकरा या स्युस्त्रिवर्गविषशक्तयः ॥ १५ ॥
आकृष्य तास्स्वशक्त्या यन्नाशयति स्वभावतः ।
तच्छक्त्याकर्षणादर्श इति शास्त्रान्निरूपितः ॥ १६ ॥

आकाश परिधि के केन्द्र में स्थित विमान के मार्ग में क्रम से देह को नष्ट करने वाली जो तीन विषशक्तियां हैं उन्हें अपनी शक्ति से स्वभावतः खींच कर जो नष्ट करता है वह शक्त्याकर्षण-दर्पण शास्त्र से निरूपित किया गया है ॥ १५–१६ ॥

धुण्डिनाथोपि—धुण्डिनाथ ने भी कहा है—

वातार्काश्वग्नयश्शास्त्रे त्रिवर्गा इति वर्णिताः ।
प्रतिवर्गसमुद्भूता यन्तॄणां देहनाशकाः ॥ १७ ॥
द्वाविंशदुत्तरशतसंख्याका विषशक्तयः ।
तास्समाहृत्यनिश्शेषं स्वशक्त्या यत् पिबेत् क्रमात् ॥१८॥
तच्छक्त्याकर्षणादर्श इति नाम्ना प्रकीर्तितः ॥ १९ ॥

वात सूर्यकिरण अग्नि ये तीन वर्ग शास्त्र में कहे हैं । प्रतिवर्ग में उठे हुए चालक यात्रियों के देह के नाशक हैं । १२२ संख्या वाली विष शक्तियां हैं उन्हें अपनी शक्ति से लेकर सर्वथा क्रम से जिससे पी लेता है इससे वह शक्त्याकर्षण दर्पण नाम से कहा गया है ॥ १७-१९ ॥

पराङ्कुशोपि—पराङ्कुश में भी कहा है—

आकाशपरिधिकेन्द्रे†ष्वातार्काश्वग्निसम्भवाः ।
द्वाविंशदुत्तरशतसंख्याका विषशक्तयः ॥ २० ॥
विमानपथसन्ध्यन्तं प्रवहन्ति विशेषतः ।
विमानचारिणां देहमारका इति तास्स्मृताः ॥ २१ ॥
उक्तस्स्यात् तद्विनाशार्थं शक्त्याकर्षणदर्पण इति ।
एवमुक्त्वा तस्य नामनिर्णयश्शास्त्रतस्स्फुटम् ॥ २२ ॥
तथैव तत्पाकविधिः किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥ २३ ॥

---

† केन्द्रेषु वात=केन्द्रेष्वात—पुरातनसन्धिः ।

आकाशपरिधि केन्द्रों में वातसूर्यकिरण अग्नि से उत्पन्न होने वाली विषशक्तियां १२२ संख्या वाली हैं जो विशेषत: विमानमार्ग के सन्धिपर्यन्त बहा करती हैं विमान के यात्रियों के देह को मार देने वाली कही गई हैं उनके विनाशार्थ शक्त्याकर्षण दर्पण कहा गया है उसका नामनिर्णय शास्त्र से स्फुट कह कर वैसे उसके पकाने की विधि यहां कही जाती है ॥ २०–२३ ॥

पञ्चालिकं पञ्चविरञ्चिसत्त्वं क्षाराष्टकं पिष्टचतुष्टयं च ।
जम्भारिषट्कं रजिताभ्रमेकमिङ्गालसत्त्वाष्टकबालुत्रयम् ॥ २४ ॥
कूर्माण्डसत्वद्वयं भारणिद्वयं कन्दत्रयं पोष्कलपञ्चकं च ।
प्रवालमुक्ताकरपञ्चकद्वयं षट्शुक्तिकात्वग्वरटङ्कणाष्टकम् ॥ २५ ॥
मालूरबीजत्रयं शंखपञ्चकं संयोज्य सर्वं वकमूषमध्ये ।
मण्डूककुण्डान्तरमध्यकेन्द्रे संस्थाप्य मूषां विधिवद् दृढं यथा ॥२६॥
पश्चाद् ध्मनेत् पञ्चशतोष्णकक्ष्यप्रमाणतश्शास्त्रविधानतस्सुधीः ।
नेत्रान्तसंगालिततद्रसं ततस्संगृह्य पश्चाद् विधिवच्छनैश्शनैः ॥२७॥
सम्पूरयेद् विस्तृतदर्पणास्ययन्त्रोर्ध्वनालस्य मुखे सुवृत्ते ।
एवं कृते शक्त्यपकर्षणदर्पणो भवेत् सुसूक्ष्मस्सुदृढो मनोहरः ॥२८॥ इत्यादि ॥

आलिक—हरिताल ५ भाग, विरञ्चिसत्त्व ?—धमासे का सत्त्व ? ५ भाग, क्षार—सुहागा ८ भाग या आठों क्षार एक एक भाग, पिष्ट—तिल की खल ४ भाग, जम्भारि ?—हीरा ६ भाग, रजित-अभ्रक—लाल अभ्रक १ भाग, अङ्गारों का सत्त्व—क्षार ८ भाग, रेत ३ भाग, कूर्माण्डसत्त्व—कछवे के अण्डे का सत्त्व २ भाग, भारणि ?—भारङ्गि—भारंगी या भारटी ?—नील २ भाग, कन्द—सूरण कन्द या शलजम ३ भाग; पौष्कल—पौष्कर—पोखर मूल ५ भाग; प्रवाल—मूंगा ५ भाग; मुक्ताकर—मुक्ताशुक्ति—मोती की सीपी २ भाग, शुक्तिका त्वक्—सीपी की त्वचा—सीपी का घर—सीपी कटोरी ६ भाग, वर-टङ्कण—अच्छा सुहागा, मालूरबीज—बिल्वबीज ३ भाग, शंख ५ भाग इनको मिलाकर वकमूषा के मध्य में मण्डूक कुण्ड के भीतरी केन्द्र में मूषा को दृढ़ संस्थापित करके पश्चात् बुद्धिमान् शास्त्रविधान से ५०० दर्जे की उष्णता से धमन करे—धौंके नेत्रपर्यन्त गलाये हुए रस को उसमें से लेकर पश्चात् विधि-वत् धीरे धीरे विस्तृत दर्पणमुख नामक यन्त्र के उपरिनाल के खुले मुख में भर दे, ऐसा करने पर शक्त्याकर्षण दर्पण अतिसूक्ष्म सुदृढ़ मनोहर हो जावे ॥ २४–२८ ॥

अथ वैरूप्यदर्पणनिर्णयः—अब वैरूप्यदर्पण निर्णय देते हैं—

एवमुक्त्वा यथाशास्त्रं शक्त्याकर्षणदर्पणम् ।
वैरूप्यदर्पणमथ प्रवक्ष्येत्र यथामति ॥ २९ ॥
स्वविमानं निरोद्धुं ये परयानात् समागताः ।
शत्रवः क्रोधसंविष्टा नानोपायविशारदाः ॥ ३० ॥
भयमूर्छादिभिस्तेषां यः प्रयच्छति विस्मृतिम् ।
तद्वैराजितदर्पण इति सङ्कीर्त्यते बुधैः ॥ ३१ ॥

सप्तविंशद्विकाराणि शास्त्रोक्तानि यथाक्रमम् ।
तत्स्वरूपप्रबोधार्थं संग्रहेण निरूप्यते ॥ ३२ ॥

इस प्रकार यथाशास्त्र शक्त्याकर्षण दर्पण कहकर वैरूप्यदर्पण अब यहां यथामति कहूँगा। अपने विमान को रोकने को परविमान से क्रोध भरे भय मूर्छा आदि नाना उपायों में कुशल शत्रुजन आ गये हों उनकी विस्मृति को जो देता है वह वैराजित दर्पण—वैरूप्यदर्पण विद्वानों द्वारा कहा गया है। शास्त्रोक्त २७ विकार यथाक्रम हैं उनके स्वरूप प्रबोधनार्थ संक्षेप से निरूपित किया जाता है ॥ २९--३२ ॥

तदुक्तं सम्मोहनक्रियाकाण्डे—वह कहा है सम्मोहनक्रियाकाण्ड में--

अग्निवाताम्ब्वशनिविद्युद्धूमसागरपर्वताः ।
सर्पवृश्चिकभल्लूकसिंहव्याघ्रादयस्तथा ॥ ३३ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च पक्षिणोतिक्ष* भयङ्कराः ।
इति सप्तदशोक्तानि विकाराणि यथाक्रमम् ॥ ३४ ॥

अग्नि, वायु, जल, अशनि—पतनशील विद्युत्, विद्युत्--चमकने वाली विद्युत्, धूम, सागर, पर्वत, सर्प; वृश्चिक, रीछ, सिंह, बाघ आदि तथा भूत, प्रेत, पिशाच‡ पक्षी ये १७ विकार यथाक्रम कहे हैं ॥ ३३-३४ ॥

एवमुक्त्वा दर्पणस्य गुणनामादयः क्रमात् ।
इदानीं तत्पाकविधिस्संग्रहेण निरूप्यते ॥ ३५ ॥

इस प्रकार दर्पण के गुण नाम आदि क्रम से कह कर अब उसकी पकाने की विधि संक्षेप से निरूपित की जाती है ॥ ३५ ॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे --वह कहा है दर्पण प्रकरण में--

शल्यक्षारं पञ्चक्ष्विङ्क्षात्रयं च लाक्षात्रयं सोमकाष्टशशत्रयं-
राजकुरण्टिकाद्वयमिङ्गालसाराष्टकं टङ्कणत्रयम् ॥ ३६ ॥
नखाष्टकंबालुकसप्तकं च मातृण्णाषट्कं रविचुम्बकद्वयम् ।
पूरत्रयं पारदपञ्चविंशकं तालत्रयं रौप्यचतुष्टयं च ॥ ३७ ॥
क्रव्यादषट्कं गरदाष्टकं च विष्टत्रयं कन्दचतुष्टयं च ।
वाराहपिथ्यत्रयसारपञ्चकं गुञ्जातैलं पञ्चविंशत् क्रमेण ।
संगृह्यैतान् सप्तसंस्कारशुद्धान् सम्पूरयेन्मूषकमूषिकायाम् ॥ ३८ ॥
मूषास्यकुण्डेष्टशतोष्णकक्ष्यात् संगालयेन्नेत्रनिमीलनान्तम् ॥ ३९ ॥
पश्चाद् गृहीत्वा वरदर्पणास्ययन्त्रोर्ध्वनालस्य मुखे नियोजयेत् ।
एवं कृते वैराजकदर्पणो दृढशुद्धस्सुसूक्ष्मोभवति प्रसिद्धः ॥ ४० ॥

शल्यक्षार–हड्डियों का क्षार ५ भाग, क्ष्विङ्क्षा–लोहविशेष सम्भवतः जस्ता ३ भाग, लाख ३ भाग,

---

* पक्षिण इति—पक्षिणोति सन्धिरार्षः ।

‡ भूत, प्रेत, पिशाच यहां प्राणिविशेष हैं ।

सोमक?–कपूर या लोहा विशेष ८ भाग, शश–चोल–गन्धबोल ३ भाग, राजकुण्टिका–पीलीकटसरिया या कुटज २ भाग, अङ्गारों का सार—भस्मक्षार ८ भाग, सुहागा ३ भाग, लखी ओषधि ८ भाग, बालू ७ भाग, भातृणण—कातृण—गन्धतृण ८ भाग, रविचुम्बक—सूर्यकान्तमणि २ भाग, पूर—दाह अगर या बीजपूर निम्बु ? ३ भाग, पारा २५ भाग, हरिताल ३ भाग, रौप्य--रूपा धातु ४ भाग, क्रव्याद ? ८ भाग, गरद—वच्छनाग ८ भाग, विष्ठ –विष्ठा ३ भाग, कन्द—सूरणकन्द ४ भाग, वाराहपित्थ--कृष्ण मदन वृक्ष का क्षार या सूवर पशु का पित्त ३ भाग, सार—वज्रक्षार या यवक्षार या नवसार नौसादर ५ भाग, गुञ्जा–रत्ति का तैल २५ भाग क्रम से इन्हें लेकर सात संस्कार करके मूषक मूषिका बोतल में भर दे। मूषास्य कुण्ड में ८०० दर्जे की उष्णता से नेत्र निमीलन तक गलावे पश्चात् लेकर बड़े दर्पणास्य यन्त्र के ऊपर नाल के मुख में नियुक्त करे। ऐसा करने पर वैराजदर्पण—वैरूप्यदर्पण शुद्ध सूक्ष्म हो जाता है ॥३६-४०॥

अथ कुण्टिणीदर्पण निर्णयः—अब कुण्टिणीदर्पण का निर्णय देते हैं—

इत्युक्त्वा वैराजकाख्यदर्पणं शास्त्रतस्स्फुटम्।
इदानीं कुण्टणीदर्पणस्वरूपं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥
यदंशुभासन्निधानात् सर्वबुद्धिविकल्पनम्।
भवेत् कुण्टिणीदर्पण इति प्रोच्यते बुधैः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वैराजकाख्यदर्पण—वैरूप्यदर्पण शास्त्र से स्फुट कह कर अब कुण्टिणी दर्पण का स्वरूप कहते हैं। अंशुभा—किरणज्योति के संसर्ग से सब की बुद्धियों का विपर्यास हो जाता है अतः कुण्टिणी दर्पण विद्वानों ने कहा है॥ ४१-४२ ॥

तदुक्तं पराङ्कुशे--वह कहा है पराङ्कुश में—

आकाशविद्युत्तरङ्गसन्धिमार्गे स्वभावतः।
सप्तस्रोतावर्तं वातविषसंयोगतः क्रमात् ॥ ४३ ॥
बुद्धेर्विकल्पदास्सप्त जायन्ते विषशक्तयः।
तासां निवारणार्थाय यत्कृतं शास्त्रवित्तमैः ॥ ४४ ॥
तत्कुण्टिणीदर्पण इत्युक्तं नाम्ना विशेषतः।

आकाश की विद्युत्तरङ्गों के सन्धिमार्ग में स्वभावतः ७ स्रोतोंवाला आवर्त घुमेर करने वाले वायु के विषसंयोग से क्रम से बुद्धि का विपर्यास करने वाली ७ विषशक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। उनके निवारणार्थ जो शास्त्रों के विशेषज्ञों ने किया है, वह कुण्टिणीदर्पण नाम से विशेषतः कहा है ॥४३-४४॥

विषशक्तिविनिर्णयस्तु-उक्तं हि सम्मोहनक्रियाकाण्डे—विषशक्ति विनिर्णय तो सम्मोहन क्रियाकाण्ड में कहा है—

मेदोसृङ्मांसमज्जास्थित्वग्बुद्धीनां विकल्पदाः।
गालिनी कुण्टिणी कालीस्पिञ्जुला उल्वणामरा ॥ ४५ ॥

आकाशविद्युत्तरङ्गसन्धिमार्गादिषु स्वतः ।
सप्तस्रोतावर्तवातविषसम्बन्धतः क्रमात् ॥ ४६ ॥
एतास्सप्त प्रजायन्ते दुःखदा विषशक्तयः ।

मेद—मांस के ऊपर सफेद चिकनी वस्तु, असृक्—रक्त, मांस, मज्जा—चर्बी, अस्थि—हड्डी, त्वचा, बुद्धि को विपरीत कर देने वाली गालिनी कुण्टिणी काली पिञ्जुला उल्बणा, मरा ये सात स्रोत वाले आवर्त वायु के विष सम्बन्ध से क्रम से आकाश विद्युत्तरङ्गों के सन्धिमार्ग आदि में स्वतः ७ दुःख-दायक विषशक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं ॥ ४५–४६ ॥

एवमुक्त्वा कुण्टिणीदर्पणनामादयः क्रमात् ॥ ४७ ॥
इदानीं तत्पाकविधिस्संग्रहेण निरूप्यते ॥ ४८ ॥

इस प्रकार कुण्टिणी दर्पण आदि नाम क्रम से कह कर अब उसके पकाने की विधि संक्षेप से कही जाती है ॥ ४७–४८ ॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पण प्रकरण में—

मृत्पञ्चकं कञ्चुकसप्तकं च फेनत्रयं षण्मुखसारपञ्चकम् ।
क्ष्विङ्काष्टकं खड्गनखत्रयं च क्षाराष्टकं बालुकसप्तकं च ।
पाराष्टकं शङ्खचतुष्टयञ्च मातृण्णषट्कं वरतालकत्रयम् ॥ ४९ ॥
गजोष्ट्रयोः क्षारचतुष्टयं च सुरन्ध्रिकासप्तकपञ्चतैलम् ॥ ५० ॥
मुक्तात्वगष्टत्रितयं च शुक्तिक्षारं तथेन्दुचतुष्टयं च ।
एतान् शुद्धान् क्रमतो गृहीत्वा सम्पूरयेच्छिञ्जिकमूषमध्ये ॥५१ ॥
संस्थाप्य शिञ्जीरककुण्डमध्ये संगालयेत् सप्तशतोष्णकक्ष्यैः ।
पूर्वोक्तमार्गेण नियोजयेत् तद्रसं यथाशास्त्रविधानतस्ततः ॥५२॥
अत्यन्तसूक्ष्मं सुदृढं भवेद् रुचं बालार्कवत् कुण्टिणीकाख्यं दर्पणम् ॥५३॥

मृत्—सौराष्ट्र मृत्तिका ५ भाग, कञ्चुक—सर्प की केंचुली ७ भाग, समुद्रफेन ३ भाग, षण्मुख-सार—खरबूजे के बीज ५ भाग, क्ष्विङ्का—लोहविशेष–जस्ता? ८ भाग, गेण्डे का नाखून खुर ३ भाग, क्षार-यवखार ८ भाग या आठों क्षार एक एक भाग, रेत ७ भाग, पारा ८ भाग, शङ्ख ४ भाग, मातृण्ण ?—कातृण—गन्धतृण ? ६ भाग, शुद्ध हरिताल ३ भाग, गज—गजपिप्पली और उष्ट्र—ऊण्ट कटीला के क्षार ४ भाग या गज—हाथी और उष्ट्र—ऊण्ट की हड्डी का क्षार ४ भाग, सुरन्ध्रिका ?—बड़े नलशर का क्षार ७ भाग, तैल—तिल तैल ५ भाग, मुक्ता त्वक्—मोती की त्वचा ८ भाग, शुक्तिक्षार—सीपी का क्षार ३ भाग, इन्दु—कपूर ४ भाग । इन शुद्ध द्रव्यों को क्रम से लेकर शिञ्जिक मूषा मध्य में भर कर शिञ्जीरक कुण्ड मध्य में ७०० दर्जे की उष्णता से गलावे । पूर्वोक्त मार्ग से पिघले रस को शास्त्रविधान से नियुक्त करे, अत्यन्त सूक्ष्म दृढ़ चमकदार बाल सूर्य की भांति सुदृढ़ कुण्टिणी नामक दर्पण बन जावे ॥४९-५३॥

अथ पिञ्जलादर्पणनिर्णयः—अब पिञ्जुलादर्पण का निर्णय देते हैं—

अर्कांशुयुद्धसञ्जातशक्तिस्स्यात् पिञ्जुलेति हि ।
सा नेत्रकृष्णताराग्रप्रभाग्राहीति वर्णिता ॥ ५४ ॥
यतो निगृह्य तच्छक्तिं वेगेन स्वीयशक्तितः ।
यन्तॄणां कृष्णताराग्रप्रकाशं पालयत्यतः ॥ ५५ ॥
पिञ्जुलादर्पण इति नाम शास्त्रे निरूपितः ।

सूर्यकिरणों के युद्ध से उत्पन्न शक्ति पिञ्जुला है वह नेत्र के काले तारे के अग्र की ज्योति को ले लेने वाली कही है, जिससे अपनी शक्ति से यात्रियों के कृष्णताराग्र प्रकाश को वेग से लेकर पालन करती है । इसलिए पिञ्जुलादर्पण नाम से शास्त्र में वर्णित है ॥ ५४--५५ ॥

तदुक्तमंशुबोधिन्याम्—यह कहा है अंशुबोधिनी में--

अग्नेः पूर्वदिश्यस्य स्थानमारभ्य संख्यतः ।
उपदिश्यस्य स्थानान्तमष्टधा दिग्विनिर्णयः ॥ ५६ ॥
यजुरारण्यके प्रोक्तमंशूनां जातिनिर्णये* ।
एकैकदिशि सञ्जाता रश्मयो भिन्नशक्तयः ॥ ५७ ॥
इति शास्त्रेष्वग्निभेदात्प्रवदन्ति मनीषिणः ।
ऋतुकालप्रभेदेन पञ्चवातप्रवेशतः ॥ ५८ ॥
तेषामन्योन्यसंसर्गो वारुणीयोगतो भवेत् ।
अतोंशूनां भवेद् युद्धं शक्तिभेदत्वकारणात् ॥ ५९ ॥
तस्मिन् परस्परं वेगात् तत्तद्दिशि विशेषतः ।
संघर्षणात् प्रजायन्ते चत्वारि विषशक्तयः ॥ ६० ॥
अन्धान्धकारपिञ्जूषतारपा इति तत् क्रमात् ।
रक्तजाठरताराग्रप्रभाश्चाक्षिद्वयं हनेत् ॥ ६१ ॥ इत्यादि ॥

इस अग्नि के पूर्व दिशा में स्थान को आरम्भ कर संख्या से उपदिशा में इसके स्थान के अन्त तक ८ प्रकार से निर्णय है, यजुर्वेद के आरण्यक में किरणों के जाति निर्णय में कहा है । एक एक दिशा में उत्पन्न किरणें भिन्न-भिन्न शक्तियां शास्त्रों में अग्नि के भेद से, ऋतुकाल के भेद से, पांच वायुओं के प्रवेश से उनका अन्योन्य संसर्ग वारुणी—मेघस्थ वैद्युत शक्ति के योग से होता है अतः किरणों का युद्ध शक्तिभेद के कारण हो जाता है । वहां परस्पर वेग से उस उस दिशा में विशेष संघर्ष से ४ विषशक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं । अन्ध, अन्धकार, पिञ्जूष, तारपा क्रम से रक्त जाठर ताराग्र प्रभा दोनों आंखों का नाश कर दे ॥ ५६--६१ ॥

उक्तं सम्मोहनक्रियाकाण्डेपि—सम्मोहनक्रियाकाण्ड में भी कहा है—

सूर्यांशुयुद्धात् (द्धं ?) सञ्जाताश्चत्वारि विषशक्तयः ।
अन्धान्धकारपिञ्जूषनेत्रघ्ना इति वर्णिता ॥ ६२ ॥

---

* "अनु न जातमष्टरोदसी" (तै० आ० १ । ७ । ५ ।)

अन्धशक्तिर्हन्ति रक्तमन्धकारा तु जाठरम् ।
पिञ्जूषा कृष्णताराग्रप्रभां नेत्रद्वयं तथा ॥ ६३ ॥
निहन्ति तारपा शक्तिस्स्वकीयविषवेगतः ॥ ६४ ॥ इत्यादि ॥

सूर्य किरणों के युद्ध से चार विषशक्तियाँ उत्पन्न हुई हुईं अन्ध, अन्धकार, पिञ्जूष, नेत्रघ्ना कही गई हैं। अन्ध शक्ति रक्त को नष्ट करती है, अन्धकारा तो जठराग्नि को, पिञ्जूषा कृष्णताराग्र की ज्योति को और तारपा शक्ति अपने विष वेग से दोनों आंखों को नष्ट करती है ॥ ६२–६४ ॥

पि(म ?) ञ्जुलादर्पणस्यैवमुक्त्वा नामविनिर्णयः ।
इदानीं तत्पाकविधिस्संग्रहेण निरूप्यते ॥ ६५ ॥

पिञ्जुलादर्पण का नाम निर्णय इस प्रकार कह कर अब उसके पकाने की विधि संक्षेप से कही जाती है ॥ ६५ ॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पण प्रकरण में—

वार्ष्णीकषट्कं वरशोणपञ्चकं क्षाराष्टकं वालुकसप्तकं च ।
निर्यासमृत्पञ्चकटङ्कणाष्टकं दम्भोलिसारद्वयमष्टपारदम् ॥ ६६ ॥
शुद्धाभ्रकं पञ्चकरवित्रपुद्वयं सुरोलिकासत्त्वचतुष्टयं च ।
त्वगष्टकं वार्ध्युषिकत्रयं तथा कन्दत्रयं पिष्टचतुष्टयं च ॥ ६७ ॥
तालत्रयं माक्षिकसप्तकं च वृकोदरीवीतचतुष्टयं क्रमात् ।
अष्टादशैतान् वरशुद्धवस्तून् संगृह्य सम्यक् परिशोधयेत् क्रमात् ॥३८॥
सम्पूर्य पश्चात् सुकपालमूषामुखे न्यसेद् व्यासटिकान्तरे दृढम् ।
संगालयेत् सप्तशतोष्णकक्ष्यप्रमाणतो नेत्रनिमीलनान्तम् ॥ ६९ ॥
संगृह्य संगालिततद्रसं शनैर्यन्त्रोर्ध्वनालस्य मुखात् प्रपूरयेत् ।
पश्चाद् दृढं सूक्ष्ममतीवशुद्धं मनोहरं पिञ्जुलदर्पणं भवेत् ॥ ७० ॥ इत्यादि ॥

वार्ष्णीक—वृष्णि—भेड़ वा दूध ? ६ भाग, वरशोण—अच्छा सिन्दूर ५ भाग, क्षार—यवक्षार ८ भाग या आठों क्षार एक एक भाग, रेत ७ भाग, निर्यासमृत्—वृक्ष का दूध जमा हुआ ? ५ भाग, सुहागा ८ भाग, दम्भोलि–लोह विशेष का चूरा २ भाग, पारा ८ भाग, शुद्ध अभ्रक और ताम्बा ५ भाग, त्रपु–सीसा २ भाग, सुरोलिका सत्त्व ?–सुन्दर शूण्ठ या हल्दी का सत्त्व ? ४ भाग, त्वक्—दारचीनी ८ भाग, वार्ध्युषिक ? वार्द्धेय—द्रोणीलवण ? ३ भाग, कन्द—सूरणकन्द ३ भाग, पिष्ट—तिलखल ४ भाग, हरिताल ३ भाग, सोनामाखी ७ भाग, वृकोदरीवीत ? ४ भाग। इन १८ शुद्ध वस्तुओं को लेकर सुकपालमूषा मुख में भर कर व्यासटिका के अन्दर रख दे। ७०० दर्जे की उष्णता के प्रमाण से नेत्र खुलने तक गलावे, गलाये हुए पिघले रस को यन्त्र के उपरिनाल के—मुख से धीरे से भर देवे फिर सूक्ष्म अधिक शुद्ध मनोहर पिञ्जुल दर्पण हो जावे ॥ ६६–७० ॥

अथ गुहागर्भदर्पणनिर्णयः—अब गुहागर्भ दर्पण का निर्णय देते हैं—

वारुणीवातकिरणशक्तिसंघर्षणक्रमात् ।
जायन्ते रोगदा नॄणां गुहाद्या विशेषशक्तयः ॥ ७१ ॥

तास्समाहृत्य वेगेन विद्युत्संयोगतः पुनः ।
प्रसार्य परयानस्थजनोपरि विशेषतः ॥ ७२ ॥
यः प्रयच्छति दुःखानि विषरोगादिभिस्त्वतः ।
स गुहादर्पण इति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७३ ॥

वारुणी—अभ्रविद्युच्छक्ति वायु किरण शक्तियों के संघर्ष के क्रम से मनुष्यों को रोग देने वाली गुहादि विषशक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। उन्हें विद्युत् के संयोग से वेग से लेकर दूसरे शत्रु के विमान के ऊपर प्रसारित करके—डाल कर जो विषरोग आदि से दुःखों को देती है। अतः गुहादर्पण—गुहागर्भदर्पण मनीषी कहते हैं॥ ७१-७३ ॥

तदुक्तं प्रपञ्चसारे—वह कहा है प्रपञ्चसार ग्रन्थ में—

कश्यपोर्ध्वकपालाभ्यां मध्ये तिष्ठति वारुणी ।
कपालवारुणीमध्ये वाताः पञ्चसहस्रकाः ॥ ७४ ॥
तथैव कश्यपारोगकिरणाश्चाष्टकोटयः ।
तत्तद्वातसमायोगात् प्रभिन्नाः किरणाः पुनः ॥ ७५ ॥
अनुलोमविलोमाभ्यां प्रवहन्ति विशेषतः ।
शक्तिवातांशुसंयोगो यदा स्यात् खे परस्परम् ॥ ७६ ॥
महादुःखकरास्तत्र गुहाद्या विषशक्तयः ।
जायन्ते वेगसंयुक्ता जले बुद्बुदवत्स्वयम् ॥ ७७ ॥ इति

कश्यपों के ऊपर दो कपालों के मध्य वारुणी शक्ति रहती है, कपाल और वारुणी के मध्य पांच सहस्र वायुएं हैं तथा कश्यप और रोगकिरण आठ करोड़ हैं, उस उस वायु के सम्मेल से फिर किरणें पृथक् पृथक् अनुलोम और विलोम के द्वारा विशेषतः चलती हैं। जब शक्ति—वारुणी शक्ति वायु और किरणों का संयोग आकाश में परस्पर हो जावे तो वहां महादुःख करने वाली गुहा आदि शक्तियां वेगवश जल में बुद्बुद की भांति स्वयं उत्पन्न हो जाती हैं॥ ७४-७७ ॥

लल्लोपि—लल्ल ने भी कहा है—

दशोत्तरशतन्यायमनुसृत्य यथाक्रमम् ।
शक्तिवातांशुसंयोगो यदा भवति वेगतः ॥ ७८ ॥
तदा संघर्षणं तेषामतिवेगाद् भविष्यति ।
जायन्ते तेन विविधाः गुहाद्या विषशक्तयः ॥ ७९ ॥
तत्प्रयोगान्नृणां लोके *भवेन्नानाविधामयाः ॥ इत्यादि ।

११० न्याय ? को अनुसरण कर यथाक्रम शक्ति—वारुणी शक्ति वायु और किरणों का संयोग जब वेग से होता है तब उनका संघर्ष वेग से होगा—हो जाता है, उससे विविध गुहादि विषशक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं उनके प्रयोग से मनुष्यों के लोक में नानाविध रोग हो जावे॥ ७८-७९ ॥

---

* भवेत्—वचनव्यत्ययः—आर्षः ।

स्वतस्सिद्धन्यायमुक्तं वशिष्ठेन—स्वत:सिद्धन्याय कहा है वशिष्ठ ने—

विजातीयशक्तिसाङ्कर्यात् सजातीयविषशक्तिप्रवाहस्स्यात् कूर्माण्डवत् ।। इति ।।

विजातीय शक्ति के साङ्कर्य—मेल से सजातीय विषशक्ति का प्रवाह कछवे के अण्डे के समान हो जावे ।।

तदुक्तं सम्मोहनक्रियाकाण्डे—वह कहा है सम्मोहन क्रियाकाण्ड में—

त्रिलक्षपञ्चसहस्रस्तथा पञ्चोत्तरं शतम् ।
शक्तिवातांशुशक्तीनां परस्परविघटनात् ।। ८० ।।
रोगप्रदा: प्रजायन्ते गुहाद्या विषशक्तय: ।
कुष्ठापस्मारग्रह (हि ?) णीका (खा ?) सशूलप्रदा: क्रमात् ।।८१।।
तासु मुख्या: पञ्च इति शक्तय: परिकीर्तिता: ।
तस्मान्नामानि विधिवत्संग्रहेण निरूप्यन्ते ।। ८२ ।।
गृध्नी गोधा कुजा रौद्री गुहा इति पञ्चधा ।
एतत्प्रचोदनाद्रोगप्रदानार्थं तु यत्कृतम् ।। ८३ ।।
तद्गुहागर्भदर्पण इत्युक्तं शास्त्रवित्तमै: ।। इत्यादि ।।

तीन लाख पांच सहस्र एक सौ पांच शक्ति—वारुणी शक्ति वायु किरणों के परस्पर संघर्ष से रोग देने वाली गुहा आदि विषशक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं जो कि कुष्ठ—कोढ़, अपस्मार—मृगी, संग्रहणी, खांसी, शूल—पीड़ा देनेवाली हैं। उनमें मुख्य पांच शक्तियां कही हैं। उनके नाम विधिवत् संक्षेप से कहे जाते हैं। वे गृध्नी, गोधा, कुजा, रौद्री, गुहा पांच हैं। इनके प्रेरण से रोगप्रदानार्थ जो किया है वह गुहागर्भ दर्पण शास्त्रवेत्ताओं ने कहा है ।। ८०–८३ ।।

एवमुक्त्वा गुहादर्शदर्पणं शास्त्रतस्स्फुटम् ।। ८४ ।।
तस्येदानीं पाकविधिस्संग्रहेण प्रकीर्त्यते ।

इस प्रकार गुहादर्शदर्पण शास्त्रानुसार स्फुटरूप से कह कर अब उसके पकाने की विधि संक्षेप से कही जाती है ।।

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पणप्रकरण में—

वराटिकासप्तकं मञ्जुलत्रयं डिम्भीरषट्कं रजकाष्टकं तथा ।
मण्डूरषट्कं वरपारदाष्टकं तालत्रयं ब्राह्मिकसप्तकं तत: ।। ८५ ।।
नागद्वयं चाञ्जनिकाष्टकं तथा मातृण्णाषट्कं वरबालुकाष्टकम् ।
किशोरषट्कं मुचुकुन्दपञ्चकं तैलद्वयं लोहिकपञ्चविंशति: ।। ८६ ।।
मृडाणिगर्भोद्भवसत्त्वपञ्चकं मृदष्टकं स्फाटिकपञ्चकं तथा ।
शल्यत्रयं पञ्चदशेन्दुसत्त्वकं दम्वोलिटाकाद्वयसत्त्वपञ्चकम् ।। ८७ ।।
एतान् क्रमाद् द्वाविंशतिवस्तूवर्गान् शुद्धान् समादय यथाविधि क्रमात् ।
सम्पूर्य चञ्चूपुटमूषमध्ये चञ्चूपुटव्यासटिकान्तरे न्यसेत् ।। ८८ ।।

संगालयेत् सप्तोष्णकक्ष्यैश्शास्त्रोक्तमार्गेण निमीलनान्तान् ।
पश्चात् समाहृत्य शनैश्शनैः क्रमाद् यन्त्रोर्ध्वनालस्य मुखे नियोजयेत् ।।८९।।
ततो गुहागर्भकदर्पणं भवेच्छुद्धं सुसूक्ष्मं सुदृढं मनोहरम् ।। ९० ।।

वराटिका—कौड़ी ७ भाग, मञ्जुल—मजीठ ३ भाग, डिम्मीर ?—डिण्डीर—समुद्रफेन ६ भाग, रजक—रञ्जक—शिंगरफ ८ भाग, मण्डूर—लोहमल ६ भाग, शुद्ध पारा ८ भाग, ताल—हरिताल ३ भाग, भ्राष्ट्रिका—भारङ्गी ७ भाग, नाग—सीसा २ भाग, आञ्जनिक—सुरमा ८ भाग, मातृण—कातृण—गन्धतृण ६ भाग, अच्छा रेत ८ भाग, किशोर-तेलपर्णी या घोटक शिग्रु (सोंजना) ६ भाग, मुचुकुन्द—मुचुकुन्द पुष्प ५ भाग, तिलतैल २ भाग, लोहिक—सफेद सुहागा २५ भाग, मृडाणिगर्भोद्भव सत्त्व ? ५ भाग, मृत्—सौराष्ट्रमृत्तिका ८ भाग, स्फटिकमणि या फिटकरी ५ भाग, शल्य—हड्डी या लालखैर—कत्था ३ भाग, इन्दुसत्त्व—चन्द्रकान्त का सत्त्व या कपूर १५ भाग, दम्बोलिटाका ?—लोहा विशेष ५ भाग। इन २२ वस्तुओं को शुद्ध लेकर चञ्चुपुट मूषामध्य में चञ्चुपुट व्यासटिका के अन्दर डाल दे। ७०० दर्जे की उष्णता से शास्त्रोक्त मार्ग से निमीलन तक गलावे, पश्चात् लेकर धीरे धीरे यन्त्र के उपरिनाल के मुख में डाल दे फिर गुहागर्भ दर्पण शुद्ध सूक्ष्म सुदृढ़ मनोहर बन जावे ।। ८५--९० ।।

अथ रौद्रीदर्पण निर्णयः—अब रौद्रीदर्पण का निर्णय देते हैं—

दर्शनादेव सर्वेषां द्रावणं येन जायते ।
तद्रौद्रीदर्पण इति प्रवदन्ति मनीषिणः ।। ९१ ।।

दर्शन से ही सब का द्रावण जिससे होता है वह रौद्रीदर्पण है ऐसा मनीषी कहते हैं ।।९१।।

तदुक्तं पराङ्कुशे—वह पराङ्कुश में कहा है—

रुद्राण्योषराभ्रलिङ्गौ यत्र सम्मेलनं भवेत् ।
रौद्रीनाम भवेत् काचिच्छक्तिस्तत्रोग्ररूपिणी ।। ९२ ।।
अर्कांशुयोगतस्सा तु सर्वान् सन्द्रावयेत् स्वयम् ।
यद् रुद्राण्योषराभ्रलिङ्गाभ्यां क्रियते क्रमात् ।। ९३ ।।
तद् रुद्राणीदर्पण इत्युक्तं शास्त्रविदां वरैः ।

रुद्राण्योषरा ? और अभ्रलिङ्ग ? जहां मिलें वहां रौद्री नामक कोई शक्ति उग्ररूपी प्रकट हो जाती है। सूर्यकिरणों के योग से वह सब को द्रवित कर दे, जो कि रुद्राण्योषरा और अभ्रलिङ्ग से क्रम से किया जाता है वह रुद्राणीदर्पण शास्त्रज्ञ विद्वानों ने कहा है ।। ९२--९३ ।।

उक्तं च सम्मोहनक्रियाकाण्डे—कहा है सम्मोहनक्रियाकाण्ड में—

रौद्री भान्वंशसंयोगाज्जायते मारिकाभिधा ।
विषशक्तिस्तया सूर्यकिरणाशनिसम्भवः ।। ९४ ।।
तत्संदर्शनमात्रेण परयानविनाशनम् ।
यत् करोति विशेषेण तद्रौद्रीदर्पणो भवेदिति ।। ९५ ।।
रौद्रीदर्पणनामादीनेवमुक्त्वा यथाविधि ।
तत्पाकविधिमद्यात्र संग्रहेण निरूप्यते ।। ९६ ।।

रौद्री सूर्यकिरणों के संयोग से मारिका नाम की विषशक्ति उत्पन्न हो जाती है उससे सूर्यकिरण-विद्युत् की उत्पत्ति हो जाती है। उसके दर्शनमात्र से परविमान का विनाश जो कर देता है वह रौद्री-दर्पण हो जाता है। रौद्री दर्पण नाम आदि यथाविधि कह कर उसके पकाने की विधि अब संक्षेप से कही जाती है ॥ ९४--९६ ॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पण प्रकरण में—

नागाष्टकं शाल्मलिकत्रयं तथा दुर्वारषट्कं कुडुपिञ्जराष्टकम् ।
द्रोण्येकविंशद्रविचुम्बकाष्टकं रुद्राणिग्रावोषरसप्तविंशतिः ॥ ९७ ॥
शल्याकषट्कं वरकौटिलाष्टकं वीराभ्रलिङ्गत्रिंशतिकस्तथैव ।
क्षाराष्टकं सैकतसपाकं तथा मातृण्णषट्कं वरडिम्बिकात्रयम् ॥९८॥
क्ष्विङ्काष्टकं मञ्चुकमृत् त्रयोदश निर्यासषट्कं वरकुम्भिनीत्रयम् ।
तैलत्रयं माक्षिकसप्तविंशतिर्गोधाम्लषट्कं वरपिञ्जुलाष्टकम् ॥ ९९ ॥
वैरञ्जिसत्वाष्टकन्दपञ्चकं तालत्रयं कार्मुकसप्तकं तथा ।
षड्विंशदेतान् विधिवत् सुशोधितान् सम्पूरयेत् कूष्माण्डकमूषिकायाम् ॥१०त॥
कूष्माण्डकुण्डे सुदृढं निधाय संगालयेदष्टशतोष्णकक्ष्यैः ॥
उन्मीलिताक्षान्तसुगालितं रसं यन्त्रोर्ध्वनालस्य मुखे निसिञ्चेत् ॥ १०१ ॥
एवं कृते रौद्रिकदर्पणो भवेत् सूक्ष्मस्सुशुद्धस्सुदृढो मनोहरः ॥ १०२ ॥

नाग—सीसा धातु या हाथी दान्त ८ भाग, शाल्मलिक—रोहेडा ३ भाग, दुर्वार-दुर्वरा-भारंगी ६ भाग, कुरुपिञ्जर—कटेली का सूखा पेड़ ? ८ भाग, द्रोणी—द्रोणीलवण २१ भाग, रविचुम्बक-सूर्यकान्त ८ भाग, रुद्राणि—रुद्रजटा ७ भाग, ग्रोवोषर-पाषाणक्षार २० भाग, शल्याक-रक्तखैर या नागवल्ली ६ भाग, कौटिल-शंखसार ८ भागवीराभ्रलिङ्ग? ३० भाग, क्षार ८ या सब ८ क्षार एक एक भाग, सैकतसपाक-पकारेत ८ भाग, मातृण्ण ? कातृण्ण-गन्धतृण ६ भाग, वरडिम्बिका-श्योनाक वृक्ष या बड़ी जल मखी ३ भाग, क्ष्विङ्का लोहविशेष ८ भाग, कञ्चुकमृत्—केंचुलीमिट्टी १३ भाग, निर्यास—गोन्द ६ भाग, वरकुम्भिनी—श्वेत-इन्द्रवारुणी-सौंधिनी ३ भाग, माक्षिक-सोना माखी २७ भाग, गोधाम्ल-मनःशिलाद्राव ६ भाग, वरपिञ्जुला अच्छी रूई ? ८ भाग वैरञ्जि – विरञ्चि-कौञ्च का सत्त्व ८ भाग, कन्द-सूरणकन्द ५ भाग, ताल—हरिताल ३ भाग, कार्मुक-श्वेतखदिर या महानिम्ब ७ भाग। इन विधिवत् शोधी हुई २६ वस्तुओं को कूष्माण्डमूषक में भर दे फिर कूष्माण्डक कुण्ड में सुदृढ़ रखकर १०० दर्जे की उष्णता से गलावे आंख खोलने तक गलाया हुआ रसयन्त्र के ऊर्ध्व नाल के मुख में सींच दे—डाल दे ऐसा करने पर रौद्रीदर्पण सूक्ष्म शुद्ध दृढ़ मनोहर हो जावे ॥ ९७—१०२ ॥

शक्त्यधिकरणम् ।

शक्ति का अधिकरण प्रस्तुत है।

शक्तयस्सप्त ॥ अ० ४ सू० १ ॥

बो० वृ०

एवमुक्त्वा विमानस्य दर्पणान् शास्त्रतस्स्फुटम् ।
इदानीं तच्छक्तिभेदनिर्णयस्सम्प्रचक्षते ॥ १०३ ॥
पदद्वयं भवेदस्मिन् शक्तिभेदप्रबोधकम् ।
तत्रादिमपदाच्छक्तिस्वरूपस्सम्प्रदर्शितः ॥ १०४ ॥
संख्यातस्तत्प्रभेदस्तु द्वितीयपदतः स्मृतः ।
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोऽधुनोच्यते ॥ १०५ ॥
उद्गमा पञ्जरा तद्वत् सूर्यशक्त्यपकर्षिणी ।
परशक्त्याकर्षणी च तथा द्वादश शक्तयः ॥ १०६ ॥
कुण्टिणी मूलशक्तिश्चेत्येतास्स्युस्सप्त शक्तयः ।
इमा विमानकार्येषु प्रधानत्वेन वर्णिताः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार विमान के दर्पणों को शास्त्र से स्पष्ट कहकर अब उनके शक्तिभेद का निर्णय कहते हैं। इस सूत्र में शक्तिभेद के बोधक दो पद हैं उनमें आदिम पद से शक्ति का स्वरूप प्रदर्शित किया दूसरे पद से उसके भेद गिनाए हैं। पदों के अर्थ इस प्रकार कहे अब विशेषार्थ कहा जाता है। उद्गमा पञ्जरा, सूर्यशक्त्यपकर्षिणी, परशक्त्यपकर्षिणी, द्वादशशक्तियां, कुण्टिणी, मूलशक्ति ये ७ शक्तियां हैं, ये विमानकार्यों में प्रधानरूप से कही हैं ॥ १०३—१०७ ॥

विमानस्योक्तस्थानेषु तत्तद्यन्त्राण्यथाविधि ।
सकीलकान् तन्त्रियुक्तानतिशुद्धान् सचक्रकान् ॥ १०८ ॥
स्थापयेत् केन्द्ररेखासंख्यामार्गानुसारतः ।

विमान के उक्त स्थानों में उन उन चक्रों को यथाविधि कीलसहित और तारयुक्त चक्रसहित केन्द्ररेखा की संख्या के अनुसार स्थापित करे ॥ १०८ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्वग्रन्थ में—

तुन्दिलो पञ्जरस्तद्वदंशुपश्चापकर्षकः ।
सान्धानिको दार्पणिकश्शक्तिप्रसवकः क्रमात् ॥ १०९ ॥
सप्तैते † यानशक्तीनां यन्त्राणीति विनिर्णिताः ।
तत्तद्यन्त्रमुखादेव तत्तच्छक्तिक्रियादयः ॥ ११० ॥
तुन्दिलादुद्गमा शक्तिः पञ्जरात् पञ्जराभिधा ।
शक्तिपात् सूर्यशक्त्यपकर्षिणी शक्तिरीरिता ॥ १११ ॥
अपकर्षकयन्त्रेण परशक्त्यपकर्षिणी ।
सन्धानयन्त्राद् द्वादशशक्तयस्सन्निरूपिताः ॥ ११२ ॥
कुण्टिणीनामिका शक्तिरुक्ता दार्पणिकादिति ।

† 'एते—एतानि' लिङ्गव्यत्ययः ।

शक्तिप्रसवयन्त्रेण मूलशक्तिरुदीरिता ॥ ११३ ॥
एवं क्रमात् सप्त यन्त्रशक्तयः परिकीर्तिताः ।

तुन्दिल, पञ्जर, अंशुप, अपकर्षक, सान्धानिक, दार्पणिक, शक्तिप्रसवक, ये ७ विमान शक्तियों के यन्त्र निर्णय किये गए हैं। उन यन्त्रों के मुख से ही उनकी शक्ति की क्रिया आदि होती है जो कि तुन्दिल से उद्गमा शक्ति, पञ्जर से पञ्जरा, शक्तिप से सूर्यशक्त्यपकर्षिणी शक्ति, अपकर्षक यन्त्र से पर-शक्त्यपकर्षिणी, सन्धान यन्त्र से द्वादश शक्तियां, दार्पणिक से कुण्ठिणी नामक शक्ति, शक्तिप्रसवयन्त्र से मूलशक्ति कही है इस प्रकार क्रम से ७ यन्त्रशक्तियां कही हैं ॥ १६६—११३ ॥

प्रथम रजिस्टर कापी संख्या ३ वस्तुतः कापी संख्या ५ —

तत्र तावच्छौनकसूत्रम्—विमानस्थ यन्त्र की शक्तियों के सम्बन्ध में शौनक सूत्र है—

अदितिक्ष्मावाय्वर्केन्द्वमृताम्बरशक्तयस्सप्त वैमानिका इति तासां नामान्यनुक्रमिष्यामः। उद्गमा पञ्जरा सूर्यशक्त्यपकर्षिणी विद्युद्द्वादशका परशक्त्यपकर्षिणी† कुण्टिणी मूलशक्तिश्चेति ॥

अदिति–अग्नि, क्ष्मा—पृथिवी, वायु, सूर्य, इन्दु-चन्द्रमा, अमृत–जल, अम्बर—आकाश, ये ७ शक्तियां है जिन के नाम कहेंगे—कहते हैं जो कि उद्गमा, पञ्जरा, सूर्यशक्त्यपकर्षिणी, विद्युद्द्वादशका परशक्त्यपकर्षिणी, कुण्टिणी, मूलशक्ति ॥

सौदामिनीकलायामपि—सौदामिनीकला में भी कहा है—

सू० मलयरसवनशक्तयो वैमानिका इति ॥

बो० वृ०

मकारोदितिश्शक्तिस्स्यादुद्गमेति प्रचक्षते ।
लकारः पृथिवीशक्तिः पञ्जरेत्यभिधीयते ॥ १ ॥
यकरो वायुश्शक्तिस्स्यात्सूर्यशक्त्यपकर्षिणी ।
रकारस्सूर्यशक्तिस्स्याद् विद्युद्द्वादशकस्स्मृतः ॥२॥
सकारस्त्विन्दुशक्तिस्स्यात् परशक्त्यपकर्षिणी ।
जलशक्तिर्वकारस्स्यात् कुण्टिणीत्यभिधीयते ॥ ३ ॥
नकारोम्बरशक्तिस्स्यान्मूलशक्तिरिति स्मृतः । इत्यादि ।

म, ल, य, र, स, व, न शक्तियां विमान की है। म अदिति—उद्गमा है ऐसा कहते हैं ल पृथिवी–पञ्जरा कही जाती है, य वायु—सूर्यशक्त्यपकर्षिणी, र सूर्य—विद्युद्द्वादशक शक्ति कही है, स इन्दु—परशक्त्यपकर्षिणी, व जलशक्ति—कुण्टिणी कही जाती है, न अम्बर - मूलशक्ति कही है॥१-३।

एवमुक्त्वा सप्तशक्तिस्वरूपं शास्त्रतः स्फुटम् ।
तत्तत्कृत्यं यथाशास्त्रं संग्रहेण निरूप्यते ॥ ४ ॥

इस प्रकार ७ शक्तियों के स्वरूप को शास्त्र से स्फुट कहकर उनके कार्य शास्त्र से संक्षेप से कहे जाते हैं।

† 'परशक्त्यपकर्षिणी' शब्द छूट गया हस्तपाठ में।

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासारग्रन्थ में कहा है—

विमानस्योर्ध्वगमनमुद्गमा शक्तिस्स्मृता ।
अधस्तादगमनं तस्य पञ्जराशक्तितो भवेत् ।। ५ ।।
अर्कांशूष्णापहारी स्याद् घृष्टिशक्त्यपकर्षिणी ।
परशक्त्यपकर्षण्या सर्वशक्तिविरोधनम् ।। ६ ।।
विद्युद्द्वादशकाद् यानविचित्रगमनं स्मृतम् ।
मूलशक्त्या सर्वशक्तिचलनाद्याः प्रकीर्तिताः ।। ७ ।।
सप्तशक्तिक्रिया एवमुक्त्वा यानस्य शास्त्रतः ।। ८ ।।
अथ विद्युद्द्वादशकविचारः क्रियते क्रमात् ।

विमान का ऊपर जाना उद्गमा शक्ति से कहा, उसका नीचे गमन पञ्जरा शक्ति से, घर्षण-शक्त्यपकर्षिणी–सूर्यशक्त्यपकर्षिणी सूर्यकिरणों की उष्णता को हटानेवाली, परशक्त्यपकर्षिणी से सब शक्तियों को रोक देना होता है, विद्युद्द्वादशक शक्ति से विमान का विचित्रगमन कहा, मूलशक्ति से सब शक्तियों का दूर हो जाना आदि, इस प्रकार विमान की ७ शक्तियों की क्रियाएं शास्त्र से कहकर—।। ५—८ ।।

तदुक्तं सौदामिनीकलायाम्—वह कहा है सौदामिनीकला पुस्तक में—

विमानगतिवैचित्र्यप्रभेदा द्वादश स्मृताः ।
तत्क्रियाकरणे विद्युच्छक्तयस्तावदेव हि ।।९ ।।
तासां नामानि यानस्य गतिभेदान्यपि क्रमात् ।
समुच्चयान्निरूप्यन्ते संग्रहेणात्र शास्त्रतः ।। १० ।।
चलना कम्पनाथोर्ध्वा अधरा मण्डला तथा ।
वेगिनी अनुलोमा च तिर्यञ्ची च पराङ्मुखी ।। ११ ।।
विलोमा स्तम्भना चित्रा चेति द्वादशशक्तयः ।
विमानचालनं विद्युच्चलनाशक्तितस्स्मृतम् ।। १२ ।।
तत्कम्पनं विशेषेण कम्पनाशक्तितो भवेत् ।
विमानस्योर्ध्वगमनमूर्ध्वासञ्चोदनाद् भवेत् ।। १३ ।।
यानाधोगमनं विद्यादधराशक्तितः क्रमात् ।
विमानमण्डलगतिर्मण्डलाशक्तितस्स्मृता (तः ?) ।।१४।।

विमान की विचित्र गति के १२ भेद कहे हैं उन विचित्र गतियों में क्रिया करने के निमित्त उतनी ही अर्थात् १२ विद्युत् शक्तियां हैं। उन विद्युत् शक्तियों और विमान के गति के भेदों के नाम क्रम से एकत्र रूप में संक्षेप से यहां शास्त्र से निरूपित किए जाते हैं। चलना, कम्पना, ऊर्ध्वा, अधरा, मण्डला, वेगिनी, अनुलोमा, तिर्यञ्ची, पराङ्मुखी, विलोमा, स्तम्भना, चित्रा ये विद्युत् शक्तियां हैं। विमान का चालन तो चलना विद्युत्शक्ति से कहा, उसका कम्पनविशेष कम्पना विद्युत् शक्ति से होता है,

विमान का ऊर्ध्वगमन तो ऊर्ध्वा विद्युत् शक्ति की प्रेरणा से होता है, विमान का अधोगमन—अधरगमन–नीचे आना अधरा विद्युत् शक्ति से, विमान की मण्डलगति–चक्रगति मण्डला विद्युत् शक्ति से कहा–॥९-१४॥

वेगिनीशक्तितो यानगतिवैचित्र्यमुच्यते ।
अनुलोमाद् विमानस्य प्रादक्षिण्यगतिस्स्मृता ॥ १५ ॥
तिर्यग्गमनमित्याहुस्तिर्यञ्चीशक्तियोगतः ।
पराङ्मुखीशक्तितस्स्याद् विमानस्य पराङ्मुखम् ॥ १६ ॥
विलोमशक्त्या यानस्यापसव्यगतिस्स्मृता ।
स्तम्भनाशक्तितो यानस्तम्भनं परिकीर्तितम् ॥ १७ ॥
चित्राख्यशक्त्या यानस्य नानाविधगतिस्स्मृता ।
इति विद्युद्द्वादशकशक्तिकार्याण्यथाक्रमम् ॥ १८ ॥
उक्तानि विमानगतीरनुसृत्य यथाविधि ॥ १९ ॥ इत्यादि

वेगिनीशक्ति से विमान की विचित्र गति कही जाती है, विमान के अनुलोम से प्रादक्षिण्य अर्थात् अनुलोम गति, विमान की तिर्यक्—तिरछी गति तिर्यक् शक्ति के सम्बन्ध से, पराङ्मुखीशक्ति से विमान की पराङ्मुखगति हो, विलोम शक्ति से विमान की अपसव्य—विलोमगति कही है, स्तम्भनाशक्ति से यान की स्तम्भनगति कही है, चित्रानामक शक्ति से विमान की नानाविध गति कही जाती है। इस प्रकार विद्युत् की १२ शक्तियों के कार्य यथाक्रम कहे हैं, विमान की गतियों का यथाविधि अनुसरण करके ॥ १५—१९ ॥

शक्तयः पञ्चेति नारायणः ॥ अ० ४ सू० २ ॥

बो० वृ०

मतान्तरविचारार्थं सूत्रोयं परिकीर्तितः ।
तदर्थबोधकपदान्युक्तान्यस्मिन् चतुः * क्रमात् ॥ २० ॥
विमानगतिवैचित्र्यक्रियाकरणशक्तयः ।
सद्योजाताख्ययन्त्रेण सञ्जाताः पञ्च एव हि ॥ २१ ॥
इति नारायणमुनिस्स्वानुभूत्याब्रवीत् स्वयम् ।
तन्मताभिप्रायमेव सूत्रेस्मिन् सम्प्रदर्शितः ॥ २२ ॥
तत्रादिमपदाच्छक्तिस्वरूपस्सन्निदर्शितः ।
संख्यया तत्प्रभेदस्तु द्वितीयपदतस्स्मृतः ॥ २३ ॥
मतान्तरप्रकटनं तृतीयपदतस्स्मृतम् ।
मतप्रवर्तकमुनिं तुरीयात् सम्प्रदर्शितम् ॥ २४ ॥
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ।
सद्यो जातसमुद्भूतशक्तयः पञ्चधा स्मृताः ॥ २५ ॥
विमानगतिवैचित्र्यक्रिया स्यादेभिरेव हि ॥ इत्यादि ।

* विभक्तिलोप आर्षः ।

मतान्तर विचारार्थ इस सूत्र में चार पद कहे, विमान की विचित्र गतियों के करने वाली शक्तियां सद्योजातनामकयन्त्र से उत्पन्न हुई ५ हैं यह नारायण मुनि ने अपने अनुभव से कहा है। उसके मत के अभिप्राय को इस सूत्र में प्रदर्शित किया है उनमें आदिम पद से शक्तिस्वरूप दिखलाया, संख्या से भेद दूसरे पद से कहा, मतान्तर—अन्य मत का प्रकाश तीसरे पद से, प्रवर्तकमुनि चतुर्थ पद से दिखलाया, इस प्रकार पदार्थ कहे विशेषार्थ अब कहा जाता है, सद्योजातयन्त्र से उत्पन्न हुईं पांच प्रकार की शक्तियां कही हैं इन से विमान की विचित्र गति क्रियाएं होवें ॥ २०–२५ ॥

तदुक्तं शक्तिसर्वस्वे—वह कहा है शक्तिसर्वस्व ग्रन्थ में—

चालनगालनपञ्जरस्फोरणवक्रापसर्पणञ्चेति ।
गतिवैचित्र्यविधानं यानस्योक्ता महर्षिभिश्शास्त्रे ॥२६॥ इत्यादि

चालन, गालन, पञ्जरप्रेरण, वक्रापसर्पण, विचित्रगति करना ये पांच बातें विमान की महर्षियों ने कही हैं

चित्रिण्येवेति स्फोटायनः ॥ अ० ४, सू० ३ ॥

बो० वृ०

स्फोटायनमतं वक्तुं सूत्रोयं परिकीर्तितः ।
तदर्थबोधकपदान्युक्तान्यस्मिन् चतुः * क्रमात् ॥२७॥
तत्रादिमपदाच्छक्तिनिर्णयस्सन्निदर्शितः ।
द्वितीयपदतश्शक्तेर्निर्धारणमुदाहृतम् ॥२८॥
तथेत्थम्भावमुक्तं स्यात् तृतीयपदतः क्रमात् ।
मतप्रवर्तकमुनिश्चतुर्थपदतः स्मृतः ॥२९॥
एवं पदार्थः कथितो विशेषार्थः प्रकीर्त्यते ।
विमानगतिवैचित्र्यकार्यनिर्वहणक्रिया ॥३०॥
एकया चित्रिणीशक्त्या भवत्येवेति विनिर्णयः ।

यह सूत्र स्फोटायन के मत को कहने के लिये कहा गया है, उसके बोधक पद क्रम से चार कहे हैं। उनमें आदिम पद से शक्ति का निर्णय दिखलाया दूसरे पद से शक्ति का निर्धारण बतलाया, तीसरे पद से इत्थम्भाव कहा गया, चौथे पद से मतप्रवर्तक मुनि कहा है। इस प्रकार पदार्थ कह दिया विशेषार्थ कहा जाता है, विमान की विचित्र गति कार्य करने वाली क्रिया केवल एक चित्रिणी शक्ति से होती है ऐसा निश्चय है ॥ २७—३०॥

तदुक्तं शक्तिसर्वस्वे—वह कहा है शक्तिसर्वस्व में—

वैमानिकगतिवैचित्र्यादिद्वात्रिंशतिक्रियायोगे ।
एकैव चित्रिणीशक्त्यलमिति शास्त्रे विनिर्णीतं भवति ।
इत्यनुभवतश्शास्त्राच्च मन्यते स्फोटायनाचार्यः ॥६१॥ इत्यादि ॥

---

* विभक्ते लुक् आर्षः ।

विमान की विचित्र गति आदि ३२ क्रियाओं के सम्बन्ध में एक ही चित्रिणी शक्ति पर्याप्त है यह शास्त्र में निर्णय है। इस प्रकार अनुभव से और शास्त्र से स्फोटायन आचार्य मानता है ।।३१।।

क्रियासारेपि–क्रियासार में भी कहा है—

चित्रिणी नामिका विद्युच्छक्तिस्सप्तदशात्मिका ।
एकैव यानद्वात्रिंशत्कार्यनिर्वहणक्षमा ।।३२।। इत्यादि ।।

चित्रिणी नामक विद्युत्-शक्ति १७ रूप में है या १७ वीं है वह अकेली ही विमान के ३२ कार्यों के निर्वाहार्थ समर्थ है ।।३२।।

तदन्तर्भावात् सप्तैवेति भरद्वाजः ।। अ० ४, सू० ४।।

बो० वृ०

उक्त्वा सूत्रद्वयैरेवं † मतान्तरमतः परम् ।
स्वसिद्धान्तद्योतनार्थं सूत्रोयं परिकीर्तितः ।।३३।।
तदर्थबोधकपदान्यस्मिन् पञ्च भवन्ति हि ।
तत्रादिमपदादन्तर्भावत्वं सप्त शक्तिषु ।।३४।।
पूर्वसूत्रोक्तशक्तीनां सम्यक् सन्दर्शितं भवेत् ।
तथैव सप्तशक्तीनां प्रधानत्वं द्वितीयतः ।।३५।।
उक्तार्थनिर्धारणं तु तृतीयपदतः कृतः ‡ ।
चतुर्थपदतस्सम्यगित्थम्भावः प्रदर्शितः ।।३६।।
तथैव पञ्चमपदाद् भरद्वाजमहामुनिम् ।
स्वसिद्धान्तप्रवक्तारं सूचितं * भवति क्रमात् ।।३७।।
पदर्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ।
सद्योजातसमुद्भूतपञ्चशक्तिषु शास्त्रतः ।।३८।।
प्रधानत्वेन सम्प्रोक्ता पञ्जराशक्तिरेव हि ।
अग्नेस्सकाशादुत्पत्तिस्स्फुलिङ्गानां यथा भवेत् ।।३९।।
तथैव चालनादीनां पञ्जराशक्तितस्स्मृतः ।

दो सूत्रों से अन्यों के मत को कहकर इससे आगे अपना सिद्धान्त प्रकट करने को यह सूत्र कहा है, उसके अर्थबोधक पद इसमें पांच हैं उनमें आदिम पद से अन्तर्भाव सात शक्तियों में ही होता है। पूर्व सूत्र में कही शक्तियों का भलीभांति ज्ञान या ज्ञापन हो अतः दूसरे पद से उन ७ शक्तियों की प्रधानता कही तीसरे पद से कहे अर्थ का निर्धारण और चतुर्थ पद से इत्थम्भाव ऐसा कथन पुनः पांचवें पद से भरद्वाज मुनि सिद्धान्त प्रवक्ता अपने को सूचित किया किया है। इस प्रकार पदों का अर्थ कह दिया अब विशेष अर्थ कहा जाता है। सद्योजात यन्त्र से उत्पन्न पांच शक्तियों में शास्त्रद्वारा प्रधानता

---

† सूत्रद्वयैः' वचनव्यत्ययः । ‡ लिङ्गव्यत्ययः । * व्यत्ययो वा लेखकप्रमादो वा

से पञ्जराशक्ति ही कही है, अग्नि से स्फुलिङ्गा—चिनगारियों की उत्पत्ति जैसे होवे वैसे ही चालन आदियों की उत्पत्ति पञ्जराशक्ति से कही है ॥ ३३—३६ ॥

तदुक्तं शक्तिबीजे—वह कहा है शक्तिबीज ग्रन्थ में—

सद्योजातसमुद्भूतपञ्जराशक्तितः क्रमात् ।
उद्भवश्चालनादीनामुक्तं तच्छास्त्रवित्तमैः ॥४०॥

सद्योजात यन्त्र से उत्पन्न हुई पञ्जराशक्ति से क्रमशः चालनादि शक्तियों की उत्पत्ति उस शास्त्र के विद्वानों ने कही है ॥४०॥

सद्योजातात् समुत्पन्नपञ्जराशक्तितः क्रमात् ॥४१॥
चालनाद्यास्समुद्भूताः क्रमाच्चत्वारिशक्तयः ।

इति शक्तिकौस्तुभे ।

सद्योजात यन्त्र से उत्पन्न पञ्जराशक्ति से क्रम से चालन आदि प्रकट हुईं क्रम से चार शक्तियां हैं । यह शक्ति-कौस्तुभ ग्रन्थ में कहा है ॥४१॥

एतेन पञ्जरोद्भूतशक्तयश्चालनादयः ॥४२॥
तदंशत्वात् तत्स्वरूपा एवेत्युक्तास्स्फुलिङ्गवत् ।
तस्मात् प्रधानत्वमपि तासामत्र प्रदर्शितम् ॥४३॥
सा पञ्जरा चित्रिणी च पूर्वोक्तसप्तशक्तिषु ।
अन्तर्भावात् प्रधानत्वेनोक्ता एवं स्वभावतः ॥४४॥
यतस्तयोः प्रधानत्वं सप्तशक्तिषु वर्णितम् ।
ततस्समञ्जसमिति मतद्वयमपि स्मृतम् ॥४५॥
द्वात्रिंशत्कार्यनिर्वाहे पूर्वोक्तसप्तशक्तिषु ।
एकैकशक्तिरेवालमिति केचिद् वदन्ति हि ॥४६॥

इस कारण पञ्जराशक्ति से प्रकट हुई चालना आदि शक्तियां उसके अंश होने से तत्स्वरूप ही स्फुलिङ्ग जैसी कही हैं । अतः उनकी प्रधानता भी यहां दिखलाई है, उन पूर्वोक्त ७ शक्तियों में वह पञ्जरा और चित्रिणी अन्तर्भूत होने से प्रधानता से स्वभावतः कही हैं, जिसे सात शक्तियों में प्रधान वर्णित किया है इससे दोनों मत ठीक है यह कहा है, ३२ कार्य निर्वाह में पूर्वोक्त ७ शक्तियों में एक-एक शक्ति ही पर्याप्त है ऐसा कुछ कहते हैं ॥ ४२—४३ ॥

तदसङ्गतमेव स्यात् कार्यभेदप्रदर्शनात् ।
विमानस्योर्ध्वगमनमुद्गमाशक्तितस्मृतम् ॥४७॥
इत्यारभ्य क्रमान्मूलशक्तयेत्यन्तं स्वभावतः ।
पूर्वोक्तसप्तशक्तीनां कार्यनिर्वहणक्रमः ॥४८॥
पृथक् पृथक् क्रियासारे निर्णीतत्वात् प्रमाणतः ।
द्वात्रिंशत्कार्यनिर्वाहः कथं स्यादेकशक्तितः ॥४९॥

एकशक्त्या सर्वकार्यनिर्वाहस्सर्वथा न हि ।
प्रमादाद् यदि कुर्वीत तदनर्थाय केवलम् ॥५०॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूर्वोक्तास्सप्त शक्तयः ।
द्वात्रिंशत्कार्यनिर्वाहे संयोज्या इति निर्णयः ॥५१॥

कार्यभेद प्रदर्शन से वह असङ्गत ही है, विमान का ऊपर गमन उद्गमा शक्ति से कहा है इस कथनके आरम्भ से मूलशक्ति के लिये अत्यन्त स्वभाव से पूर्वोक्त ७ शक्तियों का कार्यनिर्वाह क्रम पृथक् पृथक् क्रियासार ग्रन्थ में प्रमाण से निर्णय करने से ३२ कार्य निर्वाह कसे एक शक्ति से हो, एक शक्ति से कार्यनिर्वाह सर्वथा नहीं हो सकता, प्रमाद से यदि करे तो केवल अनर्थ के लिये हो, अतः सब प्रयत्न से पूर्वोक्त ७ शक्तियां ३२ कार्य निर्वाह में लगाने योग्य हैं ॥ ४७—५१ ॥

अथ यन्त्राधिकरणम्

अब यन्त्रों का अधिकरण प्रस्तुत है ।

तथोपयन्त्राणि ॥ अ० ५ सू० १ ॥

बो० वृ०

यथोक्तास्शक्तयः पूर्वसूत्रे यानक्रियाविधौ ।
तथैव यानोपयन्त्राण्यस्मिन् सम्यग् विविच्यते ॥ ५२ ॥
तदर्थबोधकपदद्वयमत्र निरूपितम् ।
तत्रादिमपदाद् रीतिवाचकस्सन्निदर्शितः ॥ ५३ ॥
द्वितीयपदतो यानाङ्गोपयन्त्राणि च क्रमात् ।
पदार्थमेवं कथितं विशेषार्थोधुनोच्यते ॥ ५४ ॥
याभिर्विमानो द्वात्रिंशत्कार्यनिर्वाहको भवेत् ।
तच्छक्तयः क्रमात् पूर्वसूत्रे सम्यक् प्रदर्शिताः ॥ ५५ ॥
तत्तत्कार्योपकरणाङ्गोपयन्त्राण्यथाक्रमम् ।
द्वात्रिंशदिति यानस्य सूत्रे स्मिन् सम्प्रदृश्यते ॥ ५६ ॥

विमान क्रियाविधि के निमित्त पूर्वसूत्र में जैसे शक्तियां कही हैं वैसे ही विमानयान के उपयन्त्रों का इस सूत्र में भली प्रकार विवेचन किया जाता है । उसके अर्थबोधक दो पद यहां निरूपित किए हैं, उनमें आदिपद रीतिवाचक कहा है दूसरे पद से विमान के अङ्गोपयन्त्र क्रम से कहे हैं । इस प्रकार पदों का अर्थ कह दिया अब विशेष अर्थ कहा जाता है । जिन शक्तियों से विमान ३२ कार्यों का निर्वाहक होवे—होता है वे शक्तियां पूर्वसूत्र में भली प्रकार दिखलाई गई, उन कार्यों के उपकरण अङ्गोपयन्त्र विमान के यथाक्रम ३२ इस सूत्र में दिखलाए जाते हैं ॥ ५२—५६ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कथन क्रियासार ग्रन्थ में कहा है—

विमानाङ्गोपयन्त्राणि द्वात्रिंशदिति शास्त्रतः ।
यथोक्तं यन्त्रसर्वस्वे भरद्वाजेन धीमता ॥ ५७ ॥

तथैवात्र प्रवक्ष्यामि संग्रहेण यथामति ।
यन्त्रे विश्वक्रियादर्शश्शक्त्याकर्षणयन्त्रकः ॥ ५८ ॥
परिवेषक्रियायन्त्रं प्रोक्तं पश्चात् तथैव हि ।
अङ्गोपसंहारकाख्ययन्त्रं सर्वाङ्गसुन्दरम् ॥ ५९ ॥
पश्चाद् विस्तृतक्रियाख्यं ततो वैरूप्यदर्पणम् ।
पद्मचक्रमुखं नाम यन्त्रं पश्चाद् विचित्रकम् ॥ ६० ॥
कुण्टिणीशक्तियन्त्रं च तथा पुष्पिणिकं स्मृतम् ।
तथैव पिञ्जुलादर्शयन्त्रं पश्चान्मनोहरम् ॥ ६१ ॥
नालपञ्चकयन्त्रं च गुहागर्भाभिधं तथा ।
तमोयन्त्रं पञ्चवातस्कन्धनालमतः परम् ॥ ६२ ॥

विमान के अङ्गोपयन्त्र ३२ शास्त्र से जैसे 'यन्त्रसर्वस्व' में बुद्धिमान् भरद्वाज मुनि ने कहे हैं वैसे ही यहां भी संक्षेप में यथामति मैं कहूंगा, यन्त्र में विश्वक्रियादर्श, शक्त्याकर्षण यन्त्र, परिवेषक्रियायन्त्र, अङ्गोपसंहारयन्त्र, सर्वाङ्गसुन्दर, विस्तृतक्रियानामक यन्त्र फिर वैरूप्यदर्पण, पद्मचक्रमुखयन्त्र, फिर विचित्रक,कुण्टिणीशक्तियन्त्र, तथा पुष्पिणिक यन्त्र कहा है, पिञ्जुलादर्शयन्त्र पश्चात् मनोहर, नालपञ्चकयन्त्र, गुहागर्भनामक, तमोयन्त्र, पञ्चवातस्कन्धनाल ॥ ५७—६२ ॥

पश्चाद् वातस्कन्धनालकीलकं यन्त्रमीरितम् ॥ ६३ ॥
ततो विद्युद्यन्त्रमतश्शब्दकेन्द्रमुखाभिधम् ।
ततो विद्युद्द्वादशकयन्त्रं प्रोक्तं ततः परम् ॥ ६४ ॥
प्राणकुण्डलिनीनामयन्त्रं शक्त्युद्गमं तथा ।
वक्रप्रसारणं तद्वच्छक्तिपञ्जरकीलकम् ॥ ६५ ॥
शिरःकीलकयन्त्रं च शब्दाकर्षणयन्त्रकः ।
पटप्रसारणं नाम यन्त्रं तद्वद् दिशाम्पतिः ॥ ६६ ॥
पट्टिकाभ्रकयन्त्रं च सूर्यशक्त्याकर्षणम् ।
तथापस्मारधूमप्रसारणाख्यमतः परम् ॥ ६७ ॥
तथा स्तम्भनयन्त्रं चोक्तं पश्चात् तथैव हि ।
वैश्वानरयन्त्रमिति द्वात्रिंशतिः क्रमात् ॥ ६८ ॥
विमानस्याङ्गोपयन्त्राणीति शास्त्रविनिर्णयः ॥ इत्यादि ।

पश्चात् वातस्कन्ध नाल कील यन्त्र कहा है, फिर विद्युद्यन्त्र, शब्दकेन्द्रमुखनामक, फिर विद्युद्द्वाशक यन्त्र कहा है, फिर प्राणकुण्डलिनीनामक यन्त्र, शक्त्युद्गमयन्त्र, वक्रप्रसारणयन्त्र, फिर शक्ति पञ्जरकीलक, शिरःकीलकयन्त्र, शब्दाकर्षणयन्त्र, पटप्रसारणयन्त्र, दिशाम्पतियन्त्र, पट्टिकाभ्रकयन्त्र, सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्र, अपस्मारधूमप्रसारण यन्त्र, फिर स्तम्भनयन्त्र कहा, पश्चात् वैश्वानरनाल यन्त्र । ये विमान के क्रम से ३२ अङ्गोपयन्त्र हैं यह शास्त्र का निर्णय है ॥ ६३—६८ ॥

एवमुक्त्वा विमानस्याङ्गोपयन्त्राण्यथाक्रमम् ॥ ६९ ॥
तेषां स्वरूपविज्ञाननिर्णयार्थं यथामति ।
यथा भगवता प्रोक्तं भरद्वाजेन धीमता ॥ ७० ॥
तथैवात्र प्रवक्ष्यामि संग्रहाद् यन्त्रनिर्णयम् ।

इस प्रकार विमान के अङ्गोपयन्त्रों को यथाक्रम कहकर उनके स्वरूप विज्ञान के लिये यथामति जैसे श्रीमान् बुद्धिमान् भरद्वाज ने कहा है वैसे संक्षेप से यन्त्रों का निर्णय करूंगा ॥ ६९—७० ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है 'यन्त्र सर्वस्व' ग्रन्थ में—

अथाङ्गयन्त्राणि ॥ अ० ७ सू० १ ॥

बो० वृ०

यन्त्रसंख्याविमानाङ्गयन्त्राणां शास्त्रवित्तमैः ।
विश्वक्रियाकर्षणदर्पणयन्त्रादितः क्रमात् ॥ ७१ ॥
वैश्वानरनालयन्त्रान्तं द्वात्रिं (वि ?) शदिति स्मृतम् ।
तेषु विश्वक्रियाकर्षणदर्पणयन्त्रं विविच्यते ॥ ७२ ॥
चतुरश्रं वर्तुलं वा वितस्त्यैकप्रमाणतः ।
पीठं प्रकल्प्य विधिवद् दारुणा दर्पणेन च ॥ ७३ ॥
पश्चात् तन्मध्यप्रदेशे केन्द्रं कुर्याद् यथाविधि ।
सार्धाङ्गुलं विहायाथ मध्यकेन्द्राद् यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥
ईशान्यादिक्रमेणाष्टदिक्षु रेखान् प्रकल्पयेत् ।
प्रसारणोपसंहारकीलशङ्कून् दृढं यथा ॥ ७५ ॥
क्रमादेकैकरेखायां द्वौ द्वौ संस्थापयेत् ततः ।

विमानाङ्गयन्त्रों की यन्त्रसंख्या ऊंचे शास्त्रवेत्ताओं ने विश्वक्रियाकर्षणदर्पण यन्त्र से आरम्भ कर वैश्वानर नाल तक ३२ कहीं हैं। उनमें विश्व क्रियाकर्षणदर्पणयन्त्र का विवेचन किया जाता है। चौकोण या गोल एक बालिश्त माप से विधिवत् लकड़ी से और दर्पण से बनाकर पश्चात् उसके मध्य-प्रदेश में यथाविधि केन्द्र करे—बनावे डेढ अङ्गल छोड़कर मध्यकेन्द्र से यथाक्रम ईशान्य आदि क्रम से आठ दिशाओं में रेखाएं बनावे, खोलने और बन्द करने के पेचों के शङ्कुओं—चाबियों को दृढ़ लगावे क्रम से एक एक रेखा में दो दो को संस्थापित करे ॥ ७१–७५ ॥

मध्यकेन्द्रपुरोभागाद्रेखान्तं शास्त्रतः क्रमात् ॥ ७६ ॥
अन्तरावरणे पञ्चावर्तकीलसमन्वितान् ।
प्रसारणोपसंहारकीलकान्तर्गतान् दृढान् ॥ ७७ ॥
औदुम्बरारारनागपट्टिकाभिर्विराजितान् ।
अङ्गुलीनां षष्टितमप्रमाणेन प्रकल्पितान् ॥ ७८ ॥

विश्वोदरलोहमयान् दण्डनालान् यथाक्रमम् ।
पूर्वोक्तदिक्प्रदर्शनरेखासंस्थितशक्तिषु ॥ ७९ ॥

सन्धार्यावरणं कुर्यात् तस्योपरि ततः परम् ।
मूले मध्ये तथा चास्ये दण्डनालान्तरस्य हि ॥ ८० ॥

मध्य केन्द्र के सामने वाले भाग से लेकर रेखा तक शास्त्र के क्रम से अन्दर के आवरण में पांच घूमने वाली कीलों से युक्त खोलने बन्द करने की कीलों के अन्तर्गत और औदुम्बर—ताम्बे, आर—मुण्ड लोहे, आर—पित्तल, नाग-सीसे की पट्टिकाओं से युक्त ६ अङ्गुल माप बनाए हुए विश्वोदर लोहे के बने दण्ड नालों को यथाक्रम पूर्व कही दिशा को दिखाने वाली रेखाओं में स्थित शक्तियों में लगा कर उसके ऊपर आवरण करे फिर दण्डनाल के भीतरी भाग के मूल में तथा मध्य में—॥ ७९--८० ॥

रुचिरं भास्करं विश्वक्रियादर्शनदर्पणम् ।
सन्धारयेद् दृढं तत्तत्कीलकैश्शास्त्रमानतः ॥ ८१ ॥
सकीलविद्युद्यन्त्रं तु दण्डमूले नियोजयेत् ।
आरारनालसङ्क्लृप्तकीलसमावर्तकं पुनः ॥ ८२ ॥
कृत्वा समन्ताद् यन्त्रस्य विमाने स्थापयेद् दृढम् ।
कान्तकाचमणीन् पश्चान्मूले मध्ये तथोर्ध्वके ॥ ८३ ॥
दण्डान्तरे वा पार्श्वे वा तत्तत्स्थाने नियोजयेत् ।
किरणप्रकाशाकर्षणदर्पणं मूलकेन्द्रके ॥ ८४ ॥
वार्तुल्यं चषकाकारं दृढं संस्थापयेत् ततः ।
रूपाकर्षणयन्त्रं तु तत्पश्चाद्भागतो न्यसेत् ॥ ८५ ॥

सुन्दर तथा प्रकाश करने वाले विश्वक्रियादर्शन दर्पण को उन उन कीलों से शास्त्रमान से दृढ़ रूप में लगावे। दण्ड के मूल में कीलसहित विद्युद्यन्त्र लगावे। आरार ? आर—मुण्ड लोहे, पुनः आर—पित्तल की नाल से सम्बद्ध घूमने वाली कील को बना कर यन्त्र के सब ओर विमान में स्थापित कर दे। पश्चात्–कान्त कांच की बनी मणियों को मूल में मध्य में तथा ऊपरले भाग में दण्ड के अन्दर या पार्श्व में या उस उस स्थान में नियुक्त कर दे। किरण-प्रकाशाकर्षण दर्पण गोल पात्र जैसे को मूल केन्द्र में संस्थापित कर दे फिर रूपाकर्षण यन्त्र को तो उसके पिछले भाग में रखे ॥ ८१--८५ ॥

इति विश्वक्रियादर्शयन्त्रमुक्तं समासतः ।
तत्प्रयोगं प्रवक्ष्यामि संग्रहेण यथामति ॥ ८६ ॥
दण्डं प्रसारयेदादौ कीलीचालनतस्तथा ।
मुखे तस्य क्रियादर्शदर्पणं योजयेद् दृढम् ॥ ८७ ॥
तन्मूले पारदद्रावं मध्यकेन्द्रसमं यथा ।
कीलकात् संन्यसेत् तस्मिन् मणिमेकं नियोजयेत् ॥८८॥

रन्ध्रतन्त्रीन् द्रावशुद्धान् किरणाकर्षकान् ततः ।
एतन्मणिमुखात् पूर्वमण्यन्तं योजयेत् क्रमात् ॥ ८९ ॥
पुनस्तद्दण्डान्तरीयमध्यभागे दृढं यथा ।
योजयेद् भास्करादर्शं सार्षपे(फे ?)न सुशोधितम् ॥९०॥

इस प्रकार विश्वक्रियादर्श यन्त्र संक्षेप से कह दिया, उसका प्रयोग संक्षेप से यथामति कहूँगा । प्रथम कील चला कर दण्ड-नालदण्ड को खोल दे उसके मुख में क्रियादर्शदर्पण लगा दे, उसके मूल में पारे का द्राव मध्य केन्द्र के समान की-पेंच से स्थापित कर दे, उसमें एक मणि नियुक्त कर दे, द्राव से शुद्ध किरणाकर्षक सिद्ध तारों को इस मणिमुख से पूर्व मणि के अन्त तक युक्त कर दे फिर उस दण्ड के भीतरी मध्य भाग में--सरसों के तैल से शोधित भास्कर दर्पण—सूर्यकान्त को लगावे ॥ ८६-९० ॥

पूर्ववत्तन्मूलभागे विन्यसेद् रुचिकद्रवम् ।
तस्मिन्नेकमणिं कीलतन्त्रीयोगात् सुनिक्षिपेत् ॥ ९१ ॥
तथैव रुचिकादर्शं तन्मूले स्थापयेद् दृढम् ।
सूर्यस्य किरणाकर्षणदर्पणं मूलकेन्द्रके ॥ ९२ ॥
चषकाकारतस्सम्यग्वार्तुल्यं योजयेत् तथा ।
रूपाकर्षणयन्त्रं तत्पश्चाद्भागे प्रकल्पयेत् ॥ ९३ ॥
रुचिरद्रावकमणेः पूर्वभागे यथाविधि ।
विद्युद्यन्त्रं प्रतिष्ठाप्य तन्त्रीन् तस्मिन् योजयेत् ॥ ९४ ॥
रुचिरद्रावकमणौ ताभ्यां शक्तिं प्रसारयेत् ।
किरणाकर्षणादर्शो भास्करांशून् तथैव हि ॥ ९५ ॥

पूर्व की भांति उसके मूल भाग में सज्जीक्षार के द्राव को डाल दे उसमें एक मणि की कील—पच के तारों के योग से डाल दे, तथा सज्जीक्षार को उसके मूल में स्थापित करे, पात्र जैसे गोल सूर्याकर्षणदर्पण को मूल केन्द्र में लगावे तथा रूपाकर्षण यन्त्र को उसके पिछले भाग में युक्त करे, सज्जीक्षार के द्रावक की मणि के पूर्व भाग में यथाविधि विद्युद्यन्त्र को प्रतिष्ठित करके उसमें तारों को जोड़ दे। सज्जीक्षार की मणि में उन तारों के द्वारा शक्ति का प्रसार करे। किरणाकर्षण आदर्श भास्करांशु—सूर्य-किरणों को भी वैसे ही--॥ ९१-९५ ॥

सूर्यशक्त्यष्टभागं च विद्युद्द्वादशभागकम् ।
रुचिराद्रावकमणिमूलकात् पारदद्रवे ॥ ९६ ॥
प्रसारयेत् तन्त्रीमुखान्मणिकेन्द्रान्तमेव हि ।
तत्रत्यमणिमावृत्य तच्छक्तितन्तुमार्गतः ॥ ९७ ॥
विश्वक्रियाकर्षणदर्पणस्थानं विशन्ति हि ।
एवं शक्ती समाहृत्य स्थापयित्वास्य दर्पणे ॥ ९८ ॥

पश्चान्निर्धारयेत् सम्यग्गणितागमशोधनात् ।
यद्यद्देशरहस्यानि (णि ?) संग्रहेदिति निर्णितम् ॥९९॥
तत्तद्दिग्देशकेद्रान्तं रेखामार्गानुसारतः ।
गणितोक्तविधानेन लक्ष्यं कृत्वा यथाविधि ॥ १०० ॥

सूर्यशक्ति ? ८ भाग, विद्युत् ? १२ भाग, रुचिद्रावक–सञ्चोच्चार के द्रावक की मणि के मूल से पारे के द्राव में तारों के मुखों को मणि के केन्द्रपर्यन्त प्रसारित करदे, वहां की मणि को धर कर उसकी शक्ति तन्तुओं के मार्ग से विश्वक्रियाकर्षण दर्पण स्थान में प्रविष्ट हो जाती है, 'इस प्रकार दोनों शक्तियों को इकट्ठा करके या लेकर मुखदर्पण में स्थापित करके पश्चात् गणितशास्त्र के शोधन से निर्धारित करे जो जो देशों के रहस्य हों उन्हें संगृहीत करे यह निर्णय है। उस उस दिशा देश केन्द्र तक रेखा मार्गानुसार गणितशास्त्र में कहे विधान से लक्ष्य करके यथाविधि—॥ ९९–१०० ॥

कीलीस्सञ्चाल्य विधिवद् दण्डनालं प्रसारयेत् ।
यावत्कक्ष्यं कृतं पूर्वं तत्कक्ष्यान्तं यथाविधि ॥ १०१ ॥
विश्वक्रियाकर्षणदर्पणमूलस्थितं क्रमात् ।
तद्वामकेन्द्राद् विधिवच्छक्तिद्वयमतः परम् ॥ १०२ ॥
यावत्प्रमाणं संयोज्य तावन्मात्रं प्रसारयेत् ।
पूर्वोक्तदिग्देशकेन्द्रलक्ष्याभिमुखतस्ततः ॥ १०३ ॥
सन्धारयेन्मध्यकेन्द्रं दर्पणस्य यथाविथि ।
समसङ्कलनं कुर्यात् तयोरुभयकेन्द्रयोः ॥ १०४ ॥
तेन दिग्देशकेन्द्रान्तं व्याप्य शक्तिद्वयं ततः ।
तत्रत्यसर्ववस्तुप्रकाशको भवति स्वयम् ॥ १०५ ॥

कीलों—पेंचों को विधिवत् चला कर दण्डनाल को प्रसारित करदे जहां तक पूर्व कक्ष्य–सीमास्थान किया उस सीमास्थान तक यथाविधि विश्वक्रियाकर्षण दर्पण का मूल स्थित है उसके वाम केन्द्र से विधिवत् दोनों शक्तियां इससे आगे जितना प्रमाण हो युक्त कर उतना प्रसारित कर दे, पूर्वोक्त दिशा देश केन्द्र के लक्ष्य के सामने से दर्पण का मध्यकेन्द्र लगावे, उन दोनों केन्द्रों में समान सङ्कलन–मेल करे उससे दिशा देश केन्द्र तक दोनों शक्तियां व्याप कर—व्याप जाने के अनन्तर वहां की सब वस्तुओं का प्रकाश स्वयं हो जाता है ॥ १०१--१९५ ॥

पश्चान्निरुध्य तच्छक्ती पारद्रवे नियोजयेत् ।
ततो दिग्देशकेन्द्रान्तस्थितवस्तुविचारतः ॥ १०६ ॥
तद्द्रावको भवेन्नानाचित्रवर्णप्रभायुतः ।
सूर्यांशुशक्तिमाकृष्य पारद्रवमणौ ततः ॥ १०७ ॥
संयोजयेत् पञ्चदशलिङ्कमात्रं यथाविधि ।
पश्चात् पारद्रवे सम्यक् तच्छक्तिं सम्प्रवेशयेत् ॥ १०८ ॥

मणिप्रेरिततच्छक्ति द्रवशक्ति तथैव च ।
समाहृत्य विशेषेण रुचिकद्रवसंस्थिते ॥ १०९ ॥
मणौ सन्धारयेत् पश्चात् तच्छक्ति पूर्ववत् क्रमात् ।
रुचिकादर्शमूलस्थरेखाकेन्द्रे नियोजयेत् ॥ ११० ॥

पश्चात् उन दोनों शक्तियों को पकड़ कर पारे के द्राव में नियुक्त कर दे, फिर दिशा देश केन्द्र तक स्थित वस्तुओं के विचार से—प्रभाव से वह द्रावक नाना चित्ररंग वाली प्रभा से युक्त हो जाता है, सूर्यकिरणशक्ति को खींच कर पारे के द्राव वाली मणि में १५ लिङ्ग (डिग्री) माप में यथाविधि युक्त कर दे, पश्चात् पारे के द्राव में सम्यक् उस शक्ति को प्रविष्ट कर दे, मणिद्वारा प्रेरित उस शक्ति को तथा द्रवशक्ति को लेकर विशेषतः सज्जीखार द्राव में स्थित मणि में जोड़ दे, पश्चात् उस शक्ति को पूर्व की भांति सज्जीखार द्रावदर्पण के मूल में स्थित रेखा केन्द्र में नियुक्त करे ॥ १०९--११० ॥

तच्छक्ति रुचिकादर्शस्स्वस्मिन् सन्धारयेत् (सन्धार्यते ?) ततः ।
मुखदर्पणमारभ्य रुचिकान्तं यथाविधि ॥ १११ ॥
लक्ष्यं कृत्वा सप्ततिमादर्शनालात् क्रमं यथा ।
तथैव रूपाकर्षणयन्त्रकेन्द्रान्तमन्तरे ॥ ११२ ॥
लक्ष्यं प्रकल्पयेत् सम्यग् रुचिकादर्शकेन्द्रतः ।
पश्चात् पारद्रवमणिशक्ती संयोजयेत् समम् ॥ ११३ ॥
विश्वक्रियादर्शवामकेन्द्रलक्ष्यात् प्रयत्नतः ।
दिग्देशरेखाकेन्द्रान्तं गणितोक्तेन वर्त्मना ॥ ११४ ॥
पश्चात् संव्याप्य तच्छक्ती तत्रत्यानां स्फुटं यथा ।
कार्यकरणकर्तृ स्वरूपमाकृष्य वेगतः ॥ ११५ ॥

उक्त शक्ति को रुचिक आदर्श अपने में धारण कर लेता है, मुखदर्पण को आरम्भ कर रुचिक-दर्पण पर्यन्त यथाविधि लक्ष्य करके ७० वें आदर्श नाल से यथाक्रम वैसे ही रूपाकर्षण यन्त्र के केन्द्र तक अन्दर लक्ष्य को रुचिकादर्श केन्द्र से बनावे, पश्चात् क्रियादर्श वामकेन्द्र के लक्ष्य से प्रयत्न से दिशा देश रेखा केन्द्र तक गणित शास्त्र में कहे मार्ग से पारे के द्राववाली मणि की दोनों शक्तियों को समान रूप से युक्त करे पश्चात् वे दोनों शक्तियां व्याप कर वहां के कार्यकरण कर्ता के स्वरूप को वेग से आकर्षित करके—॥१११--११५ ॥

प्रतिबिम्बाकारयुक्ता सा शक्तिः पूर्ववत् पुनः ।
परां गतिमवाप्याथ मुखदर्पणकेन्द्रतः ॥ ११६ ॥
आगम्य रुचिकद्रावमणौ संविशति स्वयम् ।
तामाकृष्यातिवेगेन मणिशक्तिस्स्वभावतः ॥ ११७ ॥
स्वस्मिन् तत्प्रतिबिम्बस्वरूपं सन्धार्यते*स्फुटम् ।
पश्चात् तत्रत्यरुचिकद्रावकस्स्वप्रभावतः ॥ ११८ ॥

---

* व्यत्ययेन कर्मप्रत्ययः कर्तरि ।

प्रत्यक्षवत् तत्स्वरूपं विशदीक्रियते* स्फुटम् ।
रूपाकर्षणयन्त्रेण पश्चात् तत्प्रतिबिम्बकम् ॥ ११९ ॥
समादाय विशेषेण सप्तमाभ्रकदर्पणात् ।
प्रतिबिम्बस्वरूपेण कर्तृकार्यादिकान् क्रमात् ॥ १२० ॥

वह प्रतिबिम्बाकारयुक्त शक्ति पूर्व की भांति परा गति को प्राप्त होकर मुखदर्पण केन्द्र से आकर रुचिक द्राववाली मणि में स्वयं घुस जाती है, उसे मणिशक्ति स्वभावतः अतिवेग से अपने अन्दर आकर्षित कर प्रकट रूप में प्रतिबिम्बस्वरूप धारण कर लेती है, पश्चात् वहां के रुचिक द्राव स्वप्रभाव से प्रत्यक्ष जैसा उसके स्वरूप को विशद करता है, पश्चात् रूपाकर्षण यन्त्र से उस प्रतिबिम्ब को सातवें अभ्रक दर्पण से लेकर प्रतिबिम्बस्वरूप से कर्ता कार्य आदि को क्रम से—॥ ११६–१२० ॥

द्रष्टुं यथावद् योग्यं स्यात् पृथक् पृथक् स्वरूपतः ।
तस्मिन् दृष्ट्वा विमानस्य सम्भवापायसञ्चयान् ॥ १२१ ॥
विज्ञाय शास्त्रतस्सम्यक् सर्वापायनिवारणम् ।
कृत्वा निर्मूलमथ तद्विमानं प्रेषयेत् पुनः ॥ १२२ ॥
एतत्कार्योपयोगार्थं वर्णितं शास्त्रतः क्रमात् ।
विश्वक्रियाकर्षणदर्पणयन्त्रं समासतः ॥ १२३ ॥

पृथक् पृथक् स्वरूपतः यथावत् देखने योग्य हो जावे, उसमें विमान के सम्भावनीय—होने वाले अनिष्ट सञ्चयों को देख कर शास्त्र से सब अनिष्टों के निवारणप्रकार को जान कर पुनः निर्मूल कर उस विमान को चलावे। इस कार्य के उपयोगार्थ शास्त्र से क्रम से विश्वक्रियाकर्षण दर्पण यन्त्र संक्षेप से वर्णित किया है ॥ १२१–१२३ ॥

* व्यत्ययेन कर्तरि कर्मप्रत्ययः ।

पूना फोटो संख्या ४ वस्तुतः हस्तलेख प्रथम रजिस्टर कापी संख्या ६—

अथ शक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रनिर्णयः—अब शक्त्याकर्षण दर्पणयन्त्र का निर्णय है—

इत्युक्त्वा विश्वक्रियाकर्षणयन्त्रमतः परम् ।
शक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रमत्र प्रचक्षते ॥ १ ॥

इस प्रकार विश्वक्रियाकर्षण यन्त्र को कह कर इससे आगे शक्त्याकर्षण दर्पण यन्त्र यहां कहते हैं ॥ १ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

वियत्तरङ्गपवनरौद्रीसञ्जातशक्तयः ।
ऋतुकालानुसारेण खेटयानविनाशकाः ॥ २ ॥
तास्समाकृष्य वेगेन नाशयित्वा खमण्डले ।
यत् स्वशक्त्या पालयति व्योमयानान् विशेषतः ॥३॥
तच्छक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रमिति कीर्त्यते ।

वियत्तरङ्ग – आकाश के स्तरों मण्डलों और पवन रौद्री—वायु की वेग पंक्तियों से उत्पन्न शक्तियां ऋतुकाल के अनुसार विमान का विनाश करने वाली हैं। उन्हें अपने वेग से खींच कर आकाश में नष्ट करके जो अपनी शक्ति से विमानों की रक्षा करता है वह शक्त्याकर्षण दर्पण यन्त्र कहा जाता है ॥२-३॥

नारायणोपि—नारायण ने भी कहा है—

रौद्रवाताकाशवीचिसञ्जाता विषरूपकाः ॥ ४ ॥
शक्तयस्त्रिविधाः प्रोक्ता व्योमयानविनाशकाः ।
तन्निवृत्य स्वशक्त्या यद्विमानं पालयेत् स्वतः ॥ ५ ॥
तच्छक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रमित्युदीर्यते ।
यन्त्रस्वभावमुक्त्वैवं संग्रहेण यथामति ॥ ३ ॥
अथ तद्यन्त्ररचनाविधिरत्र निरूप्यते ।
वितस्तित्रयमायामं वितस्तिद्वयविस्तृतम् ॥ ७ ॥
पीठं प्रकल्पयेच्छुद्धक्रौञ्चलोहेन शास्त्रतः ।

वेगपंक्ति पूर्ण वात और आकाश के तरङ्गरूप मण्डलों से उत्पन्न तीन प्रकार की विषशक्तियां विमान को नष्ट करने वाली कही हैं। उन्हें अपनी शक्ति से निवृत्त करके जो विमान की स्वतः रक्षा करे वह शक्त्याकर्षण दर्पण यन्त्र कहा है। यन्त्र के स्वभाव को इस प्रकार संक्षेप से यथामति कह कर अब उस यन्त्र की रचनाविधि यहां निरूपित की जाती है। तीन बालिश्त लम्बा दो बालिश्त चौड़ा पीठ शुद्ध क्रौञ्च लोहे से शास्त्र से बनावे ॥ ४–७ ॥

द्वाविंशदङ्गुलायाममङ्गुलत्रयविस्तृतम् ॥ ८ ॥
सप्तविंशतिमादर्शकृतशङ्कुं यथाविधि ।
तन्मध्ये स्थापयेत् पश्चात् तस्य पूर्वदिशि क्रमात् ॥९॥
केन्द्रत्रयं कल्पयित्वा तथैवोत्तरदक्षिणे ।
द्वौ द्वौ केन्द्रौ तथा कुर्यात् समरेखाप्रमाणतः ॥ १० ॥
पूर्ववत् पश्चिमे केन्द्रत्रयं कुर्यात् यथाविधि ।
प्रदक्षिणावर्तकीलान् स्थापयेत् प्रतिकेन्द्रके ॥ ११ ॥
पश्चात् सप्तोत्तरशततमादर्शकृतान् दृढान् ।
नालान् सन्धारयेत् पश्चात् सतन्त्रीन् द्रवशोधितान् ॥१२॥

१२ अंगुल लम्बे ३ अंगुल चौड़े २७ वें आदर्श से किये हुए शङ्कु को उसके मध्य में यथाविधि स्थापित करके फिर उसकी पूर्वदिशा में क्रम से तीन केन्द्र बनाकर वैसे ही उत्तर दक्षिण में दो दो केन्द्र समान रेखा में करे, पूर्व की भांति पश्चिम में तीन केन्द्र यथाविधि करे। प्रत्येक केन्द्र में घूमने वाली कीलों—पेंचों को स्थापित करे पश्चात् १०७ वें आदर्श से बने दृढ़ नालों को तारोंसहित द्रव से शोधित लगावे—॥ ८–१२ ॥

प्रदक्षिणावर्तकीलमूलस्थानावधि क्रमात् ।
च (छ ?) षकाकारवत्पञ्चदशांगुलप्रमाणतः ॥ १३ ॥
पूर्वोक्तदर्पणात् सम्यक्कृतपात्रं यथाविधि ।
संस्थापयेच्छङ्कुमूलस्थकीलकोपरि पूर्वके ॥ १४ ॥
वितस्त्यायामसङ्क्लृप्तं विस्तृते तथाविधम् ।
तथैवादर्शगोलं च छिद्रत्रयसमन्वितम् ॥ १५ ॥
स्थापयेन्मध्यकेन्द्रस्थकीलकोपरि पूर्ववत् ।
द्वादशांगुलायामं द्वादशांगुलविस्तृतम् ॥ १६ ॥
त्रिकोणकुड्याकारेण कृतमादर्शतः क्रमात् ।
तृतीयकेन्द्रस्थकीलोपरि संस्थापयेत् तथा ॥ १७ ॥
कान्तोदुम्बरसम्मिश्रचक्रद्वयं क्रमात् ।

घूमने वाली कील की अवधि तक। पात्र—लोटा गिलास के आकार जैसा १५ अंगुल माप में पूर्वोक्त दर्पण से सम्यक् यथाविधि बने पात्र को शंकुमूलस्थ पूर्व कील—पेंच के ऊपर बालिश्त भर लम्बा

चौड़ा सिद्ध वैसा ही आदर्श गोल तीन छिद्रों से युक्त मध्य केन्द्रस्थ पेंच के ऊपर पूर्व की भांति स्थापित करे, १२ अंगुल लम्बे १२ अंगुल चौड़े त्रिकोण भित्ति के आकार में आदर्शदर्पण से बने हुए को तीसरे केन्द्र में स्थित पेंच के ऊपर संस्थापित कर दे, तथा कान्त—अयस्कान्त लोहे, उदुम्बर अर्थात् तांबे से मिश्रित दो चक्रदण्ड क्रम से—॥ १३-१७ ॥

पूर्वोक्तादर्शगोलस्य गर्भकेन्द्रे यथाविधि ॥ १८ ॥
सन्धारयेद् यथा सम्यग् भवेत् संघर्षणं तयोः ।
पश्चात् तत्पश्चिमे भागे वातपादर्पणात् कृतम् ॥ १९ ॥
पिण्डमेकं विस्तृतास्यमित्थं मूलस्थकीलके ।
स्थापयेद् विधिवत् पश्चात् पञ्चस्रोतोमुखं दृढम् ॥ २० ॥
शक्तिपादर्पणकृतमन्तःप्रवाहिकं तथा ।
मूलं सूक्ष्मं तथा मध्ये वर्तुलं कण्ठसूक्ष्मकम् ॥ २१ ॥
विस्तृतास्यं मध्यकीलोपरि संस्थापयेत् ततः ।
तदत्यन्तकीलके तद्वद् भ्राजस्वद्रावकं न्यसेत् ॥ २२ ॥
अथ तद्दक्षिणपार्श्वस्थितकीलद्वये ततः ।
स्थापयेदन्योन्यसंघर्षणचक्रत्रयं क्रमात् ॥ २३ ॥
तथैवोदीचीदिशिस्थकीलद्वयमध्यमे ।
कान्तपाराभ्रसत्त्वोर्जकं चुकद्रावकं न्यसेत् ॥ २४ ॥
पश्चान्मणीन् यथाशास्त्रं तत्तत्स्थाने नियोजयेत् ।

पूर्वोक्त आदर्श गोल के गर्भ केन्द्र में यथाविधि लगा दे, जिससे उन दोनों का संघर्षण हो, पश्चात् उसके पश्चिम भाग में वातपादर्पण से बने विस्तृत मुख वाले एक पिण्ड को मूलस्थ पेंच में विधिवत् स्थापित कर दे, पुनः पांच स्रोत मुख वाले दृढ़ शक्तिपा दर्पण से बने अन्दर बहने वाले सूक्ष्म मूल बीच में गोल सूक्ष्म कण्ठ वाले विस्तृत मुख वाले को मध्य कील के ऊपर रख दे, उसी भांति उसके अन्तिम कील पर भ्राजस्वद्रावक ?—गन्धक द्राव ? डाल दे और उसके दक्षिण में पार्श्वस्थित दो कीलों में स्थापित करे, पश्चात् अन्योऽन्य—परस्पर तीन संघर्षण चक्र स्थापित करे, वैसे ही उत्तर दिशा में दो कीलों के मध्य में कान्त—अयस्कान्त या सूर्यकान्त ?, पारा, अभ्रक के सत्त्व से कञ्चुक द्राव—सांप की केंचुली के द्राव ? या चुक—चुक्र—अम्लवेतस के द्राव में डाल दे, फिर मणियों को यथाशास्त्र उस उस स्थान में नियुक्त करे ।' १८-२४ ॥

उक्तं हि मणिरत्नाकरे—कहा ही मणिरत्नाकर ग्रन्थ में—

भारद्वाजो साञ्जनिकस्सौर्यपिङ्गलको तथा ॥ २५ ॥
शक्तिपञ्जरकः पञ्चज्योतिर्गर्भं इति क्रमात् ।
मणयः षड्विधा ज्ञेयाश्शक्त्याकर्षणयन्त्रके ॥ २६ ॥ इत्यादि ॥

भारद्वाज, साञ्जनिक, सौर्य, पिङ्गलक, शक्तिपञ्जरक, पञ्चज्योतिर्गर्भ, ये क्रम से छः प्रकार की मणियां शक्त्याकर्षण यन्त्र में जाननी चाहिएं ॥ २५-२६ ॥

स्थाननिर्णयमाह स एव—वह ही स्थाननिर्णय कहता है—

शङ्कुमूलस्थच (छ ?) षके न्यसेत् सौम्यमणिं तथा ।
कुड्यत्रिकोणमध्ये तु मणिं साञ्जनिकं न्यसेत् ॥ २७ ॥
विस्तृतास्यादर्शपिण्डे न्यसेत् पैङ्गलकं मणिम् ।
नालदण्डस्थछिद्रेऽथ भारद्वाजमणिं तथा ॥ २८ ॥
आजस्वद्रावके पञ्चज्योतिर्गर्भमणिं न्यसेत् ।
कान्तपाराभ्रोर्जकं चुकद्रावे शक्तिपञ्जरमिति ॥ २९ ॥
एवं मणीन् स्थापयित्वा तत्तत्स्थाने यथाविधि ।
आदर्शनालसंयुक्तान् सर्वकीलान्तरे क्रमात् ॥ ३० ॥

सौम्य मणि को शंकुमूलस्थ पात्र में डाल दे, साञ्जनिक मणि को भित्तित्रिकोण के मध्य में रख दे, पैङ्गलक मणि को विस्तृतास्य आदर्श पिण्ड में धर दे, पञ्चज्योतिर्गर्भ मणि को आजस्व द्रावक में रखदे, शक्तिपञ्जर मणि को कान्त पारे अभ्रक से पूर्ण अम्लवेतस द्राव में रखे । इस प्रकार उस उस स्थान में यथाविधि मणियों को आदर्शनाल सहित सब कीलों के अन्दर क्रम से स्थापित करके—॥ २७-३० ॥

तन्त्रीन् सन्धारयेत् पश्चान्मूलकेन्द्राद् यथाक्रमम् ।
पश्चात् सञ्चालयेच्चक्रत्रयकीलं यथाविधि ॥ ३१ ॥
तेन दर्पणगोलस्थपिण्डयोरुभयोः क्रमात् ।
परस्परघर्षणं स्यादिति वेगात् स्वभावतः ॥ ३२ ॥
तस्मात् सञ्जायते शक्तिश्शतकक्ष्योष्णमानतः ।
अथ तच्छक्तिमादाय स्थापयित्वा यथाक्रमम् ॥ ३३ ॥
मणौ साञ्जनिके पश्चात् तन्त्रिभ्यां नालमार्गतः ।
संयोजयेत् ततश्शक्तिस्तन्मणौ लयमेधते ॥ ३४ ॥
मणिगर्भस्थशक्त्या सा मिलित्वाथ स्वयं पुनः ।
निस्सरेन्मणिगर्भस्थमुखकेन्द्राद् विशेषतः ॥ ३५ ॥

पश्चात् मूल केन्द्र से यथाक्रम तारों को जोड़ दे, पश्चात् तीन चक्रों की कील को यथाविधि चलावे उससे दर्पण गोल में स्थित दो पिण्डों का परस्पर घर्षण अति वेग से स्वभाव से हो जावे उससे सौ दर्जे की उष्णता मान से शक्ति उत्पन्न हो जाती है फिर उस शक्ति को लेकर यथाक्रम स्थापित करके पश्चात् दो तारों से नालमार्ग द्वारा साञ्जनिक मणि में संयुक्त करे फिर वह शक्ति उस मणि में लय को प्राप्त हो जाती है । मणिगर्भस्थ शक्ति से वह मिलकर पुनः स्वयं मणिगर्भस्थ मुख केन्द्र से विशेषतः निकल जावे ॥ ३१-३५ ॥

तमाकृष्य यथाशास्त्रं नालतन्त्रीमुखात् पुनः ।
संयोजयेत् सौरमणौ पूर्ववत् सप्रमाणतः ॥ ३६ ॥

ततस्तन्मणिगर्भस्थशक्त्या सा भिद्यते क्रमात् ।
पञ्चस्रोतस्स्वभावेन व्याप्य तत्रैव तिष्ठति ॥ ३७ ॥
तत्रत्यपञ्चस्रोतस्सु एकस्रोतस्ततः परम् ।
योजयेन्नालतन्त्रीभ्यां भारद्वाजमणौ क्रमात् ॥ ३८ ॥
तथैव पिङ्गलमणावेकस्रोतः प्रमाणतः ।
पञ्चज्योतिर्गर्भमणावेकस्रोतस्तथैव हि ॥ ३९ ॥
एकस्रोतोमणौ शक्तिपञ्जराख्ये नियोजयेत् ।
एवं प्रवेशिताः पञ्च शक्तयो मणिषु स्वतः ॥ ४० ॥

उसे फिर नाल तार मुख से शास्त्रानुसार खींच कर पूर्ववत् सप्रमाण सौर मणि में युक्त करे फिर वह मणिगर्भस्थ शक्ति से क्रमशः विभक्त हो जाती है पञ्चस्रोत स्वभाव से वहां पर ही व्याप कर रहती है, वहां पांच स्रोतों में उससे आगे एक स्रोत को दो नालतारों से भारद्वाज मणि में जोड़ दे, उसी प्रकार एक स्रोत तरङ्ग पिङ्गल मणि में एक स्रोत पञ्चज्योतिर्गर्भमणि में पुनः एक स्रोत शक्तिपञ्जर नामक मणि में नियुक्त कर दे। इस प्रकार मणियों में प्रवेश कराई हुई शक्तियां स्वतः—॥ ३९–४० ॥

एकैकमणिगर्भस्थशक्तिमाकृष्य वेगतः ।
बहिःप्रसारणं पश्चात् कुर्वन्ति स्वेन तेजसा ॥ ४१ ॥
मणिसञ्जातशक्तीनां नामान्यत्र यथाक्रमम् ।
यथोक्तमत्रिणा साक्षान्निरूप्यन्ते तथैव हि ॥ ४२ ॥
राजा मौत्विकचुण्डीरशून्यगर्भविषोदराः ।
इत्येते मणिसञ्जातशक्तिनामान्यथाक्रमात् ॥ ४३ ॥
एतच्छक्तीस्समाहृत्य भ्राजस्वद्रावके क्रमात् ।
पूर्ववन्नालतन्त्रीभ्यां योजयेत् सप्रमाणतः ॥ ४४ ॥
इमा मणिसमुद्भूतशक्तयः स्वेन तेजसा ।
भ्राजस्वद्रावकं प्राप्य त्रेधा तत्र प्रभिद्यते* ॥ ४५ ॥

एक एक मणि के गर्भ में स्थित शक्ति को वेग से खींच कर पश्चात् तेज से बाहिर प्रसारित कर देती है। मणियों में उत्पन्न शक्तियों के नामों को यथाक्रम जैसे अत्रि ने साक्षात् कहे हैं वैसे ही यहां निरूपित किये जाते हैं। जो कि राजा, मौत्विक, चुण्डीर, शून्य, गर्भ; विषोदर ये मणियों से उत्पन्न शक्तियों के नाम यथाक्रम हैं। इन शक्तियों को लेकर क्रम से भ्राजस्व द्रावक ?—गन्धकद्राव ? में पूर्व की भांति दो नालतारों द्वारा सप्रमाण जोड़ दे। मणि से उत्पन्न ये शक्तियां अपने तेज से भ्राजस्व द्रावक को प्राप्त कर तीन स्थानों में भिन्न भिन्न हो जाती हैं ॥ ४१–४५ ॥

अत्रिणोक्तप्रकारेण नाम तासां निरूप्यते ।
मार्तण्डरोहिणी भद्रा चेति नामान्यथाक्रमम् ॥ ४६ ॥

---

* वचनव्यत्ययोऽत्र ।

मार्तण्डशक्तिमाकृष्य पश्चाच्छास्त्रविधानतः ।
संयोजयेत् कान्तपाराभ्रोर्जकञ्चुकद्रावके ॥ ४७ ॥
तत्रत्यकान्तशक्त्या सा मिलित्वा चञ्चला सती (मति?) ।
अतिवेगात् समुड्डीय गगनाभिमुखी भवेत् ॥ ४८ ॥
तां समाहृत्य विधिवन्नालतन्त्रीमुखात् पुनः ।
विस्तृतास्यादर्शपिण्डगर्भकेन्द्रे नियोजयेत् ॥ ४९ ॥
सूर्यांशून् खतरङ्गस्थशक्तिगर्भान् यथाविधि ।
सच्छिद्रनालदण्डस्योर्ध्वनालात् ततः परम् ॥ ५० ॥

अत्रि के कहे प्रकार से उनका नाम कहा जाता है। मार्तण्ड, रौहिणी, भद्रा ये यथाक्रम हैं। मार्तण्डशक्ति को खींच कर पश्चात् शास्त्रविधान से कान्त पारा अभ्रक पूर्ण केंचुलीद्राव या अम्लवेतस-द्राव में युक्त कर दे, वहां की कान्तशक्ति से मिल कर चञ्चल हुई अतिवेग से उड कर गगनाभिमुखी हो जावे। फिर उसे लेकर विधि नालतार के मुख से विस्तृतास्य आदर्श पिण्ड के गर्भकेन्द्र में जोड़ दे, आकाशतरङ्गों—आकाशमण्डलों में स्थित शक्तिगर्भ वाली सूर्यकिरणों को यथाविधि छिद्रसहित नाल-दण्ड के ऊपर वाले नाल से—॥ ४६–५० ॥

समाहृत्य विशेषेण तत्रैव स्थापयेद् दृढम् ।
पश्चात् तन्नालमूलस्थकेन्द्रमार्गात् प्रमाणतः ॥ ५१ ॥
विस्तृतास्यादर्शपिण्डमुखकेन्द्रे प्रवेशयेत् ।
सूर्यांशुशक्तिततत्पिण्डं पश्चात् संव्याप्य वेगतः ॥ ५२ ॥
तद्गर्भस्थितमार्तण्डशक्त्या सम्मिलिता स्वयम् ।
आकाशाभिमुखी भूत्वा परिभ्राम्यति वर्तुलम् ॥ ५३ ॥
तां समाहृत्य वेगेन विमानखपथि क्रमात् ।
वियत्तरङ्गप्रवाहमुखमध्ये नियोजयेत् ॥ ५४ ॥
एवं कृतेथ तच्छक्तिर्व्योमयानविनाशकम् ।
आकाशवीचीसञ्जातविषशक्तिं समूलतः ॥ ५५ ॥
आकृष्य पीत्वा वेगेन विमानं रक्षति स्वयम् ।

—लेकर विशेषतः वहीं पर दृढ़ स्थापित करे, पश्चात् नालमूल में स्थित केन्द्रमार्ग से प्रमाण से विस्तृतास्य आदर्श पिण्डमुख के केन्द्र में प्रविष्ट कर दे, सूर्य किरणशक्ति उस पिण्ड को व्याप्त कर वेग से उसके गर्भ में स्थित मार्तण्डशक्ति से मिली हुई स्वयं आकाशाभिमुखी होकर गोलरूप में घूमती है उसे वेग से लेकर विमान के आकाशमार्ग में क्रमशः आकाशतरङ्गों के प्रवाहमुख के मध्य में नियुक्त करे। ऐसा करने पर वह शक्ति आकाशतरंग से उत्पन्न विमानविनाशक विषशक्ति को समूलतः स्वयं वेग से सर्वथा खींच पीकर विमान की रक्षा करती है ॥ ५१–५५ ॥

अथ तद्रोहिणीशक्तिं समाहृत्य च पूर्ववत् ॥ ५६ ॥

संयोजयेत् कान्तपाराभ्रोर्जकंचुकद्रावके ।
तस्य पाराभ्रशक्तिभ्यां मिलित्वा सातिवेगतः ॥ ५७ ॥
उड्डीयोड्डीय वेगेन गगनाभिमुखी भवेत् ।
विधिवत् तां समाहृत्य नालतन्त्रीमुखात् पुनः ॥ ५८ ॥
शङ्कुमूलस्थच (छ ?) षकमूलकेन्द्रे नियोजयेत् ।
तथा विमानसञ्चाररेखामार्गाद् यथाविधि ॥ ५९ ॥
तत्रत्यवातावृत्तस्थशक्तिगर्भान् सुसूक्ष्मकान् ।
आदित्यकिरणान् पश्चाद् यथाशास्त्रं मरुन्मुखात् ॥६०॥
समाहृत्य प्रमाणेन च(छ ?)षकास्ये नियोजयेत् ।

उस रोहिणी शक्ति को लेकर कान्त पारा अभ्र से पूर्ण कञ्चुकद्राव में पूर्व की भांति युक्त करे उसकी पारा अभ्र शक्तियों से वेग से मिल कर वेग से उड उड कर आकाश के अभिमुख हो जावे उसे विधिवत् नालतार के मुख से लेकर शंकुमूलस्थित पात्रमूल केन्द्र में युक्त करे तथा विमान के सञ्चार रेखा मार्ग से यथाविधि वहां के वायुचक्र—वायुमण्डल में स्थित शक्तिगर्भ से सूक्ष्म सूर्यकिरणों की वायुमुख से यथाशास्त्र प्रमाण से लेकर पात्र के मुख में नियुक्त कर दे ॥ ५६--६० ॥

ततस्समग्रं तच्छक्तिर्व्याप्य तं स्वेन तेजसा ॥ ६१ ॥
तत्रत्यरोहिणीशक्त्या मिलित्वा वेगतस्स्वयम् ।
गगनाभिमुखी भूत्वा वेगात् सम्भ्राम्यति स्वयम् ॥६२॥
तत्रैव स्थाप्य तच्छक्तिं तन्त्रिभ्यां सप्रमाणतः ।
उदीचीपार्श्वकीलस्थमूलकेन्द्रान्तरात् पुनः ॥ ६३ ॥
शङ्कुमूलस्थच (छ ?) षकमध्यकेन्द्रे नियोजयेत् ।
तद्गर्भस्थितरौहिण्या मिलित्वा वेगतस्स्वयम् ॥ ६४ ॥
आकाशाभिमुखी भूत्वा परिभ्राम्यति तेजसा ।
विधिवत् तां समाहृत्य विमानपथि क्रमात् ॥ ६५ ॥
वातावर्तमुखे पश्चाद् योजयेन्नालमार्गतः ।

फिर उस समग्र पात्र को वह शक्ति अपने तेज से व्याप्त कर वहां की रौहिणी शक्ति से स्वयं वेग से मिल कर आकाश के अभिमुख होकर वेग से घूमती है वहां की उस शक्ति को दोनों तारों से सप्रमाण स्थापित करके उत्तर दिशा के पार्श्वकीलस्थ मूलकेन्द्र से फिर शंकुमूलस्थ पात्र के मध्य केन्द्र में नियुक्त करे। उसके गर्भ में स्थित रोहिणी से वेग से स्वयं मिल कर आकाश के अभिमुख होकर तेज से घूमती है उसे विमान के आकाशमार्ग में लेकर पश्चात वायु के घूममुख में नालमार्ग से युक्त कर दे ॥ ६१--६५ ॥

तच्छक्तिर्वातसम्बन्धविषशक्तिं समूलतः ॥ ६६ ॥
नाशयित्वा खेटयानं स्वभाद् रक्षति स्वयम् ।
तथैव भद्रामाकृष्य सुरघानालतः क्रमात् ॥ ६७ ॥

संयोजयेत् कान्तपाराभ्रोर्जकंचुकद्रावके ।
तस्योर्जकञ्चुकशक्त्या सा मिलित्वातिवेगतः ॥ ६८ ॥
आकाशाभिमुखी भूत्वा चक्रवद् भ्राम्यति स्वयम् ।
ततस्तच्छक्तिसमाहृत्य कुड्यमूलस्थकेन्द्रके ॥ ६९ ॥
सतन्त्रीनालमार्गेण योजयेद् विधिपूर्वकम् ।
पश्चात् खे यानसञ्चारमार्गात् प्रमाणतः ॥ ७० ॥
तत्र रौद्रीसम्बन्धशक्तियुक्तान् सुसूक्ष्मकान् ।
समाहृत्यार्ककिरणान् पिङ्गलामार्गतः क्रमात् ॥ ७१ ॥

वह शक्ति वात सन्बन्ध विषशक्ति को समूलतः नष्ट करके स्वयं विमान की रक्षा करती है, उसी प्रकार सुरघा नाल से भद्रा का क्रम से खींच कर कान्त पारा अभ्रक पूर्ण कञ्चुकद्राव में युक्त करदे, उसके ऊर्ज कञ्चुक शक्ति से वह मिल कर अतिवेग से आकाश के अभिमुख होकर चक्र की भांति स्वयं घूमती है फिर उस शक्ति को लेकर भित्तिमूलस्थ केन्द्र में तारोंसहित नालों के मार्ग से विधिपूर्वक युक्त कर दे पश्चात् आकाश में विमान के सञ्चाररेखामार्ग से प्रमाण से वहां के रौद्री सम्बन्ध शक्तियुक्त सूक्ष्म सूर्य-किरणों को पिञ्जुलामार्ग से—॥ ६६--७१ ॥

सच्छिद्रनालाधः केन्द्रमूले नियोजयेत् ।
दण्डकेन्द्रात् पुनस्तन्त्रीनालमार्गात् प्रमाणतः ॥ ७२ ॥
समाकृष्य किरणशक्तिं सम्यग् यथाविधि ।
त्रिकोणादर्शकुड्याधो दक्षकेन्द्रमुखे न्यसेत् ॥ ७३ ॥
पश्चात् समग्रं तत्कुड्यं व्याप्य वेगेन सा क्रमात् ।
तच्छक्त्याकर्षणात् तस्यां मिलित्वा भ्राम्यति स्वयम् ॥७४॥
पश्चात् तां तन्त्रिनालेन सप्रमाणाद् यथाविधि ।
समादाय विशेषेण बाह्यवायुविवर्जिताम् ॥ ७५ ॥

छिद्रसहित नालों के नीचे केन्द्रमूल में नियुक्त करे, फिर दण्डकेन्द्र से तन्त्रीनालमार्ग से प्रमाण से किरणशक्ति को यथाविधि सम्यक् खींचकर त्रिकोणदर्पण की भित्ति से नीचे केन्द्रमुख में लगावे पश्चात् वह समग्र उस भित्ति को वेग से क्रम से व्याप कर उस शक्ति के आकर्षण से उस में मिलकर स्वयं घूमती है पश्चात् उस शक्ति को तारों के नाल से सप्रमाण यथाविधि विशेषतः बाह्य वायु से रहित होकर—॥७२–७५ ॥

कुड्यदक्षिणपार्श्वस्थमुखकेन्द्रे नियोजयेत् ।
तद्गर्भकुड्यादुड्डीय तच्छक्त्या मिलिता सती ॥ ७६ ॥
परिभ्राम्यति वेगेन गगनाभिमुखं यथा ।
तामादायाथ विधिवद् विमानखपथि क्रमात् ॥ ७७ ॥

रौद्रचार्वतमुखे सम्यग् योजयेन्नालमार्गतः ।
एवं कृतेथ तद्रौद्रीविषशक्ति समूलतः ॥ ७८ ॥
स्वतेजसा निवार्याथ विमानं रक्षति स्वयम् ।
एवं शक्त्याकर्षणदर्पणयन्त्रं च तत्क्रियाम् ॥ ७९ ॥
यथाशास्त्रं निरूप्याथ संग्रहेण यथाविधि ।
परिवेषक्रियायन्त्रमुच्यतेत्र यथाक्रमम् ॥ ८० ॥

भित्ति के दक्षिणपार्श्वस्थ मुखकेन्द्र में नियुक्त करे । उस गर्भभित्ति से—मध्यभित्ति से उडकर उस शक्ति से मिली हुई गगनाभिमुख वेग से घूमती है फिर उसे विधिवत् लेकर विमान के आकाशमार्ग में क्रम से रौद्री के घूममुख में भली प्रकार नालमार्ग से युक्त करे, ऐसा करने पर वह रौद्री विषशक्ति को समूलतः अपने तेज से निवृत्त करके स्वयं विमान की रक्षा करती है । इस प्रकार शक्त्याकर्षण दर्पणयन्त्र और उसकी क्रिया को शास्त्रानुसार संक्षेप से यथाविधि निरूपित करके परिवेषक्रियायन्त्र यहां यथाक्रम कहा जाता है ॥ ७६–८० ॥

परिवेषक्रियायन्त्र विचार :—परिवेषक्रियायन्त्र का विचार करते हैं—

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

पञ्चशक्तिसमायोगात् परिवेषो यथा भवेत् ।
तथाम्बरे विमानस्य कृत्वा शास्त्रविधानतः ॥ ८१ ॥
अविनाभावतस्तेनार्ककिरणविमनयोः ।
परिवेषमुखेनैव संयोज्याथ परस्परम् ॥ ८२ ॥
विधायाधीनतां सूर्यकिरणानां यथाविधि ।
विमानाकर्षणं रेखामार्गातिक्रमणं विना ॥ ८३ ॥
यथा भवेत् तथा सम्यग् यः करोति स्वभावतः ।
परिवेषक्रियायन्त्र इति तत्सम्प्रचक्षते ॥ ८४ ॥

पांच शक्तियों के सम्बन्ध से विमान का आकाश में परिवेष जिससे हो जावे वैसे शास्त्र-विधान से अनिवार्य भाव से करके सूर्यकिरणों और विमान के बीच में परिवेष मुख से ही परस्पर संयुक्त करके सूर्यकिरणों को यथाविधि रेखामार्ग के अधीन करके अतिक्रमण किए विना विमान का आकर्षण जिससे हो जावे वैसे भली प्रकार जो स्वभावतः करता है वह परिवेषक्रियायन्त्र है ऐसा कहते हैं ॥८१-८४॥

नारायणोपि—नारायण ने भी कहा है—

पञ्चशक्तिप्रयोगेण (न ?) परिवेषं स्वभावतः ।
कल्पयित्वा विमानस्य तेनार्ककिरणान् क्रमात् ॥ ८५ ॥
समाकृष्य विशेषेण विमानोपरि वेगतः ।
संयोज्य पश्चात् तत्सूर्यकिरणाधीनतां क्रमात् ॥ ८६ ॥
कृत्वा सम्यग् विमानानां स्वपथातिक्रमणं विना ।
यत्प्रयच्छति सञ्चारे वेगं तच्छास्त्रतः स्फुटम् ॥ ८७ ॥

परिवेषक्रियायन्त्रमिति संकीर्त्यते बुधैः ॥ ८८ ॥ इति

पांचशक्तियों के प्रयोग से विमान के परिवेष को स्वभावतः बनाकर उस से सूर्यकिरणों को क्रम से पूर्णरूप से खींचकर विमान के ऊपर वेग से संयुक्त करके पश्चात् उन सूर्यकिरणों की अधीनता को क्रम से करके—सूर्यकिरणों को क्रम से अधीन करके सम्यक् विमानों के स्वपथ के अतिक्रमण के विना जो सञ्चार में वेग प्रदान करता है वह शास्त्र से स्फुट परिवेषक्रियायन्त्र विद्वानोंद्वारा कहा जाता है ॥ ८५–८८ ॥

सौदामिनीकलायामपि—सौदामिनीकला में भी कहा है—

सू० क्षजलभहशक्तिसंयोगात् किरणाकर्षणम् ॥ इति ।

क्ष ज ल भ ह शक्तियों के संयोग से किरणों का आकर्षण होता है।

गोपथकारिका–गोपथकारिका है—

शिरीषमेघभूताराकाशानां शक्तयः क्रमात् ।
शास्त्रेस्मिन् क्ष ज ल भ ह वर्णैस्साङ्केततस्स्मृतः ॥ ८९ ॥
आसां सम्मेलनं कृत्वा प्रयोगादम्बरे स्फुटम् ।
परिवेषो† भवेत्सम्यगादित्यस्य यथा घनैः ॥ ९० ॥
तेनार्ककिरणाकर्षणं भवेन्नात्र संशयः ॥ इति

शिरीष ?–इन्द्र ?–विद्युत् ?, मेघ, भू–पृथिवी, तारा–ग्रह, आकाश इन पांचों की शक्तियां क्रम से इस शास्त्र में क्ष, ज, ल, भ, ह वर्णों–अक्षरों से सङ्केतकृत कही हैं। इनका सम्मेलन करके प्रयोग से आकाश में सूर्य के घनों ?—किरणों ? से परिवेष हो जावे, तिस से किरणों का आकर्षण हो जावे इस में सन्देह नहीं ॥ ८९–९० ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

शिरीषशक्तेर्द्वौ भागौ घनस्याष्टावितीरितः ॥ ९१ ॥
भूशक्तेः पञ्च नक्षत्रशक्तेस्सप्त तथैव हि ।
दशान्तरिक्षशक्तेः स्यादिति शास्त्रविनिर्णयः ॥ ९२ ॥
शक्त्याकर्षणयन्त्रेणैव सम्यग् यथाविधि ।
समाहृत्य विशेषेण निर्वातं स्थापयेत् क्रमात् ॥ ९३ ॥
पश्चात्तद्वयोमयानोर्ध्वकेन्द्रादशान्तरे स्फुटम् ।
प्रतिबिम्बितसूर्यस्य प्रकाशकिरणैस्सह ॥ ९४ ॥
संयोजयेत् तत्पूर्वकं पञ्चशक्तीर्यथाविधि ।
एवं कृतेम्बरे सम्यक् परिवेषो भवेद् ध्रुवम् ॥ ९५ ॥
तेनाम्बरमणेश्शक्तिकिरणाकर्षणं क्रमात् ।
वेगाद् भवति तान् पश्चाद् विमानोपरिशाश्वतः ॥ ९६ ॥
परिवेषमुखेनैव योजयेच्चेद् यथाविधि ।

---

† षोत्स ?

भवेत् तत्सूर्यकिरणैस्सूत्रबद्धाण्डजादिवत् ॥९७॥
विमानाकर्षणं सम्यगिति शास्त्रविनिर्णयः । इत्यादि ।

शिरीषशक्ति के दोभाग मेघशक्ति के आठ भाग कहे हैं भू-पृथिवी शक्ति के पांच भाग तारा-शक्ति के सात आकशशक्ति के दश भाग हों, यह शास्त्र का निर्णय है, शक्त्याकर्षण यन्त्र से ही भली प्रकार यथाविधि इन्हें विशेषतः खींच कर निर्वात स्थापित करे। पश्चात् विमान के ऊपर केन्द्र आदर्श के अन्दर प्रतिबिम्बित सूर्य की प्रकाशकिरणों के साथ पूर्वोक्त पांच शक्तियों को संयुक्त कर दे ऐसा करने पर आकाश में सम्यक् परिवेष होजावे उस आकाशमणि शक्ति से किरणों का आकर्षण क्रम से होजाता है, परिवेषमुख से ही यथाविधि युक्त करे तो सूर्य-किरणों से विमानाकर्षण सम्यक् सूत्र से बन्धे अण्डज—पक्षी की भांति होजावे यह शास्त्र का निर्णय है॥ ९१-९७॥

परिवेषक्रियायन्त्रमुक्त्वा यथाविधि ॥९८॥
अथ तद्यन्त्ररचनाविधिरत्र निरूप्यते ॥९९॥

परिवेषक्रियायन्त्र इस प्रकार यथाविधि कह कर अब उस यन्त्र की रचनाविधि यहां कही जाती है॥ ९८—९९॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

अथ यन्त्राङ्गाणि ॥ अ० सू० ॥ १

अब यन्त्र के अङ्ग कहे जाते हैं।

पीठं तत्र त्रयोविंशत्केन्द्राणि च तथैव हि।
रेखाप्रसारणं तद्वत्केन्द्रसंख्यानुसारतः ॥१००॥
तावदेवार्तकीलास्तन्त्रीनालास्तथैव हि ।
त्रिवक्रनालस्तम्भश्च द्रावकाष्टकमेव च ॥१०१॥
तथा मण्यष्टकं द्रावपात्राष्टकमतः परम् ।
शिरीषघनभूम्यादिशक्त्याकर्षणदर्पणाः ॥१०२॥
पञ्च विद्युच्छक्तिर्यन्त्रं तु (त्वत् ?) पञ्चकमतः परम् ।
औदुम्बरावृत्ततन्त्रीरन्ध्रगर्भा सकीलका ॥१०३॥
भ्रामणीकीलकाश्चैव सतन्त्रीकीलकान्विताः ।
शक्तिस्थापनापात्राणि तत्सम्मेलनपात्रकम् ॥१०४॥
धूमप्रसारणयन्त्रं वातसंयोजकं तथा ।
परिवेषक्रियानालं क्षीरचर्मप्रकल्पितम् ॥१०५॥

पीठ, उसमें १३ केन्द्र तथा केन्द्र संख्यानुसार रेखाएं बनाना, उतने ही घूमने वाले पेंच और तारों के नाल, त्रिचक्रनाल का स्तम्भ, ८ द्रावक, ८ मणियां, ८ द्रावक पात्र, शिरीष मेघ भू आदि शक्तियों का आकर्षण दर्पण, ५ विद्युत्-शक्ति, ५ यन्त्र, ताम्बे के बने लिपटे तारों और अन्दर छिद्रवाली कीलें, घुमाने वाले पेंच तारों सहित कीलों से युक्त, शक्तिस्थापन पात्र, उनके मिलाने वाला पात्र, धूम फैलाने वाला यन्त्र और वातसंयोजक यन्त्र, दूध के चर्म से बना हुआ परिवेषक्रियानाल ॥१००—१०५॥

तथार्ककिरणाकर्षणदर्पणप्रकल्पितम् ।
नालमेकं ततो यानस्योर्ध्वकेन्द्रस्य दर्पणे ॥१०६॥
प्रतिबिम्बितसूर्यस्य किरणाकर्षकाद्युतम् ।
नालमेकं व्योमयानशिरोमणिरतः परम् ॥१०७॥
सन्धानकीलकं सूर्यकिरणानां विमानके ।
इति त्रयोविंशदङ्गान्युक्तानि स्युर्यथाक्रमम् ॥१०८॥
एवमुक्त्वा विमानाङ्गान्यथ तद्रचनाक्रमम् ।
संग्रहेण यथाशास्त्रं समालोड्य प्रचक्षते ॥१०९॥
वितस्तिद्वादशायामं विस्तृतं तावदेव हि ।
आदौ प्रकल्पयेत् कृष्णपिप्पलदारुणा ॥११०॥

तथा सूर्य किरणाकर्षणदर्पण से बना एक नाल, फिर ऊर्ध्व केन्द्र के दर्पण में प्रतिबिम्बित सूर्य के किरणाकर्षक से युक्त एक नाल, विमान की शिरोमणि, विमान में सूर्य किरणों को जोड़ने वाली कील, ये २३ अङ्ग कहे हैं। इस प्रकार विमान के अङ्गों को कहकर उनके रचना-क्रम को संक्षेप से शास्त्रानुसार आलोडन करके कहते हैं। १२ बालिश्त लम्बा उतना ही चौड़ा पहिले कृष्णपिप्पल की लकड़ी से बनावे ॥ १०६—११० ॥

पञ्चत्रिंशतिमादर्शावरणेनावृतं यथा ।
पश्चात् तस्मिन् त्रयोविंशत्केन्द्राणि परिकल्पयेत् ॥१११॥
ततः केन्द्रानुसारेण कुर्याद् रेखाप्रमारणम् ।
रेखानुसारतः केन्द्रस्थानेष्वथ यथाविधि ॥११२॥
प्रदक्षिणावर्तकीलान् स्थापयेत् सुदृढं यथा ।
दर्पणेन कृतान् नालान् गर्भे तन्त्रीसमन्वितान् ॥११३॥
केन्द्रात् केन्द्रान्तरावर्तकीलमूलावधिक्रमात् ।
रेखामार्गानुसारेण प्रत्येकं योजयेत् ततः ॥११४॥
वितस्तिपञ्चकायामं गात्रे त्वेकवितस्तिकम् ।
मध्ये वितस्त्यष्टकमानगात्रेण समाकुलम् ॥११५॥

३५ वें आदर्श–दर्पण के बने आवरण से आवृत–ढका या घिरा हुआ, फिर उसमें २३ केन्द्र बनावे, फिर केन्द्रानुसार रेखा प्रसारण करे, रेखानुसार केन्द्र स्थानों में यथाविधि घूमने वाले पेंच दृढ़ स्थापित करे, दर्पण से बनाए नालों को जिनके गर्भ में तार हों उन्हें केन्द्र से केन्द्र की अवधि तक क्रम से रेखामार्गानुसार प्रत्येक को रखे जो पांच बालिश्त लम्बा मोटा एक बालिश्त मध्य में ८ बालिश्त मोटाई से युक्त हो ॥ १११—११५ ॥

तथैव कण्ठेष्टादशाङ्गुलगात्रसमन्वितम् ।
मूले वितस्तिप्रमाणगात्रदण्डविराजितम् ॥११६॥

वितस्तिदशविस्तारास्ययुक्तं मनोहरम् ।
सप्तत्रिंशतिमादर्शनालस्तम्भं यथाविधि ॥११७॥
त्रिचक्रकीलैस्संयोज्य तन्मध्ये स्थापयेद् दृढम् ।
तस्येशान्यक्रमादष्टद्रावकान् दिक्षु विन्यसेत् ॥११८॥
तद्द्रावकाभिधानानि यथोक्तान्यत्रिणा क्रमात् ।
तान्येवात्र प्रवक्ष्यामि समालोच्य यथामति ॥११९॥
कण्णकः कान्तजस्ताक्ष्र्यो नागो गौरी विषन्धयः ।
खद्योतो ज्वलनश्चेति वर्णिता द्रावकाः क्रमात् ॥१२०॥

उसी प्रकार कण्ठ में १८ अंगुल मोटा, मूल में बालिश्तभर मोटे दण्ड से युक्त १० बालिश्त चौड़े मुखवाला सुन्दर ३७ वें आदर्श से बना नालस्तम्भ यथाविधि, तीन चक्रोंवाले कीलों से युक्त करके उनके मध्य में स्थापित करे, उसके ईशान्य क्रम से ८ द्रावकों को ८ दिशाओं में रखे उन द्रावकों के नाम जैसे अत्रि ने कहे हैं क्रम से उन्हें ही यहां विचार कर यथामति कहूंगा वे हैं 'कण्णक, कान्तज, ताक्ष्र्य, नाग, गौरी, विषन्धय, खद्योत, ज्वलन,' ये द्रावक कहे हैं ॥ ११६-१२० ॥

विज्ञप्ति—१२१ से १२७ श्लोक अप्राप्त हैं।

कान्तजद्रावकं पारादर्शपात्रे प्रपूरयेत् ॥ १२८ ॥
विरिञ्च्यादर्शपात्रेऽथ नागद्रावकं तथैव हि ।
स्फुटिकादर्शपात्रे तु खद्योतद्रावकं न्यसेत् ॥ १२९ ॥
बालुकादर्शपात्रेऽथ गौरीद्रावं प्रपूरयेत् ।
सुरग्रन्थिकादर्शपात्रे विषन्धयद्रावकम् ॥ १३० ॥
पञ्चमृद्दर्पणपात्रे ज्वलनद्रावकं न्यसेत् ।
अष्टपात्रेष्वष्टद्रावान् सम्पूर्य विधिवत् क्रमात् ॥ १३१ ॥
उक्ताष्टदिक्षु विधिवत् विन्यसेत् सुदृढं यथा ।
अष्टदिक्ष्वष्टपात्रस्थाष्टद्रावकेष्वधः क्रमात् ॥ १३२ ॥
संयोजयेदष्टमणीन् मणिप्रकरणेरितान् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समालोच्य यथामति ॥ १३३ ॥

कान्तज द्रावक को पारादर्शपात्र में भर दे, नागद्रावक को विरिञ्च—आदर्श पात्र में, खद्योत-द्रावक को स्फुटिकादर्श पात्र में रख दे, गौरीद्रावक को बालुकादर्श पात्र में, विषन्धयद्रावक को सुरग्रन्थि-कादर्श पात्र में, ज्वलनद्रावक को पञ्चमृद्दर्पण पात्र में, भर कर क्रम से उक्त आठ दिशाओं में रख दे। आठ दिशाओं में आठ पात्रस्थ आठ द्रावकों में नीचे के क्रम से मणिप्रकरण में कही आठ मणियों को संयुक्त करे, उनके नाम विवेचन करके यथामति कहूँगा ॥ १२८-१३३ ॥

तदुक्तं मणिप्रकरणे—वह कहा है मणिप्रकरण में—

धूमास्यो घनगर्भश्च शल्याकश्शारिकस्तथा ।
तुषास्यस्सोमकश्शङ्खोंशुपश्चेत्यष्टधा स्मृता: ॥ १३४ ॥
मणीनां नामधेयानि एवमुक्त्वा यथाक्रमम् ।
विनियोगं प्रवक्ष्यामि तेषां शास्त्रोक्तवर्त्मना ॥ १३५ ॥
रुब्णद्रावे तु धूमास्यमणिं मध्ये विनिक्षिपेत् ।
तथैव कान्तजद्रावे घनगर्भमणिं न्यसेत् ॥ १३६ ॥
काष्ण्यंद्रावेथ शल्याकं शारिकं नागद्रावके ।
गौरीद्रावके तुषास्यं च शङ्खं ज्वलनद्रावके ॥ १३७ ॥
विषन्धयद्रावकेथ सोमकं तद्वदेव हि ।
खद्योतद्रावके पश्चादंशुपाख्यमणिं क्रमात् ॥ १३८ ॥
एवमष्टमणीनष्टद्रावकेषु नियोजयेत् ।
पश्चात् तेषां पुरोभागे समरेखान्तरे क्रमात् ॥ १३९ ॥
स्थापयेद् विधिवच्छुद्धान् शक्त्याकर्षणदर्पणान् ।
भरद्वाजोक्तनामानि तेषामत्र यथाक्रमम् ॥ १४० ॥
प्रवक्ष्यामि समालोच्य संग्रहेण यथामति ॥ १४१ ॥

धूमास्य, घनगर्भ, शल्याक, शारिक, तुषास्य, सोमक, शङ्ख, अंशुप ये आठ प्रकार की कही हैं। यथाक्रम मणियों के नाम कहे हैं उनके विनियोग को शास्त्रोक्त मार्ग से कहूंगा। धूमास्य मणि को तो रुब्ण द्राव में डाल दे, घनगर्भ मणि को कान्तज द्राव में, शल्याक मणि को काष्ण्यं द्राव में, शारिक मणि को नागद्राव में, तुषास्य मणि को गौरीद्राव में, शङ्खमणि को ज्वलनद्रावक में, सोमक मणि को विषन्धय द्रावक में, अंशुप मणि को खद्योत द्राव में। इस प्रकार आठ मणियों को आठ द्रावकों में नियुक्त करे फिर उनके सामने वाले भाग में समान रेखान्तर में क्रम से विधिपूर्वक शुद्ध दर्पणों को स्थापित करे। भरद्वाज के कहे उनके नाम यथाक्रम विवेचन कर संक्षेप से यथामति कहूंगा ॥ १३४--१४१ ।

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह कहा है दर्पणप्रकरण में—

तारास्योपवनास्यश्च धूमास्यो वारुणास्यकः ।
जलगर्भोग्निमित्रश्च छायास्यो भानुकण्ठकः ॥ १४२ ॥
इति दर्पणनामानि कीर्तितान्यष्टधा क्रमात् ।
एवमुक्त्वाष्ट नामानि दर्पणानां यथाक्रमात् ॥ १४३ ॥
अथ तेषां यथाशास्त्रं विनियोगक्रमोच्यते* ।
धूमास्यमणिरेखायां विहायाथ षडङ्गुलम् ॥ १४४ ॥
तारास्यदर्पणं तत्र मणेरभिमुखं यथा ।
स्थापयेदूर्ध्वप्रदेशे कीलकयुक्तशलाकया ॥ १४५ ॥

* क्रम उच्यते—क्रमोच्यते सन्धिरार्षः ।

घनगर्भमणेः प्रान्तरेखायामपि पूर्ववत् ।
स्थापयेत् पवनास्याख्यदर्पणं सुदृढं यथा ॥ १४६ ॥
धूमास्यदर्पणं शल्याकरेखायां तथैव हि ।
वारुणास्यदर्पणं तु रेखायां शारिकामणेः ॥ १४७ ॥
तथा सोमरेखायां जलगर्भाख्यदर्पणम् ।
तुषास्यमणिरेखायामग्निमित्राख्यदर्पणम् ॥ १४८ ॥

तारास्य, उपवनास्य,धूमास्य, वारुणास्य, जलगर्भ, अग्निमित्र, छायास्य ये आठ प्रकार के दर्पण नाम कहे हैं। इस प्रकार दर्पणों के यथाक्रम नाम कह कर उनका यथाशास्त्र विनियोग क्रम कहा जाता है। धूमास्य मणि की रेखा में छः अंगुल छोड़ कर तारास्य दर्पण को मणि के सम्मुख ऊपर प्रदेश में कील से युक्त शलाका से रखे, घनगर्भ मणि की प्रान्त रेखा में पवनास्य दर्पण को स्थापित करे, धूमास्य दर्पण को शल्याक मणि की रेखा में तथा वारुणास्य दर्पण को शारिकमणि की रेखा में तथा जलगर्भ नामक दर्पण को सोमक मणि की रेखा में अग्निमित्र नामक दर्पण को तुषास्य मणि की रेखा में सीध में रखे ॥ १४२–१४८ ॥

छायास्यदर्पणं शङ्खमणिरेखान्तरे तथा ।
अंशुपमणिरेखायां भानुकण्ठदर्पणम् ॥ १४९ ॥
एवं क्रमेण विधिवत् पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।
स्थापयेच्छक्त्याकर्षणदर्पणान् सुदृढान् क्रमात् ॥ १५० ॥
अथ तत्पश्चिमे केन्द्रे शक्तितन्त्रेभिवर्णितम् ।
नवमं स्थापयेद् विद्युच्छक्तियन्त्रं सकीलकम् ॥ १५१ ॥
अथ ताम्रावर्ततन्त्रीन् चर्मपञ्चके वेष्टितान् ।
प्रसारयेच्छक्तियन्त्रात् सर्वत्र विधिवत् समम् ॥ १५२ ॥
त्वक्पञ्चकस्य नामानि संग्रहेण यथामति ।
क्रियासारोक्तरीत्यात्र कथ्यन्तेन्विष्य च क्रमात् ॥ १५३ ॥
गे (घे ?) ण्डाकूर्मश्वाखुशशनक्राणां च यथाक्रमम् ।
चर्माणि पञ्च प्रोक्तानि मुनिभिश्शास्त्रवित्तमैः ॥ १५४ ॥

छायास्य दर्पण को शङ्ख मणि की सीध में तथा भानुकण्ठ दर्पण को अंशुप मणि की रेखा में रखे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूर्वोक्त मार्ग से शक्त्याकर्षण दर्पणों को स्थापित करे। फिर उनके पश्चिम केन्द्र में शक्तितन्त्र में वर्णित नवम विद्युत्—शक्ति यन्त्र को कीलसहित स्थापित करे, पुनः ताम्बे से घिरे तारों को पांच चर्म में लिपटे हुओं को शक्ति यन्त्र से विधिवत् समानरूप में प्रसारित करे, पांच चर्मों के नाम संक्षेप से यथामति क्रियासार ग्रन्थ की रीति से यहां खोजकर कहे जाते हैं। गेण्डा, कछवा, श्वाखु, शश, नाका यथाक्रम पांच चर्म शास्त्रज्ञ मुनियों ने कहे हैं ॥ १४९–१५४ ॥

हस्तलेख रजिस्टर २, कापी संख्या ७—

त्वङ्निर्णयाधिकारेपि—त्वचा के निर्णय-अधिकार में भी कहा है—

आसनार्थं द्रावकाणां तन्त्रीणां वेष्टनाय च ।
पञ्च चर्माणि शास्त्रेषु प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः ।। १ ।।
गेण्डाकूर्मश्वाखुशशनक्राणां च यथाक्रमम् ।
चर्माणि पञ्च प्रोक्तानि वेष्टनासननिर्णये ।। २ ।। इत्यादि ।।

विमान में आसनर्थ और द्रावकतारों के लपेटने के लिए पांच चर्म शास्त्रों में विशेष ज्ञानी जनों ने कहे हैं। गेण्डा, कछवा, कुत्ता, चूहा शश, मगर के यथाक्रम पांच चर्म वेष्टन आसन के निर्णयप्रसंग में कहे हैं ।। १–२ ।।

चर्मवेष्टिततन्त्रीभिर्विद्युच्छक्तिप्रसारणम् ।
कुर्याच्छास्त्रानुसारेण समयोचितकर्मसु ।। ३ ।।
भ्रामणीकीलकं पश्चात् स्थापयेद् द्वादशान्तरे ।
एतत्सञ्चालनात् सर्वकेन्द्रकीलप्रचालनम् ।। ४ ।।
यथा भवेत् तथा सम्यक् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ।
अथ तच्चलनमार्गमनुसृत्य यथाविधि ।। ५ ।।

चर्म से लिपटे तारों से विद्युत्—शक्ति का प्रसार शास्त्रानुसार समयोचित कार्यों में करे, द्वादश (बालिश्त) के अन्तर पर या १२ कीलों के मध्य भ्रामणी—घुमाने वाली कील स्थापित करे इसके सञ्चालन से सब केन्द्र कीलों का प्रचालन जिससे हो जावे वैसे सम्यक् शास्त्रदृष्ट मार्ग से उनके चलन-मार्ग का यथाविधि अनुसरण करके—।। ३–५ ।।

नवमे चाष्टमे केन्द्रे दशमेथ त्रयोदशे ।
द्वादश्यांश्च* षोडशे पञ्चदशैकादशकेन्द्रके ।। ६ ।।
एतेष्वष्टसु केन्द्रेषु तत्तद्रेखानुसारतः ।
शक्तिस्थापनपात्राणि स्थापयेत् सुदृढं यथा ।। ७ ।।
एवमष्टसु केन्द्रेषु शक्तिपात्राण्यथाक्रमम् ।
संस्थाप्य पश्चात् तत्सम्मेलपात्रं यथाविधि ।। ८ ।।

---

* अत्र लिङ्गव्यत्ययः ।

त्रयोविंशत्केन्द्ररेखावर्तकीलमुखे न्यसेत् ।
अथ तद्दक्षिणे पार्श्वे एकोनविंशकेन्द्रके ॥ ९ ॥
वातसंयोजकं पात्रं स्थापयेत् सुदृढं यथा ।

नोवें आठवें दशवें वारहवें सोलहवें पन्द्रहवें ग्यारहवें केन्द्र में, इन आठ केन्द्रों में उस उस रेखानुसार शक्तिस्थापन यन्त्र सुदृढ़ क्रम में स्थापित करे । इस प्रकार आठ केन्द्रों में शक्तिपात्र यथाक्रम स्थापित करके पश्चात् उनके सम्मेलन पात्र को भी यथाविधि तेरहवें केन्द्र रेखावर्तकीलमुख—रेखा पर घूमने वाले पेंच के मुख में लगा दे । फिर दक्षिण पार्श्व में उन्नीसवें केन्द्र में वातसंयोजक यन्त्र को सुदृढ़ स्थापित करे ॥ ६-९ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में कहा है—

विद्युत्तन्त्रीसमायोगाच्छतलिङ्कप्रमाणतः ॥ १० ॥
भ्राम्यमाणैः पञ्चचक्रैस्संयुतं मध्यकेन्द्रके ।
पूर्वपश्चिमकेन्द्रस्थमुखभागे यथाक्रमम् ॥ ११ ॥
सभस्त्रिकादण्डनालयुग्मकीलैर्विराजितम् ।
वातकोशद्वयाविष्टमास्यत्रयसमन्वितम् ॥ १२ ॥
वातस्तम्भनषट्चक्रकीलकैस्सुविराजितम् ।
तथा प्रसारणीनालकीलकद्वयमण्डितम् ॥ १३ ॥
वेगातिवेगसूक्ष्मातिसूक्ष्मशान्तादिकीलकैः ।
सचक्रकैर्भ्राजमानं कमठाकारवत् स्थितम् ॥ १४ ॥
भारद्वयसमायुक्तमूर्ध्वचक्रविराजितम् ।
वातसंयोजकयन्त्रमित्युच्यते बुधैः ॥ १५ ॥ इत्यादि ॥

विद्युत्—तारों के सम्बन्ध से सौ डिग्री माप से घुमाये हुए—घूमते हुए पांच चक्रों से संयुक्त मध्य केन्द्र में पूर्व पश्चिम केन्द्र स्वमुख भाग में यथाक्रम भस्त्रिका दण्ड की दो नालों की कीलों से विराजित दो वात कोश में आविष्ट तीन मुखों से युक्त वातस्तम्भन छः चक्र कीलों से सुविराजित तथा प्रसारणी—वातप्रसारणी नाल की दो कीलों से सुसज्जित चक्रसहित वेग अतिवेग सूक्ष्म अतिसूक्ष्म शान्त आदि कीलों से प्रकाशमान कमठाकार कच्छुवे या घड़े के आकार की भांति स्थित दो भागों से युक्त ऊपर चक्रवाला वातसंयोजक यन्त्र बुद्धिमानों द्वारा कहा जाता है ॥ १०-१५ ॥

धूमप्रसारणयन्त्रविचारः—धूमप्रसारणयन्त्र विचार प्रस्तुत करते हैं—

एवमुक्त्वा वातसंयोजकयन्त्रमतः परम् ।
धूमप्रसारणयन्त्रं संग्रहेण निरूप्यते ॥ १६ ॥
आस्यत्रयैः पञ्चगर्भकोशै (श ?) श्चक्रावृतै(कैः?)र्युतम् ।
कीलकत्रयसंयुक्तं शक्तिनालेन वेष्टितम् ॥ १७ ॥

धूमकृन्मणिसंयुक्तपञ्चद्रावसमाकुलम् ।
मथनोन्मथनचक्रद्वयकीलविराजितम् ॥ १८ ॥
धूमकोशद्वयैर्युक्तं भस्त्रनालेन संयुतम् ।
धूमप्रसारणनालमुखकीलविराजितम् ॥ १९ ॥
एतल्लक्षणसंयुक्तं यन्त्रं धूमप्रसारणम् ।
एतद्यन्त्रं विंशतिमे केन्द्रे संस्थापयेद् दृढम् ॥२०॥
धूमप्रसारणं यन्त्रमेवमुक्त्वा ततः परम् ।
परिवेषक्रियानालस्वरूपं कथ्यते क्रमात् ॥२१॥
पञ्चक्षीराम्बिकाषट्कवल्कलद्वयनिर्मितम् ।
क्षीरिकापटमित्युक्तं यानकार्यक्षमं मृदु ॥२२॥
तेन निर्मितनालं यत्तदेवात्र विशेषतः ।
परिवेषक्रियानालमिति सम्यङ्निरूप्यते ॥२३॥

इस प्रकार वातसंयोजक यन्त्र कहकर इससे आगे धूमप्रसारण—धूआं छोड़नेवाला यन्त्र संक्षेप में निरूपित किया जाता है। तीन मुखवाले पांच गर्भकोशवाले वातचक्रों से युक्त तीन कीलों से युक्त शक्तिनाल से लपेटा हुआ धूम करनेवाली मणि से संयुक्त पांच द्राव (ऐसिड) से पूर्ण मथन उन्मथन दो चक्रों की कीली से विराजित दो धूमकोशों से युक्त भस्त्रनाल से संयुक्त धूमप्रसारण नाल मुखकील से युक्त हो, इन लक्षणों से युक्त यन्त्र धूमप्रसारण है। इस यन्त्र को बीसवें केन्द्र में दृढ़ संस्थापित करे। धूमप्रसारण यन्त्र इस प्रकार कहकर उससे आगे परिवेषक्रियानाल का स्वरूप क्रम से कहा जाता है। पञ्च क्षीरा छः अम्बिका (आगे आने वाली) दोनों वल्कल (आगे कहे जाने वाले) से बना क्षीरिकापट यानकार्य में समर्थ कहा, उससे बना नाल जो है वही यहां विशेषतः परिवेशक्रियानाल सम्यक् निरूपित किया जाता है ॥१९—२२३ ॥

उक्तं हि क्षीरीपटकल्पे—क्षीरीपटकल्प में कहा है—

दुग्धप्रणालीपटपादपाश्च पयोध (द ?) री पञ्चवटी विरञ्चिः ।
वृक्षेषूक्तक्षीरिकावृक्षवर्गे इमाः पञ्चक्षीरवृक्षाः क्रमेण ॥२४॥
उक्ताः प्रशस्ता इति क्षीरवस्त्रक्रियाविधौ शास्त्रविदां वरिष्ठैः ॥२५॥

दुग्धप्रणाली ? पटपादप—सिम्भल ?, पयोधरी—नारियल वृक्ष ? या पयोविदारी—क्षीर विदारी ? पञ्चवटी—बिल्व पीपल बढ़ अशोक गूलर, विरञ्चि ?। वृक्षों में उक्त क्षीरिका वृक्षवर्ग में ये पांच क्षीरवृक्ष क्रम से श्रेष्ठ शास्त्रवेत्ता जनों ने क्षीरवस्त्र क्रियाविधि में प्रशस्त कहे हैं ॥ २४—२५ ॥

पटप्रदीपिकायामपि—पटप्रदीपिका में भी—

उक्तेषु क्षीरवृक्षेषु क्षीरिकापटकर्मणि ।
पयोध (द ?) री पञ्चवटीविरञ्चिः पटपादपः ॥२६॥

दुग्धप्रणालिका चेति पञ्चेमाः क्षीरपादपाः ।
सुप्रशस्ता इति प्रोक्ताश्शास्त्रेषु ज्ञानवित्तमैः ।।२७।। इत्यादि

क्षीरपटकर्म में उक्तक्षीरवृक्षों में पयोधरी–नारियलवृक्ष ? या पयोदरी–पयोविदारी–क्षीरविदारी ? पञ्चवटी–बिल्व पीपल वट अशोक गूलर, विरञ्चि ?, पटपादप–सिम्भल ? दुग्धप्रणालिका ? ये पांच क्षीरवृक्ष शास्त्रों में ऊंचे विद्वानों ने सुप्रशस्त कहे हैं ।

अम्बिकाषट्कमुक्तं क्रियासारे—छः अम्बिका क्रियासार ग्रन्थ में कहे हैं—

गोदाकन्दकुरङ्गकनिर्यासान्दोलिकावियत्सारम् ।
लविकपृषत्कक्ष्मामलमिति शास्त्रेष्वम्बिकाषट्कम् ।।२८।।
एतत्सम्मेलनतः पञ्चक्षीरेषु गणितमार्गेण ।
प्रभवेत् क्षीरीवसनश्शुद्धस्सुदृढोतिमृदुलश्च ।।२९।। इत्यादि ।।

गोदाकन्द-गोधास्कन्द–दुर्गन्धखैर, कुरङ्ग के निर्यास–अक्कर्करागोंद ?, आन्दोलिकावियत्सार?, लविकापृषत्क ?, क्ष्मामल ?, शास्त्रों में अम्बिकाषट्क है । पांच क्षीरों में गणितरीति से इनके मिलाने से क्षीरीवस्त्र सुदृढ़ होजावे ।। २८—२९ ।।

वल्कलद्वयमुक्तमगतत्त्वलहर्याम्—दो वल्कल कहे हैं अगतत्त्वलहरी में—

शारिकाद्या पञ्चमुखी वल्कलान्तं यथाक्रमम् ।
उक्तास्स्युः पञ्चसाहस्रवल्कलाश्शास्त्रवित्तमैः ।।३०।।
तेषु सिंहिकपञ्चाङ्गवल्ककद्वयमेव हि ।
विमानसंयोजनार्हं क्षीरिकापटनिर्णये ।।३१।।
अत्यन्तश्रेष्ठमित्याहुः पटलतत्त्वविदां वराः ।। इत्यादि ।।

शारिका-शारी—मुञ्जतृण आदि पञ्चमुखी पञ्चमुख—वासा के वल्कलपर्यन्त यथाक्रम कहे हैं । पांचसाहस्र वल्कल शास्त्रवेत्ताओं ने कहे हैं उनमें सिंहिक वासा या कटेली पञ्चाङ्ग वल्कल दोनों विमान संयोग के योग्य क्षीरिकापट—पटनिर्णय में अत्यन्त श्रेष्ठ पटतत्त्ववेत्ताओं ने कहे हैं ।। ३०—३१ ।।

पटस्वरूपमुक्तं क्रियासारे—पटक्रियासार ग्रन्थ में कहा है—

दुग्धप्रणालिकाक्षीरमष्टभागमतः परम् ।
पटवृक्षक्षीरभागा दश प्रोक्तास्तथा क्रमम् ।
पयोदरीक्षीरभागास्सप्त इत्युच्यते तथा ।।३३।।
क्षीरस्याष्टादशांशस्स्यात्पञ्चवट्यां यथाक्रमम् ।
द्वादशांशं विरञ्चिक्षीरमुक्तं शास्त्रतः क्रमात् ।।३४।।
एवमुक्त्वा क्षीरिकांशान् संख्यया शास्त्रतस्स्फुटम् ।
अथेदानीं यथाशास्त्रं क्षीरिकापटनिर्णये ।।३५।।

दुग्धप्रणालिका का दूध ८ भाग, पटवृक्ष का दूध १० भाग पयोदरी का दूध ७ भाग पञ्चवटी का दूध १८ भाग विरञ्चि (दूधवाला वृक्ष) का दूध १२ भाग शास्त्र से क्रमशः कहा है । इस प्रकार

क्षीरीवृक्षों के दूध संख्या से शास्त्र से स्फुट कहकर अब क्षीरिकापटनिर्णय में—॥ ३२-३५ ॥

अम्बिकाषट्कभागांशान् संख्यातस्सम्प्रचक्षते ।
गोदाकन्दस्य भागांशा दश इत्यभिवर्णिताः ॥ ३६ ॥
कुरङ्गकनिर्यासांशाः प्रोक्तास्सप्तदश क्रमात् ।
आन्दोलिकावियत्सारभागाः पञ्चदश तथा ॥ ३७ ॥
लविकस्य द्वादशांशाः पृषत्कांशास्तु विंशतिः ।
क्षमामलांशाः पञ्चदश इति शास्त्रेण निर्णिताः ॥ ३८ ॥
अम्बिकाषट्कभागांशानित्युक्त्वा शास्त्रतः क्रमात् ।
वल्कलद्वयभागांशानिदानीं सम्प्रचक्षते ॥ ३९ ॥

६ अम्बिकाओं के भागों को संख्या से कहते हैं। गोदाकन्द के वर्णित किए १० भाग, कुरङ्ग-निर्यास ७ कहे हैं, आन्दोलिकावियत्सार के १५ भाग, लविक १२, पृषत् के तो २० भाग, क्षमामल के १५ भाग शास्त्र से निर्णय किए हैं। अम्बिकाषट्क भागों को कहकर दो वल्कल के भागों को अब कहते हैं ॥ ३६—३९ ॥

तदुक्तं शणनिर्णयचन्द्रिकायाम्—यह कहा है शणनिर्णयचन्द्रिका में—

सिंहिकावल्कलस्याष्टविंशद्भागास्तथैव हि ।
पञ्चाङ्गवल्कलस्याष्टादश भागा इतीरिताः ॥ ४० ॥
पञ्चक्षीराम्बिकाषट्कवल्कलद्वयमेव च ।
एतेषां विधिवत् तत्तद्भागसंख्यानुसारतः ॥ ४१ ॥
यथावत्सम्मेल्य पाकाधानयन्त्रमुखे क्रमात् ।
क्षीरिकापटनिर्माणकल्पोक्तेनैव वर्त्मना ॥ ४२ ॥
वारं वारं पाचयित्वा मर्दयित्वा पुनः पुनः ।
कृत्वा द्वादशसंस्कारान् पश्चाद् द्रावकपूर्वकम् ॥ ४३ ॥
पटगर्भक्रियायन्त्रमुखे संयोजयेत् ततः ।
क्षीरिकापटनिर्माणं भवेदेवं कृते ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ इत्यादि ॥

सिंहिका के वल्कल—छाल का २८ भाग तथा पञ्चाङ्ग वल्कल के १८ भाग कहे क्षीराम्बिका ५ भाग दोनों वल्कल के ६ भाग इनके विधिवत् उस उस भाग को संख्यानुसार यथावत् मिलाकर पाकाधान-यन्त्रमुख में क्रम से क्षीरिकापटनिर्माणकल्प में कहे मार्ग के अनुसार वार वार पकाकर पुनः पुनः मर्दन करके १२ संस्कार करके फिर द्रावकपूर्वक पटगर्भक्रियायन्त्रमुख में संयुक्त करे क्षीरिकापटनिर्माण हो जावे ऐसा करने पर निश्चय—॥ ४०—४४ ॥

परिवेषक्रियानालमेतत्पटविनिर्मितम् ।
कीलीप्रचालनाद् धूमो यानमावरयेद् यथा ॥ ४५ ॥

विमानमध्यकेन्द्रस्थावृत्तकीलाद् यथाविधि ।
यानबाह्ये प्रदेशे तु अनुलोमविलोमतः ॥ ४६ ॥
वेष्टयेद् विधिवत् सम्यक् कीलकैस्सुदृढं यथा ।
परिवेषक्रियानालमित्युक्त्वा शास्त्रतः स्फुटम् ॥ ४७ ॥
किरणाकर्षणादर्शनालमद्य निरूप्यते ॥ ४८ ॥

पट से निर्मित यह परिवेषक्रियानाल कीली चलाने से धूंवा विमान को ढकेलता है विमान मध्यकेन्द्रस्थ घूमनेवाली कील से यथाविधि विमान के बाहिरी प्रदेश में हो अनुलोम विलोम से कीलों से सम्यक् विधिवत् लपेटे, शास्त्र से स्फुटरूप में परिवेषक्रियानाल कहकर किरणाकर्षण आदर्शनाल अब निरूपित करते हैं ॥ ४५—४८ ॥

तदुक्तं नालिकानिर्णये— वह कहा है नालिकानिर्णय में —

पञ्चोत्तरत्रिशतदर्पणषोडशांशं काञ्चोलिकाभरणसत्त्व (पञ्च) भागम् ।
सर्पास्यपाटवसुरञ्जिकसत्त्वषट्कं हैरण्यकान्तजटसारचतुष्टयं च ॥ ४६ ॥
शुद्धीकृतं टङ्कणमष्टभागं सिञ्जाणसत्त्वं वरकुञ्जलद्रवम् ।
आ (मा ?) तृणचूर्णं मणिकुड्मलास्यादर्शं च क्षारत्रयं बालुका च ॥५०॥
सुरञ्जिकासत्त्वविरञ्चिपिष्टं षोणाश्मकृष्णाभ्रकसत्त्वकं च ।
शैलूषसत्त्वं वरकुड्मलद्रवम्, एते क्रमात् द्वादश वस्तु वर्णितम् ॥५१॥
नक्षत्रबाणार्कमुनित्रयाष्टशैलाग्निरुद्रा वसुराशिपञ्च ।
एवं क्रमाद् द्वादशवस्तुभागानाहृत्य शुद्धान् विधिवद् यथाक्रमम् ॥५२॥
भेकास्यमूषामुखरन्ध्रनाले सम्पूर्णभेकोदरकुण्डमध्ये ।
संस्थापयेद् वेगेन द्विपक्षभस्त्रया संगालयेत् कक्ष्यशतत्रयोष्णात् ॥५३॥
पश्चात् समाहृत्य च तद्रसं वरं सम्पूरयेद् दर्पणयन्त्रनाले ।
एवं कृते किरणाकर्षणाख्यादर्शो भवेत् सूक्ष्मरूपं च शुद्धम् ॥५४॥ इत्यादि

तीन सौ पांचवें दर्पण के १६ भाग काञ्चोलिकाभरणसत्त्व ? पांच भाग, सर्पास्यपाटव सुरञ्जिकासत्त्व?–सर्पास्य–नागकेसर, सुरञ्जिका–सुरङ्गिका–मूर्वालता ६भाग, हैरण्यकान्तजटसार ?–हिरण्य–कौडी, कान्त—सूर्यकान्त, जटा–जटामांसी का सार ४ भाग, शुद्ध किया सुहागा ८ भाग, सिञ्जाण ? सिङ्घाण–लोहकिट्ट ? का सत्त्व, अच्छा कुञ्जललशुन का द्राव, आतृण—कातृण—गन्धतृण का चूर्ण, कुड्मलास्यमणि–पद्मरागमणि ? का आदर्श, तीनों क्षार—सज्जीक्षार यवक्षार नौसादर और बालु–रेत, सुरञ्जिकासत्त्व, विरञ्चि की पिट्ठी या चूर्ण, षोणाश्मकृष्णाभ्रकसत्त्वक—षोणाश्मनामक कृष्णाभ्रक का सत्त्व, शैलूषसत्त्व—बिल्व का सत्त्व, वरकुड्मलद्रव, क्रम से ये १२ वस्तुएं कही हैं। जो कि २८, ५, ७, ३ या ७, ३, ८, ७, ३, ११, ८, १२, ५ इस क्रम से १२ वस्तुओं के भागों को लेकर विधिवत् भेकास्य—मेण्डकमुख नामक मूषामुखछिद्रवाले नाल में भरकर भेकोदरकुण्ड के मध्य में संस्थापित करे वेग से दो पक्षभस्त्रा से तीन सौ दर्जे की उष्णता से गला दे। पश्चात् उस अच्छे गले रस को लेकर दर्पणयन्त्रनाल में भर दे। ऐसा करने पर सूक्ष्मरूप किरणाकर्षणनामक हो जावे ॥ ४६—५४ ॥

यदेतद्दर्पणकृतनालं तच्छास्त्रतः स्फुटम् ।
किरणाकर्षणादर्शनालमित्युच्यते बुधैः ॥ ५५ ॥
यन्त्रस्योर्ध्वमुखे पश्चान्नालमेतन्नियोजयेत् ।
किरणाकर्षणादर्शनालमुक्त्वा यथाविधि ॥ ५६ ॥
प्रतिबिम्बार्ककिरणाकर्षणादर्शनालकम् ।
विविच्यतेऽत्र विधिवत् संग्रहेण यथामति ॥ ५७ ॥

जो यह दर्पण से बना नाल शास्त्र से स्फुट है किरणाकर्षणादर्शनाल बुद्धिमानों के द्वारा कहा जाता है। पश्चात् यन्त्र के ऊपरिमुख में इस नाल को युक्त करे किरणाकर्षणादर्शनाल यथाविधि कहकर प्रतिबिम्बकिरणाकर्षणादर्शनाल का विधिवत् संग्रह से विवेचन करते हैं ॥ ५५ - ५७ ॥

तदुक्तं नालिकानिर्णये—यह बात नालिकानिर्णय में कही है—

कूष्माण्डसत्त्व कुडुहञ्चिद्रावं द्विचक्रकन्दद्वयक्षारसत्त्वकम् ।
पञ्चास्यमूलत्रयक्षारमौर्व्यं चन्द्रद्रवं चौलिकसारसत्त्वम् ॥ ५८ ॥
द्वाविंशदुत्तरशतादर्शकं च श्वेताभ्रसत्त्वं शर्करा टङ्कणं च ।
गौरीमुखं वैणुकपृष्ठशल्यकं गोदास्यदन्तं वरनागपारदम् ॥ ५९ ॥
एते पदार्थाः पञ्चदश क्रमेण सम्यक् प्रोक्तास्स्युश्शास्त्रतत्त्वविद्भिः ।
बाणार्कवेदज्वलनाम्बुधिगुणरुद्रोडुवर्णग्रहराशिविंशतिः ॥६०॥
अष्टादशद्वादशपञ्चविंशतिस्तेषां विभागक्रम इत्युदीरितः ।
एतान् पदार्थान् पञ्चदशातिशुद्धान् समाहृत्य संवर्गिकमूषिकायाम् ॥६१॥

कूष्माण्ड–पेठाकद्दू का सत्त्व, कुडुहञ्चि–कुडुहुञ्ची–छोटा करेला, द्विचक्रकन्दद्वयसत्त्व ?, पञ्चास्यमूलत्रयक्षार ? मौर्व्य–मौर्वी–मेढासिंगी का सार, चन्द्रद्रव,–कबीलारस, चौलिकसारसत्त्व–जूलिक–केले के सार मध्यभाग का क्षार। एकसौ बाईसवें आदर्श, श्वेत अभ्रक का सत्त्व, शर्करा–पत्थर का चूरा, सुहागा, गौरीमुख–मञ्जीठ-मूल ? वैणुकपृष्ठशल्यक–बांस की पीठ के तन्तु, गोदास्यदन्त ?—अच्छा सीसा, पारा ये १५ पदार्थ क्रम से शास्त्रतत्त्ववेत्ताओं ने सम्यक् कहे हैं। ५, १२, ४, ३, ७, ३, ११, ४, ६, १२, २०, १८, १२, ५, २० उन कहे विभागक्रम में कहे हैं। इन १५ शुद्ध पदार्थों को लेकर संवर्गिकमूषा बोतल में—॥ ५८—६१ ॥

सम्पूर्यवर्गिककुण्डमध्ये संस्थाप्य पश्चात् सुरघाख्यभस्त्रया ।
संगालयेत् पञ्चदशोत्तरत्रिशतोष्णकक्ष्यादतिवेगतः क्रमात् ॥६२॥
पश्चात्समाहृत्य विशुद्धतद्रसं सम्पूरयेद् दर्पणयन्त्रनालके ।
एवं कृते शास्त्रविधानतो भवेद् बिम्बार्कघृण्याकर्षणदर्पणश्च ॥६३॥
अत्यन्तसूक्ष्मं सुदृढमेतद् दर्पणविनिर्मितम् ।
बिम्बार्ककिरणादर्शनालमितीर्यते (बुधैः) ॥६४॥

विमानमध्यभागेथदशमे केन्द्रकीलके ।
स्थापयेत् सुदृढं कीलैः पञ्चावर्तमुखैः क्रमात् ॥६५॥ इत्यादि ॥
एवं बिम्बार्ककिरणादर्शनालं. यथाविधि ।
निरूप्य पश्चाद् यानस्य शिरोमणिरुदीर्यते ॥६६॥
किरणान्तरेषां (खलु) तत्तच्छक्त्यपकर्षणे ।
विमानानां त्र्युत्तरशतशिरोमणय ईरिताः ॥६७॥

—भरकर, वर्गिकुण्ड में संस्थापित करके पश्चात् सुरघा नामक भस्त्रा से ३१५ दर्जे के वेग से गलावे, पश्चात् पिंघले शुद्ध रस को लेकर दर्पणयन्त्रनाल में भर दे। शास्त्रविधान से ऐसा करने पर त्रिम्बार्कचूर्णिकिरण का आकर्षण करनेवाला दर्पण होजावे जो अत्यन्त सूक्ष्म सुदृढ़ दर्पण से बनी विम्बार्क-किरणादर्शनाल यह कहा जाता है। विमान के अग्रभाग में और दशवें केन्द्रकील में पांच घूमनेवाले मुखवाली कीलों से सुदृढ़ स्थापित करें। इस प्रकार विम्बार्ककिरणादर्शनाल यथाविधि स्थापित करके पश्चात् विमानयान की शिरोमणि कही जाती है। अन्य किरणों के उस उस शक्ति के खीचने में विमानों की शिरोमणियां कही हैं॥ ६१—६७॥

तदुक्तं मणिकल्पप्रदीपिकायाम्—वह कहा है मणिकल्पप्रदीपिका ग्रन्थ में—

द्वात्रिंशन्मणिवर्गेषु वर्गे द्वादशके क्रमात् ।
ये प्रोक्तास्त्र्युत्तरशतमणयस्ते महर्षिभिः ॥६८॥
शिरोमणय इत्युक्तविमानानां विशेषतः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शास्त्रोक्तानि यथाक्रमम् ॥६९॥
शङ्करो ? शन्तकः खर्वो भास्करो मण्डलस्तथा ।
कलान्तको दीप्तिकश्च नन्दको चक्रकण्ठकः ॥७०॥
पञ्चनेत्रो राजमुखो राकास्यः कालभैरवः ।
चिन्तामणिः कौशिकश्च चित्रकोशिको भास्करकः ॥७१॥
उडुराजो विराजश्च कल्पकः कामिकोद्भटः ।
पञ्चशीर्ष्णः पार्वणिकः पञ्चाक्षः पारिभद्रकः ॥७२॥
इषीकः काशभृत्काकः कञ्जास्यः कौटिकस्तथा ।
कलाकरः कौर्मिकश्च विषघ्नः पञ्चपावकः ॥७३॥
सैंहिकेयो रौद्रमुखो मञ्जीरो डिम्भकोर्जकः ।
पिङ्गकः कर्णिकः क्रोधो क्रव्यादः कालकौलिकः ॥७४॥
विनायको विश्वमुखः पावकास्यः कपालकः ।
विजयो विप्लवः प्राणजङ्घिको कार्मुकः (खः?) पृथुः ॥७५॥
शिञ्जीरश्शिविकश्चण्डो जम्बालः कुटिलोर्मिकः ।
जृम्भकश्शाकमित्रश्च विशल्यः कङ्कगौरभः ॥७६॥

सुरघस्सूर्यमित्रश्च शशकश्शाकलस्तथा ।
शक्त्याकरश्शाम्भविकश्शिञ्जाणश्शिविकाशुकः ॥७७॥
भेकण्डो मुण्डकः कार्ष्णर्यो पुरुहूतः पुरञ्जयः ।
भम्बालिको शार्ङ्गिकश्च चम्बीरो घनवर्ष्मकः ॥७८॥
चञ्चवाकश्चापको नङ्गः पिशङ्गो वार्षिकस्तथा ।
राजराजो नागमुखस्सुधाकरविभाकरः ॥७९॥
त्रिणेत्रो भूर्जकः कूर्मः कुमुदः कार्मुखस्तथा ।
कपिलो ग्रन्थिकः पाशधरो डमुरगो रविः ॥८०॥
मुञ्जको भद्रकश्चेति शतञ्च त्रीण्यथाक्रमम् ।
विमानशिरोमणीनां नामान्युक्तानि शास्त्रतः ॥८१॥

३२ मणिवर्गों में बारहवें वर्ग में क्रम से जो १०३ मणियां महर्षियों ने कही हैं वे उक्त विमान की शिरोमणियां—विशेषतः शीर्षस्थान पर योजनीय हैं। उनके नाम यथाक्रम कहूंगा जो शास्त्रोक्त है—शङ्कर, शान्तक, खर्व, भास्कर, मण्डल कलान्तक, दीप्तिक, नन्दक, चक्रकण्ठ, पञ्चनेत्र, राजमुख, राकास्य, कालभैरव, चिन्तामणि, कौशिक, चित्रकौशिकभास्कर, उडु (हु ?) राज, विराज, कल्पक, कामिकोद्भव, पञ्चशीर्ष्ण, पार्वणिक, पञ्चाच्त, पारिभद्रक, इषीक, काशभृत्काक, कञ्जास्य, कौटिक, कलाकर, कौर्मिक, विषघ्न, पञ्चपावक, सैंहिकेय, रौद्रमुख, मञ्जीर, डिम्भक, जर्क, पिङ्गक, कर्णिक, क्रोध, क्रव्याद, कालकौलिक, विनायक, विश्वमुख, पावकास्य, कपालक, विजय, विप्लव, प्राणजङ्घिक, कार्मुक (ख?), पृथु, शिञ्जीर शिविक, मित्र, शशक, शाकल, शक्त्याकर, शाम्भविक, शिञ्जाण, शिविक, शुक, भेकाण्ड, मुण्डक, कार्ष्णर्य, पुरुहूत, पुरञ्जय, जम्बालिक, शार्ङ्गिक, जम्बीर, धनवर्ष्मक, चञ्चवाक, चापक, गङ्ग, पिशङ्ग, वार्णिक, राजराज, नागमुख, सुधाकर, विभाकर, त्रिनेत्र, भूर्जक, कूर्म, कुमुद, कार्मुख, कपिल, ग्रन्थिक पाशधर, डमुरग, रवि, मुञ्जक, भद्रक। ये १०३ विमान की शिरोमणियों के नाम शास्त्र में कहे हुए हैं ॥६८—८१॥

व्योमयानोर्ध्वभागस्य शिरःकेन्द्रे यथाविधि ।
स्थापयेदुक्तमणिष्वेकैकं सुदृढं यथा ॥८२॥
विद्युद्यन्त्रमुखात्सर्वतन्त्रीनाहृत्य शास्त्रतः ।
तन्मूले योजयेत्सम्यगेभ्यश्शक्त्यपकर्षणम् ॥८३॥
तस्योर्ध्वमुखपार्श्वेथ किरणाकर्षणान् दृढान् ।
पूर्ववत् योजयेत् पश्चान्मेलनार्थं द्वयोः क्रमात् ॥८४॥ इत्यादि ॥
एवमुक्त्वा यानशिरोमणिकार्यमतः परम् ।
वक्ष्ये किरणसन्धानकीलकं शास्त्रतः स्फुटम् ॥८५॥
पञ्चविंशदितिख्यातास्शक्तिसन्धानकीलकाः ।
तेष्वर्क किरणयानसन्धाने कीलकः क्रमात् ॥८६॥
कीर्त्यते संग्रहादत्र समालोच्य यथामति ।

विमान यान के उपरिभाग में स्थित शिर केन्द्र में यथाविधि उक्त मणियों में से एक एक मणि सुदृढ़ स्थापित करे। विद्युद्यन्त्र के मुख से सब तारों को शास्त्रानुसार लेकर उनके मुख में जोड़दे और इन तारों से शक्त्यपकर्षण—शक्ति को खींचने वाले यन्त्र को उसके उपरि मुख के पास किरणों के आकर्षण करने वालों को पूर्व की भांति पश्चात् क्रम से दोनों के मेलनार्थ जोड़ दे। इस प्रकार विमान के शिर की मणियों को कह कर इससे आगे किरणसन्धानकीलों—किरणों के धारण करने वाले पेंचों को शास्त्र से स्फुट कहूँगा, शक्तिसन्धान कीलें २५ ख्यात हैं प्रसिद्ध हैं कही गई हैं, उनमें से सूर्यकिरणों के यानसन्धान में कीलक्रम से संक्षेप से यथामति आलोचना करके कही जाती हैं ॥ ८२–८६ ॥

तदुक्तं बृहत्काण्डिके—यह बात बृहत्काण्डिक ग्रन्थ में कही है—

सन्धानकीलकाः पञ्चविंशतिः परिकीर्तिताः ॥ ८७ ॥
सूर्यांशुयानसन्धाने नवमस्तेषु वर्णितः ।
तत्कीलकविवक्षार्थं तेषां नामान्यनुक्रमात् ॥ ८८ ॥
बृहत्काण्डिकरीत्या तु सुविचार्य निरूप्यते ।
पिञ्जुलीकः कि (की ?) रणको डिम्भकोपवितीयकः ॥८९॥
कच्छपो गारुडो द्दण्डो शक्तिपो गोविदारकः ।
पवनास्यः पञ्चवक्त्रो वज्रकः कङ्कणस्तथा ॥ ९० ॥
अहिर्बुध्न्यः (ध्यः ?)कुण्डलिको नाकुलश्चोर्णनाभिकः ।
त्रिमुखस्सप्तशीर्षण्यो पञ्चावर्तः परावतः ॥ ९१ ॥
आवर्तनाभिकोर्ध्वास्यशिलावर्त इति क्रमात् ।
विमानशक्तिसन्धानकीलकाः पञ्चविंशतिः ॥ ९२ ॥
एतेषु गोविदारकस्तु कीलकस्सुप्रकाशकः ।
सूर्यांशुयानसन्धानकार्यनिर्वाहको भवेत् ॥ ९३ ॥ इति ॥

सूर्यकिरणों के यान में जोड़ने में सन्धानकीलें २५ कही हैं, उनमें से नवम कील कही है, उस कील की विवक्षा के लिए उनके नाम अनुक्रम से बृहत्काण्डिक की रीति से यहां सुविचार कर निरूपित किया जाता है जो कि पिञ्जुलीक, किरणक, डिम्भ, कोप, वितीयक, कच्छप, गारुड, उद्दण्ड, शक्तिप, गोविदारक, पवनास्य; पञ्चवक्त्र, वज्रक, कङ्कण, अहिर्बुध्न्य, कुण्डलिक, नाकुल, ऊर्णनाभि, त्रिमुख, सप्तशीर्षण्य, पञ्चावर्त, परावत, आवर्त, नाभिक, उर्ध्वास्य, शिलावर्त ये क्रम से विमान शक्तिसन्धानकीलें २५ हैं। इनमें गोविन्दारक कीलक अच्छी प्रकाशक है सूर्यकिरण या यानसन्धान कार्य का निर्वाहक है ॥ ८७–९३ ॥

अङ्गोपसंहारयन्त्रविचारः—अङ्गोपसंहार यन्त्र का विचार—

एवमुक्त्वा परिवेषक्रियायन्त्रमतः परम् ।
अङ्गोपसंहारयन्त्रस्संग्रहेण प्रचक्षते ॥ ९४ ॥
सूर्यादिसर्वग्रहाणां शशिसंस्थानतस्तथा ।
चारातिचारवक्रातिवक्रसञ्चारकारणात् ॥ ९५ ॥

भवेन्मेषादिराशिस्थशक्तिसम्मथनं क्रमात् ।
तेनाकाशतरङ्गस्थशक्त्युद्रेको भवेत्स्वतः ॥ ९६ ॥
तयोस्सङ्घर्षणं पश्चाज्जायतेत्यन्तवेगतः ।
तस्माच्छक्तिप्रवाहाश्चाग्निज्वालाप्रवाहवत् ॥ ९७ ॥
अनुलोमविलोमाभ्यां वक्रगत्यतिवेगतः ।
प्रवहन्ति विशेषेण राशिभोगानुसारतः ॥ ९८ ॥
सञ्चारकाले स्वपथि विमानाङ्गोपरि क्रमात् ।
तत्प्रवाहोष्णसंयोगो यदङ्गो स्याद् विशेषतः ॥ ९९ ॥
दग्ध्वा भस्मीकृतं (तो ? भूयात् तदङ्गमतिशीघ्रतः ।
उष्णप्रमापकाद् यन्त्रात् तद्विज्ञायाथ वेगतः ॥ १०० ॥
तदपायनिवृत्त्यर्थं तदङ्गमुपसंहरेत् ।
तस्मादङ्गोपसंहारयन्त्रमत्र प्रचक्षते ॥ १०१ ॥

इस प्रकार परिवेषक्रिया यन्त्र कह कर इससे आगे अङ्गोपसंहार यन्त्र संक्षेप से कहते हैं। सूर्य आदि सब ग्रहों के राशिसंस्थान से चार अतिचार वक्र अतिवक्र सञ्चार के कारण मेष आदि राशिस्थ शक्ति का मन्थनक्रम से हो जावे—हो जाता है उससे आकाशतरङ्गों में स्थित शक्ति का उद्रेक—आधिक्य—प्राबल्य स्वतः हो जाता है फिर उन दोनों का संघर्षण—टकराव अत्यन्त वेग से हो जाता है अतः शक्तिप्रवाह अग्निज्वालाप्रवाह की भांति सीधे उलटे ढंग से वक्रगति के अतिवेग से राशिभोगानुसार विशेषरूप से प्रवाहित हो जाते हैं। सञ्चारकाल में अपने मार्ग में विमानाङ्गों के ऊपर क्रम से उस प्रवाह का उष्ण संयोग जिस अङ्ग में विशेष हो जावे तो वह अङ्ग अतिशीघ्र जल कर भस्म हो जावे, उष्णतामापक यन्त्र से उसको जान कर शीघ्र उस अनिष्ट की निवृत्ति के अर्थ उस अङ्ग का उपसंहार करे अतः अङ्गोपसंहार यन्त्र यहां कहते हैं ॥ ९४–१०१ ॥

हस्तलेख कापी संख्या ८—

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह अङ्गोपसंहार यन्त्र 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ में कहा है—

सुमृलीकं शोधयित्वा लोहं माञ्जीरमिश्रितम् ।
वितस्तिद्वादशायामं घनमष्टादशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
चतुरस्रं वर्तुलं वा पीठं कुर्याद् यथाविधि ।
कान्तडिम्बिकसम्मिश्रलोहाद् द्रावकशोधितात् ॥ २ ॥
त्रिंशद्वितस्त्युन्नतं च वितस्तित्रयगात्रकम् ।
मूले मध्ये तथा चान्ते छत्रीवत्कीलकान्वितम् ॥ ३ ॥
दण्डमेकं कल्पयित्वा पीठमध्ये दृढं न्यसेत् ।
कीलकत्रयमारभ्य दण्डस्याधो यथाविधि ॥ ४ ॥
विमानमूलमध्यान्तस्थाङ्गयन्त्रावधि क्रमात् ।
पञ्चकीलसंमायुक्तान् सुदृढान् मृदुलानृजून् ॥ ५ ॥

माञ्जीर ? मिले सुमृलीक लोहे को शोधकर १२ बालिश्त लम्बा चौड़ा ८ अङ्गुल मोटा चौकोन या गोल पीठ यथाविधि करे—बनवावे, कान्त—अयस्कान्त, डिम्बिक ? मिश्रलोह द्रावक शोधित से ३० बालिश्त ऊंचा ३ बालिश्त मोटा मूल में मध्य में और अन्त में छत्री की भांति कीलों से युक्त एक दण्ड बनाकर पीठ के मध्य में लगा दे तीन कीलों से आरम्भ करके दण्ड के नीचे यथाविधि विमान के मूल मध्य अन्त में स्थित अङ्गयन्त्रों तक क्रम से पांच कीलों से युक्त सुदृढ़ मृदुल सरल—॥ १—५ ॥

उपसंहारोद्धारकावर्तकीलैर्विराजितम् ।
मिश्रलोहकृतान् शुद्धान् शलाकान् विरलं यथा ॥ ६ ॥
छत्रीशलाकावत्तत्तत्कीलकेभ्यः पृथक् पृथक् ।
तत्तद्रेखानुसारेण योजयेत्तदनन्तरम् ॥ ७ ॥
त्रिचक्रकीलकसंयुक्तं मुखत्रयविराजितम् ।
नालद्वयसमायुक्तं भ्रामणीकीलकद्वयम् ॥ ८ ॥
संस्थापयेद् दण्डमूलकीलकद्वयमध्यमे ।
तदुत्तरे रुक्मतैलं नलिकापात्रपूरितम् ॥ ९ ॥

लेपनार्थं कीलकानां स्थापयेद् विधिवत्ततः ।
यदङ्गस्योपसंहारः कर्तव्यमिति रोचते ॥१०॥

उपसंहार—सङ्कोच और उद्धार—विकास के साधनभूत कीलों—पेंचों से विराजित मिश्रलोहे से किए शुद्ध शलाकाओं को छीद से छत्री की शलाकाओं की भांति उन उन कीलों से अलग अलग जोड़ दे पुनः उन उनकी रेखानुसार जोड़ दे, तीन चक्र की कीलों से युक्त तीन मुखों से विराजित दो भ्राम-णीकील संस्थापित करे, दण्डे के मूल की दो कीलों के मध्य में इनके उत्तर में रुक्मतैल—नागकेशर का तैल नलिकापात्र में भरा हो कीलों को लपेटने के लिये विधिवत् स्थापित करे। जिस अङ्ग का उपसंहार करना रुचिकर हो—॥ ५—१० ॥

तत्क्षणाद् दण्डमूलस्थभ्रामणीं चालयेद् यदि ।
तेनाङ्गयन्त्रशलाककीलसञ्चालनं भवेत् ॥११॥
छत्रीशलाकवत्तेन तच्छलाकमपि क्रमात् ।
प्रत्यङ्गमुखं भवेत् तस्मादङ्गयन्त्रोपसंहृतिः ॥१२॥
प्रभवेदतिवेगेन न्यग्भावस्तच्छलाकतः ।
पश्चात् प्राप्तापायनाशो भवत्येव न संशयः ॥१३॥
एवं क्रमेणाङ्गयन्त्रोपसंहारश्शलाकतः ।
तत्तत्कीलप्रचालनात् कर्तव्यं स्यात् पृथक् पृथक् ॥१४॥
यदङ्गस्योपरि भवेद् यानस्यापायसम्भवः ।
तदङ्गस्योपसंहारात् तदपायनिवारणम् ॥१५॥
अनुलोमविलोमाभ्यां तत्तत्कीलकचालनम् ।
तत्तद्यन्त्रोपसंहारोद्धारश्चापि भवेत् क्रमात् ॥१६॥

यदि तुरन्त दण्डमूलस्थ भ्रामणी को चलावे तो उससे अङ्गयन्त्र शलाका की कील का सञ्चा-लन होजावे, छत्रीशलाका की भांति उससे वह शलाका भी क्रम से अङ्गमुख की ओर होजावे उससे अङ्गयन्त्र का उपसंहार अतिवेग से होजावे उस शलाका से नीचे सङ्कोच होजावे पश्चात् प्राप्त अनिष्ट का नाश हो जाता ही है संशय नहीं। इस प्रकार क्रम से अङ्गयन्त्र का उपसंहार शलाका से उस उस कील के चलाने से पृथक् पृथक् करना चाहिए, विमान के जिस अङ्ग के ऊपर अनिष्ट का सम्भव हो उस अङ्ग के उपसंहार से उस अनिष्ट का निवारण होजाता है। सीधे उलटे ढंग से उस कील का चलाना उस उस यन्त्र का उपसंहार—सङ्कोच और उद्धार—विकासप्रसार भी क्रम से होता है ॥ ११—१६ ॥

एवमुक्त्वा यन्त्रोपसंहारयन्त्रमतः परम् ।
विस्तृतास्यक्रियायन्त्रः कथ्यतेत्र यथाविधि ॥१७॥
कूर्मदिग्गजभूमेघविद्युद्व (र ?) रुणशक्तयः ।
यदा पद्ममुखे सम्यङ् मेलयन्ति परस्परम् ॥१८॥
तदा विषम्भरी नाम काचिच्छक्तिः प्रजायते ।
सा भित्त्वा भूमुखं पश्चादत्यन्तोष्णस्वभावतः ॥१९॥

लिङ्कत्रिशतवेगेनोड्डीयोड्डीयातिवेगतः
धावत्यूर्ध्वं खमाश्रित्य व्योमयानं यथाविधि ॥२०॥

इस प्रकार यन्त्रोपसंहार यन्त्र कहकर इससे आगे विस्तृतास्य क्रियायन्त्र यथाविधि यहां कहा जाता है। कूर्म (भूगर्भशक्ति ?)†, दिग्गज (पृथिवी की बाह्य दिशाशक्ति ?), भूमि, मेघ, विद्युत्, वरुण की शक्तियां जब पद्ममुख में भली प्रकार परस्पर मिल जाती हैं तब विषम्भरी–विरुद्ध प्रयोगको धारण करने वाली कोई शक्ति‡ प्रकट हो जाती है वह भूमि के मुख को तोड़कर—भूमि से टकराकर अत्यन्त उष्णस्वभाव से ३०० डिग्री के वेग से उड उड़ कर अतिवेग से ऊपर दौड़ती है आकाश को प्राप्त हो विमान के मार्ग की अवधि तक—॥१७—२०॥

व्याप्य यानपथं पश्चाद् विमानं स्वशक्तितः।
तत्रस्थसर्वलोकानां मेधशक्तिं निमेषतः ॥२१॥
विभज्य तत्क्षणात् तस्मिन्नुद्गारं कुरुते क्रमात्।
बुद्धिमान्द्यशिरोबाधज्वरदाहविरे (रो?) चनाः ॥२२॥
सम्भवन्ति विशेषेण तत्क्षणात् तद्विकारतः।
तद्विलयाय विधिवद् यन्त्राद्यैश्शास्त्रतः क्रमात् ॥२३॥
उद्धरेत् तद्विनाशार्थं व्योमयाने यथाविधि।
विस्तृतास्यक्रियायन्त्रमिति शास्त्रविनिर्णयः ॥२४॥
तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना विस्तृतास्यक्रियाभिध (द?) म्।
यन्त्रमत्रातिसंक्षेपात् प्रसङ्गत्या निरूप्यते ॥२५॥

—यानपथ में व्याप्त होकर पश्चात् विमान को भी व्याप्त हो अपनी शक्ति से विमानस्थित जनों की मेधशक्ति को भिन्न भिन्न करके तुरन्त उद्गार कर देती है बुद्धिमन्दता शिरपीड़ा ज्वरदाह विरेचन रोग विशेषतः उत्पन्न हो जाते हैं उनके विकार से—पूर्वरूप से तुरन्त विधिवत् यन्त्र आदि से शास्त्रानुसार जानकर क्रम से उसके नाशार्थ विमान में यथाविधि उद्धार करे—उपाय करे। वह विस्तृतास्य क्रिया यन्त्र है, यह शास्त्र का निर्णय है, अतः शास्त्रोक्त विधि से विस्तृतास्यक्रियानामक यन्त्र को अतिसंक्षेप से प्रसङ्ग से निरूपित किया जाता है ॥ २१–२५ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यह 'यन्त्रसर्वस्व' में कहा है—

बाहुप्रमाणं विस्तारे गात्रे द्वाविंशदङ्गुलम्।
वर्तुलाकारतः पीठं कुर्यात् पिप्पलदारुणा ॥२६॥
बाहुप्रमाणगात्रं च द्वात्रिंशद्बाहुरुन्नतम्।
स्तम्भं कृत्वा दारुमयं तन्मध्ये स्थापयेद् दृढम् ॥२७॥
व्योमयानाङ्गोपयन्त्रसंख्यया विधिवत् क्रमात्।
अङ्गोपयन्त्रदिग्रेखामनुसृत्य यथाविधि ॥२८॥

† "कूर्मो बिभर्ति धरणीं खलु चात्मपृष्ठे" (शुक० ४४। ३१)
‡ "विष विप्रयोगे"

स्तम्भमूलाद्यशिरोभागान्तं केन्द्रानुसारतः ।
प्रदक्षिणावर्तकीलाननुलोमविलोमतः ॥ २९ ॥
स्तम्भस्य प्रतिकेन्द्रे थ स्थापयेद् द्वन्द्वतः क्रमात् ।
पश्चाद् विमानाङ्गोपयन्त्रमध्यकेन्द्रमुखान्तरे ॥ ३० ॥
भस्त्रिकानालतस्तम्भकीलद्वन्द्वावधिक्रमात् ।
सर्वत्र योजयेन्नालान् कीलसंख्यानुसारतः ॥ ३१ ॥

बाहुभर माप लम्बाई चौड़ाई में, २२ अंगुल मोटाई में गोलाकार पीठ पिप्पल की लकड़ी से बनावे, बाहुभर माप मोटा ३२ अंगुल ऊंचा स्तम्भ काष्ठ का बना कर उसके मध्य में दृढ स्थापित करे, व्योमयान के अङ्गोपयन्त्र संख्या से विधिवत् क्रम से अङ्गोपयन्त्र की दिशा रेखा का अनुसरण करके यथाविधि स्तम्भमूल से शिरोभाग तक केन्द्र के अनुसार घूमने वाली कील के सीधे उलटे ढंग से स्तम्भ के प्रति केन्द्र में स्थापित करे। दो दो करके पश्चात् विमानाङ्गोपयन्त्र के मध्य केन्द्रमुख में भस्त्रिकानाल से स्तम्भ की दो कील की अवधि के क्रम से सर्वत्र कील संख्यानुसार नालों को जोड़े ॥ २६-३१ ॥

तत्तदावर्तकीलानां सन्धिषु क्रमतः पुनः ।
द्विचक्रकीलान् शुद्धान् योजयेत् सुदृढं यथा ॥ ३२ ॥
तदधस्ताद् यथाशास्त्रं पक्षाघातकभस्त्रिकान् ।
संयोजयेत् ततः पीठमूलकेन्द्रमुखे क्रमात् ॥ ३३ ॥
त्रिचक्रभ्रामणीकीलयन्त्रं संस्थापयेद् दृढम् ।
तत्पश्चादुपसंहारकीलकं च तथैव हि ॥ ३४ ॥
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं सम्प्रदायानुसारतः ।
आदौ पीठस्ततस्स्तम्भः पश्चादावर्तकीलकाः ॥ ३५ ॥

उस उस घूमने वाली कीलों की सन्धियों में क्रम से फिर द्विचक्र कीलों को ठीक सुदृढ लगावे, उसके नीचे शास्त्रानुसार पक्षाघातक भस्त्रिकाओं को जोड़े फिर पीठ मूल के केन्द्रमुख में तीन चक्रों वाले घूमने वाले पेंच को संस्थापित करे उसके पीछे उपसंहार कील को शास्त्रानुसार अपनी कलापरम्परा के अनुसार लगावे प्रथम पीठ फिर स्तम्भ पश्चात घूमने वाली कीलें—॥३२-३५॥

सन्धिनाला द्रावशुद्धास्सुदृढाश्च ततः परम् ।
द्विचक्रकीलकाः पश्चात् पक्षाघातकभस्त्रिकाः ॥ ३६ ॥
तथा त्रिचक्रभ्रामणीकीलयन्त्रमतः परम् ।
उपसंहारकीलं चेत्यष्टधा सम्प्रकीर्तिताः ॥ ३७ ॥
यन्त्राङ्गाण्येवमुक्त्वाथ तत्प्रयोगोभिवर्ण्यते ।
स्वतो विषम्भराशक्तिर्भूमिं भित्त्वातिवेगतः ॥ ३८ ॥
व्योमयानस्य सर्वाङ्गमाक्रम्य व्याप्यते यदा ।
व्योमयानाङ्गयन्त्राणि विस्तृतास्यानि तत्क्षणात् ॥३९॥

कुर्यात् सम्पूर्णतश्शास्त्रविधिनातिप्रयत्नतः ।
त्रिचक्रभ्रामणीकीलमादौ तस्मात् प्रचालयेत् ।। ४० ।।
तेन द्विचक्रकीलकाश्च सम्यग्भ्राम्यन्ति वेगतः ।
अतस्सम्यग्भ्रामकास्स्युस्स्तम्भस्थावर्तकीलकाः ।। ४१ ।।
ततो द्विचक्रकीलस्थपक्षाघातकभस्त्रिकाः ।
तच्चक्रभ्रमणादेव विस्तृतास्या भवन्ति हि ।। ४२ ।।
ततोतिवेगतो वायुस्तन्मुखात् सम्प्रधावति ।
पश्चाच्छ्वासोच्छ्वासवत्तत्सन्धिनालान्तरे क्रमात् ।।४३।।

सन्धिनालें द्राव से शुद्ध और सुदृढ करें फिर दो चक्रों वाली कीलें पश्चात् पक्षाघात भस्त्रिकाएं तथा इससे तीन चक्रों वाला भ्रामणीकील यन्त्र और उपसंहार कील आठ प्रकार या आठ स्थानों में कहे हैं। यन्त्रों के अङ्ग इस प्रकार कहकर अब उनका प्रयोग वर्णित करते हैं, विषम्भरा शक्ति स्वतः भूमि को वेग से तोड कर विमान के सारे अङ्गों पर आक्रमण करके जब व्याप जाती है तो विमान के अङ्गयन्त्रों को पूर्णरूप से शास्त्रविधि से अतिप्रयत्न से तुरन्त विस्तृतास्य करदे, प्रथम तीन चक्रों वाली भ्रामणी कील को चलावे उससे दो चक्रों वाली कीलें सम्यक् वेग से घूमती हैं अतः स्तम्भस्थ घूमनेवाले पेंच भली प्रकार घूमने वाले हो जाते हैं। फिर दो चक्र वाली कीलों में स्थित पक्षघातक भस्त्रिकाएं उन चक्रों के भ्रमण से ही विस्तृतास्य हो जाती हैं फिर अति वेग से उसके मुख से वायु दौड़ता है पश्चात् क्रम से श्वास उच्छ्वास की भांति सन्धिनाल के अन्दर—।। ३६–४३ ।।

प्रविश्य चातिवेगेन तद्वायुश्चरति स्वतः ।
तद्वाताघाततः पश्चादङ्गयन्त्रमुखस्थिताः ।। ४४ ।।
भस्त्रनाला मध्यकेन्द्रे विस्तृतास्त्वेकधैव हि ।
भवन्ति तन्मुखात् पश्चाद् भस्त्रिकावद् विशेषतः ।।४५।।
फूत्कारपूर्वकं वायुर्वाति पूर्णप्रवाहवत् ।
तत्प्रवाहोतिवेगेन शक्तिं सम्यग् विषम्भराम् ।। ४६ ।।
अपहृत्याकाशवातमण्डले नियोजयति ।
ततो विषम्भरा शक्तिस्तत्रैव लयमेधते ।। ४७ ।।
ततो विमानस्थजनमेधोरुङ्नाशनं भवेत् ।
एवं विषम्भराशक्तिं नाशयित्वा यथाविधि ।। ४८ ।।
चालयेदुपसंहारकीलकं तदनन्तरम् ।
तेन यानाङ्गोपयन्त्राण्यभूवन् पूर्ववत् क्रमात् ।। ४९ ।।
विस्तृतास्यक्रियायन्त्रप्रयोगश्चैवमीरितः (तम्) ।
एवमुक्त्वा विस्तृतास्यक्रियायन्त्रं यथाविधि ।। ५० ।।
संग्रहाद् वैरूप्यदर्पणयन्त्रमथोच्यते ।

—प्रविष्ट होकर वह वायु स्वतः अतिवेग से सञ्चार करती है पश्चात् इस वायु के आघात से अङ्ग-यन्त्रों के मुख में स्थित भस्त्रानालें मध्य केन्द्र में एक साथ—एक दम विस्तृत हो जाती हैं फिर उनके मुख से भस्त्रिका की भांति विशेषतः फूत्कारपूर्वक वायु पूर्ण प्रवाह से चलती है वह प्रवाह अति वेग से विषम्भरा शक्ति को खींच कर आकाशमण्डल में नियुक्त कर देता है तब विषम्भरा शक्ति वहां ही लय को प्राप्त हो जाती है। फिर विमान में स्थित मनुष्यों के मेधरोग का नाश हो जाता है। इस प्रकार विषम्भरा शक्ति को यथाविधि नष्ट करके अनन्तर उपसंहार कील को चलावे उससे विमानांगों के उपयन्त्र पूर्व जैसे हो जाते हैं। विस्तृतास्यक्रियायन्त्र कह कर वैरूप्यदर्पण यन्त्र अब संक्षेप से कहा जाता है ॥ ४४–५० ॥

वैरूप्यदर्पणयन्त्रनिर्णयः—वैरूप्य दर्पणयन्त्र का निर्णय—

विमाननाशनार्थं ये समागच्छन्ति शत्रवः ॥ ५१ ॥
तेषां देहविरूपत्वं यस्य सन्दर्शनाद् भवेत् ।
वैरूप्यदर्पण इति तमाहुः पण्डितोत्तमाः ॥ ५२ ॥
तद्दर्पणकृतं यन्त्रं वैरूप्यादर्शयन्त्रकम् ।
इति शास्त्रेषु निर्णीतं यन्त्रतत्वविदां वरैः ॥ ५३ ॥
संग्रहेणात्र विधिवत् वक्ष्ये तद्रचनाविधिम् ।

विमान के नाशार्थ जो शत्रुजन आ जाते हैं उनके देह की विरूपता जिसके देखने से हो जावे उसे वैरूप्य दर्पण इस नाम से ऊंचे विद्वान् कहते हैं। वह दर्पण से किया यन्त्र वैरूप्यादर्श यन्त्र शास्त्रों में यन्त्रतत्त्ववेत्ताओं ने निर्णय किया है। उसकी रचनाविधि को संक्षेप से विधिवत् कहूंगा ॥ ५१–५३ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में कहा है—

यदा तु व्योमयानस्य विनाशार्थं तु शत्रवः ॥ ५४ ॥
आगत्यावृत्य तिष्ठन्ति विमानं क्रूरकर्मिणः ।
तेषां रूपविकारार्थं यन्त्रोयं परिकीर्तितः ॥ ५५ ॥
पीठकेन्द्रावर्तकीलज्योतिस्तम्भास्तथैव च ।
विद्युद्यन्त्रावर्तधूमनालश्चापि ततः परम् ॥ ५६ ॥
घोण्टिकातैलत्रिचक्रकीलकोशत्रयं तथा ।
धूमदीपोपसंहारनालो चापि यथाक्रमम् ॥ ५७ ॥
वैरूप्यादर्शयन्त्रस्याङ्गानीत्याहुर्मनीषिणः ।
वितस्तिद्वयविस्तारं वितस्तिद्वयमु(रु ?) न्नतम् ॥५८॥
बैल्वेन वर्तुलं पीठं कुर्याच्छास्त्रविधानतः ।
तस्मिन् द्वादशकेन्द्राणि कल्पयेत् समरेखतः ॥ ५९ ॥

आवर्तकीलकान् पश्चात् स्थापयेत् प्रतिकेन्द्रके ।
चतुर्विंशत्यङ्गुलावर्तगात्रं चोन्नते तथा ॥ ६० ॥

जबकि विमान के विनाशार्थ क्रूरकर्मी शत्रु आकर विमान को घेर कर खड़े हो जावें तो उनके रूप के विकारार्थ यह यन्त्र कहा है। पीठ, केन्द्र, आवर्तकील, ज्योतिस्तम्भ, विद्युद्यन्त्रावर्त, धूमनाल, घोण्टिका तैल,—सुपारीतैल, त्रिचक कील, तीन कोश, धूमदीप, उपसंहारनाल ये वैरूप्य आदर्श यन्त्र के अङ्ग मनीषी विद्वानों ने कहे हैं। २ बालिश्त ऊंचा पीठ गोल बिल्वकाष्ठ (बेल वृक्ष की लकड़ी) से शास्त्रानुसार करे। उसमें बारह केन्द्र समरेखा से बनावे पश्चात् घूमने वाले पेंच प्रतिकेन्द्र स्थापित करे, २४ अंगुल मोटा तथा ऊंचा – ॥ ५४–६० ॥

वैरूप्यदर्पणक्तं ज्योतिस्तम्भं यथाविधि ।
मध्यकेन्द्रे प्रतिष्ठाप्य विद्युद्यन्त्रं तदग्रतः ॥ ६१ ॥
द्वितीयकेन्द्रे विधिवत् स्थापयेत् कीलबन्धनात् ।
क्रमात् केन्द्रत्रये पश्चादावर्तधूमनालकम् ॥ ६२ ॥
प्रदक्षिणाकारतन्त्रीन् स्थापयेत् सुदृढं यथा ।
घोण्टिकातैलपात्रं तु कीलके पञ्चमे न्यसेत् ॥ ६३ ॥
मुखत्रयसमायुक्तं कोशत्रयमतः परम् ।
वितस्त्येकप्रमाणेन निर्मितं दुग्धचर्मणा ॥ ६४ ॥
षट्सप्ताष्टमकेन्द्रादिधूमनालावधिक्रमात् ।
स्थापयेद् विधिवत् पश्चाद् दृढं नवमकेन्द्रके ॥ ६५ ॥

वैरूप्यदर्पण से किया ज्योतिस्तम्भ यथाविधि मध्यकेन्द्र में प्रतिष्ठित करके उसके आगे विद्युद्यन्त्र दूसरे केन्द्र में विधिवत् कीलबन्धन से स्थापित करे, क्रम से तीन चक्रों में घूमने वाली धूमनालों को गोलाकार तारों को सुदृढ स्थापित करे, घोण्टिका–मैनफल के तैल या सुपारी तैल का पात्र पांचवें कील में रखे, इससे आगे तीन मुखों से युक्त तीन कोश एक बालिश्त माप से दुग्धचर्म—दूध के पनीर से बनाया हुआ ६, ७, ८, संख्या वाले केन्द्र आदि धूमनाल विधानक्रम से नवम केन्द्र में विधिवत् स्थापित करे ॥ ६१–६५ ॥

धूमोपसंहारनालः पश्चाद् दशमकेन्द्रके ।
दीपोपसंहारनालः तथैकादशके न्यसेत् ॥ ६६ ॥
आवृत्ततन्त्रीनालकीलकं द्वादशकेन्द्रके ।
एवं सन्धार्य विधिवद् विनियोगस्त्वतः परम् ॥ ६७ ॥
शत्रुरूपविकारार्थं कर्तव्यं शास्त्रतः क्रमात् ।
निरूप्यैवं यथाशास्त्रं यन्त्रस्य रचनाविधिम् ॥ ६८ ॥
तत्प्रयोगविधिं वक्ष्ये संग्रहेण यथामति ।
विद्युद्यन्त्रात् समाहृत्य शक्तिमादौ यथाविधि ॥ ६९ ॥

त्रिचक्रकीलयन्त्रेऽथ चोदयेत् सप्रमाणतः ।
तेन भ्राम्यति तद्यन्त्रं स्वतो वेगात् स्वकेन्द्रके ॥ ७० ॥

पश्चात् धूमोपसंहार नाल दशम केन्द्र में तथा दीपोपसंहार नाल ग्यारहवें केन्द्र में रखे, घूमने वाले तारों की नालकील बारहवें केन्द्र में इस प्रकार विधिवत् प्रसङ्गत: लगा कर इसके आगे शत्रु का रूप बिगाड़ने के अर्थ करना चाहिये क्रम से शास्त्र से निरूपण करके यन्त्र की रचनाविधि को संक्षेप से यथामति कहूंगा, विद्युद्यन्त्र से शक्ति को लेकर यथाविधि तीन चक्रों वाले यन्त्र में सप्रमाण प्रेरित करे, इससे वह यन्त्र स्वत: स्वकेन्द्र में घूमता है ॥ ६६-७० ॥

तद्वेगात् सर्वकेन्द्रस्थतत्तत्तन्त्रीमुखात् पुनः ।
शक्तिसञ्चोदनात् सर्वावृत्तकीला भवन्ति हि ॥ ७१ ॥
त्रिचतुःपञ्चकेन्द्रस्थतन्त्रीमार्गाद् यथाक्रमम् ।
शक्तिसंयोजनं कृत्वा कीलकभ्रमणं ततः ॥ ७२ ॥
कुर्यात् तेन क्रमान्नालत्रयं विकसितं भवेत् ।
पश्चान्नवमकेन्द्रावर्तकीलभ्रमणं तथा ॥ ७३ ॥
पूर्ववत् कारयेत् पश्चात् तेन कोशत्रयं क्रमात् ।
विस्तृतं स्यात् ततः पञ्चमकेन्द्रस्यावर्तकीलकम् ॥७४॥
पूर्ववद् भ्रामयित्वाथ शक्तिं तन्मार्गतः क्रमात् ।
योजयेत् सप्रमाणेन घोण्टिकातैलपात्रके ॥ ७५ ॥

उसके वेग से सर्व केन्द्रस्थ उस उस तार के मुख से पुन: शक्ति के प्रेरण से सब ओर घूमने वाली कीलें—पेंच घूमते हैं, तीन चार पांच केन्द्रों में स्थित हुए तारों के मार्ग से यथाक्रम शक्तिसंयोजन करके फिर कीलभ्रमण करे—पेंच को घुमावे उससे तीनों नाल खुल जावेंगे पश्चात् नवम केन्द्र की कीली का भ्रमण पूर्व की भांति करे पश्चात् उससे क्रम से तीनों कोश विस्तृत हो जावें फिर पांचवें केन्द्र की घूमने वाली कील पूर्ववत् घुमा कर उस मार्ग से शक्ति को सप्रमाण घोण्टिका तैल—मैनफल या सुपारी के तैल के पात्र में युक्त कर दे ॥ ७१-७५ ॥

तत्तैलं विषधूमस्स्यात् समग्रं शक्तिवेगतः ।
कोशत्रयेऽथ विधिवत् तद्धूमं पूरयेत् तथा ॥ ७६ ॥
एकैककोशस्थधूममेकैकधूमनालके ।
पूरयेद् विधिवत् पश्चात् तत्तत्कालानुसारतः ॥ ७७ ॥
अनुलोमविलोमाभ्यां धूमनालद्वयात् ततः ।
विषधूमं समाहृत्य द्वौ भागौ शत्रुमण्डले ॥ ७८ ॥
संयोजयेत् ततस्तेनावरणं परिवेषवत् ।
बाह्यप्रदेशे शत्रूणां मण्डलस्य भवेत् क्रमात् ॥ ७९ ॥
घोण्टिकातैलतः पश्चाद् दीपं कृत्वा यथाविधि ।
ज्योतिस्स्तम्भान्तरे कीलबन्धनात् स्थापयेत् दृढम् ॥ ८० ॥

वह तैल शक्ति वेग से सब विषैला धुवां हो जावे—हो जावेगा, उस धुएं को तीनों कोशों में भर दे फिर एक कोश में स्थित धूवां एक एक धूमनाल में विधिवत् भर दे, पश्चात् उस उसके समयानुसार अनुलोम विलोम—सीधे उलटे ढंग से दो धूमनालों से विषधूम दो भाग लेकर शत्रुमण्डल में संयुक्त कर दे फिर परिवेषक्रिया की भांति बाह्य प्रदेश में शत्रुओं के मण्डल का आवरणक्रम से हो जावे। पश्चात् घोण्टिका तैल—मैनफल या सुपारी के तैल से यथाविधि दीपक करके ज्योतिस्तम्भ के अन्दर कीलबन्धन से स्थापित कर दे ॥ ७६–८० ॥

ज्योतिस्तम्भान्तरं व्याप्य तत्प्रकाशस्समग्रतः।
आसमन्ताद् रक्तवर्णं जपाकुसुमवत् क्रमात् ॥ ८१ ॥
करोति पश्चात् तज्ज्योतिस्स्तम्भस्योपर्यथाविधि ।
संयोजयेत् सप्रमाणं विद्युद्भासनमतः परम् ॥ ८२ ॥
ज्योतिर्भानं समाहृत्य विद्युद्भासस्स्ववेगतः ।
हरितश्वेतपीतादिसप्तवर्णविकारताम् ॥ ८३ ॥
करोति तत्क्षणात् पश्चात् समग्रं स्तम्भकेन्द्रके ।
ज्योतिस्स्तम्भे भासमानविद्युद्दीपप्रकाशयोः ॥ ८४ ॥
तृतीयधूमनालेन धूममाकृष्य कोशतः ।
विधिवद् योजयेद् वातनालमार्गात् प्रमाणतः ॥ ८५ ॥

ज्योतिस्तम्भ के अन्दर व्याप कर उसका समग्र प्रकाश सब ओर से जपाफूल की भांति रक्त-वर्ण—लाल रंग वाला कर देता है पश्चात् इस ज्योतिस्तम्भ के ऊपर यथाविधि सप्रमाण विद्युद्भास—बिजुली के प्रकाश को संयुक्त कर दे। इसके आगे ज्योतिर्भान—ज्योति के भान को विद्युत् का भास स्वतः लेकर हरा सफेद पीला आदि सात रंगों की विकारता को तत्क्षण करता है। पश्चात् स्तम्भ केन्द्र में ज्योतिस्तम्भ में भासमान विद्युत् और दीपप्रकाश में तीसरे धूमनाल से कोश से धूम को खींच कर विधिवत् वातनाल मार्ग से प्रमाण में जोड़ दे ॥ ८१–८५ ॥

विषधूमस्ततस्तेन दीपवत्त्वं प्रकाशते ।
तद्दीपभानमाहृत्य नालमार्गाद् यथाविधि ॥ ८६ ॥
ज्योतिस्स्तम्भपुरोभागस्स्थितवैरूप्यदर्पणम् ।
संयोजयेत् ततो दीपप्रकाशस्तं समग्रतः ॥ ८७ ॥
व्याप्य वेगाद् विशेषेण कलात्रिशतभास्वरः ।
भवेद् द्रष्टुमशक्यं च शत्रूणां स्तम्भनं तथा ॥ ८८ ॥
पुनः कोशात् त्रयाद् धूममाहृत्य विधिवत् क्रमात् ।
शत्रुमण्डलबाह्यस्थपरिवेषान्तरे पुनः ॥ ८९ ॥
संयोजयेत् पञ्चविंशल्लिङ्कमात्रं यथाविधि ।
पश्चाद् धूमं तत्प्रकाशे धूमनालान्तरात् पुनः ॥ ९० ॥

फिर धूम दीपवत्ता को प्रकाशित करता है उस दीपप्रकाश को लेकर नालमार्ग से यथाविधि ज्योतिस्तम्भ के सामने वाले भाग में स्थित वैरूप्य दर्पण संयुक्त कर दे फिर वह दीपप्रकाश उस "वैरूप्य-दर्पण" को समग्र रूप से व्याप्त कर विशेषरूप से ३०० कलाओं में भास्वर—सूर्यजैसा प्रकाशवाला हो जावे और शत्रुओं के लिए देखने में अशक्य तथा स्तब्ध करने वाला हो जावे, फिर तीनों कोशों से विधिवत् धूम को लेकर क्रम से शत्रुमण्डल के बाहिरी परिवेष के अन्दर २५ डिग्री प्रमाण में यथाविधि युक्त कर दे, पश्चात् उस प्रकाश में धूमनाल के अन्दर से धूम को—॥ ८६-९० ॥

संयोजयेदष्टविंशल्लिङ्कमात्रमतः परम् ।
तद्धूमेनावृतं भानं शत्रूणामुपरि क्रमात् ॥ ९१ ॥
व्याप्य तेषामङ्गसन्धिमधोस्थानं च वेगतः ।
मनोविकारतां नेत्रमान्द्यं देहाङ्गबन्धनम् ॥ ९२ ॥
दग्धवृन्ताकवद् देहं ज्वरदाहादिपीडनम् ।
करोति तत्क्षणात् सर्वे मूर्च्छितारश्च भवन्ति हि ॥९३॥
पश्चाद् विमानं शास्त्रोक्तविधिना लाघवात् पुनः ।
आकाशपथरेखायां चोदयेत् पूर्ववत् सुधीः ॥ ९४ ॥
एवमुक्त्वा वैरूप्यदर्पणयन्त्रक्रियां ततः ।
पद्मचन्द्रमुखं नाम यन्त्रमद्य प्रचक्षते ॥ ९५ ॥

अठाईस लिङ्क—डिग्री प्रमाण में युक्त करे, इससे आगे उस धूम से आच्छादित या पूर्ण-भान—प्रकाशक्रम से शत्रुओं के ऊपर व्याप कर वेग से उनके अंगों की सन्धि मेद-स्थान और मनो-विकारता को नेत्रमन्दता देहांगों का बन्धन—जकड़ाव को जले बैंगन के समान देह को ज्वरदाह आदि पीडा को तुरन्त कर देता है और सब मूर्च्छित हो जाते हैं। पश्चात् विमान को शास्त्रोक्त विधि से लाघव से फिर आकाशमार्ग की रेखा में बुद्धिमान् प्रेरित करे—उडावे। इस प्रकार वैरूप्य दर्पणयन्त्र क्रिया को कह कर पद्मचक्रमुख नाम का यन्त्र अब कहते हैं॥ ९१-९५ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में —

पीठश्शङ्कुर्नालदण्डो विद्युत्तन्त्री तथैव च ।
सूक्ष्मदर्पणपत्राणि तथा पद्मक्रियाविधिः ॥ ९६ ॥
पद्मप्रतिष्ठास्थानानि तद्यन्त्रेथ यथाक्रमम् ।
वाताकर्षणत्वग्भस्त्रकीलकाश्च तथैव हि ॥ ९७ ॥
सङ्कोचनविकासनकीलकौ च ततः परम् ।
त्रिचक्रभ्रामणीयन्त्रस्थापनानिर्णयस्तथा ॥ ९८ ॥
वातप्रवाहमार्गाणि चोपसंहारकीलकम् ।
एते द्वादश यन्त्राङ्गानीति शास्त्रविनिर्णयः ॥ ९९ ॥
वितस्त्यष्टकमायामं वितस्तित्रयमुन्नतम् ।
चतुरस्रं वर्तुलं वा पीठं पिप्पलदारुणा ॥ १०० ॥

प्रकल्प्य तस्मिन् द्वादश केन्द्रस्थानानि कारयेत् ।
रेखाप्रसारणं कुर्यान्मध्यकेन्द्रात् समग्रतः ।। १०१ ।।

पीठ, शंकु, नालदण्ड, विद्युत्तार, सूक्ष्मदर्पणयन्त्र, पद्मक्रियाविधि, पद्मप्रतिष्ठा के स्थान, वाताकर्षण करने वाली खाल की भस्त्रिकाओं की कीलें—पेंच, सङ्कोच विकास की दो कीलें—पेंच, त्रिचक्र भ्रामणी यन्त्र स्थापन का निर्णय, वायुप्रवाह के मार्ग, उपसंहार कील, ये १२ यन्त्राङ्ग हैं यह शास्त्र का निर्णय है। ८ बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त ऊंचा चौकोण या गोल पीठ पिप्पल की लकड़ी से बना कर उसमें १२ केन्द्रस्थान बनावे, मध्य केन्द्र से एक ओर रेखा खींचे ।। ९९–१०१ ।।

मध्ये शङ्कुर्नालदण्डौ शङ्कुनोभयपार्श्वयोः ।
विद्युत्तन्त्री पूर्वकेन्द्रे पद्मपत्राण्यथोत्तरे ।।१०२।।
पत्राणां पद्मरचना दक्षिणोत्तरकेन्द्रयोः ।
पद्मप्रतिष्ठा ईशान्यादाग्नेयान्तमतः परम् ।।१०३।।
तत्पुरस्ताद्† वातापकर्षणत्वग्भस्त्रिका स्मृताः ।
सङ्कोचशीलकं तद्वत्तस्य वायव्यकेन्द्रके ।।१०४।।
तथा विकासकीलं च भवेन्नैर्ऋत्यकेन्द्रके ।
त्रिचक्रभ्रामणीकीलयन्त्रः पूर्वमुखे स्मृतः ।।१०५।।
वातप्रवाहमार्गाणि प्रतिपद्मादधः क्रमात् ।
उपसंहारकीलं तद्दक्षिणे स्यादितीरितम् ।।१०६।।
एतद (म?] ङ्गद्वादशकं केन्द्रद्वादशके स्मृतम् ।
अथाङ्गरचनामार्गस्सङ्ग्रहेण निरूप्यते ।।१०७।।
द्वादशाङ्गुलगात्रं च वितस्तित्रयमुन्नतम् ।
अभ्रमृद्दर्पणात् कुर्याच्छङ्कुं शास्त्रविधानतः ।।१०८।।

मध्य में शङ्कु, शङ्कु के सहारे दोनों पार्श्वों में दो नालदण्ड, पूर्व केन्द्र में विद्युत् की दो तारें, उत्तर में पद्मपत्र, पत्रों की पद्मरचना दक्षिण उत्तर केन्द्रों में, पद्मप्रतिष्ठा ईशानी कोण से आग्नेय कोण तक इससे आगे उससे पूर्व वायु को खींचने वाली चर्मभस्त्रिका कही है। उसी भांति सङ्कोचनकील उसके वायव्य केन्द्र में तथा विकासनकील निर्ऋति कोण के केन्द्र में, त्रिचक्रभ्रामणीकील यन्त्र पूर्वमुख में कहा है। वायुप्रवाहमार्ग प्रतिपद्म के नीचे क्रम से, उपसंहारकील उसके दक्षिण में हो ऐसा कहा है। ये १२ अङ्ग १२ केन्द्रों में कहे हैं। अब अङ्गरचना का मार्ग –प्रकार संक्षेप से निरूपित किया जाता है। १२ अङ्गुल मोटा ३ बालिश्त ऊंचा अभ्रमृद् दर्पण से शंकु शास्त्रविधान से बनावे ।। १०२—१०८।।

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह दर्पणप्रकरण में कहा है—

रम्भासत्त्वं पञ्चभागं तथैव मञ्जूषक्षाराष्टकं पञ्च कान्तम् ।
क्रव्यादसत्त्वाष्टकमाढकस्य सत्त्वत्रयं कूर्मकसप्तसारम् ।।१०९।।

† 'त्वत्पुरस्तात्' हस्तलेखे ।

भल्यत्वगष्टादश कुड्मलस्य क्षारत्रयं वैणविकाष्टसत्त्वम् ।
खुरत्रयं शून्यमृदष्टविंशत् त्रिविक्रमक्षारचतुष्टयम् ॥११०॥
शङ्खद्वयं पारदपञ्चकं च क्षाराष्टकं वीरुधसारमेकम् ।
रौप्यत्रयं चाञ्जनिकत्रयं चाष्टादशैते विधिवद् यथाक्रमम् ॥१११॥
संशोध्य शास्त्राद् वरपर्णमूषामुखेऽथ सम्पूर्य वि (व?) राट्कुण्डे ।
निक्षिप्य वेगाद् द्विशतोष्णकक्ष्यप्रमाणतो गालयित्वाथ शीघ्रम् ॥११२॥
शनैश्शनैरुष्णरसं स्रु (स्रु?) वाङ्गात् सम्पूरयेद् यन्त्रमुखोर्ध्वनाले ।
एवं कृते त्वभ्रमृद्दर्पणं स्याद् दृढं सुसूक्ष्मं सुमनोहरं च ॥११३॥ इत्यादि ॥

रम्भासत्त्व—केले का सत्त्व (क्षार या कपूर ५ भाग, मञ्जूषक्षार—मञ्जीठ का क्षार ८ भाग, कान्त—सूर्यकान्त ५ भाग; क्रव्यादसत्त्व ?—क्रव्यादा—जटामांसी का सत्त्व या क्रव्यादरस—तांबे लोहे गन्धक पारे आदि से बना योग ? ८ भाग, आढक—अरहर का सत्त्व ३ भाग, कूर्मसार ?—कछवे की खोपड़ी की भस्म या कूर्मपृष्ठ—बाण पुष्प का सार ? ७ भाग, भल्यत्वक्—भल्ल—भिलावे की छाल १० भाग, कुड्मल—पुष्पकोरक शीतल चीनी का क्षार ३ भाग, वैणविक—वेणु—बांस का सत्त्व वंशलोचन या वंशक्षार ८ भाग, खुर—नखी गन्धद्रव्य ३ भाग, शून्यमृत् ३—अभ्रकमिट्टी या अभ्रकभस्म ? २८ भाग, त्रिविक्रम क्षार ?—त्रिविक्रमरस ?—ताम्बा भस्म पारा गन्धक कृत्रिम योग ? ४ भाग, शङ्ख २ भाग, पारा ५ भाग, क्षार—सज्जीखार ८ भाग, वीरुधसार ? १ भाग, रौप्य—चान्दी ३ भाग, आञ्जनिक—सुरमा ३ भाग, ये अठारह वस्तुएं विधिवत् यथाक्रम शोधकर शास्त्ररीति से वरपर्णमूषा बोतल के मुख में भर कर विराट् कुण्ड में रख कर वेग से २०० दर्जे उष्णता प्रमाण से शीघ्र गलाकर धीरे धीरे उष्णरस को स्रु वा अङ्ग से यन्त्रमुख की ऊपरवाली नाल में भर दे, ऐसा करने पर अभ्रमृत्—दर्पण सूक्ष्म मनोहर हो जावे ॥ १०९–११३ ॥

बाहुदण्डप्रमाणेन तद्दर्पणविनिर्मितौ ।
नालदण्डौ तथैवास्य वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥११४॥
संस्थापयेद् दृढं पश्चाद् विद्युत्तन्त्रीन् यथाक्रमम् ।
पूर्वकेन्द्रादितस्सर्वत्रानुं† स्यूतं यथा भवेत् ॥११५॥
स्थापयेत् कीलनालानां मध्यकुक्षौ यथाविधि ।
अभ्रमृद्दर्पणकृतपद्मपत्राण्यतः परम् ॥११६॥
पञ्चाशदुत्तरशतमुदीचीकेन्द्रतन्त्रिषु ।
योजयित्वाथ विधिवत् स्थापयेद् विरलं यथा ॥११७॥
लल्लोक्तेनैव विधिना तत्पत्राणि प्रकल्पयेत् ।

वायुदण्ड प्रमाण से उस दर्पण से दो नाल दण्ड इसके वाम दक्षिण पार्श्वों में दृढ़ संस्थापित करे पश्चात् विद्युत्तार—विजुली के तारों को यथाक्रम पूर्व केन्द्र के आदि से सर्वत्र पहुंचे हुए हो जावें ऐसे

† सर्वत्रानस्यूतं हस्तलेखे (सर्वत्र—अनसि—ऊतं) यदि तदा ह्रस्वेन भवितव्यमुकारेण ।

कीलों के मध्य कुक्षि में अभ्रमृत दर्पण से बनाए हुए पद्मपत्रों को स्थापित करे, इससे आगे १५० उत्तर दिशा की केन्द्रतारों में विधिवत् युक्त करके छीदेरूप में स्थापित करे, आचार्य लल्ल की कही विधि से उन पत्रों को बनावे ॥११४—११७॥

तदुक्तं पट्टिकानिबन्धने—वह पट्टिकानिबन्धन में कहा है—

अभ्रमृद्दर्पणं पञ्चदशभागं तथैव च ।
चत्वारि सौरिकाक्षारं मेलयित्वा परस्परम् ॥११८॥
गालयित्वा यथापक्वं पट्टिकायन्त्रके न्यसेत् ।
लशुनत्वगिवात्यन्त (य?) सूक्ष्माण्यावर्तरूपतः ११९॥
पश्चाद् भवन्ति पत्राणि पद्मपत्रमिव क्रमात् । इत्यादि ॥

अभ्रमृद्दर्पण १५ भाग, सौरिकाक्षार–गजपिप्पली या मजीठ या हुलहुल का क्षार ४ भाग मिलाकर पक्व जाने पर पट्टिकायन्त्र पर डालदे फिर लशुन की त्वचा की भांति अत्यन्त सूक्ष्म गोलरूपों से पत्र–पत्त पद्मपत्र की भांति क्रम से हो जाते हैं ॥११८-११९॥

तैः पद्मरचनार्थं तद्वामदक्षिणकेन्द्रयोः ॥१२०॥
पद्मप्रस्तारवत् कीलप्रस्तारं कारयेदथा† ।
तत्पत्रतन्त्रीनाहृत्य तत्तत्केन्द्राद् यथाविधि ॥१२१॥
पत्राहरणसन्धानकीलेषु पृथक् पृथक् ।
सन्धारयेत् तत्प्रस्तारमनुसृत्य यथाविधि ॥१२२॥

उन पत्रों से पद्मरचनार्थ उसके वामदक्षिण केन्द्रों में पद्मप्रस्तार की भांति कीलप्रस्तार बनावे, अनन्तर पत्र की तारों को उस उस केन्द्र से लेकर यथाविधि पत्रों के पकड़ने के जोड़ कीलों में पृथक् पृथक उनके फैलाव के अनुसार यथाविधि जोड़ दे ॥ १२०–१२२ ॥

तदुक्तं क्रियासारे–वह क्रियासार में कहा है—

पत्राहरणकीलस्य चालनाद् वेगतः क्रमात् ।
प्रस्तारकीलसन्धानानुसारेण यथाक्रमम् ॥१२३॥
एकैकपद्ममायाति तत्तत्तन्त्रीमुखात् पुनः ।
तथानुसन्धानकीलचालनात् पत्रसञ्चयः ॥१२४॥
स्वतो भूत्वा भवेत् पद्माकारं पश्चान्मनोहरम् ।
नालवत् प्रभवेदेकैकपत्रं च स्वभावतः ॥ १२५ ॥
एकैकपत्रनालस्याघातपत्रद्वयं भवेत् ।
वाताकर्षणकीलं तु स्थापयेत् तन्मुखान्तरे ॥ १२६ ॥

† दीर्घ आर्षप्रयोगः ।

नानापकर्षणार्थाय तत्कीलकं चालयेत् ततः ।
सीत्कारपूर्वकं वायुं तन्नालः पिबति स्वयम् ॥ १२७ ॥
पीतवायुं पुनर्नालस्त्वग्रे(ग्ले ?)वेगात् प्रमुञ्चति ।
आघातपत्रवर्गस्तद्वायुं नीत्वा स्ववेगतः ॥ १२८ ॥
विमानाद् दू (द्धू ?) रतो बाह्यवायौ सम्मेलयेत् क्रमात् । इत्यादि ॥

पत्राहरण कील के चलाने से वेग से क्रमशः प्रस्तारकील—फैलानेवाली कील के जोड़ के अनुसार यथाक्रम एक एक पद्म तार के मुख से आता है फिर जोड़नेवाली कील के चलाने से पत्रों का सञ्चय स्वयं होकर पश्चात् पद्माकार—कमल के आकार वाला मनोहर हो जावे और एक एक पत्र—पत्ता नाल की भांति हो जावे। एक एक पत्रनाल का आघात—मिले दो पत्र हो जावें, वायु को खींचने वाली कील तो उसके मुख के अन्दर स्थापित करे, भांति भांति से खींचने के लिये उस कील को चलावे तब वह नाल सीत्कार—सी करके वायु को स्वयं पीता है फिर पिए हुए वायु को नाल आगे वेग से छोड़ देती है मेल को प्राप्त पत्रवर्ग उस वायु को नाल आगे वेग से लेकर विमान से दूर बाहिरी वायु में क्रम से मिलादे ॥ १२३—१२८ ॥

एवं निर्मितपद्मानां यन्त्रे स्थानविनिर्णयः ॥ १२९ ॥
उक्तं हि धुण्डिनाथेन तदेवात्र निरूप्यते ।

इस प्रकार बने पद्मों—कमलों का यन्त्र में स्थान निश्चय धुण्डिनाथ आचार्य ने कहा है वह यहां निरूपित किया जाता है ॥ १२९ ॥

उक्तं हि सन्धानपटले—सन्धानपटल ग्रन्थ में कहा है—

विमानप्रतिबन्धकचण्डवातनिवारणम् ॥ १३० ॥
लल्लोक्तपद्मसन्धानादेव स्यान्नान्यथा भवेत् ।
तस्मात् पद्मानुसन्धानस्थानानि प्रोच्यन्ते (ते?)धुना ॥१३१॥
पूर्वस्यां दिशि ईशान्यादाग्नेयान्तं यथाक्रमम् ।
पद्मानि स्थापयेत् सप्तकेन्द्रेष्वविरलं यथा ॥ १३२ ॥
सप्तकेन्द्रस्थपद्मानां पुरोभागे यथाविधि ।
एकैकपद्मनालस्याधस्तात् सप्त यथाक्रमम् ॥ १३३ ॥
क्षीरीत्वङ्निर्मितान् दीर्घवाताकर्षणभस्त्रिकान् ।
स्थापयेत् सुदृढं पश्चाद् द्विचक्रावर्तकीलकैः ॥ १३४ ॥
यन्त्रसङ्कोचकीलस्तु तस्य वायव्यकेन्द्रके ।

विमान को रोकने वाले प्रचण्डवायु का निवारण लल्ल आचार्य के कहे पद्म—कमल के लगाने से ही हो—होता है अन्यथा नहीं होता है। अतः पद्मकमलों को युक्त करने के स्थान अब कहे जाते हैं। पूर्व दिशा में ईशानी कोण से लेकर आग्नेय कोण तक यथाक्रम पद्मों—कमलों—वायु को निकालने वाले दलचक्रों को ७ केन्द्रों में पास पास स्थापित करे। ७ केन्द्रों में स्थित पद्मों के सामनेवाले भाग

में यथाविधि एक एक पद्मनाल के नीचे यथाक्रम क्षीरीवृक्ष की छाल से बनी वायु को खींचनेवाली लम्बी भस्त्राओं को सुदृढ़ स्थापित करे पश्चात् दो चक्रों को घुमानेवाली कीलों—पेंचों से यन्त्रसङ्कोचकील उसके वायव्यकेन्द्र में लगादे ॥ १३०—१३४ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है –

अनुलोमान्मूलकीलं विलोमादूर्ध्वकीलकम् ।
यदा सम्भ्राम्यते वेगाद् यन्त्रस्सङ्कुचितो भवेत् ॥ १३५ ॥
षट्चक्रैर्विस्तृतैर्युक्तं पञ्चनालविराजितम् ।
तथा द्वादशतन्त्रीभिर्द्वादशास्यैश्च संयुतम् ॥ १३६ ॥
द्वादशाङ्गोपहरणकीलकैस्सुमनोहरैः ।
भ्राजमानं विस्तृतास्यमूर्ध्वाधो भागतस्तथा ॥ १३७ ॥
द्वाभ्यां भ्रमणं कीलाभ्यां योजितं कमठाकृतिम् ।
एतल्लक्षणसंयुक्तं यन्त्रसङ्कोचकीलकम् ॥ १३८ ॥
तत्कीलं स्थापयेद् यन्त्रवायव्ये सुदृढं यथा ॥ इत्यादि ॥

मूल कील अनुलोम – सीधेरूप ऊपर वाली कील विलोम—उलटे रूप से जब वेग से घूमती हैं तो यन्त्र सङ्कुचित हो जावे—हो जाता है। विस्तृत ६ चक्रों से युक्त पांच नालों से सम्पन्न १२ तारों से और १२ मुखों से युक्त १२ अङ्गों का सङ्कोच करनेवाली सुमनोहर कीलों से भ्राजमान—प्रकाशमान–प्रवर्तमान ऊपर नीचे भागों से बड़े मुखवाला दोनों कीलों के द्वारा भ्रमणसाधन कछवे के आकारवाला ऐसे लक्षणों से युक्त यन्त्र को सङ्कुचित करनेवाला कील–पेंच हो उस ऐसे पेंच को यन्त्र के वायव्यकोण में सुदृढ स्थापित करे ॥ १३५—१३८ ॥

एवं संस्थाप्य सुदृढं यन्त्रसङ्कोचकीलकम् ॥ १३९ ॥
यन्त्रविस्तृतकीलस्य स्थापनं चाभिवर्ण्यते ।

इस प्रकार यन्त्रसङ्कोच करनेवाले पेंच को स्थापित करके यन्त्र को विस्तृत करनेवाले पेंच का स्थापन वर्णित किया जाता है ॥ १३९ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार में कहा है—

क्रमाद् द्वादशचक्रास्यं वर्तुलं पूर्णकुम्भवत् ॥ १४० ॥
नालद्वादशकैरन्तस्सशलाकैर्विराजितम् ।
उत्क्षेपणक्रियावर्तकीलद्वादशकैर्युतम् ॥ १४१ ॥
वातप्रपूरणावर्तमध्यकीलकसंयुतम् ।
एतल्लक्षणसंयुक्तं यन्त्रविस्तृतकीलकम् ॥ १४२ ॥
विस्तृताङ्गं भवेद् यन्त्रमेतत्कीलकचालनात् ।
तस्माद् यन्त्रविकासकीलकं नैर्ऋत्यकेन्द्रके ४३।

स्थापयेत् सुदृढं पश्चाद् यन्त्रपूर्वमुखे क्रमात् ।
त्रिचक्रभ्रामणीकीलकप्रतिष्ठां च कारयेत् ।। १४४ ।।

क्रम से बारह चक्रों के मुखवाला पूर्ण घड़े के समान गोल भीतरी शलाकाओं सहित बाहर नालों से विराजमान, उत्क्षेपणक्रिया के लिए घूमनेवाली बारह कीलों से युक्त वायु से भरे घूमनेवाले मध्य पेंच से युक्त हो इन लक्षणों से युक्त यन्त्र को विस्तृत करनेवाला पेंच विस्तृताङ्गवाला होवे, यह यन्त्र कील चलाने से यन्त्र का विकास करनेवाली कील को नैर्ऋत्यकोण वाले केन्द्र में सुदृढ स्थापित करदे पश्चात् क्रम से यन्त्रमुख के तीन चक्रोंवाली भ्रामणी कील की प्रतिष्ठा को कर देता है ।। १४०—१४४ ।।

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

दन्तचक्रसमायुक्तं दण्डत्रयविनिर्मितम् ।
शिरोभागे शिशुमाराकारवत् कृतं दारुणा ।। १४५ ।।
संयोजितं तथा चोर्ध्वकीलचक्रैर्विराजितम् ।
भ्रामणीकीलकं प्रोक्तमेतल्लक्षणलक्षितम् ।। १४६ ।।
एतत्सञ्चालनादेव यन्त्रसर्वाङ्गचालनम् ।
भवेद् यन्त्रविकासश्च तत्तत्कीलकचालनात् ।। १४७ ।।
तस्मात् त्रिचक्रभ्रामणीकीलकं पूर्वकेन्द्रके ।
स्थापयेद् विधिना पञ्चशङ्कुताडनतो दृढम् ।। १४८ ।। इत्यादि ।।

दन्तचक्रों से युक्त तीन दण्डों से बना शिरोभाग में शिशुमार-ऊदबिलाओ जलजन्तु के आकार वाला लकड़ी से बनाया हुआ और उपरिकीलचक्रों से जोड़ा हुआ इस लक्षणवाला भ्रामणीकील कहा है इसके चलाने से ही यन्त्र के सब अङ्गों का चलना होता है । अतः तीन चक्रोंवाला भ्रामणी पेंच पूर्वकेन्द्र में विधि से पांच शङ्कुओं के ताडन से दृढ स्थापित करे ।। १४५—१४८ ।।

वातप्रवाहमार्गाणि पद्माधो भागसन्धिषु ।
पद्मसंख्यानुसारेण कर्तव्यानि यथाक्रमम् ।। १४९ ।।

वायुप्रवाह के मार्ग पद्मसंख्यानुसार पद्मों के नीचले भाग की सन्धियों में यथाक्रम करने चाहिएं ।। २४९ ।।

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासारग्रन्थ में—

द्वादशाङ्गुलमानस्य द्वारेण सुविकल्पितम् ।
द्वादशाङ्गुलप्रमाणेनोन्नतेन समन्वितम् ।। १५० ।।
त्वगावरणसंयुक्तं कृतं पिप्पलदारुणा ।
वातप्रवहनार्थाय नालसप्तकमीरितम् ।। १५१ ।।
वातप्रवहनालं स्यादेतल्लक्षणलक्षितम् ।
एकैकपद्ममूलस्थकीलकेषु यथाक्रमम् ।। १५२ ।।
सन्धारयेत् सप्तनालान् तेन वातः प्रधावति । इत्यादि ।।

१२ अङ्गुल मापवाले मुखद्वार से बना हुआ १२ अङ्गुलमाप ऊंचाई से युक्त छाल के आवरण से युक्त पिप्पल की लकड़ी से किया गया हो, वायु के वहने के लिये ७ नालें कही हैं, इन लक्षणों से लक्षित वायु को बहानेवाला नाल हो, एक एक पद्ममूल में स्थित पेंचों में यथाक्रम ७ नालों को जोड़े—लगावे इस से वायु दौड़ता है ॥ १५०—१५२ ॥

अथोपसंहारकीलकं तद्दक्षिणकेन्द्रके ॥ १५३ ॥
स्थापयेत् सुदृढं शुद्धं द्वादशास्यं मनोहरम् ।
अदितेर्गर्भकोशीयसन्धिस्थानेषु वेगतः ॥ १५४ ॥
वसन्तादिक्रमात् तत्तहृतुकालानुसारतः ।
जायन्ते चण्डकूर्माद्याश्शक्तयो विषदारुणाः ॥ १५५ ॥
वारुणीप्रेरणात् पश्चाद् वातस्तम्भं विशन्ति हि ।
महावातस्तम्भकेन्द्रवातस्रोतस्स्वतः परम् ॥ १५६ ॥

पुनः दशमुखवाला उपसंहारकील—पेंच उसके दक्षिण केन्द्र में सुदृढ़ स्थापित करे, अग्नि के गर्भकोश के सन्धिस्थानों में वेग से वसन्त आदि क्रम से उस उस ऋतुकाल के अनुसार प्रचण्ड कूर्म आदि शक्तियां दारुणविषवाली प्रकट हो जाती हैं, पश्चात् वारुणी—विद्युत् की प्रेरणा से वातस्तम्भ में प्रविष्ट होती हैं, इस से आगे महावातस्तम्भकेन्द्र के वातस्रोतों में—॥ १५३—१५६ ॥

भवेदत्यन्तकल्लोलप्रवाहश्शब्दपूर्वकम् ।
एतदाकाशपरिधिकक्ष्यावरणवायुषु ॥ १५७ ॥
प्रविश्यात्यन्तवेगेन करोति मन्थनं ततः ।
तत्प्रकोपाच्चण्डवातप्रवाहो वेगतो भवेत् ॥ १५८ ॥
यदा विमानोपरि तद्वायुर्वाति विशेषतः ।
क (कं?)श्चिन्निर्यासवत्तस्मिन् पङ्कस्सञ्जायते स्वतः ॥१५९॥
तत्सम्पर्काद् विमानस्थयन्तृ़णां स्यात् मसूरिका ।
शिथिलत्वं समायाति विमानश्चापि तत्क्षणात् ॥ १६० ॥
अतस्तद्वायुमाकृष्य विमानाद् बाह्यतः क्रमात् ।
सञ्चोदनार्थं विधिवत् पद्मपत्रमुखाभिधम् ॥ १६१ ॥
यन्त्रं संस्थापयेत् तस्मात् तत्स्वरूपे निरूपितः ।

विशालतरङ्गप्रवाह शब्दपूर्वक हो जावे, इस के आकाश परिधिकक्षा के आवरणवायुओं में अत्यन्तवेग से प्रविष्ट होकर मन्थनकरता है फिर उसके प्रकोप से प्रचण्डवायुप्रवाह वेग से हो जावे—हो जाता है, जब विमान के ऊपर वह वायु विशेषतः गति करता है तब कोई गोन्द के समान पङ्क—कीचड़ सा स्वतः प्रकट हो जाता है उसके सम्पर्क से विमानस्थ चालक और यात्रियों के मसूरिका (छोटी चेचक) हो जाती है और विमान भी तत्क्षण शिथिलता को प्राप्त हो जाता है अतः उस वायु को खींचकर विमान से बाहिर क्रम से प्रेरित करने के लिये विधिवत्—पद्मपत्रमुखनामक यन्त्र को संस्थापित करे, अतः उसे स्वरूपप्रसङ्ग में निरूपित किया है ॥ १५७—१६१ ॥

हस्तलेख कापी संख्या ६—

अथ कुण्टिणीशक्तियन्त्रनिर्णयः—अब कुण्टिणीशक्तियन्त्र का निर्णय देते हैं :—

पद्मचक्रमुखं यन्त्रमेवमूक्त्वा यथाविधि ।
कुण्टिणीशक्तियन्त्रोथ संग्रहेण निरूप्यते ॥१॥
ग्रीष्मोष्मांशुसमूहेषु त्रिपञ्चदशमेलनात् ।
कुलकाख्यमहाशक्तिरत्यन्तोष्मा प्रजायते ॥२॥

पद्मचक्रमुख यन्त्र इस प्रकार यथाविधि कह कर कुण्टिणीशक्तियन्त्र अब संक्षेप से निरूपित किया जाता है। ग्रीष्म की ऊष्म किरण समूहों में तीन, पांच, दश के मेल से कुलका नामक महाशक्ति अत्यन्त ऊष्मा उत्पन्न हो जाती है ॥१-२॥

तदुक्तमृतुकल्पे—वह कहा है ऋतुकल्प में—

महाक्षोणित्रयं पश्चात् कोटीनामेकविंशतिः ।
लक्षाणां पञ्चसहस्रं सहस्राणां तु षोडश ॥३॥
पश्चादेकोनविंशत् संख्याकान्[†] सूर्यमरीचयः ।
प्रसरन्ति विशेषेणादितेर्ग्रीष्माख्यगर्भतः ॥४॥
तेषां वर्गविभागस्तु वाल्मीकिगणिते क्रमात् ।
पञ्चकोटयष्टसहस्रसप्तोत्तरशतं स्मृतम् ॥५॥
तेषामेकैकवर्गेथ विभागाश्शतधा कृताः ।
तेषु द्वितीयवर्गस्थविभागेषु यथाक्रमम् ॥६॥

तीन माहक्षोणि ? अविज्ञेय संख्या विशेष सम्भवतः अर्व पश्चात् ३१ क्रोड, पांच सहस्र (गुणित) लाख, सोलह सहस्र फिर १६ संख्या में सूर्यकिरणें विशेषरूप में अदिति—सूर्यमाता अग्नि के ग्रीष्म नामक गर्भ से प्रसार करती हैं उनका वर्गविभाग तो वाल्मीकिगणित में क्रम से ५ क्रोड ८ सहस्र १०७ कहे हैं। उनमें से भी एक एक वर्ग में विभाग १०० किये हैं उनमें द्वितीय वर्गस्थ विभागों में यथाक्रम—॥३—६॥

त्रिपञ्चदशमौष्म्यांशुमेलनं ग्रीष्ममध्यमे ।
यदा भवति ग्रीष्मोष्मा कूर्मान्तं व्याप्यते स्वयम् ॥७॥

---

† जस्-स्थाने शस् आर्षः

पश्चात् कच्छपप्रम्लोचशक्त्याकर्षणतः क्रमात् ।
कुलकाख्या जायते काचिच्छक्ति ज्वंलनवत्स्वतः ॥८॥
तत्संयोगो यदि भवेद् व्योम्नि यानपथि क्रमात् ।
भस्मीकृतं भवेद् व्योमयानमत्यन्तशीघ्रतः ॥९॥
तदपायविनाशार्थं कुण्टिणीशक्तियन्त्रकम् ।
संस्थापयेद् यानकण्ठप्रदेशे सम्प्रदायतः ॥३०॥ इत्यादि ॥

तीन पांच दश ऊष्म किरणों का मेल ग्रीष्म में जब होता है तो ग्रीष्म की उष्णता कूर्म तक स्वयं व्यापती है पश्चात् कच्छप प्रम्लोचन शक्ति के आकर्षण से क्रम से कुलकानामक कोई शक्ति ज्वलन की भांति स्वतः उत्पन्न हो जाती है यदि उसका संयोग आकाश में विमान के मार्ग में क्रम से हो जावे तो विमान अत्यन्त शीघ्र भस्म हो जावे उस अनिष्ट के विनाशार्थ कुण्टिणीशक्ति यन्त्र विमान के कण्ठप्रदेश में परम्पराविचार से संस्थापित करे ॥७-१०॥

नारायणोपि—नारायण भी इसमें कहता है—

ग्रीष्मोष्मकिरणवर्गविभागेषु यथाक्रमम् ।
द्वितीयवर्गकिरणाः पञ्चाशीतिसहस्रशः ॥११॥
तेष्वष्टत्रिदशसंख्याकांशंवोत्यन्तमूष्मकाः ।
कूर्मस्थप्रम्लोचशक्त्याकर्षणेन स्वभावतः ॥१२॥
एकीभूय यदा ग्रीष्मे मिलितास्स्युः परस्परम् ।
तदा सञ्जायते काचित् कुलिकाख्या महत्तरा ॥१३॥
शक्तिरत्यन्तोष्णरूपा अग्निज्वालावलीरिव ।
तत्संयोगो यदि भवेद् व्योमयानस्य तत्क्षणात् ॥१४॥
भस्मीकृतं भवेद् व्योमयानमत्यन्तशीघ्रतः ।
तदपायविनाशार्थं कुण्टिणीशक्तियन्त्रकम् ॥१५॥
संस्थापयेद् यानकण्ठप्रदेशे सम्प्रदायतः ॥ इति ॥

ग्रीष्म के ऊष्म किरणवर्ग के विभागों में यथाक्रम द्वितीय वर्ग की किरणें ८५ सहस्र हैं उनमें आठ त्रिदश-८+१३ = २१ संख्या किरणें अत्यन्त सूक्ष्म हैं। कूर्मस्थ प्रम्लोचन शक्ति के आकर्षण से स्वभावतः एक होकर जब ग्रीष्म में परस्पर जब मिल जावें तो कुलिका नामक अत्यन्त उष्णरूपा अग्नि ज्वालामाला के समान महत्तरा शक्ति उत्पन्न हो जाती है, यदि विमान का उससे संयोग हो जावे तो विमान अत्यन्त शीघ्र भस्म हो जावे उस अनिष्ट के विनाशार्थ कुण्टिनीशक्तियन्त्र विमान के कण्ठ-प्रदेश में परम्परा से संस्थापित करे ॥११—१५॥

लल्लोपि—लल्ल आचार्य ने भी कहा—

ग्रीष्मोष्मकिरणवर्गविभागेषु यथाक्रमम् ।
द्वितीयवर्गे द्वात्रिंशद् विभागस्थांशुषु क्रमात् । १६ ॥

पञ्चत्रिदशसंख्याकाः किरणा ऊष्म्यरूपिणः ।
कूर्मस्थप्रम्लोचशक्त्याकर्षणेन स्वभावतः ॥ १७ ॥
पस्परं (तु) सम्मिलिता भवेयुर्ग्रीष्मके यदा ।
तदा संजायते काचिच्छक्तिरुष्णस्वरूपिणी ॥ १८ ॥
कुलका नाम तद्वेगाद् विमानं नाशमेधते ।
तां निवारयितुं शास्त्रे कुण्टिणीशक्तियन्त्रकम् ॥ १९ ॥
उक्तं तस्माद् व्योमयाने प्रतिष्ठां कारयेद् दृढम् ॥२०॥ इत्यादि ॥

ग्रीष्म से उष्ण किरणवर्ग के विभागों में यथाक्रम दूसरे वर्ग में ३२ विभागों में रहने वाली किरणों में क्रम से पांच, तीन, दश संख्या वाली ऊष्मरूपी किरणें कूर्मस्थ प्रम्लोचन शक्ति के स्वभावतः आकर्षण से ग्रीष्म में जब परस्पर सम्मिलित हो जावें तो उष्णरूपी कोई कुलका शक्ति प्रकट हो जाती है उससे वेग से विमान नाश को प्राप्त हो जाता है, उसके निवारण करने को शास्त्र में कुण्टिणीयन्त्र कहा है अतः विमान में दृढ प्रतिष्ठा बनावे ॥ १६-२० ॥

अतस्तत्कुण्टिणीशक्तियन्त्रमत्रातिसंग्रहात् ।
तत्स्वरूपपरिज्ञानसिद्ध्यर्थं सम्प्रचक्षते ॥ २१ ॥

अतः उस कुण्टिणी शक्तियन्त्र को अति संक्षेप से उसके स्वरूपपरिज्ञान की सिद्धि के अर्थ यहां कहते हैं ॥ २१ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

व्योमयानाङ्गयन्त्रेषु कुण्टिणीशक्तियन्त्रकम् ।
ग्रीष्मकालीनकुलिकाशक्तिनाशार्थमुच्यते ॥ २२ ॥
पीठकेन्द्रावर्तकीलद्रवपात्रपटोर्मिकाः ।
चक्रदन्तिः क्षीरपटनालावरणकीलकाः ॥ २३ ॥
विद्युत्तन्त्रीसमायुक्तभ्रामणीचक्रमेव च ।
विस्तृतास्योपसंहारकीलकाश्चेत्यमी दश ॥ २४ ॥
कुण्टिणीशक्तियन्त्रस्याङ्गानीति विनिर्णिताः ।
पञ्चाङ्गान्येवमुक्त्वास्य प्रयोगं (: ?) सम्प्रचक्षते ॥२५॥
वितस्तित्रयविस्तारं वितस्त्यर्धोन्नतं तथा ।
चषकाकारवत् पीठं वर्तुलं कारयेद् दृढम् ॥ २६ ॥
रचयेद् सप्तकेन्द्राणि तस्मिन् प्रागादितः क्रमात् ।
आवर्तकीलकान् पश्चात् सप्तकेन्द्रेषु योजयेत् ॥ २७ ॥
द्रवपात्रं मध्यकेन्द्रे स्थापयेत् सुदृढं यथा ।

विमान के अङ्गयन्त्रों में कुण्टिणीशक्ति यन्त्र ग्रीष्मकालीन कुलिका शक्ति के नाशार्थ कहा

जाता है। पीठ, केन्द्र, आवर्तकील, द्रवपात्र, पट, ऊर्मिका, चक्रदन्ति, क्षीरपटनालावरण कील, विद्युत्तारों से युक्त भ्रामणी चक्र, विस्तृतास्योपसंहार कील ये दश कुण्टिणी शक्तियन्त्र के अङ्ग हैं ऐसा निर्णय किया गया है। पांच अंग इस प्रकार कह कर प्रयोग कहते हैं। तीन बालिश्त चौड़ा लम्बा आधा बालिश्त ऊंचा लोटा पात्र के आकार की भांति गोल पीठ दृढ बनावें, उस पर पूर्व आदि क्रम से ७ केन्द्र रचें, पश्चात् ७ केन्द्रों में घूमने वाले पेंच लगावें, मध्य केन्द्र में द्रवपात्र सुदृढ स्थापित करें ॥ २२-२७ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

कुलकाकर्षणे गुञ्जागृध्निकाद्रावकं वरम् ।
तथैव श्येनकर्माणं चापि श्रेष्ठतमं विदुः ॥ २८ ॥
नागक्रौञ्चिकसौरम्भलोहाद् यैः कृतदर्पणात् ।
निर्मिते चषकाकारपात्रे पश्चाद् यथाविधि ॥ २९ ॥
सम्पूरयेत् सप्रमाणं गुञ्जागृध्निकद्रावकम् ।
शोधितं श्येनकर्माणं सूतं चापि निवेशयेत् ॥ ३० ॥
पश्चात् संस्थापयेद् यन्त्रमध्यकेन्द्रे यथाविधि ।
आहृत्यादित्यकिरणान् पश्चात्तस्मिन्नियोजयेत् ॥ ३१ ॥
तदंशुवेगात्तत्पात्रद्रावकस्थमणौ क्रमात् ।
क्रौञ्चिनीनामका काचिच्छक्तिरत्यन्तशीतला ॥ ३२ ॥
उद्भूय व्याप्य सर्वत्र कुलिकाभिमुखा भवेत् ।
पश्चात् तत्कुलिका शक्तिस्तदाकर्षणतस्स्वयम् ॥ ३३ ॥
पतत्यत्यन्तवेगेन पात्रस्थद्रावके क्रमात् ।
अथ तत्कुलिकाशक्तिं मणिः पिबति तत्क्षणात् ॥ ३४ ॥ इत्यादि ॥
तथैव स्थापयेद् वामकेन्द्रे पश्चात् पटोर्मिकान् ।

कुलका के आकर्षण में गुञ्जा—रत्ति घूंघची, गृध्निका ? गृध्र पत्र—तम्बाकू या गृञ्जनिका—रक्त सौञ्जना का शुद्ध द्रावक, इसी प्रकार श्येनकर्मा—पारे को भी श्रेष्ठ समझा नाग क्रौञ्चिक सौरम्भ लोहे से जिन से किये दर्पण से बने चषकाकार पात्र में यथाविधि सप्रमाण गुञ्जागृध्निका द्रावक भर दे, शोधित श्येनकर्मा झारा हुआ पारा भी डाले पश्चात् यन्त्र के मध्य केन्द्र में यथाविधि संस्थापित करे, सूर्य की किरणों को पीछे उसमें नियुक्त करे, उन किरणों के वेग से उस पात्र के द्रावकस्थ मणि में क्रम से क्रौञ्चिनी नाम वाली कोई शक्ति अत्यन्त शीतल प्रकट होकर सर्वत्र व्याप्त कर कुलिका के सामने हो जावे पश्चात् कुलिका शक्ति उसके आकर्षण से स्वयं अत्यन्त वेग से पात्रस्थ द्रावक में गिरती है। अनन्तर कुलिका शक्ति को मणि तुरन्त पी लेती है, वैसे ही पश्चात् वामकेन्द्र में पटोर्मिकों को स्थापित करे ॥ २८-३४ ॥

तदुक्तं पटकल्पे—वह कहा है पटकल्प में—

गुञ्जागृध्निकद्रावस्थमणिपीतां महोष्णिकाम् ।
संरोद्धुं कुलिकाशक्ति तन्मणावेव तेजसा ॥ ३५ ॥
अत्यन्तसूक्ष्मान् सुदृढान् लाक्षावर्णविराजितान् ।
पञ्चावरणसंयुक्तानास्यत्रयसमन्वितान् ॥ ३६ ॥
गौरीजटाशणमयपटतन्तुविनिर्मितान् ।
विरञ्चिद्रवसंशुद्धान् सप्रकाशान् पटोर्मिकान् ॥ ३७ ॥
समाहृत्याथ विधिवत् प्रादक्षिण्यक्रमात् पुनः ।
यथा समाच्छादितं स्याद् द्रवपात्रमणिस्तथा ॥ ३८ ॥
अधोमुखास्यमाच्छाद्य सन्धानं कारयेद् दृढम् ।
एवं सन्धाय विधिवत् तदास्यत्रयमूलतः ॥ ३९ ॥
अत्यन्तसूक्ष्मानादर्शकृतनालानधोमुखान् ।
सन्धारयेत् सूक्ष्मकीलैः पश्चात्तेषु यथाविधि ॥ ४० ॥
मुखपात्राण्यथाशास्त्रं विस्तृतानि नियोजयेत् ॥ इत्यादि ॥

गुञ्जागृध्निक द्रावस्थित मार्ग से पी हुई महोष्णिका के रोकने को उस मणि में कुलिका शक्ति को तेज से अत्यन्त सूक्ष्म सुदृढ़ लाक्षा रंग से युक्त पांच आवरणों से संयुक्त तीन मुख वाले गौरीजटा—सूक्ष्म जटामांसी शणरूपपट तन्तुओं से बने विरञ्चि ? के द्रव से शुद्ध प्रकाशसहित पटोर्मिकों—वस्त्र की तहों को लेकर विधिवत् प्रादक्षिण्य—घूम लपेट के क्रम से द्रवपात्र मणि आच्छादित हो जावे तथा नीचे का मुख ढक कर सन्धान—दृढ बन्धन कर दें इस प्रकार विधिवत् जोडबन्धन करके तीन मुखों के मूल से अत्यन्त सूक्ष्म आदर्श से बने अधोमुख नालों को सूक्ष्म कीलों से जोड़ दे। पश्चात् उनमें यथाविधि यथाशास्त्र विस्तृत मुखपात्र नियुक्त कर दे ॥ ३५–४० ॥

ततो द्रावकपात्रस्येशान्ये तु यथाविधि ।
संस्थापयेच्चक्रदन्ति कुलिकाकर्षणोन्मुखम् ॥ ५१ ॥

फिर द्रावक पात्र के ईशानी कोण में यथाविधि कुलिकाकर्षण के उन्मुख चक्रदन्ति स्थापित करे ॥ ४१ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार में—

कुलिकाशक्तिपानार्थं चक्रदन्ति प्रकल्पयेत् ।
सर्पत्वक्सृणिनिर्यासोर्णतन्तुसुलघुतृणैः ॥ ४२ ॥
पटवत्पाकभेदेन निर्मितं दर्पणं क्रमात् ।
संशोध्य विधिवच्छुण्डिद्रावकेण (न?) यथाविधि ॥४३॥
कृत्वा बिलेशयस्स्वाङ्गं चक्राकारेण वर्तुलम् ।
शेते यथा तथा कृत्वा पश्चात् संस्थापयेद् दृढम् ॥ ४४ ॥

अथ तत्पूर्वोक्तनालानतिसूक्ष्मान् यथाविधि ।
सन्धारयेद् दन्तिमूले अविनाभावतः क्रमात् ॥ ४५ ॥
एवमुक्त्वा चक्रदन्तिनालसन्धाननिर्णयम् ।
अथेदानीं क्षीरपटनालस्थापनमुच्यते ॥ ४६ ॥

कुलका शक्ति के पी लेन के लिये चक्रदन्ति बनावे। सर्प की केंचुली, सृणि ? –खिरनी ? का गोन्द, ऊन का धागा, बारीक तिनकों से पाकभेद से वस्त्र की भांति बनाए दर्पण को विधिवत्–शुण्डी–हाथीशुण्डा वृक्ष के द्रावक से शोधकर जैसे सर्प अपने शरीर को चक्राकार–गोल करके सोता है वैसे बनाकर संस्थापित करे अनन्तर उन पूर्वोक्त अतिसूक्ष्म नालों को दन्तिमूल में मिलाकर लगावे, इस प्रकार चक्रदन्तिनाल लगाने के निर्णय को कहकर अब क्षीरपटनाल का स्थापन कहा जाता है ॥ ४२—४६ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है–

क्षीरीपटेन रचितं विस्तृतास्यं दृढं मृदु ।
नालमेकं चक्रदन्तिमुखादावर्तनक्रमात् ॥ ४७ ॥
परिवेष्ट्य तदास्यं तु पीठच्छिद्रे नियोजयेत् ।
तद्द्वारा कुलिकाशक्तिर्बर्हिर्निर्गच्छति क्रमात् ॥ ४८ ॥
तस्मात् तं स्थापयेत् क्षीरीपटनालमितीरितम् । इत्यादि ॥

क्षीरीपट—दूधवाले वृक्ष के दूध गोन्द पट से बनाया विस्तृतमुखवाला दृढ कोमल एक नाल चक्रदन्तिमुख से घूमने के क्रम से उस मुख को लपेटकर पीठ के छिद्र में लगादे, उसके द्वारा कुलिका शक्ति बाहिर क्रम से चली जाती है अतः उस क्षीरीपटनाल को स्थापित करे यह कहा है ॥ ४७—४८॥

स्थापयित्वा क्षीरनालपटमेवं सकीलकम् ।
विद्युत्तन्त्रीसमायोगाद् भ्रामणीचक्रकीलकम् ॥ ४९ ॥
सर्वाङ्गभ्रमणं यन्त्रे तत्तत्कीलकमार्गतः ।
यथा भवेत् तथाकीलैः स्थापयेत् पश्चिमान्तरे ॥ ५० ॥
एवं संस्थाप्य विधिवद् भ्रामणीचक्रकीलकम् ।
तस्येशान्यां विस्तृतास्यकीलकं स्थापयेद् दृढम् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार क्षीरनालपट कीलसहित स्थापित करके बिजुली के तार के सम्बन्ध से भ्रामणीचक्र को सर्वाङ्ग भ्रमणयन्त्र में उस कीलवाले मार्ग से कीलों के साथ पश्चिम भाग के अन्दर स्थापित करे, इस प्रकार विधिवत् भ्रामणीचक्रकील उसके ईशानी दिशा में बड़े मुखवाले पेंच को दृढ स्थापित करे ॥ ४९—५१ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कियासार में कहा है—

कोशद्वयसमायुक्तं मुखद्वयविराजितम् ।
प्रदक्षिणाप्रदक्षिणकीलचक्रसमन्वितम् ॥ ५२ ॥

प्रादक्षिण्येन पूर्वास्ये कीलचक्रद्वयं तथा ।
विलोमेनोत्तरास्ये च स्थापयेच्चक्रकीलकम् ।। ५३ ।।
छत्रीशलाकावत् सर्वकीलव्याप्तशलाककम् ।
एतल्लक्षणसंयुक्तं विस्तृतास्याख्यकीलकम् ।। ५४ ।। इत्यादि ।।

दो कोशों से युक्त दो मुखों से सम्पन्न प्रदक्षिणा से घूमनेवाले कीलचक्र से युक्त दाएं पूर्व मुख में दो कीलचक्र तथा बांए से उत्तरमुख में चक्रकील स्थापित करे, छत्री शलाकाओं की भांति सब कीलों पेंचों में व्याप्त—पूरित शलाकाओंवाला हो इस लक्षण से युक्त विस्तृत मुखवाला नाम का कील पेंच है ।। ५२-५४ ।।

पूर्वास्यकीलभ्रमणात् सर्वाङ्गा विस्तृताः क्रमात् ।
तथा मुकुलिताङ्गाः स्युरुत्तरे कीलकभ्रमात् ।। ५५ ।।
एवं क्रमेणोपसंहारकीलकं यथाक्रमम् ।
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं यथा यन्त्रोपसंहृतिः ।। ५६ ।। इत्यादि ।।

पूर्वमुख कील के प्रमाण से सारे विस्तृत उत्तर अङ्ग कीलभ्रमण से सङ्कुचिताङ्ग हो जावे इस प्रकार क्रम से उपसंहार कील यथाक्रम यथाशास्त्र लगावे जिससे यन्त्र का उपसंहार हो जावे ।। ५५-५६ ।।

यन्त्राङ्गाण्येवमुक्त्वाथ तत्प्रयोगोभिवर्ण्यते ।
विद्युत्कीलकसन्धानमादौ कुर्याद् यथाविधि ।। ५७ ।।
तेन स्याद् भ्रामणीचक्रभ्रमणं वेगतस्ततः ।
तेन सर्वावर्तकीलान् क्रियाकालानुसारतः ।। ५८ ।।
भवेद् भ्रामयितुं सम्यक् सप्रमाणं यथाविधि ।
कर्तव्यकर्मरचना तत्तत्कीलकभ्रमणादिति ।। ५९ ।।
द्रावके च मणौ पश्चाद् विद्युच्छक्ति प्रयोजयेत् ।
संयोजयेत् सूर्यकिरणानाहृत्यास्मिन् तथैव हि ।। ६० ।।

यन्त्र के अङ्गों को इस प्रकार कहकर उनका प्रयोग कहा जाता है, प्रथम विद्युत्—कील का सन्धान यथाविधि करे उस से भ्रामाणीचक्र–सब को घुमाने वाले चक्र का भ्रमण वेग से हो जावे, फिर उस से घुमाने वाले पेंचों को क्रियाकालानुसार यथाविधि सप्रमाण सम्यक् घुमाने को उस उस कील के भ्रमण से कर्तव्यकर्म की रचना हो जावे और पश्चात् द्रावकमणि में विद्युत्–शक्ति को प्रेरित कर सके उसी प्रकार सूर्यकिरणों को लेकर इसमें संयुक्त करदे ।। ५७—६० ।।

सूर्यांशुविद्युत्सम्पर्काद् द्रावके च मणौ क्रमात् ।
भवेच्छीतघनस्तस्मिन् स्त्रीशक्तिस्सौलिकाभिधा ।। ६१ ।।
जायते द्रवसंसर्गात् पञ्चन्यङ्कप्रमाणतः ।
तथैव मणिसंसर्गात् पुंशक्तिश्चुलिकाभिधा (दा ?) ।।६२।।

अष्टन्यङ्कप्रमाणेन जायतेत्यन्तवेगतः ।
विद्युत्संयोजनात् पश्चात् तयोस्ससमेलनं भवेत् ।। ६३ ।।
तत्सम्मेलनतः काचिच्छक्तिरत्यन्तशीतला ।
जायते कौञ्चिनीनाम कुलिकाकर्षणक्षमा ।। ६४ ।।
अथ तच्छक्तिमाहृत्य कुलिकाभिमुखं यथा ।
भवेत् तथा नालमुखात् प्रेरयेत् सप्रमणातः ।। ६५ ।।

सूर्यकिरण विद्युत् के सम्पर्क से द्रावक में और मणि में क्रम से शीतघन-अत्यन्त शीत हो जावे उस में द्रवसंसर्ग से सौलिकानामक स्त्रीशक्ति पांच न्यङ्क ? प्रमाण से उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार मणिसंसर्ग से चुलिकानामक पुरुषशक्ति आठ न्यङ्क ? प्रमाण से अत्यन्त उत्पन्न हो जाती है। विद्युत्संयोजन से पश्चात् दोनों का मेल हो जावे-हो जाता है उस मेल से कौञ्चिनीनामक अत्यन्त शीतल कुलिका के आकर्षण में समर्थ कोई शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उस शक्ति को लेकर कुलिका के सामने जैसे हो जावे ऐसे नाल के मुख से सप्रमाण प्रेरित करे-छोड़े ।। ६१—६५ ।।

जतुपिण्डे यथा गुञ्जा कुलिकायां तथैव हि ।
कौञ्चिनीशक्तिसंयोगं कारयेद् विधिवत् क्रमात् ।। ६६ ।।
अथ तां कौञ्चिनीशक्तिस्समाकर्षति वेगतः ।
तथाकर्षणतः पश्चात् कुलिकाद्रावकं क्रमात् ।। ६७ ।।
पतत्यत्यन्तवेगेन तां मणिः पिबति स्वयम् ।
ततः पटोलिकाकीलभ्रमणं कारयेत् क्रमात् ।। ६८ ।।
पटोर्मिको विस्तृतास्यः प्रभवेत् तेन सत्वरम् ।
न भवेद् वातसंयोगस्सुतरां तन्मणौ यथा ।। ६९ ।।
आच्छादयेत् तथा सम्यक् तन्मणिं सम्प्रदायतः ।
ततः परं चक्रदन्तिकीलकं भ्रामयेच्छनैः ।। ७० ।।

लाख के पिण्ड में जैसे घूंघची-रत्ति वैसे ही कुलिका में कौञ्चिनीशक्ति का संयोग क्रम से विधिवत् करावे, अनन्तर उस कुलिका को कौञ्चिशक्ति वेग से खींचती है पुनः उस प्रकार के आकर्षण से कुलिका क्रम से द्रावक में अत्यन्त वेग से गिर जाती है उस कुलिका को स्वयं मणि पी लेती है-अपने अन्दर लीन कर लेती है फिर पटोलिका नामक या पटोलक-घोंघा सीपी के आकारवाले पेंच के भ्रमण को करावे तिस से शीघ्र पटोर्मिकनामक या वस्त्र की तह विस्तृत मुख हो जावे उस मणि में वातसंयोग ठीक न हो सकेगा किन्तु उस मणि का अपनी कलाप्रमाण से चक्रदन्ति कील को धीरे से घुमादे-।। ६६-७० ।।

तस्माद् विकासमायाति चक्रदन्तिमुखं क्रमात् ।
मणिद्रावकमध्यस्थामत्युष्णां कुलिकां ततः ।।७१।।
चक्रदन्तिर्मुखात् पीत्वा स्वगर्भे सन्निधास्यति ।
सम्पूरितं भवेत् पश्चाच्चक्रदन्तिगुहाशये ।।७२।।

ततस्सूक्ष्मादर्शनालकीलकं भ्रामयेत् क्रमात् ।
चक्रदन्त्यन्तर्गता सा कुलिका तेन वेगतः ॥७३॥
नालत्रयाकर्षणेन बहिर्याति शनैश्शनैः ।
यदा नालत्रयाकर्षणोन्मुखा सा भवेत् तदा ॥७४॥
सम्यक् सम्भ्रामयेद् विस्तृतास्यकीलं यथाविधि ।
तेनाङ्गान्य (ण्य?) थ यानस्य विस्तृतानि हि ॥७५॥

—उससे चक्रदन्ति का मुख क्रम से विकास को प्राप्त होजाता है-खुल जाता है, फिर द्रावक मणि के मध्य में वर्तमान अत्युष्ण कुलिका को चक्रदन्ति स्वमुख से पीकर अपने अन्दर रख लेगी पश्चात् चक्रदन्ति के गुहाशय गुप्तस्थान में भर जावेगी फिर सूक्ष्मादर्शनालवाले पेंच को क्रम से घुमादे उससे चक्रदन्ति के अन्तर्गत वह कुलिका वेग से तीन नालों के आकर्षण से धीरे धीरे बाहिर चली जाती है। जबकि वह तीनों नालों के आकर्षण के उन्मुख होती होवे तो सम्यक् विस्तृतमुखवाले पेंच को यथाविधि घुमादे उससे विमान के अङ्ग विस्तृत हो जाते हैं-खुल जाते हैं ॥७१-७५॥

तस्मात् तत्रत्यकुलिका बहिर्यात्यपकर्षणात् ।
पश्चात् तत्कुलिकाशक्तिर्निश्शेषं नाशमेधते ॥७६॥
ततोपसंहारयन्त्रकीलकं † चालयेत् सुधीः ।
तेन सर्वाङ्गोपसंहारस्स्यादेकैकतः क्रमात् ॥७७॥
पश्चाद् यन्त्रस्वरूपं लभते पूर्ववत्स्वयम् ।
एवमुक्त्वा समासेन कुण्टिणीशक्तियन्त्रकम् ॥७८॥
अथेदानीं पुष्पणिकयन्त्रमत्र निरूप्यते ।

उससे वहां की कुलिका खींचे जाने से बाहिर चली जाती है, पश्चात् वह कुलिकाशक्ति निःशेष नाश को प्राप्त हो जाती है फिर उपसंहारयन्त्र की कील को बुद्धिमान् चलावे उससे सब अङ्गों का उपसंहार एक एक करके हो जावेगा पश्चात् पूर्ववत् यन्त्र अपने रूप को प्राप्त करता है इस प्रकार कुण्टिणीयन्त्र को संक्षेप से कहकर अब पुष्पणिक यन्त्र यहां कहा जाता है ॥७६-७८॥

अथ पुष्पणीयन्त्रनिर्णयः—अब पुष्पणीयन्त्र का निर्णय देते हैं--

वसन्तग्रीष्मर्तुकालप्रयाणे यानयन्तृणाम् ।
सुखशैत्योपचारार्थं पुष्पणीयन्त्रमुच्यते ॥७९॥

वसन्त ग्रीष्म ऋतुकाल के प्रवर्तमान होने पर या आक्रमण पर विमानचालक सवारियों के सुख शीतता के उपचारार्थ पुष्पणीयन्त्र कहा जाता है ॥७९॥

उक्तं हि खेटविलासे-कहा ही है खेटविलास ग्रन्थ में—

ग्रीष्मे पञ्चशिखा शक्तिर्वसन्ते सौरिकाभिधा ।
वायव्याग्नेयकेन्द्राभ्यामीषादण्डस्य वेगतः ॥८०॥

---

† तत उपसंहार=ततोपसंहार इत्यत्र सन्धिरार्षः ।

जायते सूर्यकिरणसंसर्गादूष्मरूपतः ।
तयोः पञ्चशिखा शक्तिर्विषद्वयविराजिता ॥८१॥
अग्निषोमात्मिका सौरिसमशीतोष्णरूपिणी ।
अन्तश्शीतलतामेत्य बाह्येत्यन्तोष्णरूपताम् ॥८२॥
निदाघं कुरुते सर्वसृष्टिवर्गेषु वेगतः ।
स्वेदोद्रेकं मनुष्येषु निर्यासं वृक्षवर्गके ॥८३॥
करोति तेन सर्वेषां सर्वाभयविनाशनम् ।
एवं स्वशीतलीशक्तचा सर्वत्र व्याप्य पूर्ववत् ॥८४॥
आकृष्य सूर्यकिरणस्थितवासन्तिकान्ततः ।
वसन्तेनर्तुनेत्यादिश्रुतिवाक्यानुसारतः ॥८५॥

ग्रीष्म में पञ्चशिखा शक्ति वसन्त में सौरिका नामवाली शक्ति वायव्य आग्नेयकेन्द्रों से ईषादण्ड (पृथिवी सूर्य रेखा) की शक्ति वेग से सूर्यकिरणसंसर्ग से उत्पन्न हो जाती है, उन दोनों में पञ्चशिखा शक्ति दो विषों से युक्त होती है और सौरिका शक्ति अग्निषोमात्मिका—अग्नि सोम धर्मवाली समानशीतोष्णरूपा होती है 'जोकि' अन्दर' शीतलता को और बाहिर अत्यन्त उष्णता को प्राप्त होती है, सब सृष्टि वर्गों—जड जङ्गमों में वेग से निदाघ—घाम—दाह करती है,मनुष्यों में स्वेद—पसीने को बाहिर और वृक्षवर्ग में चेप गोन्द को करती है इससे सब के रोगों का नाश हो जाता है इस प्रकार अपनी शीतली शक्ति से पूर्ववत् सर्वत्र व्यापकर सूर्यकिरणस्थित वसन्त लाने वाली शक्ति को आकर्षित करके "वसन्तेनर्तुना" (यजु० २१ । २३) वसन्त ऋतु से इत्यादि श्रुतिवाक्य के अनुसार ॥८०—८५॥

कृत्वाभिषेकं पश्चात् तद्धृदि† (हृधि?) कोशाष्टकेपि च ।
प्रभापल्लवपुष्पादीन् करोत्यगलतादिषु ॥८६॥
तथैव प्राणिनां देहसप्तधात्वादिषु क्रमात् ।
बलदाढ्र्यप्रकाशादीन् सम्प्रयच्छति पुष्कलम् ॥८७॥
तथा पञ्चशिखा शक्ति (क्ते?) विषरूपा हि गृध्निका ।
स्थावरं जङ्गमं व्याप्य तद्धातून् सप्त शोष (ध!) येत् ॥८८॥
तथैव मारिका नाम शक्तिरन्या स्वभावतः ।
स्थावरे काण्डवल्कांश्च हृत्कोशान् पञ्च जङ्गमे ॥८९॥
सङ्कोचं कुरुते सम्यक् तेन पुष्टिविनाशनम् ।
अतः पञ्चशिखावेगं सशुष्णं (सौयुष्णं?) च विशेषतः ॥९०॥
नाशयित्वा विमानस्थयन्तॄणामूष्मभाजिनाम् ।
सुखशैत्याह्लादहर्षप्रदानार्थं यथाविधि ॥९१॥
विमानस्याङ्गयन्त्रेषु पुष्पणीयन्त्रमुच्यते ।

† हृत्कोशान् ॥८९॥ (देखो)

सिञ्चन-जलसिञ्चन करके पश्चात् 'प्राणियों के' हृदय में कोशाष्टक-अष्टमकोश ?-मस्तिष्क ? में भी प्रभा-तेज आभा तथा अगों-वृक्षों लता फैलने वाले पौधों आदि में भी पल्लव—नवकोंपल फूल फल आदि उत्पन्न करती है, उसी प्रकार प्राणियों के देह की सात धातुओं में क्रम से बल दृढ़ता चमक कान्ति आदि अधिक प्रदान करती है। और पञ्चशिखा शक्ति विषरूपा गृध्निका—गर्धारूपा कृपणा खाजाने वाली शोषण करने वाली शक्ति स्थावर जङ्गम को व्याप कर उनकी सात धातुओं को सुखा देती है इसी प्रकार यह दूसरी मारिका-मारनेवाली शक्ति स्वभावतः स्थावर में काण्ड-शाखा, वल्क-छाल को और जङ्गम में हृदय पांच कोशों—अन्नमय प्राणमय मनोमय आदि को संचुचित करती है निश्चय उससे पुष्टि का नाश होता है अतः पञ्चशिखा शक्ति के वेग बलसहित नष्ट करके विमान में स्थित ऊष्मभाजी—गरमी को सहते हुए गरमी से आक्रान्त चालक यात्रियों के सुख शीतता शान्ति हर्ष देने के लिये यथाविधि विमान के अङ्गयन्त्रों में पुष्पणीयन्त्र कहा जाता है ॥८६-९१॥

पञ्चाङ्गान्यस्य शास्त्रेषु प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः ॥९२॥
तान्येवात्र प्रवक्ष्यामि समालोच्य यथामति ।
आदौ पीठं ततश्शीतरञ्जिकादर्शकीलकम् ॥९३॥
शीतप्रसूतिकमणिर्द्रवपात्रस्तथैव च ।
शतारविद्युत्पङ्कश्चेत्यङ्गानां पञ्च वर्णितम् ॥९४॥
पञ्चाङ्गान्येवमुक्त्वा तद्रचनार्थं यथाविधि ।
आदौ निरूप्यते सुन्दमृत्काचोत्पत्तिनिर्णयः ॥९५॥

पांच अङ्ग शास्त्रों में ऊंचे विद्वानों ने कहे हैं उन्हें यहां यथामति विवेचन करके कहूंगा। आदि में पीठ, फिर शीतरञ्जिकादर्शकील—शीतरञ्जन करने वाले—शीत के लानेवाली शक्ति के दर्पण का पेंच, शीतप्रसूतिकमणि—शीत को उत्पन्न करने वाली मणि, द्रवपात्र और सौ अरों वाला विद्युत्पङ्क—विद्युच्चक्र, ये अङ्गों की पांच संख्या कही। पाञ्च अङ्गों को इस प्रकार कह कर उनकी रचना के लिये यथाविधि प्रथम सुन्दमृत्काच की उत्पत्ति का निर्णय कहतें हैं ॥९२-९५॥

तदुक्तं पार्थिवपाककल्पे—वह कहा है पार्थिवपाककल्प ग्रन्थ में—

लवणिकशिञ्जिरशल्यक्रमुकक्षारदुरोणकुकविन्दान् ।
निर्यासमृद् विरञ्चिकवटिकसुपिञ्छालमुञ्जिकाक्षारान् ॥ ९६ ॥
बाणार्कनेत्रवह्निर्वसुमुनिकद्रोडुभागांशान् ।
सम्पूर्य मूषगर्भे द्वात्रिंशत्पाकतोष्णकक्ष्यशतात् ॥ ९७ ॥
संस्थाप्य कूर्मकुण्डे द्विमुखीभस्त्रात् सुगालयेद् वेगात् ।
यन्त्रोर्ध्वनालमध्ये तद्रसमाहृत्य पूरयेत् पश्चात् ॥ ९८ ॥
एवं कृतेतिशुद्धः प्रभवति सूक्ष्मश्च सुन्दमृत्काचः ॥ इत्यादि ॥

लवणिक—लवण, शिञ्जिर—कृत्रिम मणिविशेष, शल्य—हड्डी या श्वेत खैर, क्रमुकक्षार—सुपारी का क्षार, दुरोण ? कुकविन्द ?, निर्यास—गोन्द, मृत्—सौराष्ट्रमृत्तिका, विरञ्चि ?, वटिक—बड़,

सुपिञ्छाल ?—पिच्छला ?—सेम्भल वृक्ष का क्षार या मुञ्जिकाक्षार—मूञ्जक्षार, ये सब ५, १२, २, ३, ८, ३, ३० ?, ६ ? भागों को मूषगर्भ में—मूषा के अन्दर भर कर ३२ पाक सौ दर्जे की उष्णता से कूर्मकुण्ड में रख कर दो मुखवाली भस्त्रा से वेग से गलावे, यन्त्र के ऊपरि नाल के मध्य में उस रस को लेकर भर दे, इस प्रकार करने पर अतिशुद्ध सूक्ष्म सुन्दमृत्काच हो जाता है ॥ ९६–९८ ॥

इत्युक्त्वा सुन्दमृत्काचमथाङ्गरचनाविधिः ॥ ९९ ॥
निरूप्यते विधिवत्सङ्ग्रहेण यथाक्रमम् ।
द्वात्रिंशत्याकसंशुद्धसुन्दमृत्काचतो दृढम् ॥ १०० ॥
द्वादशाङ्गुलायाममङ्गुलत्रयमुन्नतम् ।
चतुरस्रं वर्तुलं वा पीठं कुर्याद् यथाविधि ॥ १०१ ॥
तस्मिन् चत्वारि केन्द्राणि कल्पयेन्मध्यतः क्रमात् ।
मध्यकेन्द्रे बाहुमात्रं सुन्दमृत्काचनिर्मितम् ॥ १०२ ॥
शङ्कुं संस्थापयेत् पश्चात् तस्योपरि यथाविधि ।
सन्धार्य सुदृढं शीतरञ्जिकादर्शकीलकम् ॥ १०३ ॥
शीतप्रसूतिमणिं तन्मध्ये सुस्थिरं न्यसेत् ।
तत्पूर्वकेन्द्रे विधिवद् द्रवपात्रं नियोजयेत् ॥ १०४ ॥

सुन्दमृत्काच को कह कर अनन्तर अङ्गरचना विधि संक्षेप से यहां विधिवत्—यथाविधि कही जाती है। बत्तीसवें शुद्ध सुन्दमृत्कांच से दृढ १२ अंगुल लम्बा, ३ अंगुल ऊंचा, चौकौन या गोल पीठ बनाए, उसमें ४ मध्य केन्द्र बनावे, मध्यकेन्द्र में बाहुमात्र सुन्दमृत्काच से बने हुए शुद्ध शंकु को स्थापित करे पश्चात् उसके ऊपर सुदृढ शीतरञ्जिक ? की आदर्श कीलें शीतप्रसूतिका मणि को उसके मध्य में सुस्थित उससे पूर्व केन्द्र में विधिवत् द्रवपात्र में युक्त करे ॥ ९९–१०४ ॥

द्रवपात्रमुक्तं क्रियासारे—द्रवपात्र कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

द्वादशांगुलविस्तारं द्वादशांगुलमुन्नतम् ।
चषकं वर्तुलाकारं नारिकेलकठोरवत् ॥ १०५ ॥
सुदृढं कारयेच्छीतदर्पणेन यथाविधि ॥ इत्यादि ॥

१२ अंगुल लम्बा चौडा १२ अंगुल ऊंचा पात्र गोलाकार नारियल की भांति कठोर सुदृढ शीतदर्पण से यथाविधि करावे ॥ १०५ ॥

शीतरञ्जिकदर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—शीतरञ्जिक दर्पण कहा है दर्पणप्रकरण में—

शशपिथ्यं चोडुपिथ्यं प्राणक्षारं च कुड्मलम् ॥ १०६ ॥
ज्योत्स्नासारं शीतरसकन्दपिष्टमतः परम् ।
कुडुपक्षारमभ्रस्यसारक्षारं तथैव च ॥ १०७ ॥
शौण्डीरकाजङ्घशल्यचूर्णं वातोषरं तथा ।
श्वेतनिर्यासमृत्सारमुरघश्चेति द्वादश ॥ १०८ ॥

ताराग्निबाणोडुदशदिग्रुद्रवसुसागराः ।
द्वाविंशत्षड्विभागांशास्तेषां शास्त्रनिरूपिताः ॥ १०६ ॥
एतानाहृत्य संशुद्धान् तत्तद्भागानुसारतः ।
पूरयित्वापद्ममुखमूषायां पद्मकुण्डके ॥ ११० ॥
तन्मूषां विन्यसेत् पश्चाद् दृढमिङ्गालपूरिते ।
त्रयोविंशदुत्तरत्रिशतकक्ष्योष्णमानतः ॥ १११ ॥
गालयित्वा पञ्चमुखभस्त्रेणात्यन्तवेगतः ।
तद्रसं योजयेद् यन्त्रस्योर्ध्वनालमुखे शनैः ॥ ११२ ॥
भवेदेवंकृते शीतरञ्जिकादर्शमुत्तमम् ॥ इत्यादि ॥

शश का पिच्य ?–पित्त और उडु ? का पिच्य?,–पित्त, प्राणत्तार–नवसादर, कुड्मल–नीलोत्पल–नीलोफर, ज्योत्स्नासार—रेणुका गन्ध द्रव्य का तैल इतर, शीतरस कन्द—रसोंत के कन्द की पिट्ठी, कुडुपत्तार ?, अभ्रक का क्षार, शौण्डीरका जङ्घा शल्य—गजपिप्पली के मूल का चूर्ण, वातोपर–खुले मैदान का शोरा, श्वेत निर्यास—आक का दूध ?, मृत्सार—मृत्सा—सौराष्ट्रमृत्तिका, उरघ ? । ये बारह पदार्थ ५, ३, ५, १, १०, १०, ११, ८, ७, २२, ६, भागों को उनके शास्त्र से उन उन भागों के अनुसार शुद्ध लेकर पद्ममुखमूषा में भर कर अङ्गार से भरे पद्मकुण्ड में उस मूषा—बोतल को रख दे, पश्चात् ३३२ दर्जे की उष्णता प्रमाण से पांच मुख वाली भस्त्रा से गला कर, उस पिघले रस को धीरे से यन्त्र के ऊपरवाले नालमुख में युक्त करे ऐसा करने पर शीतरञ्जिकादर्श हो ॥ १०६–११२ ॥

शीतप्रसूतिकमणिरुक्तं मणिप्रकरणे—शीतप्रसूति मणि कही है मणिप्रकरण में—

वराटिकामञ्जुलचूर्णपञ्चकमौदुम्बरक्षारचतुष्टयं तथा ।
रुब्णत्रयं वर्चुलकाष्टकं च शीतरञ्जिकादर्शसप्तकं तथा ॥ ११३ ॥
वटुत्रयं शाल्मलिकाष्टकविंशतिः क्षारत्रयं पारदभागसप्तकम् ।
श्वेताभ्रसत्त्वाष्टककर्कटाङ्घ्रिकक्षाराष्टकं चौलिकसत्त्वपञ्चकम् ॥११४॥
निर्यासमृत्पङ्कदशांशकं तथा सम्पातिजङ्घास्थि च पञ्चविंशतिः ।
चतुर्दशैतान् परिगृह्य शोधितान् सम्पूर्य मृत्कुण्डलमूषिकामुखे ॥११५॥
संस्थाप्य पश्चात् कुलकुण्डिकान्तरे वेगाद् ध्मनेत् त्र्यम्बकभस्त्रिकामुखात् ।
संगाल्य पश्चात् त्रिशतोष्णकक्ष्यतो मणिप्रसूतस्य मुखे प्रपूरयेत् ॥११६॥
एवंकृते शीतप्रसूतिकामणिर्भवेत् सुशुद्धस्सुदृढस्सुशीतलः ॥११७॥ इत्यादि ॥

कौडी, मजीठ का चूर्ण ५ भाग, गूलरक्षार ४ भाग, रुब्ण ? ३ भाग, वर्चुलक ?–वञ्जुल–तिनिश वृक्ष ? ८ भाग,—शीतरञ्जिकादर्श ७ भाग, वटु—शोनापाठा वृक्ष ३ भाग, सिम्भल २८ भाग, कर्कटाङ्घ्रि—काकड़ासिङ्गी के मूल का क्षार या केकड़ा जन्तु की टांगों का क्षार ? ८ भाग, चौलिक सत्त्व—मोरपुष्पी ? या दारचीनी का सत्त्व ५ भाग, निर्यासमृत्—कत्था ? १५ भाग, सम्पाति—गिद्ध पक्षी की जांघ की हड्डी २५ भाग इन १४ वस्तुओं को लेकर शोध कर मिट्टी के कुण्डलाकार मूषिका—बोतल के मुख में भर कर

कुलकुण्डिका के अन्दर रख कर वेग से त्र्यम्बक भस्त्रिका मुख से ३०० दर्जे की उष्णता से गला कर मणिप्रसूतास्य के मुख में भर दे, ऐसा करने पर शुद्ध सुदृढ सुशीतल शीतप्रसूतिका मणि हो जावे—हो जाती है ॥ ११३-११७ ॥

विद्युत्तन्त्र्या समायुक्तं द्रावकत्रयशोधितम् ।
शतारविद्युत्पङ्क्तं तत्पुरस्तात् स्थापयेद् दृढम् ॥ ११८ ॥

विद्युत् के तारयुक्त तीन द्रावक से शोधा हुआ या बहुत अराओं से युक्त पङ्क--पखडीचक्र को तो उसके सामने दृढरूप में स्थापित करे ॥ ११८ ।

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में —

द्वादशार्कं चाञ्जनिकत्रयं क्ष्विङ्काष्टकं तथा ।
सम्मेल्य गालयेत् सम्यक् शतकक्ष्योष्णमानतः ॥ ११९ ॥
तद्भवेत्स्वर्जवच्छुद्धमारारं पीतवर्णकम् ।
अत्यन्तलघुसूक्ष्मं च मुदुलं सुदृढं शुचिः ॥ १२० ॥
पञ्चलोहमिति प्राहुरेतं तच्छास्त्रवित्तमाः ।
तस्मात् प्रकल्पयेत् पत्रशतं कमलपत्रवत् ॥ १२१ ॥
तथा नाभित्रयं कीलत्रयं तन्त्रीत्रयं क्रमात् ।
घण्टारकीलकं चैव कारयेच्छास्त्रमानतः ॥ १२२ ॥
सकीलकशलाकाभिस्संयुतं सुमनोहरम् ।
नाभिचक्रत्रयं तस्मिन्नादौ सन्धारयेद् दृढम् ॥ १२३ ॥
शण(न ?) पत्रभ्रमो वेगादनुलोमाद् यथा भवेत् ।
चतुष्पार्श्वेषु चक्रस्य विधिवद् योजयेत् क्रमात् ॥ १२४ ॥
तथैव तत्पुरोभागचक्रपार्श्वेष्वपि क्रमात् ।
सन्धारयेत् पत्रशतं विलोमभ्रमणं यथा ॥ १२५ ॥

ताम्बा १२ भाग, सुरमा ३ भाग, क्ष्विङ्क--लोह विशेष या जस्ता ८ भाग, इन्हें मिला कर १०० दर्जे की उष्णता से गलावे, वह शुद्ध सज्जीखार जैसा आरे आरों वाला पीतरंग का अत्यन्त हल्का सूक्ष्म मृदुल सुदृढ पवित्र हो जावे उसे उत्तम शास्त्रवेत्ता पञ्चलोह कहते हैं। अतः उससे १०० पत्र-कमलपत्र की भांति बनावे तथा ३ नाभियां ३ कीलें ३ तार क्रम से घण्टा देने वाली कील भी शास्त्र रीति से करावे कीलसहित शलाकाओं से युक्त भी हो। उसमें प्रथम ३ नाभिचक्र लगावे, इसी प्रकार पुरोभाग—सामनेवाले चक्रपार्श्वों में भी क्रम से १०० पत्र लगावे जिससे विलोम—उल्टा भ्रमण हो सके ॥ ११८-१२५ ॥

तत्पश्चाद्भागचक्रस्य नाभिमूले यथाविधि ।
विद्युत्तन्त्रीं समाहृत्य पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ १२६ ॥
शतारविद्युत्पङ्कस्य भ्रमणार्थं नियोजयेत् ।
पश्चात् सम्पूरयेत् पात्रे शीतप्रसुवकद्रावम् ॥ १२७ ॥

विद्युत्तन्त्र्या समावेष्ट्य शीतप्रसुवकं मणिम् ।
द्रवपात्रान्तरे पश्चात् स्थापयेन्मध्यकेन्द्रके ॥ १२८ ॥
क्षीरीपटान्तर्गतौदुम्बरतन्त्रीन् यथाविधि ।
द्रवपात्रस्थतन्त्र्यग्रे पश्चात् सन्धारयेत् समम् ॥ १२९ ॥
तत्प्रदेशात् समानीय तन्त्रीद्वयमतः परम् ।
यन्त्रमध्यस्य शीतरञ्जिकादर्शकीलके ॥ १३० ॥

उसके पिछले भागवाले चक्र के नाभिमूल में यथाविधि दो विद्युत्तारों को लेकर दोनों पार्श्वों में भी सौ अरोंवाले विद्युच्चक्र के भ्रमणार्थ लगावे, पश्चात् पात्र में शीतप्रसुवक को भर दे, शीतप्रसुवक मणि को विद्युत् के तार से लपेट कर द्रवपात्र के अन्दर मध्य केन्द्र में स्थापित करे। क्षीरी—दूधवाले वृक्ष के दूध से बने वस्त्र के अन्तर्गत औदुम्बर–ताम्बे की तारों को यथाविधि द्रवपात्रस्थ तारों के अग्रभाग में समान रूप से लगादे। उस प्रदेश से दो तारों को लाकर यन्त्रमध्यस्थ शीतरञ्जिकादर्शकील में—॥ १२६–१३० ॥

अनुलोमप्रकारेण सकीलं योजयेत् ततः ।
मणिद्रावकसम्बद्ध (न्ध?) विद्युत्तन्त्रीमुखाच्छनैः ॥१३१॥
शक्ति सञ्चोदयेत् सम्यङ् मणिद्रावकयोः क्रमात् ।
पश्चाच्छक्तिद्वये वेगाद् विद्युत्संयोगतः पुनः ॥ १३२ ॥
तन्निष्ठसुखशैत्यस्वभावशक्ति यथाक्रमम् ।
तच्छीतरञ्जिकादर्शकीलमाक्रम्य वर्तते ॥ १३३ ॥
तत्कीलभ्रमणाद् व्योमयानमावृत्य वेगतः ।
तच्छक्ती यन्तृणां ग्रीष्मविषशक्ति निमेषतः ॥ १३४ ॥
विहृत्य सुखसन्तोषमधोवृद्धयादिकान् क्रमात् ।
प्रयच्छतो विशेषेण मकरन्दामृतं यथा ॥ १३५ ॥

—अनुलोम प्रकार से कीलसहित युक्त करदे, द्रावक मणि से सम्बन्ध रखने वाले विद्युत्तारों के मुख से धीरे से शक्ति को दोनों मणिद्रावकों में भली भांति प्रेरित करें पश्चात् दोनों शक्तियों में वेग से विद्यु त् के संयोग से उन में रखी उन में अवलम्बित सुख शैत्य स्वभाववाली शक्ति को यथाक्रम वह शीत-रञ्जिक आदर्शकील को अवलम्बित करके रहती है, उस कील के घूमनेसे वे दोनों शक्तियां वेग से व्योम-यान को प्राप्त होकर चालक और यात्रियों की गरमीरूप विषशक्ति को निमेष भर में नष्ट करके सुख सन्तोष बुद्धिवृद्धि आदिकों को क्रम से विशेषरूप से मधु के समान देती है॥ १३१—१३२ ॥

ततश्शतारपङ्क्भ्रमणं तन्त्रचा प्रकाशयेत् ।
तेन वायुविशेषेण प्रादुर्भूय यथासुखम् ॥ १३६ ॥
व्योमयानस्थयन्तृणां सर्वेषामुपरि स्वतः ।
मन्दं मन्दं प्रसरति मन्दमारुतवत् क्रमात् ॥ १३७ ॥

तेन सौर्योष्णसन्तापो निश्शेषं नाशमेधते ।
मणिद्रावकपङ्क्तिभ्यो व्योमयानस्थयन्तॄणाम् ॥ १३८ ॥
सुखशैत्याह्लादहर्षा एवं सम्भवन्ति (ति?) स्वतः ।
देहस्थसप्तधातूनां भवेत् तस्माच्छुचिर्बलम् ॥ १३९ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यानदक्षिणकेन्द्रके ।
स्थापयेत् पुष्पिणीयन्त्रं शास्त्रोक्तविधिना दृढम् ॥१४०॥
तदधस्स्थापयेत् पश्चात् तत्र घण्टारकीलकम् ।
सौरिपञ्चशिखोत्पन्नशक्तयो विषरूपकाः ॥ १४१ ॥
घण्टारकीलकमुखाद् भवेयुर्बाह्यखे लयम् ॥ १४२ ॥ इत्यादि ॥

फिर सौ अरे वाले चक्र के भ्रमण को तार से प्रकाशित करे, उससे वायु विशेषरूप से सुगमता से प्रकट होकर विमान में स्थित सब चालक यात्रियों के ऊपर मन्द वायु के समान क्रम से स्वतः मन्द मन्द पड़ती है। उस से सूर्य का उष्णताप सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाता है। मणिद्रावक के चक्रों से विमान में स्थित यात्रियों के सुख शीतता आनन्द हर्ष इस प्रकार स्वतः सम्यक् हो जाते हैं या प्रकट हो जाते हैं ? उस से देह में स्थित सात धातुओं की पवित्रता बल सिद्ध होता है अतः सर्वप्रयत्न से विमान के दक्षिण केन्द्र में पुष्पिणीयन्त्र को शास्त्रोक्त विधि से दृढ़ स्थापित करे, पश्चात् उसके नीचे वहां घण्टारकील स्थापित करे, सूर्य की पञ्चशिखा से उत्पन्न विषरूप शक्तियां घण्टारकीलमुख से बाहिर आकाश में लय को प्राप्त हो जावें–हो जाती हैं ॥ १३६–१४२ ॥

अथ पिञ्जुलादर्शनिर्णयः—अब पिञ्जुल आदर्श निर्णय देते हैं–

एवमुक्त्वा पौष्पिणिकयन्त्रं पश्चाद् यथाविधि ।
पिञ्जुलादर्शस्वरूपमुच्यते शास्त्रतः क्रमात् ॥ १४३ ॥
वातद्वयावर्तशक्तिसन्धौ सूर्यांशुघटनात् ।
भवेत् कुलिशवत् सूर्यातपाशनिनिपातनम् ॥ १४४ ॥
तदपायनिवृत्त्यर्थं पिञ्जुलादर्शकं न्यसेत् ।
कुर्यादष्टदलाकारं पद्मं पिञ्जुलदर्पणात् ॥ १४५ ॥
दलसन्धौ तु वार्तुल्यं दण्डाकारं प्रकल्पयेत् ।
शङ्कुकीलद्वयं तस्य पश्चाद्भागे प्रकल्पयेत् ॥ १४६ ॥
तं समावेष्टयेच्छीतरञ्जिकादर्शतन्त्रिभिः ।
पृष्ठमाच्छादयेत् पश्चान्मौञ्जिकापटकोशतः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार यथाविधि पुष्पिणीयन्त्र कहकर पिञ्जुलादर्श का स्वरूप शास्त्र से कहा जाता है, दो वायुओं के आवर्त घूमरूपशक्तियों की सन्धि में सूर्यकिरणों के संघर्ष से कुलिश–वज्र की भांति सूर्य के ताप की विद्युत् का गिरना हो जावे उस अनिष्ट की निवृत्ति के अर्थ पिञ्जुलादर्श रखे। पिञ्जुलदर्पण से आठदलाकार कमल बनावे, दल—पंखडी की सन्धि में उसके पिछले भाग में दण्डाकार गोलाई में दो

शङ्कुकीले बनावें उसे शीतरञ्जिकादर्शतारों से लपेटकर मौञ्जिकापटकोश–मूञ्ज के टाट के थैले से पृष्ठ भाग को ढक दे ॥ १४३—१४७ ॥

वाहुमात्रोर्ध्ववतस्सूर्यकिरणाभिमुखं यथा ।
विद्युत्तन्त्रीसमायुक्तशङ्कुकीलद्वयादथ ॥ १४८ ॥
विमानदक्षिणकेन्द्रशलाकोर्ध्वमुखे दृढम् ।
स्थापयेत् पिञ्जुलादर्शं किरणाकर्षणोन्मुखम् ॥१४९॥
तेन मेधोभिवृद्धिश्च प्राणत्राणनमेव च ।
आतपाशनिवेगापकर्षणाद्यानयन्तॄणाम् ॥१५०॥
भवेत् स्वभावतः पश्चात् तापश्शीतलतां व्रजेत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन व्योमयाने यथाविधि ॥१५१॥
स्थापयेत् पिञ्जुलादर्शं यन्तॄणां प्राणदायकम् ॥१५२॥ इत्यादि ॥

सूर्यकिरण के सामने विद्युत् के दो तारों से युक्त वाहुमात्र ऊंचे दो शङ्कुकीलों से विमान के दक्षिण केन्द्र की शलाकाओं के उर्ध्वमुख में किरणाकर्षण के उन्मुख पिञ्जुल आदर्श को स्थापित करे, उससे आतप विद्यु त् के वेग को खींच लेने से ताप स्वभावतः शीतलता को प्राप्त हो जावेगा चालक यात्रियों के मेधा की वृद्धि और प्राणों का त्राण होगा अतः सर्वप्रयत्न से विमान में पिञ्जुल आदर्श यात्रियों का प्राणदायक स्थापित करे ॥ १४८–१५१ ॥

अथ नालपञ्चकनिर्णयः—अब नालपञ्चक का निर्णय देते हैं—

उक्त्वैवं पिञ्जुलादर्शस्वरूपं विधिवत् ततः ।
पञ्चवातायनीनालस्वरूपमभिवर्ण्यते ॥ १५३ ॥

इस पिञ्जुलादर्श का स्वरूप विधिवत् कहकर पञ्चवातायनीनाल का स्वरूप कहा जाता है॥१५३॥

तदुक्तं वातायनतन्त्रे—वह कहा है वातायनतन्त्र में—

विमाने पाकचु (छु?)ल्लीकधूमस्संव्याप्यते यदा ।
तस्य . निर्गमनार्थाय नालपञ्चकमुच्यते ॥१५४॥
जवनिकपिञ्जुलकाभ्रं घोण्टारं धूमपास्यकूर्मतनू ।
रुद्रार्कबाणतारकवसुभागांशान् यथोक्तसंशुद्धान् ॥१५५॥
मुषामुखेन पश्चाद् वेगात् संगालयेच्छतोष्णकक्ष्येण ।
एवं कृतेतिमृदुलस्सूक्ष्मो लघुतैललेपच्छुद्धः ॥१५६॥
वातायनीयलोहः प्रभवति सुदृढस्सुवर्णसदृशाभः ॥१५७॥ इत्यादि ।

विमान में पाकचुल्ली–पकाने की अंगीठी (Heater) का धूंआ जब व्याप जावे तो उसे निकालने के लिये पञ्च नाल कहते हैं । जवनिक ?–अयस्कान्तलोह ?, पिञ्जुलकाभ्र ?–पिञ्जल–हरिताल, का अभ्रक ?, घोण्टार ?—घुण्डारक–लोहविशेष, धूमपास्य ?–धूमास्यप—ऊष्मप—लोहविशेष, कूर्मतनु ? –कछवे की पीठ ?। ये रुद्र ? ११ ?, ७, ५, ५, ८ भागांशों को यथावत् शुद्ध हुओं को मुषामुख बोतल में

भरकर वेग से सौ दर्जे की उष्णता से गलावे ऐसा करने पर तैल के लेप से शुद्ध हुआ वातायनी लोह अतिमृदुल सूक्ष्म लघु सुवर्णरंगवाला सुदृढ बन जाता है ॥ १५४-१५७॥

द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं द्वादशाङ्गुलमुन्नतम् ।
कुर्याद् वातायनीलोहात् पञ्चनालान् यथाविधि ॥१५८॥
एकैकधूमप्रमाणं नालमूलेषु पञ्चसु ।
सन्धार्य व्योमयानस्य वामपार्श्वमुखे क्रमात् ॥१५९॥
संस्थापयेत् पञ्चनालान् पञ्चसन्धिषु शास्त्रतः ।
मुखानि पञ्चनालानां दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ॥१६०॥
स्थापयेद् विधिवत् पश्चादूर्ध्वे तूर्ध्वमुखं यथा ।
नालमूलस्थमणयः पश्चाद् धूमं शनैश्शनैः ॥१६१॥
आकृष्य नालमूलस्थमुखच्छिद्रेषु योजयेत् ।
ततो वातायनीनालमुखेभ्यो वेगतः क्रमात् ॥१६२॥
निश्शेषं याति तद्धूमो बाह्ये विलयमेधते ।
तेन यानस्थयन्तॄणां धूमनाशात् सुखं भवेत् ॥१६३॥
तस्माद् विमाने तन्नालपञ्चकं विधिवन्न्यसेत् । इत्यादि ॥

१२ अङ्गुल चौडे १२ अङ्गुल ऊंचे वातायनीलोह से पांच नालें बनावें। एक एक धूम के प्रमाण में पांचों नालमूलों में लगाकर विमान के वामपार्श्व भाग में क्रम से पांच सन्धियों में शास्त्र से पांच नालों को संस्थापित करे। पांचों नालों के मुख पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से विधिवत् स्थापित करे पश्चात् ऊपर में जैसे नालमूलस्थ मणियां ऊर्ध्वमुख—ऊपर की ओर धीरे धीरे धूंए को खींचकर नाल मुख में स्थित मुख छिद्रों में जोड दे फिर वातायनी नालमुखों से धूंवा बाहिर वेग से सर्वथा लय को प्राप्त हो जाता है। इस से धूमनाश से विमान में स्थित यात्रियों को सुख होता है अतः विमान में वह ५ नाल विधिवत् लगावे ॥ १५८-१६३ ॥

हस्तलेख कापी संख्या १०—

गुहागर्भादर्शयन्त्रनिर्णयः—गहागर्भादर्शयन्त्र का निर्णय करते हैं—

नालपञ्चकमुक्त्वैवं संग्रहेण यथाविधि ।
गुहागर्भादर्शयन्त्रमिदानीं सम्प्रचक्षते ॥१॥

इस प्रकार संक्षेप से नालपञ्चक कहकर अब गुहागर्भादर्शयन्त्र कहते हैं ॥१॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

विमानखण्डनार्थाय शत्रुभिर्भूमुखान्तरे ।
महागोलाग्निगर्भादियन्त्रपञ्चकमद्भुतम् ॥२॥
यत्र यत्र रहस्येन स्थापितं सर्वतोमुखम् ।
तत्स्वरूपपरिज्ञानसिद्ध्यर्थं शास्त्रतः क्रमात् ॥३॥
गुहागर्भादर्शयन्त्रं स्थापयेद् व्योमयानके ।

विमान के तोड़ने के अर्थ शत्रुओं द्वारा भूमि के मुख के अन्दर महागोल अग्निगर्भ आदि अद्भुत पञ्चकयन्त्र जहां जहां गुप्तरूप से सब ओर मुख वाला स्थापित किया है, उसके स्वरूप परिज्ञान की सिद्धि के अर्थ शास्त्र से क्रम से विमान में गुहागर्भादर्श स्थापित करे ॥२—३॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है—

द्वासप्ततिमसंख्याकादर्शमाहृत्य शास्त्रतः ॥४॥
त्रिकोणवर्तुलचतुष्कोणाकारैर्यथाविधि ।
त्रिधा कृत्वा ततोञ्जिष्ठवृक्षकाष्ठविनिर्मिते ॥५॥
नीडे सन्धार्य पूर्वोक्तदर्पणान् सुदृढं यथा ।
पञ्चधारालोहकृतशङ्कुभिस्सुदृढैः क्रमात् ॥६॥
बन्धयित्वाथ पूर्वोक्तकाष्ठयन्त्रे नियोजयेत् ।
अधोमुखं वर्तुलादर्शमधस्तात् प्रकल्पयेत् ॥७॥
चतुष्कोणादर्शमूर्ध्वास्यं यथा सन्नियोजयेत् ।
त्रिकोणदर्पणं (तु) तद्वदुभयोः पश्चिमान्तरे ॥८॥
संस्थापयेत् पञ्चमुखकीलीयोगाद् यथाक्रमम् ।

चतुष्कोणादर्शमूलकेन्द्रशङ्कुमुखान्तरात् ॥९॥
यन्त्रपीठाग्नेयकेन्द्रशङ्कुमूलान्तरावधि ।
रविखर्परपञ्चास्यलोहमिश्रिततन्त्रिभिः ॥१०॥
सन्धारयेद् दृढं पश्चात् पारग्रन्थिकद्रावके ।
स्थापयेच्चुम्बुकमणिं तन्त्रीमूलाश्च तन्मुखे ॥११॥

७२ वीं संख्या वाले आदर्श को लेकर शास्त्ररीति से त्रिकोण गोल चतुष्कोण आकार से यथाविधि तीन प्रकार करके अञ्जिष्ठवृत्त ?—सूर्य—सूर्यावर्त वृक्ष के काष्ठ से बने लम्ब कोश में पूर्वोक्त दर्पणों को सुदृढ़ लगाकर पञ्चधारा कृत्रिम लोहे से बने शंकुओं से बान्धकर पूर्वोक्त काष्ठयन्त्र में नीचे लगादे, गोल भाग नीचे करके लगावे, चतुष्कोण आदर्श-दर्पण ऊपर मुखवाला लगावे। त्रिकोण दर्पण उसी प्रकार दोनों के पश्चिम की ओर पञ्चमुख कील के योग से यथाक्रम संस्थापित करे, चतुष्कोण आदर्श मूलकेन्द्र के शंकु के मुख में से यन्त्रपीठ के आग्नेय केन्द्र के शंकुमूल तक। ताम्बा खपरिया पञ्चास्य लोहों से मिले—बने तारों से लगावे पश्चात् पारगन्धिक द्रावक–पारागन्धक द्रावक में चुम्बुकमणि को और तारों के मूलों—सिरों को भी स्थापित करे॥ ४-११॥

प्रसार्य विधिवत् तस्मात् तन्त्रीनन्यान् चतुः* क्रमात् ।
त्रिकोणादर्शमावृत्य ऊर्ध्वास्यादर्शमध्यतः ॥१२॥
अधोमुखादर्शमध्यकेन्द्रस्थाने दृढं यथा ।
सन्धार्य विधिवत् पश्चात् सूर्यांशून् पार्श्वतः क्रमात् ॥१३॥
शक्तिपश्चिमदिग्भागाच्चोदयेत् प्रमाणतः ।
बिम्बाकर्षणनिर्यासलेपितं पटदर्पणम् ॥१४॥
त्रिकोणाभिमुखं (भवेद्?) यथा तत्र नियोजयेत् ।
पूर्वोक्तसूर्यकिरणान् शक्तया सह ततः परम् ॥१५॥

अतः अन्य चार तारों को विधिवत् फैलाकर त्रिकोण आदर्श को घेर कर ऊपर वाले आदर्श के मध्य से नीचे वाले आदर्श के मध्य केन्द्रस्थान में विधिवत् दृढ़ लगाकर पश्चात् सूर्यकिरणों की पार्श्व—शक्ति के पश्चिम दिशा की ओर से प्रमाण से प्रेरित करे, बिम्ब—सूर्यबिम्ब को आकर्षित करने वाले निर्यास–गोन्द से लेपे हुए पटदर्पण–वस्त्ररूप दर्पण को त्रिकोण आदर्श के सम्मुख नियुक्त करे, फिर पूर्वोक्त सूर्यकिरणों को शक्ति के साथ—॥१२-१५॥

द्रावकस्य मणौ सम्यग्योजयेत् सर्वतोमुखम् ।
अधोमुखे ततश्शुद्धे वर्तुलाकारदर्पणे ॥१६॥
मणिस्थानात् समाहृत्य तदंशून् शक्तिमिश्रितान् ।
प्रसार्य सप्रमाणेन पश्चात् तन्मुखकेन्द्रतः ॥१७॥
यानसञ्चारमार्गाधस्थितभूम्यां प्रयोजयेत् ।
पश्चात् तत्किरणास्सम्यक्शक्तया सह स्ववेगतः ॥१८॥

---

* अविभक्तिकनिर्देश आर्षः ।

प्रविश्य भूमुखं तत्र सर्वत्र स्थापितं क्रमात् ।
महागोलाग्निगर्भादियन्त्रान् व्याप्याथ शक्तितः ॥१६॥
सम्यगावृत्य साङ्गानि तत्स्वरूपाण्यथास्फुटम् ।
पूर्वोक्तद्रवमध्यस्थमणावूर्ध्वमुखं यथा ॥२०॥

द्रावक में स्थित मणि में सब ओर सम्यक् लगावे फिर नीचे की ओर शुद्ध गोलाकार दर्पण में मणिस्थान से शक्तिमिश्रित उन किरणों को लेकर सप्रमाण फैलाकर पश्चात् उनके मुखकेन्द्र से विमान के गतिमार्ग के नीचे स्थित भूमि में प्रेरित करे पश्चात् वे किरणें भली प्रकार शक्ति के साथ अपूर्व वेग से भूमि के मुख में प्रविष्ट होकर वहां सर्वत्र स्थापित महागोल अग्निगर्भ आदि यन्त्रों को व्याप कर शक्ति से भली प्रकार घेरकर अंगोंसहित उनके स्वरूपों को स्फुटरूप में पूर्वोक्त द्रवमध्यस्थ मणि में ऊर्ध्वमुख जिस प्रकार हो ऐसे-॥१६—२०॥

आदर्शे मुखवत्तेषां प्रतिबिम्बं प्रकुर्वति ।
त्रिकोणादर्शाभिमुखमध्यतन्त्रचग्रसंस्थिते ॥२१॥
बिम्बाकर्षणनिर्यासलेपिते पटदर्पणे ।
मणिस्थप्रतिबिम्बानामाकाराणि यथाक्रमम् ॥२२॥
सप्रमाणं सुविरलं चित्रितं भवति स्फुटम् ।
पश्चाद् द्रावकसंस्कारात् तच्चित्रं सुस्फुटं भवेत् ॥२३॥
महागोलाग्नियन्त्रादीन् शत्रुभिस्सन्निवेशितान् ।
ज्ञात्वा तेन ततश्शीघ्रं समूलं नाशयेत् सुधीः ॥२४॥
गुहागर्भादर्शयन्त्रं यानकुक्षावतो न्यसेत् ।
विमानसंरक्षणार्थायैतद्यन्त्रं निरूपितम् ॥२५॥
गुहागर्भादर्शयन्त्रमेवमुक्त्वाति संग्रहात् ।
तस्योपकरणान्यत्र यथाशास्त्रं निरूप्यन्ते ॥२६॥
तत्रादौ द्वासप्ततिमसंख्याकादर्शमुच्यते ।
नाम्ना सुरञ्जिकादर्शमिति तस्य प्रकीर्त्यते ॥२७॥

उनका मुख के समान प्रतिबिम्ब करते हुए आदर्श में त्रिकोण आदर्श के सामने मध्य तार के आगे स्थित बिम्बाकर्षण करने वाले गोन्द से लेपे हुए पटदर्पण में मणिस्थ प्रतिबिम्बाकार यथाक्रम सप्रमाण पृथक् पृथक् स्पष्ट चित्रित हो जाते हैं, पश्चात् द्रावक संस्कार से वह चित्र साफ दीखने लगता है। महागोल अग्नियन्त्र आदि शत्रुओं द्वारा गाड़े हुए जानकर उन्हें शीघ्र बुद्धिमान् समूल नष्ट कर दे। गुहागर्भ आदर्श यन्त्र विमान की कुक्षि में लगावे, विमान के संरक्षण के लिये यह यन्त्र कहा गया है। इस प्रकार गुहागर्भादर्शयन्त्र संक्षेप से कहकर उसके उपकरण यहां यथाशास्त्र निरूपित किये जाते हैं, सुरञ्जिकादर्श नाम से उसका वर्णन किया जाता है ॥२१-२७॥

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे-यह दर्पणप्रकरण में कहा है—

एडं मयूखं सुरुचिं पटोलं पारं करञ्जं रविशर्करात्रयम् ।
सुटङ्कणं गन्धकचारु शाल्मली बिण्डीरनिर्यासकुरङ्गरौहिणी ॥२८॥
मण्डूरपञ्चाननसैंहिकान् शिवं विश्वाभ्रकं पार्वणिजं विदूरकम् ।
रुद्रोडुवाणार्कगजाब्धिविंशन्मुन्यब्धिभूतानलतारकाभ्रकाः ॥२६॥
द्वात्रिंशतिस्त्रिशतिर्वस्वर्कमूर्तिग्रहराशितः क्रमात् ।
सन्तोल्य वस्तून् तुलया यथाविधि सङ्गृह्य भागांशप्रमाणतः क्रमात् ॥३०॥
सम्पूर्य चञ्चूपुटमूषवक्त्रे वराहकुण्डेथ निधाय च दृढम् ।
ध्मनेत् क्रमात् कक्ष्यशतोष्णवेगात् कूर्माख्यभस्त्रेण निमीलनावधि ॥३१॥
संगाल्य संगृह्य च तद्रसं पुनः सम्पूरयेद् यन्त्रमुखे शनैश्शनैः ।
एवंकृते शुभ्रमतीव सूक्ष्मं शताधिकव्यापकशक्तिसंयुतम् ॥३२॥
सुरञ्जिकादर्शमतीव शोभनं भवेद् दृढं यन्त्रमुखात् स्वभावतः ।
तेनैव कुर्याद् वरदर्पणत्रयं यन्त्रोपयुक्तं विधिवन्मनोहरम् ॥३३॥ इत्यादि

एड–मजीठ, मयूख–अङ्गार ?–कोयला?, सुरुचि–गोरोचन, पटोल–परवल, पारा, करञ्ज–करंजवा रवि–ताम्बा, शर्करात्रय–रेत पाषाणचूर्ण रत्नचूर्ण, सुहागा, गन्धक, चारु–पद्माख, शाल्मली–सिम्भल वृक्ष, लाख, कुरङ्ग–अकर्करा, रौहिणी –बहु या रोहेडावृक्ष, मण्डूर–लोहमल, पञ्चानन–लोहविशेष या पञ्चानन रस (पारा गन्धक मुनक्का यष्टि खजूर हरिद्राचूर्ण), सैंहिक--शिलारस, शिव--गूगल ? विश्व--साठ या गन्धद्रव्य, अभ्रक, पार्वणि–पर्ववाले वृक्ष का क्षार आदि, विदूरक—विदूरज—वैदुर्यमणि । ये ११, ७, ? ५, ७, ७, ३, ७, २०, ३, ७, ५, ३, १, ३२, ३०, ३८, ८, ७, ३ ?, ६, ३०, इन वस्तुओं को क्रम से तोल कर यथा-विधि भागों को लेकर चञ्चूपुट बोतल में भरकर वाराहकुण्ड में रखकर १०० दर्जे की उष्णता से कूर्म-नामक भस्त्रा से धोके निमीलन तक पिंघल जाने तक । गलाकर उस रस को लेकर यन्त्रमुख में धीरे धीरे भर दे, ऐसा करने पर शुभ्र अतीव सूक्ष्म सौ से भी अधिक व्यापक शक्ति से युक्त, सुरञ्जिकादर्श अतीव शोभन हो जावे, यन्त्र के मुख से स्वभावतः । उससे वर तीन दर्पण यन्त्रोपयुक्त विधिवत् मनोहर करे ॥२६–३३॥

आञ्जिष्ठकवृक्षनिर्णयः–आंजिष्ठक वृक्ष का निर्णय करते हैं—

यन्त्रक्रियोपयोगास्युर्बहवो वृक्षजातयः ।
तथापि तेष्वाञ्जिष्ठाख्यवृक्षोत्यन्तप्रशस्तकः ॥ ३४ ॥ इति क्रियासारे ।

यन्त्रक्रिया में उपयोगी बहुत वृक्षजातियां हैं, तथापि उन में आञ्जिष्ठनामक वृक्ष अत्यन्त प्रशस्त है । यह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है ।

पञ्चशक्तिमया वृक्षास्सप्ताशीतिरिति स्मृताः ।
श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतमं प्राहुः तेष्वाञ्जिष्ठं मनीषिणः ॥ ३५ ॥

इत्युद्भिज्ज (ज्य ?) तत्त्वसारायणे

पांच शक्तिवाले वृक्ष ८७ कहे हैं उनमें श्रेष्ठ से श्रेष्ठ आञ्जिष्ठ ?–मञ्जिष्ठ को मनीषियों ने कहा है। यह उद्भिज्जतत्त्वसारायण में कहा है।

प्रतिबिम्बाकर्षणादिशक्तयः पञ्च सर्वदा ।
यतोऽञ्जिष्ठावृक्षगर्भे प्रकाश्यन्ते स्वभावतः ॥ ३६ ॥
ततस्सर्वेषु वृक्षेषु एतदञ्जिष्ठमेव हि ।
अत्यन्तश्रेष्ठमित्याहुरेतद्यन्त्रक्रियाविधौ ॥ ३७ ॥

इत्यादि–अगतत्त्वलहर्याम् ॥

प्रतिबिम्बाकर्षण आदि शक्तियां ५ सर्वदा जिस से अञ्जिष्ठ वर्ग में प्रसिद्ध हैं स्वभावतः । सब वृक्षों में यह अञ्जिष्ठ ही को यन्त्रक्रियाविधि में अत्यन्त श्रेष्ठ कहते हैं । इत्यादिअगतत्त्व लहरी में कहा है ॥ ३६—३७ ॥

अथ पञ्चधारालोहनिर्णयः—अब पञ्चधारालोह का निर्णय करते हैं—

शङ्कवो बहवस्सन्ति नानायन्त्रक्रियाविधौ ।
पञ्च धारालोहकृतशङ्कवस्तेषु शास्त्रतः ॥ ३८ ॥
गुहागर्भादर्शयन्त्रदर्पणादिनिबन्धने ।
सुप्रशस्ता इति प्रोक्ता यन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥ ३९ ॥

शङ्कु बहुत हैं नानायन्त्रक्रियाविधि में, पञ्चधारालोहे के बने शङ्कु उन में शास्त्र से प्रशस्त कहे हैं ॥ ३८—३९ ॥

तदुक्तं लोहतत्त्वप्रकरणे—वह कहा है लोहतत्त्वप्रकरण में—

क्ष्विङ्कामाक्षिकिशुल्वकेन्द्ररुरुकान् शोधितान् । शास्त्रतस्सङ्गृह्याथ मृगेन्द्रमूषमुखतस्सम्पूर्य मण्डोदरे । चञ्चूभस्त्रमुखाद् ध्मनेत् त्रिशतकक्ष्योष्णप्रवेगात् । क्रमात् सङ्गाल्यापि च तद्रसं समदलं कृत्वा न्यसेद् यन्त्रके ॥ ४० ॥
धारापञ्चकसंयुक्तं सुरुचिरं भास्वत्स्वरूपं दृढं लोहम् ।
भारयुतं वदन्ति मुनयस्तं पञ्चधाराभिधम् ॥ ४१ ॥

क्ष्विङ्क–लोहाविशेष, या जस्ता? सोनामाखि, शुल्व–ताम्बा, इन्द्र–स्थावर विष–वज्र, रुरुक–लोहविशेष या हरिण का सींग ?; शास्त्र से शोधे हुओं को लेकर मृगेन्द्रमूषामुख से मण्डोदर में भरकर चञ्चू—चूञ्च-भस्त्रामुख से ३०० दर्जे की उष्णता के वेग से धोंके क्रम से गलाकर उस पिंघले रस को बराबर करके यन्त्र में रख दे । धारापञ्चकलोह से युक्त सुरुचिर चमकस्वरूपवाला दृढ भारवान् पञ्चकधारा नाम का लोहा मुनि कहते हैं ॥ ४०—४१ ॥

अथ पारग्रन्धिकद्रावकनिर्णयः—अब पारग्रन्धिक द्रावक का निर्णय देते हैं—

मणिसंस्थापनार्थाय तन्त्रीमूलसमाकुलम् ।
कथ्यते संग्रहादत्र पारग्रन्धिकद्रावकम् ॥ ४२ ॥

मणि के संस्थापानार्थ तन्त्रीमूल से युक्त संक्षेप से पारग्रन्धिक द्रावक कहा जाता है ॥ ४२ ॥

पारं वैणविकं चैव लम्बोदरमृत्कुण्डके ।
जटाग्रन्धि पार्वणिकं स्वर्णबीजं घटोद्गजम् ॥ ४३ ॥
सम्मेल्य विधिवच्छुद्धानेतान् तुल्यप्रमाणतः ।
द्रावकाकर्षणयन्त्रेथ द्रावकं तु समाहरेत् ॥ ४४ ॥
तद्द्रावकं हेमवर्णं सुशुद्धं सुप्रभं भवेत् ।
एतद् बिम्बाकर्षणादिप्रयोगेषु यथाविधि ॥ ४५ ॥
उपयुक्तं भवेत् तस्मात् पारगन्धिकद्रावकम् ।
सम्पादयेद् विशेषेण प्रतिबिम्बाकर्षणे ॥ ४६ ॥ इत्यादि ।

पारा, वंशलोचन या बांस का क्षार, लम्बेपेटवाले मिट्टी के कुण्ड में जटाग्रन्धि ?—जटामांसी की ग्रन्थि, पार्वणिक वृक्ष, स्वर्णबीज—धतूरे के बीज, घटोद्गज ?—घटोत्कच—राक्षस—रोहेडा वृक्ष ? विधिवत् शुद्ध इन को समान प्रमाण से द्रावक आकर्षणयन्त्र-द्रावक खींचनेवाले यन्त्र में मिलाकर द्रावक को लेले वह द्रावक सुन्हरा शुद्ध सुन्दर--प्रभावाला हो जावे, वह बिम्बाकर्षण आदि प्रयोगों में यथाविधि उपयुक्त हो सके, अतः पारग्रन्धिक द्रावक विशेषरूप से प्रतिबिम्बाकर्षण के निमित्त सम्पादन करे—बनावे ॥ ४३—४६ ॥

अथ चुम्बकमणिनिर्णयः—अब चुम्बुकमणि का निर्णय देते हैं—

उक्तेषु मणिवर्गेषु प्रतिबिम्बापकर्षणे ।
शास्त्रज्ञैश्चुम्बकमणिश्श्रेष्ठमित्युच्यते क्रमात् ॥४७॥

उक्त मणि वर्गों में प्रतिबिम्बाकर्षण के निमित्त शास्त्रज्ञविद्वानों द्वारा चुम्बक मणि श्रेष्ठ कही है ॥४७॥

तदुक्तं मणिप्रदीपिकायाम्—वह कहा है मणिप्रदीपिका में—

चुम्बकशर्करटङ्कणदन्त्यं शौण्डिकपारदपार्वणशुल्वम् ।
रञ्जिकमाक्षिकगृध्निकसौरिं महिषखुरं तद्विश्वकपालम् ॥४८॥
विधिवच्छुद्धीकृतसमभागान् कर्पटमूषामुखमध्यविले ।
सम्पूर्याक्षतव्यासटिकायां संस्थाप्योलूकिकभस्त्रमुखात् ॥४९॥
ध्मनयेत् कक्ष्यशतोष्णिकवेगात् सङ्गाल्य रसं वरयन्त्रमुखे ।
संसिच्येद् यदि भवति सुरूपं चुम्बकमणिरत्यन्तविशुद्धम् ॥५०॥ इत्यादि ॥

चुम्बक–कान्तलोह, शर्कर–रेत, टङ्कण–सुहागा, दन्त्य–हाथीदान्त का चूर्ण, शौण्डिक–पिप्पली ? या लोहविशेष ?, पारा, पार्वण—पर्वणि—पर्ववाले वृक्ष का क्षार, शुल्व—ताम्बा, रञ्जिक—हिङ्गुल—शिंगरफ, सोनामाखी, गृध्निक ?, सौरि—आदित्यभक्ता—हुलहुल, या भल्लातक ?, भैंस का खुर, विश्वकपाल ? विधिवत् शुद्ध किए समभागों कर्पटमूषामुखमध्य विल में भरकर अक्षत व्यासटिका में रख कर उलूकिक भस्त्रमुख से धमन करे १०० डिग्री के वेग से गलाकर रस—पिंघले रस को वरयन्त्रमुख में यदि सींच दे सुरूप चुम्बक मणि अत्यन्त विशुद्ध हो जाता है ॥ ४८—५०॥

बिम्बाकर्षणनिर्यासनिर्णयः—बिम्बाकर्षणनिर्यास का निर्णय देते हैं—

षष्ट्यु त्तरत्रिशतनिर्यासवर्गेषु शास्त्रतः ।
रूपाकर्षणनिर्यासं प्रतिबिम्बापकर्षणे ॥५१॥
अत्यन्तश्रेष्ठमित्याहुश्शास्त्रेषु ज्ञानवित्तमाः ।
रूपाकर्षणनिर्यासमतस्सम्पादयेत् सुधीः ॥५२॥

३६० निर्यास वर्गों में शास्त्र से रूपाकर्षण निर्यास प्रतिबिम्बापकर्षण में उच्च ज्ञानियों ने शास्त्रों में अत्यन्त श्रेष्ठ कहा है, बुद्धिमान् रूपाकर्षणनिर्यास का सम्पादन करे ॥५१—५२॥

उक्तं हि निर्यासकल्पे—कहा ही निर्यासकल्प में—

ऐन्दवं क्रौञ्चं वैणवं क्षीरपञ्चकमेव च ।
चुम्बुकं चोडुसारं च माघिमात्वग्विशावरिम् ॥५३॥
रथशौण्डि द्रोणसारं पारमम्बरमेव च ।
मुक्ताफलं च वल्मीकसारं सारस्वतं नखम् ॥५४॥
षोडशैतान् पदार्थानत्यन्तशुद्धान् यथाविधि ।
समभागान् गृहीत्वाथ मयूराण्डरसे क्रमात् ॥५५॥
मासमेकं मर्दयित्वा बिल्वतैले निवेशयेत् ।
निर्यासपाक(क्व?)यन्त्रेथ तद्घोलं (गो?) स्थाप्य शास्त्रतः॥ ५६॥
पाचयेदग्निना सम्यक् पाकावधि यथाक्रमम् ।
यावन्निर्यासतां याति तावद् यामचतुष्टयम् ॥५७॥
सम्पाच्य विधिवत् पश्चान्निर्यासं संग्रहेच्छनैः ।
रूपाकर्षणनिर्यासमिति चाहुर्मनीषिणः ॥५८॥
बिम्बाकर्षणनिर्यासमित्याहुः पण्डितोत्तमाः ॥५८॥ इत्यादि ॥

ऐन्दव—चन्द्रकान्त, क्रौञ्ज—लोहविशेष, वैणव—वंशलोचन या वेणुत्तार, चीरपञ्चक—बड़-पीपल गूलर बैंत पिलखन का दूध, चुम्बक—अयस्कान्त, उडुसार ?, पारा, अभ्रक, मुक्ताफल—मोती या कपूर, बल्मीक मिट्टी का सार, सारस्वत मालकंगनी का तैल, नख–नखद्रव्य । इन१६ पदार्थोंको अत्यन्त शुद्ध यथाविधि समान भाग लेकर क्रम से मोर के अण्डे के रस में एक मास मर्दन करके बिल्वतैल में डालदे गोन्द पकानेवाले यन्त्र में उस घोल को स्थापित करके शास्त्र से अग्नि से पकावे पाक अवधि तक जबतक निर्यासता को प्राप्त होता है तब तक चारयाम विधिवत् पकाकर पश्चात् निर्यास धीरे से लेले इसे मनीषी जन रूपाकर्षण निर्यास कहते हैं और ऊंचे पण्डित बिम्बाकर्षण निर्यास भी कहते हैं ॥५३—५८॥

पटदर्पणनिर्णयः—पटदर्पणनिर्णय देते हैं—

रूपाकर्षणनिर्यासाद् यतश्शास्त्रविधानतः ।
प्रतिबिम्बाकर्षणार्थं कुर्वन्ति पटदर्पणम् ॥६०॥
तस्माद् विचार्य शास्त्राणि पूर्वाचार्योक्तवर्त्मना ।
संग्रहेण प्रवक्ष्यामि निर्यासपटदर्पणम् ॥६१॥

रुपाकर्षणनिर्यास—गोन्द जिससे शास्त्रविधानद्वारा प्रतिविम्बाकर्षण के लिये पटदर्पण बनाते हैं अतः शास्त्रों को पूर्वोक्त आचार्य के कहे मार्ग से विचार करके संग्रह से निर्यासपटदर्पण कहूंगा ॥८०—६१॥

तदुक्तं दर्पण प्रकरणे—वह कहा है दर्पणप्रकरण में—

निर्यासकार्पासप्रतोलिकान् कुरङ्गमातङ्गवराटिकानपि ।
क्षोणीरकं घोलिकचापशर्करान् परोटिकावार्ध्युषिकाप्रियङ्गवान् ॥६२॥
झञ्झोटिकभीरुकरुक्मकेसरनिर्यासमृत्क्षारसुवर्चलोरुधान् ।
वैडारतैलं मुचुकुन्दपिष्टकं सिञ्जाणुरञ्जालिकदारुकार्मुकान् ॥ ६३ ॥
शताष्टपञ्चाशतिरष्टविंशतिर्वेदार्कबाणानलशैलत्रिंशतिः ।
दिक्तारवस्वर्कमुनित्रयोदशद्वाविंशतिस्सप्तदशाष्टविंशतिः ॥ ६४ ॥
गुणावताराब्धिमुनित्रयोदशक्रमेण भागांशविधानतस्सुधीः ।
संशोध्य सम्यग् विधिवत् पृथक् पृथक् सन्तोल्य चक्राननमूषिकान्तरे ॥६५॥
सम्पूर्य विन्यस्य दृढं यथा क्रम द् वेगाद् ध्मनेत् कक्ष्यशतोष्णमानतः ।
सङ्गाल्य नेत्रान्तमतः परं शनैर्यन्त्रास्यमध्ये विनियोजयेद् रसम् ॥ ६६ ॥
एवं कृते सूक्ष्ममतीव शोभितं भवेद् दृढं तत्पटदर्पणं शुभम् ।
परोक्षवस्तुप्रतिबिम्बसंग्रहे त्वेतत्पटादर्शमितीरितं बुधैः ॥६७॥ इत्यादि ॥

निर्यास—गोंद, रूई, प्रतोलिक—वस्त्रपट्टी, कुरङ्ग—अकर्करा, मातङ्ग—पीपल या गूलर वृक्ष, वराटिका—कौडी, क्षोणीरक—शोरा ?, घोलिक—छाछ ? चाप ? घोलिकचाप—छाछरज्जु ? शर्कर—पाषाणचूर्ण, वार्ध्युषिक—समुद्रफेन ?, प्रियङ्गु—फूल प्रियङ्गु या राई ?, झञ्झोटिका ?, भीरुक—ईख, रुक्म—धतूरा ? या नागकेसर ? या अयस्कान्त ? केसर, निर्यास—गोन्द, मृत्क्षार—रेह या शोरा ? सुवर्चल—सौञ्चल नमक, रुध,?, विडार का तैल, मुचुकुन्दपिष्ट—एक पुष्प वृक्ष की पिट्ठी, सिञ्जाणु, अञ्जालिक—लज्जावती, दारु—दारु हल्दी, कार्मुक—श्वेत खैर। ये वस्तुएं १००, ५८, २५, २८, ४, १२, ५, ३, १, ३०, १०, ५, ८, १२, ३, १३, २२, २७, २८, ३, २४, ७, ३, १३, अंशों में बुद्धिमान लेकर विधिवत् सम्यक् संशोधन करके पृथक् पृथक् तोल कर चक्राननमूषा—चक्रमुख वाली बोतल के अन्दर भर कर दृढ बिठा कर यथाक्रम वेग से १०० दर्जे की उष्णता से धमन करे। नेत्रपर्यन्त गला कर फिर उस पिघले रस को धीरे से यन्त्रमुख में नियुक्त करे, ऐसा करने पर सूक्ष्म अतीव शोभित दृढ शुभ दर्पण हो जावे छिपी वस्तु के प्रतिबिम्ब लेने में तो यह पटादर्श विद्वानों ने कहा है ॥६२–६७॥

यानकुक्षिमुखे त्वेतद्यन्त्रं संस्थापयेद् दृढम् ।
एतस्मात्सम्भवेद्यानत्राणनं नात्र संशयः ॥ ६८ ॥

विमान के कुक्षिमुख में इस यन्त्र को दृढ संस्थापित करे। इससे विमान की रक्षा हो जावे इसमें संशय नहीं ॥ ६८ ॥

तमोयन्त्रनिर्णयः—तमोयन्त्र का निर्णय देते हैं—

गुहागर्भादर्शयन्त्रमेवमुक्त्वा यथाविधि ।
अथेदानीं प्रवक्ष्यामि तमोयन्त्रस्य निर्णयम् ॥ ६९ ॥

गुहागर्भादर्श यन्त्र इस प्रकार यथाविधि कह कर अब तमोयन्त्र का निर्णय कहूँगा ॥ ६९ ॥

उक्तं हि यन्त्रसर्वस्वे—यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

रौहिणीविषसम्बद्ध (न्ध ?) चूर्णधूमादिभिस्तथा ।
क्रकचारिमणेर्दीपप्रभाविषसमूलतः ॥ ७० ॥
विमाननाशनार्थाय प्रयोगः क्रियते यदा ।
तदा तद्विषनाशाय स्वयानत्राणाय च ॥ ७१ ॥
शत्रुतन्त्रं सुविज्ञाय शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
तमोयन्त्रं स्थापयेद् विमानवायव्यकेन्द्रके ॥ ७२ ॥ इत्यादि ॥

रौहिणी विषसम्बन्धी चूर्ण के धूएं आदि से तथा क्रकचारि मणि ? (क्रकच — आरा के शत्रुरूपमणि) की प्रभा विषसमूल से विमाननाश के लिये जब प्रयोग किया जाता है तब उसके विनाश के लिये अपने विमान के रक्षण के लिए शत्रु का रहस्य जान कर शास्त्रोक्त मार्ग से तमोयन्त्र—अन्धकार फैलाने वाला यन्त्र विमान के वायव्य केन्द्र में स्थापित करे ॥ ७०-७२ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

विषधूमप्रकाशादिप्रयोगाच्छत्रणां यदा ।
विनाशो व्योमयानस्य संभवेद् यदि तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥
संस्थापयेत् तमोयन्त्रमतिवेगाद् विचक्षणः ।
यदि प्रमादं कुर्वीत स्वयानं नाशमेधते ॥ ७४ ॥

शत्रुओं का विषधूम प्रकाश आदि प्रयोग से जब विमान के विनाश की सम्भावना हो तो तत्क्षण बुद्धिमान् वेग से तमोयन्त्र लगा दे, यदि प्रमाद किया तो अपना विमान नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ७३–७४ ॥

द्वात्रिंशदुत्तरशततमोयन्त्रेषु शास्त्रतः ।
द्विषष्टितमसंख्याकयन्त्र एव गरीयसी* ॥ ७५ ॥
विषधूमप्रकाशादिसंहारे सुप्रशस्तकः ।
इति प्रोच्यते (ति ?) सम्यग्यन्त्रशास्त्रविशारदैः (दैः ?) ॥७६॥

१३२ तमोयन्त्रों में शास्त्र से ६२ वीं संख्या वाला यन्त्र श्रेष्ठ है क्योंकि विषधूम प्रकाश आदि के संहार करने में ठीक यन्त्र शास्त्र के विद्वानों द्वारा अच्छा प्रशस्त कहा जाता है ॥ ७५–७६ ॥

---

* लिङ्गव्यत्ययः ।

हस्तलेख कापी संख्या ११—

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यह 'यन्त्रसर्वस्व' में कहा है—

कृष्णसीसं चाञ्जनिकं वज्रतुण्डं समांशतः ।
संयोज्य मत्स्यमूषायां काकव्यासटिकान्तरे ।। १ ।।
विन्यस्य शतकक्ष्योष्णवेगात् संगालयेत् ततः ।
तद्रसं यन्त्रमध्यास्ये निषिञ्चेद् विधिवच्छनैः ।। २ ।।
भवेत् तमोगर्भलोहस्सूक्ष्मश्शुद्धो लघुर्दृढः ।
एतल्लोहेनैव कार्यं तमोयन्त्रं न चान्यथा ।। ३ ।।
वितस्तित्रयमायामं वितस्त्यर्धोन्नतिं क्रमात् ।
चतुरस्रं वर्तुलं वा पीठं कुर्याद् यथाविधि ।। ४ ।।
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं तत्पुरोभागतस्तथा ।
निशाटद्रावकस्थानं कल्पयित्वा तथैव हि ।। ५ ।।

काला सीसा, सुरमा, वज्रतुण्ड-थूहर। ये तीनों समानरूप में मिलाकर मत्यमूषानामक बोतल में डाल कर काकव्यासटिका नामक कुण्ड के अन्दर रख कर १०० दर्जे की उष्णता के वेग से गलावे फिर उस पिघले रस को यन्त्रमध्य के मुख में धीरे से विधिवत् भर दे, वह तमोगर्भ लोह सूक्ष्म शुद्ध लघु दृढ़ हो जावे। इस लोहे से ही तमोयन्त्र करना चाहिये अन्यथा नहीं। ३ बालिश्त लम्बा आधा बालिश्त ऊंचाई चौकोण या गोल पीठ यथाविधि करे, उसके मध्य में तथा सामने शंकु स्थापित करे। निशाटद्रावक-गूगल के द्रावक का स्थान बना कर तथा—।। १–५ ।।

तमोऽद्रेकादर्शकेन्द्रस्थानं तत्पश्चिमे क्रमात् ।
रश्म्याकर्षणनालस्य स्थानं प्राच्यां प्रकल्पयेत् ।। ६ ।।
तदूर्ध्वं नालसन्धिस्थानं प्रकल्प्य ततः परम् ।
तन्त्रीसन्धानचक्रस्य स्थानं मध्यकेन्द्रके ।। ७ ।।
कीलोचालनचक्रस्य स्थानं तद्दक्षिणे न्यसेत् ।
एवं यन्त्रस्य रचनाक्रममुक्त्वा समासतः ।। ८ ।।

* तम उद्रेकात्–तमोद्रेक इति सन्धिरार्षः ।

तत्प्रयोगक्रमं वक्ष्ये संग्रहेण यथामति ।
आदौ सञ्चालयेत् कीलीं चक्राग्नेयस्थिता क्रमात् ॥९॥
तेन नालस्थद्विमुखीदर्पणभ्रामणं भवेत् ।
किरणाकर्षणं भानोर्भवेन्नालस्थदर्पणात् ॥ १० ॥

अन्धकार को उभारने वाला आदर्श का केन्द्रस्थान उसके पश्चिम, किरणाकर्षणनाल का स्थान पूर्व में बनावे उनके ऊपर की नाल का सन्धिस्थान बना कर फिर तन्त्रीसन्धान चक्र—तार जिसमें लगे ऐसे चक्र का स्थान मध्यकेन्द्र में, कीली – पैंचों को चलाने वाले चक्र का स्थान उसके दक्षिण में रखे। इस प्रकार यन्त्र का रचनाक्रम संक्षेप से यथामति कह कर उसका प्रयोग क्रम कहूंगा, आग्नेय चक्र में स्थित कील को चलावे उससे नाल में स्थित दो मुखवाले दर्पण का घुमाना हो जावे उस नालस्थ दर्पण से सूर्यकिरणों का आकर्षण हो जावे – हो जावेगा ॥ ९–१० ॥

पश्चाद् वायव्यकेन्द्रस्थकीलीं सञ्चालयेद् दृढम् ।
निशाटद्रवपात्रस्थस्थापनं तस्माद् भवेत् स्वतः ॥ ११ ॥
ईशान्यकेन्द्रस्थकीलीं चालयेदिति सूक्ष्मतः ।
तेजोपकर्षणमणिस्तन्त्रीमुखात् स्वयम् ॥ १२ ॥
निशाटद्रवपात्रस्य मध्ये संस्थापितं भवेत् ।
तथा पश्चिमकेन्द्रस्थकीलसीञ्चालनाद् दृढम् ॥ १३ ॥
स्वस्थाने स्थाप्यते सम्यक् तमोद्रेकाख्यदर्पणः ।
मध्यकीलीचालनेन नालमध्यस्थदर्पणात् ॥ १४ ॥
आकृष्टास्सूर्यकिरणा मणिमावृत्य वेगतः ।
स्थास्यन्ति मणिसंयोगास्सम्यक् चलनवर्जिताः ॥ १५ ॥

पश्चात् वायव्य केन्द्रस्थ कीली को चलावे, गूगलद्रवपात्रस्थ में स्थापन स्वतः हो जावे, ईशान केन्द्रस्थ कीली को अतिसूक्ष्मरूप से चलावे तो तेज को खींचने वाली मणि तन्त्रीमुख से स्वयं गूगल द्रव-पात्र के मध्य में स्थापित हो जावे तथा पश्चिम केन्द्रस्थ कीली के सम्यक् चलाने से स्वस्थान में अन्धकार को उभारने वाला दर्पण स्थापित किया जाता है, मध्यकील चलाने से नाल के मध्यस्थ दर्पण से सूर्य-किरण आकृष्ट हुई हुई वेग से मणि को घेर कर मणि संयोग सम्यक् चलनरहित ठहर जावेंगी ॥११–१५॥

भ्रामयेदतिवेगेन मूलकीलकमतः परम् ।
ततोत्यन्ततमोद्रेकः प्रभवेन्नात्र संशयः ॥ १६ ॥
तेनादृश्यं भवेत् व्योमयानं पश्चात् स्ववेगतः ।
विषधूमप्रकाशादीन् निश्शेषं नाशयेत् क्रमात् ॥ १७ ॥
ततस्तद्दर्शनादेव शत्रूणां बुद्धिविप्लवः ।
भवेन्मेधोविनाशं च तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ १८ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तमोयन्त्रं यथाविधि ।
विमानवायव्यकेन्द्रे स्थापयेत् सुदृढं यथा ।। १९ ।। इत्यादि ।।

फिर अतिवेग से मूलकील को घुमावे तो अत्यन्तवेग से निस्संशय अन्धकार का उत्थान हो जावे। उससे विमान अदृश्य हो जावे फिर अपने वेग से विषधूम प्रकाश आदि को क्रम से सर्वथा नष्ट करदे। फिर उसके दर्शन से ही शत्रुओं की बुद्धि का विचलन हो जावे और धारणाशक्ति का नाश तुरन्त हो जावे इसमें कुछ भी संशय नहीं। अतः सर्वप्रयत्न से यथाविधि तमोयन्त्र को विमान के वायव्य केन्द्र में सुदृढ़ स्थापित करे ।।१६—१९।।

अथ पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्रः—अब पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्र कहते हैं—

एवमुक्त्वा तमोयन्त्रं संग्रहेण यथामति ।
पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्रमद्य प्रचक्षते ।।२०।।
वृष्ण्यादिवातावरणमण्डलानि त्रयोदश ।
पंक्तिराधसकेन्द्रस्थशक्तिसम्पर्कतः क्रमात् ।।२१।।
परस्परं स्वभावेन संलग्नानि भवन्ति हि ।
तस्मान्मण्डलमध्यस्थवातयोरुभयोरपि ।।२२।।
परस्परं भवेद् युद्धं घर्षणाद्यैर्विशेषतः ।
तस्मात् तत्र प्रजायन्तेत्यन्तघोरविषात्मकाः ।।२३।।
शक्तयः पञ्चातिवेगात् शौष्णिका (शोक्ष्णिका?) द्यास्स्वभावतः ।
तत्सम्पर्काद् व्योमयानविनाशो भवति क्रमात् ।।२४।।
तद्विज्ञायातिशीघ्रेण यानपश्चिमकेन्द्रके ।
पञ्चवातस्कन्धयन्त्रं संस्थापयेत् सुधीः ।।२५।।
तस्माच्छो(रौ?)ष्ण्यादयः पञ्च शक्तयस्तत्क्षणात् स्वतः ।
विनाशं यान्त्यतः खेटयानसंरक्षणं भवेत् ।।२६।। इति खेटविलासः ।।

इस प्रकार तमोयन्त्र संक्षेप से यथामति कहकर अब पञ्चवातस्कन्ध नाल यन्त्र कहते हैं। वृष्णि आदि १३ वातावरण मण्डल हैं पंक्तिराधस ?—पंक्तियों के साधककेन्द्र में स्थित शक्ति के सम्पर्क से क्रम से परस्पर स्वभाव से वे वातावरण मण्डल मिले हुए होते हैं अतः मण्डल मध्यस्थ दोनों वायुओं में भी घर्षण आदि से विशेष परस्पर युद्ध हो जावे अतः वहां घोर विषरूप पांच शौष्णिक आदि शक्तियां स्वभाव से प्रकट होजाती है उनके सम्पर्क से विमान का क्रम से नाश हो जाता है उसे जानकर अति शीघ्र यान के पश्चिम केन्द्र में पञ्चवात स्कन्ध यन्त्र बुद्धिमान् स्थापित करे अतः शोष्णि आदि पांच शक्तियां तुरन्त स्वतः नाश को प्राप्त हो जाती हैं इससे खेटयान—विमान का संरक्षण हो जाता है। यह खेटविलास में कहा है—

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यह यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में कहा है—

पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्रस्य रचनाक्रमम् ।
यानसंरक्षणार्थाय कथ्यतेस्मिन् यथाविधि ।।२७।।

वाताहरणलोहेन यन्त्रं कुर्यान्न चान्यतः ।
प्रमादाद् यदि कुर्वीत प्रमादो भवति ध्रुवम् ॥२८॥

पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्र का रचनाक्रम विमानरक्षणार्थ यथाविधि यहां कहा जाता है। वाताहरण लोहे से यन्त्र करे-बनावे अन्य से नहीं। प्रमाद से यदि करे तो प्रमाद हो जावेगा ॥२७-२८॥

उक्तं हि लोहसर्वस्वे-लोहसर्वस्व में कहा है--

सिंहास्यकं शारणसूर्यवर्चुलान् मयूखयूथामुषमध्यभागे ।
सम्पूर्य शुद्धान् समभागतः क्रमाज्जम्बूमुखव्यासटिकान्तरे ध्रुवम् ॥२९॥
काकास्यभस्त्रादतिवेगतः क्रमाच्छतोष्णकक्ष्यद्वितीयप्रमाणात् ।
सञ्गाल्य नेत्रान्तमतःपरं तद्यन्त्रोर्ध्वनाले सुदृढो यथाविधि ॥३०॥
शनैर्निषिञ्चेद् यदि सुप्रकाशो शुभ्रोतिसूक्ष्मस्सुदृढो मनोहरः ।
लघुर्मृदुश्शैत्यरसप्रसारिणो भवेत् सुवाताहरणाख्यलोहः ॥३१॥ इत्यादि ॥

शुद्धसिंहास्यक ?-सिंहासन-लोहकिट्ट, शारण ?, सूर्य-ताम्बा, सुवर्चल-सौञ्चल नमक को मयूखमूषामुख के मध्यभाग में समान भाग भरकर क्रम से जम्बुमुख-गीदडमुखाकार—व्यासटिका-कुण्ड के अन्दर 'रखकर' काकमुख भस्त्रा से अतिवेग से क्रम से १०२ दर्जे की उष्णता के प्रमाण से नेत्र तक गला कर उस यन्त्र की ऊपरि नाल में यथाविधि यदि धीरे से सींच दे तो प्रकाशमान शुभ्र अति सूक्ष्म दृढ़ मनोहर लघु मृदु शीतलप्रवाह का प्रसारक वाताहरणनामक लोहा हो जावे ॥२९—३१॥

वितस्तिद्वयमायामं वितस्त्युन्नतमेव च ।
विस्तृतास्यं दृढं शुद्धमतिसूक्ष्मं मनोहरम् ॥३२॥
वाताहरणलोहेन कुर्यान्नालचतुष्टयम् ।
विमानोर्ध्वमुखे तद्वत्पार्श्वयोरुभयोरपि ॥३३॥
अधोभागे च विवरान् वर्तुलान् परिकल्पयेत् ।
एकैकनालमेकैकविवरे सन्नियोजयेत् ॥३४॥
वितस्तिद्वादशायामं वर्तुलास्यं त्रिरुन्नतम् ।
कल्पयित्वा नालमेकं पश्चाद्भागे तथैव हि ॥३५॥
ऊर्ध्वछिद्रमुखे सम्यक् स्थापयेद् विधिवत्क्रमात् ।
एवं क्रमेण संस्थाप्य पञ्चनालानतः परम् ॥३६॥
पूर्वोक्तविषवातानां केन्द्राभिमुखतः क्रमात् ।
भस्त्रास्यान् वर्तुलान् शुद्धान् सकीलान् बलवत्तरान् ॥३७॥

दो बालिश्त भर ऊंचा बड़े मुखवाला दृढ़ शुद्ध अति सूक्ष्म मनोहर वाताहरण लोहे से चार नालें करे, विमान के ऊपरवाले मुख वैसे ही दोनों पार्श्वों में भी और नीचे भाग में गोल छिद्र बनावे, एक एक नाल को एक एक छिद्र में लगावे। १२ बालिश्त लम्बा गोलमुखवाला ३ बालिश्त ऊंचा एक नाल पिछले भाग में बनाकर ऊपरी छिद्र मुख में विधिवत् स्थापित करे, इस प्रकार क्रम से इससे आगे

५ नालों को संस्थापित करके पूर्वोक्त विषवायुओं के केन्द्र के सम्मुख गोल शुद्ध कील सहित दृढ़ भस्त्राओं भस्त्रामुखवाले को-॥३१-३७॥

नालानामेकैकमूले एकैकं सुदृढं यथा ।
आवर्तकीलकैस्सम्यक् स्थिरीकुर्याद् यथाविधि ॥३८॥
पश्चादेकैकभस्त्रास्यकीलकानतिवेगतः ।
चालयेदनुलोमेन यथाशास्त्रं पृथक् पृथक् ॥३९॥
भवेत् तस्मात् पञ्चविषशक्तीनामपकर्षणम् ।
भस्त्रिकास्यैः पञ्चनालमुखेष्वत्यन्तवेगतः ॥४०॥
प्रविश्याथ बहिर्यान्ति पञ्चधा विषशक्तयः ।
पश्चाद् विनाशमायान्ति शो(रौ?)ष्णिकाद्यास्स्वतः ॥४१॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यन्त्रमेतद् यथाविधि ।
विमाने स्थापयेत् सम्यगिति शास्त्रविनिर्णयः ॥४२॥ इत्यादि ॥

नालों में से एक एक नाल को एक एक मूल में घूमनेवाली कीलों के साथ स्थिर करे, पश्चात् एक एक भस्त्रास्य की कीलों को अतिवेग से सीधे यथाशास्त्र पृथक् पृथक् चलावे तो उससे पांच विषशक्तियों का सींचना हो जावे, पांच विषशक्तियां भस्त्रिकास्यों से अत्यन्त वेग से पञ्चनालमुखों में प्रविष्ट होकर बाहिर चली जाती हैं। फिर शौष्णिक आदि विनाश को स्वतः प्राप्त हो जाती हैं अतः समस्त प्रयत्न से इस यन्त्र को विमान में सम्यक् संस्थापित करें यह शास्त्र का निर्णय है ॥३८-४२॥

अथ रौद्रीदर्पणयन्त्रनिर्णयः--अब रौद्रीदर्पण यन्त्र का निर्णय देते हैं—

एवमुक्त्वा पञ्चवातस्कन्धनालमतः परम् ।
रौद्रोदर्पणयन्त्रस्वरूपमद्य निरूप्यते ॥ ४३ ॥

इस प्रकार पञ्चवातस्कन्धनालयन्त्र को कहकर इस से आगे रौद्रीदर्पण यन्त्र का स्वरूप अब निरूपित किया जाता है ॥ ४३ ॥

तदुक्तं क्रियासारे-वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

ईषादण्डस्य नैऋर्त्यकेन्द्रमार्गौ विशेषतः ।
ये सूर्यकिरणास्सम्यक् प्रसरन्ति विशेषतः ॥ ४४ ॥
ते सर्वे ऋतुभेदेन शक्त्यावर्ते पतन्ति हि ।
तत्रत्यशक्तिसंयोगात् किरणेषु विशेषतः ॥ ४५ ॥
आविर्भवन्ति वेगेन ज्वालास्स (त् स?)र्वविदाहकाः ।
तज्ज्वालासन्धिकेन्द्रेषु विमानस्सञ्चरेद् यदि ॥ ४६ ॥
तत्क्षणादेव तद्वेगाद् भस्मीभवति नान्यथा ।
अतस्तत्परिहाराय रौद्रीदर्पणयन्त्रकम् ॥ ४७ ॥

यानस्याधः केन्द्रदेशे स्थापयेद् विधिवत् क्रमात् ।
तस्माद् विमानसंरक्षणं भवेदिति निर्णितम् ।। ४८ ।। इत्यादि ।

ईषादण्ड—पृथिवी और सूर्य की दृष्ट समान गति रेखा के निर्ऋतिकोणवाले केन्द्र मार्गों से विशेषतः जो सूर्यकिरण सम्यक् प्रसार करती हैं वे सब ऋतु के भेद से शक्त्यावर्त-शक्ति के घुमेर में गिरती हैं वहां के शक्तिसंयोग से किरणों में विशेषतः वेग से सर्वविदाहक ज्वालाएं प्रकट हो जाती हैं उन ज्वालाओं के सन्धिकेन्द्रों में यदि विमान सञ्चार करे तो तुरन्त उनके वेग से भस्म हो जावे अतः उसके परिहार के लिये रौद्रीदर्पणयन्त्र विमान के नीचले केन्द्रदेश में विधिवत् स्थापित करे उस से विमान का संरक्षण हो जावे यह निर्णय है ।। ४४—४८ ।।

यन्त्रसर्वस्वेपि—यन्त्रसर्वस्व में भी कहा है—

वसन्तग्रीष्मयोर्मध्यरेखाप्रान्तेषु भूरिशः ।
आवृत्तशक्तिष्वंशूनां प्रवेशो भवति यदा ।। ४९ ।।
तदा सञ्जायते कोलाहलज्वालावती स्वतः ।
आकाशपञ्चमकक्ष्ये विमानस्सञ्चरेद् यदि ।। ५० ।।
तत्र कोलाहलज्वालावेगाद् भस्मीकृतं भवेत् ।
तस्मात् तत्परिहाराय रौद्रीदर्पणयन्त्रकम् ।। ५१ ।।
विमाने स्थापयेत् तस्मात् तत्स्वरूपं विविच्यते ।
यन्त्रकोलाहलज्वालाविनाशार्थं यथाविधि ।। ५२ ।।
कुर्याद् रौद्रीदर्पणेनैवेति शास्त्रविनिर्णयः ।
अन्यथा यदि कुर्वीत प्रमादस्स्यान्न संशयः ।। ५३ ।।

वसन्त और ग्रीष्म की मध्यरेखा के सिरों में अत्यधिक घूमती हुई शक्तियों में जब किरणों का प्रवेश होता है तो कोलाहल—गूंजनेवाली ज्वालामाला स्वतः प्रकट हो जाती है, आकाश के पांचवें स्तर में विमान यदि सञ्चार कर रहा हो तो वहां कोलाहल ज्वाला के वेग से भस्म हो जावे अतः उसके परिहार के लिये रौद्रीदर्पण यन्त्र विमान में स्थापित करे अतः उसके स्वरूप का विवेचन करते हैं। कोलाहल ज्वालाके विनाशार्थ यथाविधि यन्त्र रौद्रीदर्पण से ही करे ऐसा शास्त्र का निर्णय है अन्यथा करे तो हानि हो इसमें संशय नहीं ।। ४९—५३ ।।

लोहासवं चुम्बकवीरटङ्कणान् पञ्चाननं शून्यमयूरसज्जकान् ।
माध्वीकचञ्चूमुखसूर्यवर्चुलान् रुक्मालिकाशार्करपञ्चपादुकान् ।। ५४ ।।
एतान् त्रिस्संशोधितशुद्धवस्तून् संगृह्य सन्तोल्य समांशतः क्रमात् ।
पद्मास्यमूषामुखमध्यरन्ध्रे सम्पूर्य विश्वोदरकुण्डमध्ये ।। ५५ ।।
संस्थाप्य पश्चाद् विंशतोष्णकक्ष्यप्रमाणतो भस्त्रामुखाद् यथाविधि ।
संगाल्य नेत्रान्तमतः परं शनैस्संगृह्य तद्यन्त्रमुखान्तराले ।। ५६ ।।

सम्पूरितं चेत् सुदृढं सुसूक्ष्मं वृष्णं विशुद्धं ज्वलान्तकं लघु ।
अन्तःप्रकाशं विमलं मनोहरं भवेद् रौद्रीदर्पणमद्भुतं हि ॥ ५७ ॥

लोहासव–लोहद्राव या लोहे का सार, चुम्बक, वीर–लोहा, सुहागा, पञ्चाननलोहा, शून्य–अभ्रक, मयूरसञ्ज्ञक ?, माध्वीक –मधुद्राव, चञ्चू -चञ्चु—रक्तएरण्ड, मुख —बडहल, सौञ्चल नमक, रुक्म—स्वर्ण या लोहा, अलिक—भ्रमर ?, शार्कर–लोध, पञ्च—कड़वा परवल, पादुक ? । तीन वार शोधी हुई इन वस्तुओं को लेकर समान तोलकर पद्मास्य बोतल के मुखमध्यछिद्र में भरकर विश्वोदर कुण्ड के मध्य में रख कर पश्चात् २० या १२० दर्जे माप की भस्त्रामुख से यथाविधि नेत्रपर्यन्त गलाकर धीरे से लेकर उस यन्त्रमुख के अन्दर यदि भर दे तो सुदृढ अति सूक्ष्म वृष्ण विशुद्ध ज्वलनान्तक हलका अन्दर प्रकाशमान विमल मनोहर अद्भुत रौद्रीदर्पण हो जावे ॥ ५४—५७ ॥

एतद्रौद्रीदर्पणेन सुसूक्ष्मेण यथाविधि ।
वितस्तिषोडशायामं पीठं कुर्यात् सुवर्तुलम् ॥ ५८ ॥
यावद्यानप्रमाणस्स्यात् तावन्मात्रं यथाविधि ।
पञ्चविंशत्यङ्गुलप्रमाणगात्रं दृढं लघु ॥ ५९ ॥
कृत्वा दण्डं पीठमध्यकेन्द्रे संस्थापयेद् दृढम् ।
सङ्कोचनप्रसारणकीलकद्वयमद्भुतम् ॥ ६० ॥
अनुलोमविलोमाभ्यां दण्डाग्रे स्थापयेत् क्रमात् ।
तदधश्शलाकावरणचक्रं सन्धारयेत् क्रमात् ॥ ६१ ॥
यथा यानस्यावरकं समग्रं स्यात् तथैव हि ।
शलाकाद्वयमध्ये पञ्चाशदङ्गुलमन्तरम् ॥ ६२ ॥
कृत्वा शलाकान् परितश्चक्रे सन्धारयेत् क्रमात् ।
अकसीद्रोणसौरम्भभण्टिकातैलसंस्कृतम् ॥ ६३ ॥

इस अति सूक्ष्म रौद्रीदर्पण से यथाविधि १६ बालिश्त लम्बा गोल पीठ विमान के प्रमाणानुसार बनावे, २५ अङ्गुल मोटा बनाकर दण्ड को पीठ के मध्य केन्द्र में संस्थापित करे, फिर सङ्कोचन और प्रसारण के साधनभूत दो पेंचों को सीधे और उलटे ढंग से दण्ड के अग्रभाग पर लगावे । उसके नीचे शलाकाओं को घेरने ढकने वाला चक्र लगावे जिस से समग्र विमान का आवरक—ढकने वाला हो जावे । दो शलाकाओं के मध्य में १५ अङ्गुल का अन्तर दे कर शलाकाओं को सब ओर चक्र में लगावे "अकसी—अलसी द्रोण—हरिचन्दन या द्रोणपुष्पी ? सौरम्भ ?–सौरभ—राल या शिलारस ? भण्टिका-- मजीठ" इन के तैल से संस्कृत—शुद्ध शोभायमान बनाया हुआ—॥ ५८–६३ ॥

रौद्रीदर्पणसंसिद्धपत्राण्यथ पृथक् पृथक् ।
शलाकोपरि सन्धार्य बध्नीयात् सूक्ष्मकीलकैः ॥ ६४ ॥

रौद्रीदर्पणसंसिद्धमणीन् पञ्चमुखान् तथा ।
सन्धारयेत् तैलशुद्धान् शलाकाग्रे पृथक् पृथक् ॥६५॥

तथैव पद्मपत्राकारपत्राणि यथाक्रमम् ।
शलाकद्वयमध्येष्टादश संख्याप्रकारतः ।। ६६ ।।
भ्रामणीकीलकैर्युक्तान्यथाशास्त्रं नियोजयेत् ।
छत्रीवद्वर्तुलाकारं कुर्याद् यन्त्रं सुशोभनम् ।। ६७ ।।
तत्र पत्राण्यथ दण्डाग्रे बध्नीयात् कीलकाष्टकैः ।
विमानाभिमुखं यावज्ज्वालाशक्तिर्भवेत् स्वतः ।। ६८ ।।
तद्विज्ञायादर्शयन्त्रसामग्रयाद्यैर्विचक्षणः ।
तावत् प्रसारणीकीलं भ्रामयेदतिशीघ्रतः ।। ६९ ।।
छत्रीवत् प्रभवेत् तेन यानस्यावरकं क्रमात् ।
आमूलाग्रं स्वभावेन यु(या ?)गपत्सर्वतोमुखम् ।। ७० ।।

रौद्रीदर्पण से सिद्ध यन्त्र पृथक् पृथक् शलाकाओं के ऊपर लगा कर सूक्ष्म कीलों से बांध दे, रौद्रीदर्पण से सिद्ध किये तैल से शुद्ध पञ्चमुख मणियों को शलाका के अग्रभाग में पृथक् पृथक् लगावे, तथा पद्माकार पत्रों को यथाक्रम दो शलाकाओं के मध्य में १८ संख्या की भ्रामणी कीलों से युक्त यथा-शास्त्र लगावे, छत्री के समान गोलाकार सुन्दर यन्त्र बनावे वहां दण्ड के अग्रभाग में ८ कीलों से पत्रों को बांधे जब तक विमान के सम्मुख ज्वालाशक्ति स्वतः होवे उसे आदर्शयन्त्र सामग्री आदि से बुद्धिमान् जान कर—जान न ले तब तक प्रसारणी कील अति शीघ्र घुमावे, विमान का आवरक—आवरण करने-वाला रक्षासाधन यन्त्र छत्री की भांति मूल से अग्र भाग तक स्वभाव से एक साथ—तुरन्त सर्वत्र फैल जावे ।। ६४—७० ।।

पद्मपत्रैश्च मणिभिस्तथावरणपत्रकैः ।
पूर्वोक्तशक्तिर्निश्शेषं तत्क्षणान्नाशमेधते ।। ७१ ।।
पश्चात् सम्भ्रामयेत् सङ्कोचनकीलीनिबन्धनम् ।
तेन संकुचितं यानावरकं तत्क्षणाद् भवेत् ।। ७२ ।।
सुरक्षितं भवेद् व्योमयानं पश्चात् स्वभावतः ।
तस्मादेतद्यन्त्रमत्र संग्रहेण निरूपितम् ।। ७३ ।। इत्यादि ।।

पद्मपत्रों मणियों और आवरणपत्रों से पूर्वोक्त शक्ति तुरन्त सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाती है, पश्चात् सङ्कोच कराने वाले पेंच के बन्धन को घुमावे उससे विमान का आवरक तुरन्त संकुचित हो जावे, फिर विमान स्वभावतः सुरक्षित हो जावे अतः यह यन्त्र यहां संक्षेप से निरूपित किया है ।। ७१-७३ ।।

अथ वातस्कन्धनालकीलकयन्त्रः—अब वातस्कन्धनालकीलक यन्त्र कहते हैं—

एवमुक्त्वा संग्रहेण रौद्रीदर्पणयन्त्रकम् ।
अथेदानीं वातस्कन्धनालयन्त्रं विविच्यते ।। ७४ ।।

इस प्रकार रौद्रीदर्पण यन्त्र संक्षेप से कह कर अब इस समय वातस्कन्धनाल यन्त्र का विवेचन करते हैं ।। ७४ ।।

तदुक्तं गतिनिर्णयाध्याये—वह कहा है गतिनिर्णय के अध्याय में—

आवहादिमहावातमण्डलेषु स्वभावतः ।
द्वाविंशदुत्तरशतप्रभेदेन यथाक्रमम् ॥ ७५ ॥
पवमानगतिश्चित्रविचित्रत्वेन वर्णिता ।
तेष्वेकोनाशीतितमगतिर्वातायानाभिधा ॥ ७६ ॥
तद्गतिस्स्याद् विशेषेण वायोर्ग्रीष्मऋतौ क्रमात् ।
चतुर्थकक्ष्यगगने यानस्सञ्चरते यदा ॥ ७७ ॥
तदा वातायनगतिवेगाद् वायोर्विशेषतः ।
विमानस्य भवेद् वक्रगतिस्तस्मात् परस्परम् ॥ ७८ ॥
यन्तॄणां प्रभवेत् कष्टमत्यन्तं सुदुस्सहं क्रमात् ।
अतस्तत्परिहाराय यानाधः पार्श्वकेन्द्रके ॥ ७९ ॥
वातस्तम्भनालकीलकयन्त्रं स्थापयेत् सुधीः ।
तेनापायनिवृत्तिस्स्याद् यन्तॄणां सुखदं भवेत् ॥ ८० ॥ इत्यादि ॥

आवह आदि महावायुमण्डलों में स्वभावतः १२२ भेद से यथाक्रम वायुगति चित्रविचित्ररूप से वर्णन की है उन में ७९वीं गति वातायन नामक है, उस वायु की गतिविशेष करके ग्रीष्मऋतु में क्रम से हो तो चतुर्थ कक्षावाले गगनमण्डल में विमान सञ्चार करता है। तब वातायनगति वेगसे वायु का विशेषतः विमान की परस्पर वक्रगति हो जावे उस से चालक यात्रियां को अत्यन्त दुःसह कष्ट हो जावे, अतः उसके हटाने के लिये विमान के नीचे पार्श्वकेन्द्र में बुद्धिमान् जन वातस्तम्भनालकील यन्त्र स्थापित करे उस से अरिष्ट की निवृत्ति तथा यात्रियों को सुखद हो ॥ ७५—८० ॥

उक्तं हि यन्त्रसर्वस्वे—कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

विमानवक्रगमनपरिहाराय केवलम् ।
वातस्कन्धनालकीलकं यन्त्रमथ प्रचक्षते ॥ ८१ ॥
वातस्तम्भनलोहेनैव तद्यन्त्रं प्रकल्पयेत् ।
अन्यथा निष्फलमिति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ८२ ॥

विमान के वक्रगमन के दूर करने को वातस्कन्धनालकीलयन्त्र अब कहते हैं। वातस्तम्भन लोहे से ही उस यन्त्र को बनावे अन्यथा निष्फल है ऐसा मनीषी (Thinker) कहते हैं ॥ ८१—८२ ॥

तदुक्तं लोहतत्त्वप्रकरणे—वह कहा है लोहतत्त्व प्रकरण में—

विशावरं सुवर्चलं मयूरलोहपञ्चकम् ।
भ्रुसुण्डिकं सुरञ्जिकं वराहकांघ्रिलोहकम् ॥
विरोहिणं कुबेरकं मुरारिकांघ्रि रञ्जजम् ।
सुहंसनेत्रकं दलं वरालिकं मृनालिकम् ॥ ८३ ॥

सुशोधितान् यथाविधि यथाप्रतोलितान् समं समम् ।
मत्स्यमूषमध्यमास्यपूरितान् समग्रकम् ॥
संस्थाप्य माधिमाख्यकुण्डमध्यमे दृढं यथा ।
विजृम्भणाख्यभस्त्रिकामुखेन सन्ध्मनेत् क्रमात् ॥८४॥
विगाल्य चाथ तद्रसं सुयन्त्रमध्यनालके ।
कदुष्णतः प्रपूरयेच्छनैश्शनैर्यथाक्रमम् ॥
एवंकृतेतिसूक्ष्मरूपकं विशुद्धमच्युतम् ।
सुवातस्तम्भलोहकं भवेत् सुवर्चलं लघु ॥ ८५ ॥ इत्यादि ॥

विशावर ?-विशाकर–दन्ती,सुवर्चल-सौञ्चलनमक, मयूर-गन्धक,-लोहपञ्चक–लोहेपञ्चप्रकार के,-सुसुण्डिक ?, सुरञ्जिक–सुरञ्जी श्वेतकाकमाची या रञ्जक—हिङ्गुल—शिंगरक, वराहांघ्रि लोहा ?, विरोहिण–रोहिण—कायफल, कुबेरक–इणवृत्त, मुरारिकांघ्रिलोहा ? सुहंसनेत्रक ?, दल–तेजपत्र ?, वरालिका–वराटिका—कौडी, मृनालिक—मृणालिक—मृणाल—सुगन्धतृण या अश्वगन्ध । सुशोधित समान भाग तोलकर मत्स्यबोतल के मध्यमुख में भरकर माधिम ? माध्यमिकाख्य कुण्डमध्य में रखकर विजृम्भणाख्य भास्त्रका मुख से धमन करे गलाकर रस को यन्त्रमध्यनाल में थोड़ा गरम धीरे धीरे भर दे ऐसा करने पर सूक्ष्म शुद्ध अटूट वातस्तम्भलोहा सुन्दर बन जावे ॥ ८३—८५ ॥

वितस्तीनां पञ्चदशप्रमाणेन सुवर्तुलम् ।
नालषट्कं विस्तृतास्यमादौ कृत्वा यथाविधि ॥ ८६ ॥
अन्तश्छिद्रं प्रमाणेन वितस्तोनां दश स्मृतम् ।
विमानमूलमध्याग्रप्रदेशेषु यथाक्रमम् ॥ ८७ ॥
पूर्वपश्चिमतश्चैव दक्षिणोत्तरतस्तथा ।
सन्धारयेल्लोहकृतपट्टिकान् भारवर्जितान् ॥ ८८ ॥
पूर्वोक्तनालान् संगृह्य पट्टिकासु यथाक्रमम् ।
नालास्यानामाभिमुख्यं चतुर्दिक्षु यथा भवेत् ॥ ८९ ॥
तथा सन्धारयित्वाथबध्नीयात् कोलकादिभिः ।
पश्चादेकैकनालास्ये वातपामणिमुत्तमम् ॥ ९० ॥

१५ बालिश्त माप से गोलाकार ६ नालें बड़े मुखवाली प्रथम यथाविधि करके अन्दर जिनके छिद्र हो १० बालिश्त कहे हैं, विमान के मूल मध्य और अग्रप्रदेश में यथाक्रम पूर्व पश्चिम की ओर और दक्षिण उत्तर की ओर भी लोहे से बनी भाररहित पट्टिकाओं को लगावे, नालों के मुखों का साम्मुख्य चारों दिशाओं में जिस से हो वैसे लगा कर कीलों से बान्धे पश्चात् एक एक नाल के मुख में उत्तम वातपामणि— ॥ ८६—९० ॥

एकैकं योजयेत् तन्त्रीमूलकात् सुदृढं यथा ।
वातायनीवातवेगापकर्षणपटून् ततः ॥ ९१ ॥

पताकान् रोलिकपटनिर्मितान् नालसन्धिषु ।
सन्धारयेत् सूत्रबद्धान् पञ्चसंस्कारसंस्कृतान् ॥ ९२ ॥
वातस्तम्भलोहकृतचक्रान् तत्तद्ध्वजाग्रतः ।
एकैकं स्थापयेत् पश्चात् तन्त्रीं सर्वत्र योजयेत् ॥ ९३ ॥
वातायनीवातवेगप्रवाहोत्यन्तवेगतः ।
पताकाभिमुखो भूत्वा व्याप्यते सर्वतः क्रमात् ॥ ९४ ॥
तद्वेगमपहृत्याथ पताकाश्श (न्? श) ब्दपूर्वकम् ।
प्रचलन्त्यतिवेगेन सर्वतोमुखतः क्रमात् ॥ ९५ ॥

एक एक तार के मूल से दृढ लगावे फिर वातायनी नामक वायु के वेग को खींचनेवाले पञ्च-संस्कारयुक्त रौलिक ?-तौलिक रूई से बने फूलने वाले थैलों पताकाओं को नालों की सन्धियों में सूत्रों से बान्धकर लगावे। वातस्तम्भ लोहे से बने चक्रों को उस उस ध्वजा के अग्र भाग में एक एक को स्थापित करे फिर सर्वत्र तार लगावे। वातायनीनामक वायु के वेग का प्रवाह अत्यन्त वेग से पताका के सामने होकर सर्वत्र व्याप जाता है। उस के वेग को हटाकर पताकाएं शब्दपूर्वक सब ओर चलती हैं ॥९१-९५॥

पश्चात् तन्मूलकीलस्थचक्राण्यपि यथाक्रमम् ।
अतिवेगेन भ्राम्यन्ति तद्वेगान्मणयस्तथा ॥ ९६ ॥
वातायनीवातवेगं पताकाः प्रथमं क्रमात् ।
समाहरन्ति वेगेन पश्चाच्चक्राणि वेगतः ॥ ९७ ॥
समाहृत्य प्रेषयन्ति मणीन् प्रति विशेषतः ।
मणयस्तं समाकृष्टा नालास्ये योजयन्ति हि ॥ ९८ ॥
तन्नालान्तश्छिद्रमुखादागत्यान्यमुखान्तरात् ।
बाह्याकाशेथ विलयं यान्ति नास्त्यत्र संशयः ॥ ९९ ॥
पश्चादृजुगतिस्तेन विमानस्य भवेत् क्रमात् ॥१००॥
अतो वातस्कन्धनालकीलीयन्त्रं यथाविधि ।
विमाने स्थापयेत् सम्यगिति शास्त्रविनिर्णयः ॥१०१॥

फिर उनके मूलों की कीलों में स्थित चक्र भी यथाक्रम अतिवेग से घूमते हैं उनके वेग से मणियां भी घूमती हैं। प्रथम पताकाएं वातायनीनामक वायु के वेग को शीघ्र लेती हैं पश्चात् चक्रों को वेग से लेकर मणियों के प्रति विशेषतः प्रेरित करते हैं, मणियां आकृष्ट हुईं उसे नालों के मुख में युक्त करती हैं, उन नालों के भीतरी छिद्रमुख से आकार अन्य मुख के अन्दर से बाहिरी आकाश में विलय को प्राप्त हो जाती है इसमें संशय नहीं पश्चात उस से विमान की सरलगति क्रम से हो जाती है, अतः वातस्कन्धनाल के कीलयन्त्र को यथाविधि विमान में सम्यक् स्थापित करे यह शास्त्र का निर्णय है ॥ ९६—१०१ ॥

अथ विद्युद्दर्पणयन्त्रः—अब विद्युद्दर्पण यन्त्र कहते हैं—

एवं वातस्कन्धनालकीलयन्त्रं निरूप्याथ ।
विद्युद्दर्पणयन्त्रोत्र संग्रहेण निरूप्यते ॥१०२॥

इस प्रकार वातस्कन्धनालयन्त्र का निरूपण करके अब विद्युद्दर्पणयन्त्र यहां संक्षेप से निरूपित करते हैं—

उक्तं हि सौदामिनीकलायाम्—सौदामिनीकला पुस्तक में कहा है—

तडित्सञ्ज्वलनं वर्षे ऋतौ मेघेषु पञ्चधा ।
वारुण्यग्निमुखादण्डमहारावणिका इति ॥१०३॥
तेषु वारुण्यग्निमुखविद्युतावतिवेगतः ।
मुहुर्मुहुः प्रचलतस्स्वतो मेघेषु वार्षिके ॥१०४॥
पश्चाद् यानस्थरौद्र्यादिदर्पणैस्तावुभावपि ।
आकृष्येते स्वभावेन पश्चात् सम्मेलनं तयोः ॥१०५॥
परस्परं भवेत् तस्मान्महानग्निः प्रजायते ।
तेन दग्धी भवेद् व्योमयानस्तत्क्षणतः क्रमात् ॥१०६॥
अतस्तत्परिहारार्थं मुखदक्षिणकेन्द्रयोः ।
विमाने स्थापयेद् विद्युद्यन्त्रं सम्यग्यथाविधि ॥१०७॥ इत्यादि ॥

वर्षा ऋतु में मेघों में विद्युत् का सञ्ज्वलन पांच प्रकार का होता है, जो कि वारुणि, अग्निमुख, दण्ड, महत्, रावणिक हैं। उन पांचों में वारुणि और अग्निमुख विद्युत् अतिवेग से वर्षाऋतु के बादलों में पुनः पुनः बार बार प्रसार करती हैं पश्चात् विमान में स्थित रौद्री आदि दर्पणों से वे दोनों स्वभावतः-अनायास आकर्षित हो जाती हैं पश्चात् उनका परस्पर सम्मेलन हो जाता है उससे महान् अग्नि उत्पन्न हो जाती है जिस से तुरन्त विमान दग्ध हो जाता है अतः उसके परिहारार्थ-बचाव के लिये दोनों मुख दक्षिण केन्द्रों में विद्युद्यन्त्र विमान में सम्यक् स्थापित करे ॥ १०३—१०७ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे-वह यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

वारुण्यग्नितडिज्जातवह्निवेगोपशान्तये ।
विद्युद्दर्पणयन्त्रोत्र संग्रहेण निरूप्यते ॥१०८॥

वारुणि और अग्नि नाम की बिजुलियों से उत्पन्न अग्नि की शान्ति के लिये यहां विद्युद्दर्पण यन्त्र संक्षेप से निरूपित किया जाता है ॥ १०८ ॥

विद्युद्दर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—विद्युद्दर्पण कहा है दर्पणप्रकरण में—

कुरङ्गपञ्चास्यविरञ्चिशोणजान् सुशर्करास्फाटिककुट्भनीरगान् ।
सुण्डालिकापारदक्षारटङ्कणान् बिडौजपिङ्गाक्षवराटिकर्बुरान् ॥१०९॥
दिक्शैलवेदानलराशिनेत्रमुन्यब्धिरुद्रोडुमनुर्मुनिस्तथा ।
द्वाविंशदष्टादशबाणरुद्रक्रमेण भागान् विधिवद् विशोधितान् ॥११०॥

कुरङ्ग–अकर्करा, पञ्चास्य ?–लोहभेद ?, विरञ्चि ?, शोणज–शोणसम्भव–पिप्पलीमूल या शोण–सिन्दूर, सुशर्कर–सुन्दर रेत, स्फाटिक–स्फटिकमणि–बिल्लौर, कुट्भ ?–कुट–शिलाचूर्ण, नीरग–नीरज–मोती, सुण्डालिक ?—हस्तीशुण्डावृक्ष ?, पारद—पारा, क्षार—सज्जी क्षार, टङ्कण—सुहागा, विडौज—विड्लवण का सत्त्व, पिङ्ग ?–हरिताल, अक्ष–नीलाथोथा, वराटिका–कौड़ी, कर्बुर—स्वर्ण ?, या आमाहल्दी या गन्ध-पलाशी'। १०, १ ?, ४, ३, १२, २, ३, ७, ११, ७ ?, १४, ३, २२, १८, ५, ११, भाग, क्रमशः शोधित—॥१०६—११०॥

सङ्गृह्य सन्तोल्य पृथक् पृथक् क्रमात् सम्पूर्य पद्मास्यकमूषमध्ये ।
विश्वोदरव्यासटिकान्तरे दृढम् । विन्यस्य पञ्चाननभस्त्रिकामुखात् ॥
सञ्चालयेत् पञ्चशतोष्णकक्ष्यतः पश्चात् समाहृत्य च यन्त्रमध्ये ॥१११॥
सम्पूरयेच्छास्त्रविधानतः क्रमादेवं कृते शुद्धमतीव तीव्रम् ॥११२॥
विद्युद्द्वयोद्भूतकृशानुवेगोपशान्तकं शक्तिशतत्रयान्वितम् ।
विद्युत्प्रभापूरितमध्यदेशं नानाविचित्रांशुमुखं दृढं गुरु ॥११३॥
स्वशक्तितो योजनपञ्चकं क्रमात् क्षणद्वयाद् व्यापकमद्भुतं शिवम् ।
भवेत् तडिद्दर्पणकं समस्तप्रकाशकं भासुरभानुभासुरम् ॥१४॥ इत्यादि ॥

—लेकर पृथक् पृथक् तोलकर पद्मास्यबोतल के मध्य में भरकर विश्वोदर व्यासटिका के अन्दर रखकर पञ्चानन—पञ्चमुखवाली भस्त्रिकामुख से ५०० दर्जे की उष्णता से गलावे, फिर लेकर यन्त्र के मध्य में शास्त्रविधान से भर दे, ऐसा करने पर शुद्ध अतीव तीव्र दोनों विद्युत् से प्रगट हुआ अग्नि का वेग ३०० शक्तिवाला शान्त हो जाता है। विद्युत्प्रभा से पूरित मध्यदेश नानाविचित्र अंशुओं–तरङ्गों का मुख अपनी शक्ति से पांच योजन तक दो क्षण में अद्भुत व्यापक कल्याण कर तडिद्दर्पण समस्त प्रकाशक चमकदार सूर्य समान प्रकाशप्रद हो जावे—हो जाता है ॥१११—११४॥

तडिद्दर्पणतः कार्यमेतद्यन्त्रं यथाविधि ।
अन्यथा यदि कुर्वीत विनाशो भवति ध्रुवम् ॥११५॥
वितस्तिविंशत्यायामं वितस्त्यैकोन्नतं तथा ।
चतुरस्रं वर्तुलं वा पीठं कुर्याद् यथाविधि ॥२१६॥
पूर्वपश्चिमतश्चैव दक्षिणोत्तरतस्तथा ।
अर्धचन्द्राकृतीन्नालान् चतुरो मुकुरैः कृतान् ॥
तन्त्रीमयं पञ्चमुखं पञ्जरं स्थापयेद् दृढम् ॥११७॥
एकैकमुखकेन्द्रेथ शक्तिकीलान् प्रकल्पयेत् ।
एकैककीलस्थाने विद्युद्दर्पणनिर्मितान् ॥११८॥
स्थापयेच्चषकाकारान् (यन्त्रान् हि) गोपुराकृतिम् ।
सप्तारं नालिकायुक्तमष्टास्यं दशकोणकम् ॥११९॥
कृतं विद्युद्दर्पणेन स्थापयेत् सुदृढं यथा ।
अन्तःकीलीचालनेन गोपुरं भ्राम्यति स्वयम् ॥१२०॥

तडिद्दर्पण से यह यन्त्र यथाविधि करना चाहिए, अन्यथा करे तो निश्चित विनाश होजाता है। २० बालिश्त लम्बा एक बालिश्त ऊंचा चौरस या गोल पीठ बनावे पूर्व-पश्चिम से और दक्षिणोत्तर अर्धाकृतिवाले दर्पण से बनाई चार नालों को तथा तारमय पांच मुखवाले पिञ्जरे को दृढ स्थापित करे एकैकमुख केन्द्र में शक्तिकीलों को लगावे एक एक कील स्थान में विद्युद्दर्पण से बने घड़े लोटे जैसे यन्त्रों को तथा सात अरों वाले नालयुक्त आठ मुखवाले दश कोणवाले विद्युद्दर्पणकृत गोपुर—गोल गवाक्षचक्र यन्त्र दृढ स्थापित करे, अतः कीली चलाने से गोपुर स्वयं घूमता है ॥११५—१२०॥

तद्वेगो विद्युदुत्पन्नवह्निवेगं समग्रतः ।
समाकृष्यातिवेगेन स्वयं पिबति तत्क्षणात् ॥१२१॥
पश्चान्मार्तण्डकिरणशक्तयस्स्वीयतेजसा ।
तच्छक्तिं च समाहृत्य गोपुरस्थां सुदारुणाम् ॥१२२॥
महामाण्डलिकाख्ये वातमण्डलेम्बरान्तरे ।
तत्क्षणात् प्रविलाप्यन्ति† तद्विनाशो भवेत् ततः ॥१२३॥
पश्चाद्धिमवदत्यन्तं शीतलं प्रभवेत् क्रमात् ।
तेन यानस्थयन्तॄणां भवेदाप्यायनं ततः ॥१२४॥
सुरक्षितं भवेद् व्योमयानं चापि विशेषतः ।
तस्मात् संस्थापयेद् व्योमयाने शास्त्रविधानतः ॥१२५॥
एतद् विद्युद्दर्पणाख्ययन्त्रमद्भुतमव्ययम् ।
नोचेद् विमाननाशस्स्यादप्रमादी भवेदतः ॥१२६॥ इत्यादि ॥

उस 'गोपुर यन्त्र' का वेग विद्युत् से उत्पन्न अग्नि के वेग को पूर्णरूप से अति वेग से खींच कर स्वयं पी लेता है पश्चात् सूर्यकिरणशक्तियां अपने तेज से गोपुरस्थ दारुण उस शक्ति को लेकर महामाण्डलिक वातमण्डल में आकाश के अन्दर तुरन्त प्रविलीन कर देती है पुनः उस शक्ति का विनाश हो जाता है। पश्चात् वह हिम (बर्फ) की भांति अत्यन्त शीतल हो जावे, उससे विमान यान में बैठे चालक यात्रियों का प्रफुल्लितत्व—सन्तोष सुख हो जावे और विमान भी सुरक्षित हो जावे। अतः विमान में शास्त्र-विधि से इस अद्भुत स्थिर विद्युद्दर्पण नामक यन्त्र को संस्थापित करे नहीं तो विमान का नाश हो जावे अतः इस विषय में अप्रमादी होवे—प्रमादरहित रहे ॥१२१–१२६॥

अथ शब्दकेन्द्रमुखयन्त्रः—अब शब्दकेन्द्रमुख यन्त्र कहते हैं—

एवमुक्त्वा संग्रहेण विद्युद्दर्पणयन्त्रकम् ।
अथेदानीं शब्दकेन्द्रमुखयन्त्रं प्रचक्षते ॥१२७॥

इस प्रकार संक्षेप से विद्युद्दर्पणयन्त्र कहकर अब शब्दकेन्द्रमुखयन्त्र कहते हैं ॥१२७॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार में कहा है—

शब्दोत्पत्तिस्थानभेदाश्शब्दकेन्द्रा इतीरिताः ।
तेभ्यः प्रसारणं यत् स्याच्छब्दादीनां दिक्प्रभेदतः ॥१२८॥

---

† प्रविलाप्यन्ति आर्षप्रयोगः।

तदेव तच्छब्दकेन्द्रमुखस्थानमितीर्यते ।
तत्रत्यशब्दोपसंहारार्थं तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥१२६॥
यन्त्रं यत्तच्छब्दकेन्द्रमुखयन्त्रमितीरितम् ।
चतुरुत्तरत्रिशतशब्दभेदेषु यथाक्रमम् ॥१३०॥
वारुणीवाताशनीनां शब्दास्तीव्रतरास्स्मृताः ।
आकाशस्याष्टमे कक्ष्ये एतच्छब्दयन्त्रं क्रमात् ॥१३१॥
एकीभूय स्वभावेन माघफाल्गुनमासयोः ।
भवेन्महाघनरवस्तीक्ष्णश्श्रोत्रविदारकः ॥१३२॥
तस्य श्रवणमात्रेण बाधिर्यं यन्तॄणां भवेत् ।
अतस्तत्परिहाराय शब्दकेन्द्रमुखाभिधम् ॥१३३॥
यन्त्रं संस्थापयेद् यानवामभागे यथाविधि । इत्यादि ॥

शब्द की उत्पत्ति के स्थानभेद शब्दकेन्द्र कहे गए हैं, उनसे वहां से दिशाभेद से शब्द आदि का प्रसारण—फैलाव जो होता है वह ही शब्द केन्द्रमुख स्थान कहा जाता है। वहां के शब्दोप-संहारार्थ उसमें स्थिर हुआ यन्त्र जो है वह शब्द केन्द्रमुखयन्त्र कहा जाता है। ३०४ शब्दभेदों में यथा-क्रम मेघतरङ्ग, वायु, विद्युत् की कड़क के शब्द तीव्र कहे हैं, आकाश के आठवें स्तर में यह शब्दयन्त्र स्वभाव से मिलकर यहां घन शब्द तीक्ष्ण कानों का विदारण करने वाला होता है ? उसके श्रवणमात्र से बहिरापन यात्रियों का हो जाता है, अतः उसके प्रतीकारार्थं शब्दकेन्द्रमुखनामक यन्त्र यथाविधि विमान के वामभाग में संस्थापित करे ॥१२८-१३३॥

महाघनरवमुक्तं शब्दनिबन्धने--महाघनरव कहा है शब्दनिबन्धन ग्रन्थ में—

विन्दुवाताग्न्यम्बराणां क्रमात् साङ्केतकास्स्मृताः ॥ १३४ ॥

विन्दु—अणु या जलकण—जलधूम—अभ्र, वायु, अग्नि, गगनमण्डल के साङ्केत—नाम सङ्केत क्रम से कहे हैं ॥ १३४ ॥

तदुक्तं नामार्थकल्पसूत्रे—वह कहा है नामार्थकल्पसूत्र ग्रन्थ में—

अथ शब्दस्वरूपं व्याख्यास्यामोॐशबदविसर्गाणां सम्मेलनाच्छब्द इत्याचक्षते। तत्र शकारो विन्दुर्बकारोवह्निर्दकारो वायुर्विसर्गश्चाकाश इति निर्णिता भवन्ति॥ स्थावरे जङ्गमे व एतेषां यथाभागं यत्र यत्र शक्तयस्सम्मिलिता भवन्ति तत्र तत्र चतुरुत्तरत्रिशतशब्दभेदाः प्रभवन्ति। चतुरुत्तरत्रिशतशब्दा इति हि ब्राह्मणम्† ॥

चतुरुत्तरत्रिशतशब्दानां नामनिर्णयः ।
यथोक्तं धुण्डिनाथेन सर्वशब्दनिबन्धने ॥ १३५ ॥

---

* एतादृश उत्वपाठ आर्षो बहुत्रात्रोपलभ्यते ।

† लुप्तब्राह्मणम् ।

तस्मात् संगृह्य नामानि प्रसङ्गत्यात्र कानिचित् ।
स्फोटादिमहाघनरवान्तान्यत्र प्रकीर्त्यते‡ ॥ १३६ ॥
स्फोटो रवोत्यन्तसूक्ष्मो मन्दोतिमन्दकः ।
अतितीव्रो तीव्रतरो मध्यश्चातिमध्यमः ॥ १३७ ॥
महारवो घनरवो महाघनरवस्तथा ॥ इत्यादि ॥

अब शब्द के स्वरूप का व्याख्यान करेंगे । श, ब, द, विसर्ग (:) के मेल से 'शब्द' कहते हैं । उनमें 'श' बिन्दु—अणु—जलकण—अभ्र, 'ब' अग्नि, 'द' वायु, विसर्ग (:) आकाश यह यह निर्णय है । स्थावर में या जङ्गम में इनका यथाभाग—भागानुरूप जहां जहां शक्तियां सम्मिलित हैं वहां वहां ३०४ शब्द भेद होते हैं, ३०४ शब्द हैं यह ब्राह्मण में भी कहा है । ३०४ शब्दों का निर्णय है । जैसा कि धुण्डिनाथ ने 'सर्वशब्दनिबन्धन, में कहा है । वहां से लेकर प्रसङ्गतः कुछ नाम स्फोट आदि महाघनरवपर्यन्त यहां कहे जाते हैं । वे स्फोट, रव, अत्यन्त सूक्ष्म, मन्द, अतिमन्दक, अतितीव्र, तीव्रतर, मध्यम, अतिमध्यम, महारव, घनरव, महाघनरव हैं ॥ १३५–१३७॥

यन्त्रसर्वस्वेपि—यन्त्रसर्वस्व में भी कहा है—

वारुणीवाताशनीनां शब्दसम्मेलनात् स्वतः ।
आकाशाष्टमपरिधिकेन्द्रेत्यन्तभयावहः ॥ १३८ ॥
भवेन्महाघनरवश्श्रोत्रेन्द्रियविदारकः ।
तस्मिन् यानप्रवेशस्स्याद् यदि यानस्थयन्तॄणाम् ॥ १३९ ॥
क्षणमात्रेण बाधिर्यं भवेत् तच्छब्दवेगतः ।
तस्मात् तत्परिहाराय शब्दकेन्द्रमुखाभिधम् ॥ १४० ॥
व्योमयाने स्थापनार्थं संग्रहेण निरूप्यते ।
आकाशपरिध्रिमण्डलस्य यथाक्रमम् ॥ १४१ ॥
सप्तोत्तरत्रिशतकेन्द्रा इत्युच्यते बुधैः ।
तेषु सप्ततिमात् केन्द्रात् समायात्यतिभीषणम् ॥ १४२ ॥
वारुणीशक्तिसम्भूतशब्दोत्यन्तभयावहः ।
तथैववातसम्भूतशब्दश्चात्यन्तघोषकः ॥ १४३ ॥
द्वादशोत्तरत्रिशतकेन्द्रादागच्छति क्रमात् ।
तथैवाशनिशब्दश्च द्व्यशीतिमकेन्द्रतः ॥ १४४ ॥
एतत्छब्दत्रयं सम्यङ् मिलित्वाथ परस्परम् ।
भवेन्महाघनरवस्सर्वं श्रोत्रविदारकः ॥ १४५ ॥
तेन यानप्रयातॄणां बाधिर्यं प्रभवेदतः ।
एकैकशब्दकेन्द्राभिमुखतस्सुदृढं यथा ॥ १४६ ॥

‡ वचनव्यत्ययः ।

सन्धारयेच्छब्दोपसंहारयन्त्राण्यथाविधि ।
तेन तच्छब्दोपसंहारो भवेन्नात्र संशयः ।। १४७ ।।

वारुणी--जलधारा, वायु, विद्युत्पतन के शब्दों के सम्मेलन से स्वतः आकाश की आठवीं परिधि के केन्द्र में अत्यन्त भयावह कान इन्द्रिय को फोड़ने वाला महाघनरव हो जावे – हो जाता है, उसमें विमान का प्रवेश यदि हो जावे तो विमान में स्थित यात्रियों का उस शब्द के वेग से क्षणमात्र में बहरापन हो जावे, अतः उसके परिहार के लिए शब्दकेन्द्रमुख नामक यन्त्र विमान में स्थापनार्थ संक्षेप से निरूपित किया जाता है। आकाशपरिधिमण्डल के यथाक्रम ३०७ केन्द्र हैं ऐसा बुधजन कहते हैं, उन केन्द्रों में ७० वें केन्द्र से अति भीषण वारुणी शक्ति—अभ्रप्रवाह शक्ति से उत्पन्न अत्यन्त भयावह शब्द तथा वायु से उत्पन्न अत्यन्त घोष करने वाला शब्द ३१२वें केन्द्र से आता है वैसे ही विद्युत् शब्द ८२वें केन्द्र से आता है, इस प्रकार तीनों शब्द सम्यक् मिल कर परस्पर महाघन रव शब्द कान का फोडने वाला हो जाता है उससे विमान के यात्रियों का बहिरापन हो जावेगा एक एक शब्द केन्द्र के सामने सुदृढ शब्दोपसंहार यन्त्र यथाविधि लगावे उससे शब्द का उपसंहार हो जावे—हो जावेगा, इसमें संशय नहीं ।। १३८-१४७ ।।

अथ यन्त्रोपकरणानि—अब यन्त्र को उपयुक्त करने वाले साधन—

जम्बालं शणकोशं च क्रौञ्चिकं वारिपिष्ठकम् ।
गव्यारिकं पञ्चनखचर्मसंशोधितं तथा ।। १४८ ।।
रुण्ठाकमामिषं शुण्डं वंगं चेति दश क्रमात् ।
संगृह्य तान्यथाशास्त्रमादौ शुद्धिं प्रकल्पयेत् ।। १४९ ।।
कपिचर्मविना सर्ववस्तून्निर्यासयन्त्रके ।
सम्पूर्य महिषीपित्ता(त्थ ?) त्पाचयेत् त्रिदिनं क्रमात् ।।१५०।।
समत्वेनैव वस्तूनां मेलनं कारयेत् क्रमात् ।
पश्चात् संगृह्य निर्यासं रक्तवर्णं सुशोभनम् ।। १५१ ।।
लेपयेत् पञ्चनखचर्मणस्सप्तधा सुधीः ।
कृत्वा सूर्यपुटं पश्चाद् धुण्डिकन्दरसात् तथा ।। १५२ ।।
शब्दोपसंहारशक्तिरेतत्संस्कारतः क्रमात् ।
स्वतस्सञ्जायते सम्यक् कपिचर्मण्यथाबलम् ।। १५३ ।।

जम्बाल—शैवाल—काई, शणकोश—सणकोहा, क्रौञ्चिक – नाम का कृत्रिम लोहा या पद्मबीज कमल गट्टा, वारिपिष्ठक ?–वारिप्रश्नी–वारिपर्णी ?–जलकुम्भी, गव्यारिक ?, पञ्चनखचर्म ?–व्याघ्रचर्म शोधित बाघ, ऊंट, रीछ, गोह, कच्छुआ के चर्म ?, रुण्ठाक ?--रुण्डक—अगर काष्ठ ?, आमिष ?—दही ?, शुण्ड ?--शुण्डा—हाथी शुण्ड-हाथी शुण्ड वृक्ष, वंग—रांगा धातु। इन १० वस्तुओं को लेकर यथाशास्त्र आदि में शुद्धि करे, कपिचर्म—बन्दर के चाम छोड कर सब वस्तुओं को निर्यासयन्त्र—काढा बनाने वाले यन्त्र में भर कर भैंस के पित्त—भैंस के रोचन से ३ दिन पकावे समान भाग वस्तुएं ले फिर निर्यास—काढा लाल रंग का हो जावे उसे पञ्चनख चर्म पर लेप करे सात वार फिर सूर्यपुट--धूप देकर

धुण्डि कन्द ? के रस से भी सूर्यपुट—धूप देकर रखे। इस प्रकार संस्कार करने से शब्दोपसंहार शक्ति स्वतः कपिचर्म में आ जाती है ॥ १४८-१५३ ॥

वितस्तिद्वयमायामं विस्त्ये (त ?) कोन्नतिं क्रमात् ।
बधिराख्येन लोहेन पेटिकां कारयेद् दृढम् ॥१५४॥
तन्मध्ये बधिरलोहनालद्वयमतः परम् ।
वकास्यं स्थापयेत् पश्चादूर्ध्वं शास्त्रमानतः ॥१५५॥
शब्दपादर्पणाकृतछत्रिं सन्धारयेत् ततः ।
तन्मणिं च सुसंस्कृत्य तुलसीबीजतैलकैः ॥१५६॥
कपिचर्मणि सन्धार्य बल्व्याकात् सन्नियोजयेत् ।

दो बालिश्त लम्बा एक बालिश्त ऊंचा बधिर नामक लोहे से पेटिका—छोटा बक्स बनवाए, उसके मध्य में बधिरलोह की दो नालें बगुले के मुखाकारवालीं स्थापित करे पश्चात् शास्त्ररीति से ऊपर शब्द या दर्पण से बनी छत्री लगावे और तुलसी बीजों से संस्कृत उस मणि को भी कपिचर्म—बन्दर या लंगूर के चर्म में रखकर लपेटकर बल्व्याक—गेण्डे के सींग के चेप या कांटे से युक्त करे ॥१५४-१५६॥

बल्व्याको नाम खङ्गमृगशल्यनिर्यासः—बल्व्याक गेण्डे के सींग का निर्यास—चेप या पक्व काढा।

पेटिकामध्यकेन्द्रस्थदक्षनालान्तरे दृढम् ॥१५७॥
पूर्वोक्तचर्मसहितमणिं सन्धारयेत् तथा ।
वामनाले पञ्चनखचर्ममात्रं नियोजयेत् ॥१५८॥
सूक्ष्मतन्त्रीन् सुसयोज्य परस्परमतः परम् ।
बध्नीयात् तत्सर्वतस्सम्यक् सूक्ष्मकीलकशङ्गुभिः ॥१५९॥
पेटिकावरणादूर्ध्वं सिंहास्याकारतः क्रमात् ।
कृत्वा तच्चर्मणा तस्य मूलनालान्तरे ततः ॥१६०॥
छिद्रं कृत्वातिसूक्ष्मेण तन्त्रीनालाद् यथाविधि ।
पेटिकान्तरनालस्थमणौ संयोजयेद् दृढम् ॥१६१॥
पेटिकस्योर्ध्वावरणभागमाच्छाद्य बन्धयेत् ।

पेटिका के मध्यकेन्द्र में स्थित दक्ष—दक्षिण नाल के अन्दर पूर्वोक्त चर्मसहित मणि को लगावे, वाम नाल में पञ्चनखचर्ममात्र नियुक्त करे। सूक्ष्म तारों को परस्पर लगाकर सूक्ष्मकील शंकुओं से बान्ध दे, पेटिकावरण से ऊपर सिंहास्याकार से बनाकर उस चर्म से उसके मूल के अन्दर करके अति सूक्ष्म छिद्र करके उसमें से तार की नाल से पेटिका के अन्दर नाल में स्थित मणि में संयुक्त करदे पेटिका ऊपरी आवरण भाग को ढककर बान्ध दे ॥१३७-१६१॥

बधिरलोहमुक्तं लोहतन्त्रप्रकरणे†—बधिरलोहा कहा है लोहतन्त्रप्रकरण में—

---

† यहां से १६८ श्लोकपर्यन्त पाठ पूनाफोटो में अधिक मिला।

जम्भीरं लगुडं विरञ्चि ऋषिकं मालूरुपञ्चाननम् ।
लुण्टाकं वरसिंहिकं कुरवकं सर्पास्यकुन्दावरम् ।
वाकूलं मुरजं मृडाङ्गरटकौ संगृह्य सर्वं समम् ।
सम्पूर्य त्र्युटिमूषमध्यमविले कुण्डे सुसंस्थाप्य च ॥१६२॥
यन्त्रास्ये द्रुततद्रसं सुरुचिरं सम्पूरयेच्छीघ्रतः ।
एतेन प्रभवेद् विशुद्धममलं शैत्यं सुसूक्ष्मं दृढम् ।
श्यामं शब्दहनं च भाररहितं शक्त्या समाच्छादितम् ॥१६३॥
रक्तस्तम्भनपाटवं घनरणे योधाङ्गशल्यापहम् ।
झ (ज?) ञ्झामारुतशब्दनाशनपटुं सर्वव्रणोच्छेदकम् ॥१६४॥ इत्यादि ॥

जम्भीर-जम्भीरीनिम्बू, लगुड—कनेयर, विरञ्चि-असवर्ग ?, ऋषिक-सियाढ़िलता, मालूरु-मालूर-कैथ या बिल्व. पञ्चानन-लोहाविशेष ?, लुण्टाक-लुण्टक-शाकविशेष सम्भवतः खट्टाशाकलोणी ?, वरसिंहिक—बड़ी कटेरी, कुरवक—श्वेत आक—सफेद फूल का आख, सर्पास्य ?—सर्पाख्य ?—नागकेसर या सर्पास्य —सर्पदन्ती ?—नागदन्ती कुन्दावर—कुन्दुरु—बान्झककोडा, वाकुल—मोलसरी बीज, मुरज-कटहल, मृडाङ्ग-मृगाङ्क-कपूर ? या मृडङ्कण-सुगन्धवाला ?, रटक?-रण्डक-अफलवृक्ष ? या रण्डा-मूषकर्णी ? सबको समान लेकर त्र्युटिमूषमध्य-तीन पत्री-तीन परतवाली बोतल बिलवाले कुण्ड में रख कर ३०० दर्जे की उष्णता से पांचमुखवाली भस्त्रामुख से गलाकर यन्त्र के मुख में पिघलारस शीघ्र भरदे इससे विशुद्ध निर्मल शीत—ठण्डा अतिसूक्ष्म दृढ श्याम रंगवाला शब्दनाशक भाररहित शक्ति से प्रपूर्ण रक्तस्तम्भन में कुशल-योग्य घन रण में योद्धा के अङ्गों से शल्य का निकालनेवाला झञ्झावात शब्द के नाश में योग्य सब घावों को नष्ट करनेवाला हो जाता है ॥१६२-१६४॥

पूर्वोक्तोत्यन्तभयदं महाघनरवे क्रमात् ।
सिंहास्यभस्त्रिकात्पश्चात् समाकृष्यति वेगतः ॥१६५॥
पेटिकान्तरनालस्थमणौ संयोजयेदथ ।
कपिचर्मस्वशक्त्या तच्छब्दमाकृष्य वेगतः ॥१६६॥
निश्शब्दं कुरुते स्वस्मिन्नुपसंहृत्य तत्क्षणात् ।
तेन यानस्थयन्तॄणामत्यन्तसुखदं भवेत् ॥१६७॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शब्दकेन्द्रमुखभिधम् ।
यन्त्रं संस्थापयेद् व्योमयाने सम्यग्यथाविधि ॥१६८॥ इत्यादि ॥

पूर्वोक्त अत्यन्त भय देनेवाले महाघनरव को क्रम से अतिवेग से सिंहास्य भस्त्रिका से अतिवेग से खींचकर पेटिका के अन्दर नाल में स्थित मणि में युक्त करदे, कपिचर्म अपनी शक्ति से उस शब्द को वेग से खींचकर अपने में लीन करके तुरन्त शब्दरहितता कर देता है अतः सर्वप्रयत्नसे शब्दकेन्द्रमुख नामक यन्त्र को विमान में सम्यक् यथाविधि संस्थापित करे ॥१६५-१६८॥

हस्तलेख कारी संख्या १२—

अथ विद्यु द्द्वादशकयन्त्रः—अब विद्यु द्द्वादशकयन्त्र कहते हैं—

एवमुक्त्वा शब्दकेन्द्रमुखयन्त्रं यथाविधि ।
विद्युद्द्वादशकयन्त्रमिदानीं सम्प्रचक्षते ॥१॥

इस प्रकार शब्दकेन्द्रमुखयन्त्र यथाविधि कहकर विद्यु द्द्वादशकयन्त्र अब कहते हैं ॥३॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

बाणस्थधूमकेतूनां मण्डलस्याष्टमेन्तरे ।
त्रिकोटिसप्तलक्षत्रिसहस्रद्विशतोपरि ॥२॥
एकविंशतिसंख्याका वर्तन्ते धूमकेतवः ।
विद्युद्गर्भास्तेषु धूमकेतवोष्टसहस्रकाः ॥३॥
महाकालादयो रौद्रा विद्युद्द्वादशलोचनाः ।
तेषु द्वादशसंख्याकाः प्रशस्ता धूमकेतवः ॥४॥

बाण ? में स्थित धूमकेतुओं के अष्टम मण्डल के अन्दर धूमकेतुओं या पुच्छलतारों के मण्डल के आठवें अन्तर—सिरे पर ३०७० ३ २ २१ इतनी संख्या वाले धूमकेतु रहते हैं, उनमें विद्यु द्गम ८००० महाकाल आदि हैं उनमें रौद्र विद्यद्द्वाश लोचन हैं, १२ संख्यावाले धूमकेतु अच्छे हैं ॥२–४॥

विद्यु द्द्वादशकमुक्तं शक्तितन्त्रे—विद्यद्द्वादशकयन्त्र शक्तितन्त्र ग्रन्थ में कहा है—

रोचिषी दाहका सिंही पतङ्गा कालनेमिका ।
लता वृन्दा रटा चण्डी महोर्मि पार्वाणि मृडा ॥५॥
उल्कानेत्रस्थिता ह्येते विद्युतो द्वादश क्रमात् । इति ॥

रोचिषी, दाहका, सिंही, पतङ्गा, कालनेमिका, लता, वृन्दा, रटा, चण्डी, महोर्मि, पार्वणि, मृडा ये १२ विद्यु त् उल्कानेत्र–उल्काएं जिनकी नायक है अर्थात् उल्कारूप हैं ॥५॥

धूमकेतव (वो?) उक्ताः खेटसर्वस्वे—धूमकेतु कहे हैं खेटसर्वस्व ग्रन्भ में—

महाकाली महाग्राम्गो महाज्वालामुखस्तथा ।
विस्फुलिङ्गमुखो दीर्घवातो खङ्गो महोर्मिकः ॥६॥

स्फुलिङ्गवमनो गण्डो दीर्घजिह्वो दुरोणकः ।
सर्पास्यश्चेति विद्युन्नेत्रोलका द्वादशधा स्मृताः ॥७॥ इत्यादि ॥

महाकाल, महाग्रास, महाज्वालामुख, विस्फुलिङ्गमुख, दीर्घवाल, खञ्ज, महोर्मि, स्फुलिङ्गवमन, गण्ड, दीर्घजिह्व, दुरोणक, सर्पास्य ये १२ प्रकार के विद्युन्नेत्रउल्काएं कही हैं ॥६–७॥

तेषां विद्युत्सम्मोहास्तु शरद्वासन्तयोः क्रमात् ।
भवन्त्यादित्यकिरणेष्वन्तर्भूतास्स्वभावतः ॥८॥
किरणोल्कस्थशक्तीनां परस्परविमेलनात् ।
भवेदज(जि?)गरानाम काचिच्छक्ति र्भयङ्करा ॥९॥
खस्थद्वाविंशतिमकेन्द्रमुखमध्ये यदा क्रमात् ।
व्योमयानः समायति तदाज (जि?)गरसंज्ञिका ॥१०॥
शक्तिर्यानस्तम्भनं स्ववेगात् तत्र करोति हि ।
तस्मात् तत्परिहाराय शिद्युद्द्वाशयन्त्रकम् ॥११॥
विमानस्येशान्यकेन्द्रे विधिवत् स्थापयेद् दृढम् । इत्यादि ॥

उनके विद्युत्सम्मोह–उन उल्कास्थित विद्युतों के संघर्ष तो शरद् और वसन्तकाल में होते हैं स्वभावतः सूर्यकिरणों के अन्दर प्राप्त होकर, किरणों और उल्काओं में स्थित शक्तियों के परस्पर विरुद्ध मेल अर्थात् संघर्ष से अजगरा नामक कोई शक्ति भयङ्कर 'प्रकट हो जाती है' पुनः आकाशस्थ २२ वें केन्द्रमुखमध्य में जब विमान आता है तब अजगरा नामक शक्ति अपने वेग से विमान का स्तम्भन करती है, अतः उसके परिहार के लिये विद्युद्द्वादशयन्त्र विमान के ईशान्य केन्द्र में विधिवत् दृढरूप से स्थापित करे ॥८–११॥

यन्त्रसर्वस्वेपि–यन्त्रसर्वस्वग्रन्थ में भी कहा है––

उल्कानेत्रस्थविद्युद्द्वादशशक्तचुपसंहृतौ ॥१२॥
विद्युद्द्वादशकं नामयन्त्र एव गरीयसी‡ ।
तस्मात्तत्सङ्ग्रहेणात्र यथाविधि निरूप्यते ॥१३॥
आदौ कुर्यात् पटघनं विद्युत्संहारकारकम् ।
विमानावरकं द्वादशास्यं तेन प्रकल्पयेत् ॥१४॥
पौण्ड्रकादिमणीन् तस्य प्रत्यास्ये सन्निवेशयेत् ।
महोर्णद्रावकं व्योमयानस्येशान्यगे ततः ॥१५॥

उल्कानेत्र–उल्काओं में वर्तमान १२ प्रकार की विद्युत् के उपसंहार में विद्युद्द्वादशक नामक यन्त्र श्रेष्ठ है । अतः वह संक्षेप से यहां कहा जाता है । आदि में पटघन–यन्त्र को लेप से घन बनावे विद्युत्संहारकरनेवाला होता है । विमान को ढकनेवाला २२ मुखवाला बनावें पौण्ड्रक आदि मणियों को उसके प्रत्येक मुख में लगावे महोर्णद्रावक ? को विमान से ईशान्य भाग में लगावे ॥१२–१५॥

‡ 'गरीयसी' लिङ्गव्यत्ययः ।

विमानावरणान्तर्गुहाशये स्थापयेत् सुधीः ।
विद्युद्वेगोपसंहारदर्पणेन यथाविधि ॥ १६ ॥

शलाकान् षट् बाहुमात्रानष्टौ कुर्याद् दृढं यथा ।
अष्टदिक्षु स्थापयेत् तद्विमानावरकोपरि ॥ १७ ॥

विधिवत् स्थापयेत् पश्चाद् दम्भोलिलोहनिर्मितान् ।
कीलीचक्रान् पञ्चमुखानन्योन्याश्रयसंयुक्तान् ॥१८॥

विमानावरकस्यादौ मध्येचान्ते यथाक्रमम् ।
बध्नीयादावर्तसूक्ष्मशङ्कुभिस्सुदृढं यथा ॥१६॥

पौण्ड्रकादिमणीनां तु पञ्जरं सूक्ष्मतन्त्रिभिः ।
पृथक् पृथक् कल्पयित्वा तन्त्रचग्राणि यथाक्रमम् ॥२०॥

विद्युत् के वेग का उपसंहार करनेवाले दर्पण के साथ यथाविधि विमानावरण के अन्तर्गत गुहाशय—गुहा में रहने वाले यन्त्र को बुद्धिमान् स्थापित करे ६ भुज माप में ८ शलाकाओं को भी ८ दिशाओं में दृढ स्थापित करे उस विमानावरण के ऊपर विधिवत् दम्भोलि लोहे—वज्रलोहे से बने एक दूसरे से आश्रित मिले हुए पांच मुखवाले कीलचक्र स्थापित करे, विमानावरण विमान को ढकनेवाले साधन के आदि में मध्य में और अन्त में यथाक्रम घूमनेवाले सूक्ष्म शङ्कुओं से बान्ध दे, पौण्ड्रक आदि मणियों का पिञ्जरा सूक्ष्म तारों से पृथक् पृथक् बनाकर तारों के अग्रभागों को यथाक्रम-॥१६-२०॥

एकैककीलमूलाग्रे सम्यक् सन्धारयेत् क्रमात् ।
भवेत् पञ्जरतन्त्रीणां चतुर्णामिककीलकः ॥ २१ ॥
पश्चात्सम्भ्रामयेन्मूलकीलीं वेगाद् यथाविधि ।
पञ्जरैस्सह भ्राम्यन्ति मणयो द्वादश क्रमात् ॥ २२ ॥
तेनावरणकोशानां विकासो भवति ध्रुवम् ।
तेभ्य (ो ?)पटघनान्तस्थविद्युद्वेगोपहरिणी ॥ २३ ॥
शक्तिर्विजृम्भने सम्यक् प्रतिकोशे विशेषतः ।
पूर्वोक्त विद्युत्किरणसञ्जाताज (जि?) गराभिधम् ॥२४॥
शक्ति तन्मणयः पश्चात् समाकृष्यातपान्तरात् ।
किरणेभ्यः पृथक् कृत्वा तद्वेगं सन्निरुध्य च ॥ २५ ॥

एक एक कीली के मूल के आगे लगावे । पिञ्जरे के चार तारों का एक कील—पेंच हो पश्चात् वेग से मूलकीली को घुमावे तो पिञ्जरों के साथ १२ मणियां घूमती हैं उस से निश्चय आवरण कोशों का विकास होता है, उन कोशों से पटघन के अन्दर स्थित विद्युत् के वेग को लेने वाली शक्ति प्रत्येक कोश में सम्यक् विकसित होती है—फैलती है । पूर्वोक्त विद्युत् किरण से उत्पन्न अजिगरा शक्ति को वे मणियां आतप के अन्दर से खींचकर किरणों से पृथक् करके उसके वेग को रोक कर—॥ २१—२५ ॥

तत्रत्याष्टशलाकेषु योजयन्ति स्वशक्तितः ।
परिगृह्य शलाकास्तच्छक्तिं पश्चात् स्वतेजसा ॥ २६ ॥
पूर्वोक्तावरणान्तस्स्थप्रतिकोशमुखान्तरे ।
संयोजयन्ति वेगेन तत्कोशास्तदनन्तरम् ॥ २७ ॥
तच्छक्तिं प्रेषयेद् वेगाद् द्रावकाभिमुखं यथा ।
ततस्सञ्चालयेन्मध्यकीलीमावरणस्थिताम् ॥ २८ ॥
विमानावरकान्तस्स्थद्रवात् तेनातिवेगतः ।
विद्युत्कुठारिका नाम शक्तिरूर्ध्वमुखीस्वतः ॥ २९ ॥
समुत्थाय स्वभावेन कोशस्थाजिगराभिधाम् ।
समाहृत्य स्वशक्त्याथ द्रावणे सन्निरुध्यति ॥ ३० ॥

वहां की आठ शलाकाओं में स्वशक्ति से जोड देती हैं, पश्चात् शलाकाएं स्वबल से इस शक्ति को पकड कर पूर्व कहे आवरण के अन्दर स्थित प्रत्येक कोशमुख के अन्दर वेग से संयुक्त कर देते हैं, उसके अनन्तर वह कोश वेग से उस शक्ति को द्रावक की ओर प्रेरित कर देती है फिर आवरणस्थित मध्य कीली को चलावे तो विमान के आवरक के अन्दर स्थित द्रावक से अतिवेग से विद्युत्कुठारिका ऊर्ध्वमुखी शक्ति स्वत: उठकर स्वभाव से कोशस्थ अजिगरानामक शक्ति को अपनी शक्ति से लेकर—समेटकर द्रावक में रोक लेती है ॥ २६—३० ॥

पश्चादावरणान्तस्स्थान्त्यकीलीप्रचालनात् ।
द्रवस्थाजिगरा शक्तिः स्वयं पटघनान्तरे ॥ ३१ ॥
भवेद् विलीनं सर्वत्र ततो वायुस्स्ववेगतः ।
तत्रस्थाजिगराशक्तिं समाहृत्य पिबेत् क्रमात् ॥ ३२ ॥
तस्मात् तत्क्षणतो व्योमयानबन्धविमोचनम् ।
भवेत् ततो विमानस्थयन्तॄणां सुखदं भवेत् ॥ ३३ ॥

पश्चात् आवरण के अन्दर स्थित अन्तिम कीली के चलाने से द्रव में स्थित अजिगरा शक्ति स्वयं पटघन के अन्दर सर्वत्र विलीन हो जावे, फिर वायु अपने वेग से वहां की अजिगरा शक्ति को समेट कर पीले—पीलेता है, इससे तुरन्त विमान के बन्धन का विमोचन–छुटकारा हो जाता है फिर विमानस्थ यात्रियों को सुख होता है ॥ ३१—३३ ॥

विद्युद्वेगोपसंहारदर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—विद्युद्वेगोपसंहार यन्त्र दर्पणप्रकरण में कहा है—

शुण्डालकमृडकान्तकसुघनोदरसत्त्वान् ।
बुडिलाकरविषपङ्कजकुटिलोरगनागान् ॥
सिकतावरगरदाघनगरलामुखशृङ्गान् ।
स्फटिकावरमुक्ताफलवरकान्तकुञ्जरान् ॥ ३४ ॥
क्षारत्रयरविकञ्चुकचुलकोडुपबन्ध्यान् ।

गरुडारिसुजम्बालिककुशकुड्मलरुक्मान् ॥
शुद्धान् वरषड्विंशतिवस्तून् परिगृह्य ।
सम्पूर्य विराजाननमूषामुखमध्ये ॥ ३५ ॥
पद्माकरकुण्डान्तरमध्ये वरमूषाम् ।
संस्थाप्य मृगेन्द्राकृतिभस्त्रामुखरन्ध्रैः ॥
अतिवेगान् संगाल्योष्णककक्ष्यत्रिशतांशाद् ।
यन्त्रास्येथ निसिञ्चेद्रसमाहृत्य विधानात् ॥ ३६ ॥
अतिमृदुलं सुदृढस्फाटिकशुद्धतरञ्च
तद्विद्युद्वेगहरं वरमुकुरं प्रभवेद्धि ॥ इत्यादि ॥

शुण्डालक–शुण्डाल कृत्रिम लोहविशेष ? या शुण्डालक–शुण्डी–हाथी शुण्डी वृक्ष ?, मृडक ?, अन्तक–कचनार, घनोदर ? इनके सत्त्व । बुडिल ?, अक्रूर–अकरा–अमली ?, विष–वत्सनाभ, पङ्कज–पङ्कजार–भृङ्गराज बूटा या पङ्कज–कमल ?, कुटिलशंख ?, उरग—नागकेसर, नाग–सीसा धातु या हाथी दान्त या नागवल्ली ?, सिकता–शुद्ध रेत ?, वर–सैन्धव नमक, गरद–संख्याविष ?, घन–अभ्रक, गरला–मधुमक्खी, मुख—कठल वढल, शृङ्ग—शृङ्गोदर ? या अगरकाष्ठ, स्फटिक—स्फटिक मणि ? या फिटकरी, अवर—अवरदारुक—पत्र विष ? मुक्ताफल—कपूर ? या मोती या वरमुक्ताफल—बडा मोती, वर—गूगल, कान्त—अयस्कान्त या वरकान्त–श्रेष्ठ अयस्कान्त, कुरञ्ज ?–करञ्ज—करञ्जवा, क्षारत्रय–सज्जीक्षार यवक्षार सुहागा, रवि—ताम्बा, कञ्चुक—सर्प की केंचुली, चुलक ?, उडुप ?, बन्ध्या—बांझककोडा या ह्रीवेर, गरुड—सोनामाखी, अरि–खदिरपत्रिका, सुजाम्बलिक—अच्छी जाम्बलिक—जम्बाल–गन्धतृण या केतकी—केवडा, कुश–कुशातृण, कुड्मल—पुष्पकोरक, रुक्म–तीक्ष्ण लोह । शुद्ध की हुई २६ वस्तुओं को लेकर विराजमान मूषामुख मध्य में भर कर पद्माकर कुण्ड के अन्दर बीच में बडी मूषा—बोतल को रख कर सिंहाकृति वाले भस्त्रिकामुख छिद्रों से अतिवेग से गला कर ३०० दर्जे की उष्णता से गला कर यन्त्र के मुख में पिघले रस को सींच दे, अति मृदुल दृढ स्फटिक अति शुद्ध विद्युद्वेग को हरने वाला श्रेष्ठ दर्पण हो जावे ॥ ३४–३६ ॥

दम्भोलिलोहमुक्तं लोहतन्त्रप्रकरणे—दम्भोलि लोहा कहा है लोहतन्त्रप्रकरण में —

उर्वारकं कारविकं कुरङ्गं शुण्डालकं चन्द्रमुखं विरिञ्चिम् ।
क्रान्तोदरं जा(या ?) लिकसिंहवक्त्रौ ज्योत्स्नाकरं क्ष्विङ्कपञ्चमौत्विकौ ।
एतान् समाहृत्य विशुद्धलोहान् सन्तोल्य पश्चात् समभागतः क्रमात् ॥ ३७ ॥
मण्डूकमूषोदरमध्यास्ये सम्पूर्य चञ्चूमुखकुण्डमध्ये ।
संस्थाप्य पञ्चाननभस्त्रिकामुखात् सङ्गालयेत् पञ्चशतोष्णकक्ष्यतः ॥ ३८ ॥
दम्भोलिलोहं प्रभवेद् विशुद्धमेवं कृते शास्त्रविधानतः क्रमात् ॥ इत्यादि ॥

उर्वारक, कारविक, कुरङ्ग, शुण्डालक, चन्द्रमुख, विरिञ्च, क्रान्तोदर, जालिक, सिंहवक्त्र, ज्योत्स्नाकर, क्ष्विङ्क, पञ्चमौत्विक । इन विशुद्ध लोहों को लेकर समानभाग तोल कर मण्डूक मूषोदर मध्यम के मुख में भर कर पञ्चमुख कुण्ड के मध्य में संस्थापित करके पांचमुख वाली भस्त्रिका से ५०० दर्जे की

उष्णता से शास्त्र विधान से गलावे तो दम्भोलि लोहा विशुद्ध हो जावे ॥ ३७-३८॥

पौण्ड्रिकादयो मणिप्रकरणे निरूपिताः—पौण्ड्रिक आदि मणियां मणिप्रकरण में कही हैं—

पौण्ड्रकोजृम्भकश्चैव शिविरश्चापलोचनः ।
चपलघ्नोंशुपमणिर्वीरघोगजतुण्डिकः ॥ ३९ ॥
तारामुखो माण्डलिको पञ्चास्यो मृतसेचकः ।
एतद्द्वादशसंख्याका मणयोजिगरान्तकाः ॥ ४० ॥ इत्यादि ॥

पौण्ड्रिक, जृम्भक, शिविर, अपलोचन, चपलघ्न, अंशुप, वीरघ, गजतुण्डिक, तारामुख, माण्डलिक, पञ्चास्य, अमृतसेचक । ये १२ मणियां अजिगरा शक्ति का अन्त करने वाली हैं ॥३९-४०॥

महोर्णद्रावकमुक्तं द्रावकप्रकरणे—महोर्ण द्रावक कहा है द्रावकप्रकरण में—

पैनाशकं पञ्चमुखं प्राणक्षारत्रयं तथा ।
गुञ्जदलं माक्षिकं च कुडुपं वज्रकन्दकम् ॥ ४१ ॥
बुडिलं पारदंकान्तमीङ्गालाम्लशिवारिकम् ।
समभागेन संगृह्य शुद्धिं कृत्वा यथाविधि ॥ ४२ ॥
द्रवाहरणयन्त्रास्ये सम्पूर्य द्रावकं हरेत् ।
एतन्महोर्णद्रवमित्युच्यते शास्त्रवित्तमैः ॥४३॥ इत्यादि ॥

पैनाशक ?, पञ्चमुख ?, प्राणक्षार–नोसादर ?, गुञ्जादल–घूंघची के दल–दाने या पत्ते, माक्षिक–समुद्रलवण या सोनामाखी ?, कुडुप ?, वज्रकन्द–कटुशूरण–जमीकन्द या लालकरञ्ज ?, बुडिल ?, पारा, कान्त–अयस्कान्त, इङ्गालाम्ल–अङ्गारों का अम्ल–आग लगानेवाला अम्लरस (तेजाब ?), शिवारिक–अभ्रक ? । इन्हें समान भाग लेकर शुद्ध करके द्रव निकालने वाले यन्त्रमुख में भरकर द्रावक ले उत्तम शास्त्रवेत्ता जनों द्वारा यह महोर्ण द्राव कहा जाता है ॥४१-४३॥

अथ प्राणकुण्डलिनीयन्त्र निर्णयः—अब प्राणकुण्डलिनीयन्त्र का निर्णय देते हैं—

तदुक्तं खेटसंग्रहे—वह कहा है खेटसंग्रह में—

धूमविद्युद्वातमार्गसन्धिर्यद् व्योमयानके ।
तत्प्राणकुण्डलीस्थानमित्याहुश्शास्त्रवित्तमाः ॥४४॥
एतच्छक्तित्रयाणां तु तत्तन्मार्गानुसारतः ।
नियामनस्तम्भनचालनसंयोजनादिषु ॥४५॥
नियामकार्थं विधिवत् तत्र यस्स्थाप्यते बुधैः ।
तत्प्राणकुण्डलीनामयन्त्रमित्यभिधीयते ॥४६॥ इत्यादि ॥

धूम विद्युत् वायु के मार्गों की सन्धि विमान में प्राणकुण्डली स्थान श्रेष्ठ शास्त्रज्ञों द्वारा कही है, इन तीनों शक्तियों का उस उसके मार्गानुसार नियामन (कण्ट्रोल), स्तम्भन, चालन, संयोजन आदि व्यवस्थार्थ वहां जो विद्वानों द्वारा स्थापित किया जावे वह प्राणकुण्डलीयन्त्र कहा जाता है ॥४४-४६॥

क्रियासारेपि--क्रियासार में भी—

क्रमाद् विद्युद्वातधूमशक्तीनां सप्रमाणतः ।
तत्कालानुसारेण चोदनादिक्रियादिषु ॥४७॥
नियामकार्थं तद्यानप्राणकुण्डलीकेन्द्रके ।
मूलस्थाने स्थाप्यते यद् यन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥४८॥
प्राणकुण्डलिनीयन्त्रमिति तत्सम्प्रचक्षते ।

क्रम से विद्युत् वायु धूमशक्तियों का प्रमाणसहित उस उसके अनुसार प्रेरणा आदि क्रियाओं में नियामकार्थ—नियन्त्रण के लिये विमान के प्राणकुण्डलीकेन्द्र वाले मूलस्थान में जो यन्त्रशास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा स्थापित किया जाता है उसे प्राणकुण्डलिनीयन्त्र कहते हैं ॥४७-४८॥

यन्त्रसर्वस्वेपि—यन्त्रसर्वस्व में भी कहा है—

विमाने धूमविद्युद्वातशक्तीनां यथाविधि ।
प्रसारणे चालने च चोदने स्तम्भनेपि च ॥४९॥
विचित्रगमने तद्वत् तिर्यग्गमनकर्मणि ।
नियम्य सप्रमाणेन तत्तन्नालमुखान्तरात् ॥५०॥
प्रेरणार्थं संग्रहेण यथाशास्त्रं यथामति ।
प्राणकुण्डलिनीयन्त्रं शास्त्रेस्मिन्सम्प्रकीर्त्यते ॥५१॥
चतुरश्रं वर्तुलं वा केन्द्राष्टकविराजितम् ।
वितस्तित्रयमायामं वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥५२॥
कुर्याद् वृषललोहेन पीठमादौ यथाविधि ।
एकैककेन्द्रस्थानेथ चक्रद्वयविराजितम् ॥५३॥
प्रदक्षिणावर्तकीलस्थापनार्थं यथाविधि ।
रन्ध्रत्रयसमायुक्तान् चतुर्दन्तविराजितान् ॥५४॥
शङ्कुत्रयसमाविष्टान् सूक्ष्मपीठान् दृढं यथा ।
सन्धारयेत् ततस्तेषां मध्ये शङ्कुमपि क्रमात् ॥५५॥

विमान में धूम विद्युत् वायु शक्तियों के यथाविधि प्रसारण चालन प्रेरण स्तम्भन में विचित्र-गमन तथा तिर्यग्गमनकर्म में सप्रमाण नियन्त्रित करके उस उस नालके मुखके अन्दरसे प्रेरणार्थ संक्षेपसे यथाशास्त्र यथामति प्राणकुण्डलिनीयन्त्र इस शास्त्र में कहा जाता है। प्रथम चौकोन या गोल आठकेन्द्रों में विरजित ३ बालिस्त लम्बा ३ बालिश्त ऊंचा वृषल लोहे से पीठ करे। एक एक केन्द्रस्थान में दो चक्रविराजित हों घूमनेवाली कील के स्थापनार्थ यथाविधि तीन छिद्रों से युक्त चार दान्तों के सहित तीन शंकुओं से सम्बन्धित—घिरे हुए सूक्ष्मपीठों को लगावे उनके मध्य में शंकु भी लगावे ॥४९-५५॥

उक्तविद्युद्धूमवातपथनालमुखावधि ।
प्रकाशनतिरोधानहस्तचक्रैर्विराजितम् ॥५६॥

सव्यापसव्यचलनकीलकद्वयशोभितम् ।
साङ्केतार्थं तन्मध्ये शब्दनालेन संयुतम् ।।५७।।
पक्षाघातकचक्राद्यैस्सकीलैस्सशलाककैः ।
संशोभितं रक्तवर्णं नालत्रयमतः परम् ।।५८।।
पीठस्थशङ्कुनः पूर्वे ईशान्याग्नेयकेन्द्रतः ।
तथैव पश्चिमदिशि मध्यकेन्द्राद् यथाक्रमम् ।।५६।।
यानकुण्डलिनीमध्यमार्गस्थानावधिक्रमात् ।
सन्धार्यावृत्तादिकीलशङ्कुभिस्सुदृढं यथा ।।३०।।

उक्त विद्युत् धूमवात के मार्ग सन्धीनाल मुख अवधि तक प्रकाशक्रिया प्रकट करने और तिरोभावक्रिया बन्द करने के साधनरूप हस्तचक्रों से विराजित सीधी उल्टी गति देने वाली दो कीलों—पेंचों से शोभित उनके मध्य में संकेत देने वाले शब्दनाल से युक्त पक्षाघात—एक पक्ष में गति प्रेरणा देने वाले कीलसहित और शलाकाओंसहित चक्र आदि से युक्त लाल रंग की तीन नालें पीठस्थ शंकु के पूर्व में ईशान्य आग्नेय केन्द्र से पश्चिम दिशा में मध्य मार्ग के स्थान तक क्रम से लगा कर जोड कर घूमने वाली कीलों के शंकुओं से जैसे सुदृढ़—।। ५६-६० ।।

संस्थाप्य विधिवत् केन्द्रत्रयमूलावधि दृढम् ।
चालनादिक्रियास्सर्वैर्हस्तचक्रैर्यथाक्रमम् ।। ६१ ।।
तत्तत्कीलचालनेन तत्तन्नालमुखान्तरात् ।
भवेत् तेन व्योमयानसञ्चारः प्रभवेत् ततः ।। ६२ ।।
उक्तकेन्द्राष्टस्थानमध्यपीठाद् यथाविधि ।
एकैकनालतन्त्रीं सरन्ध्रां दृढतरां क्रमात् ।। ६३ ।।
सन्धार्य शङ्कुनः पूर्वकेन्द्रपीठान्तरादितः ।
पूर्वोक्तनालत्रयोर्ध्वभागे वातायनान्तरे ।। ६४ ।।
सन्धारयेत् तदग्राणि कीलकैस्सुदृढं यथा ।
यानसञ्चारोपयोगं कृत्वा शक्तित्रयं तथा ।। ६५ ।।

—हो ऐसे विधिवत् तीन केन्द्र के मूल तक संस्थापित करके चालन आदि क्रियाएं सब हस्तचक्रों से यथाक्रम उनकी कीली चलाने से उस उस नालमुख के अन्दर से हो सके फिर उससे विमानसञ्चार बन सके। उक्त केन्द्र के आठ स्थान के मध्य पीठ से यथाविधि छिद्रसहित दृढ एक एक नालतार को शंकु से पूर्व केन्द्र के पीठ के अन्दर से जोड कर पूर्वोक्त तीन नालों के ऊपरि भाग में वातायनयन्त्र के अन्दर लगावे उनके अग्रभाग कीलों से दृढ विमानचालन में उपयोग करके तीनों शक्तियों—।।६८-६५।।

शक्तित्रयावशिष्टांशं समग्रमतिवेगतः ।
उक्ताष्टनालरन्ध्रेषु योजयेत् कीलचालनात् ।। ६६ ।।

क्रियासारेपि--क्रियासार में भी—

क्रमाद् विद्युद्वातधूमशक्तीनां सप्रमाणतः ।
तत्कालानुसारेण चोदनादिक्रियादिषु ॥४७॥
नियामकार्थं तद्यानप्राणकुण्डलीकेन्द्रके ।
मूलस्थाने स्थाप्यते यद् यन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥४८॥
प्राणकुण्डलिनीयन्त्रमिति तत्सम्प्रचक्षते ।

क्रम से विद्युत् वायु धूमशक्तियों का प्रमाणसहित उस उसके अनुसार प्रेरणा आदि क्रियाओं में नियामकार्थ—नियन्त्रण के लिये विमान के प्राणकुण्डलीकेन्द्र वाले मूलस्थान में जो यन्त्रशास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा स्थापित किया जाता है उसे प्राणकुण्डलिनीयन्त्र कहते हैं ॥४७-४८॥

यन्त्रसर्वस्वेपि—यन्त्रसर्वस्व में भी कहा है—

विमाने धूमविद्युद्वातशक्तीनां यथाविधि ।
प्रसारणे चालने च चोदने स्तम्भनेपि च ॥४९॥
विचित्रगमने तद्वत् तिर्यग्गमनकर्मणि ।
नियम्य सप्रमाणेन तत्तन्नालमुखान्तरात् ॥५०॥
प्रेरणार्थं संग्रहेण यथाशास्त्रं यथामति ।
प्राणकुण्डलिनीयन्त्रं शास्त्रे स्मिन्सम्प्रकीर्त्यते ॥५१॥
चतुरश्रं वंर्तुलं वा केन्द्राष्टकविराजितम् ।
वितस्तित्रयमायामं वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥५२॥
कुर्याद् वृषललोहेन पीठमादौ यथाविधि ।
एकैककेन्द्रस्थानेथ चक्रद्वयविराजितम् ॥५३॥
प्रदक्षिणावर्तकीलस्थापनार्थं यथाविधि ।
रन्ध्रत्रयसमायुक्तान् चतुर्दन्तविराजितान् ॥५४॥
शङ्कुत्रयसमाविष्टान् सूक्ष्मपीठान् दृढं यथा ।
सन्धारयेत् ततस्तेषां मध्ये शङ्कुमपि क्रमात् ॥५५॥

विमान में धूम विद्युत् वायु शक्तियों के यथाविधि प्रसारण चालन प्रेरण स्तम्भन में विचित्र-गमन तथा तिर्यग्गमनकर्म में सप्रमाण नियन्त्रित करके उस उस नालके मुखके अन्दरसे प्रेरणार्थ संक्षेपसे यथाशास्त्र यथामति प्राणकुण्डलिनीयन्त्र इस शास्त्र में कहा जाता है। प्रथम चौकोन या गोल आठकेन्द्रों में विरजित ३ बालिस्त लम्बा ३ बालिश्त ऊंचा वृषल लोहे से पीठ करे। एक एक केन्द्रस्थान में दो चक्रविराजित हों घूमनेवाली कील के स्थापनार्थ यथाविधि तीन छिद्रों से युक्त चार दान्तों के सहित तीन शंकुओं से सम्बन्धित—घिरे हुए सूक्ष्मपीठों को लगावे उनके मध्य में शंकु भी लगावे ॥४९-५५॥

उक्तविद्युद्धूमवातपथनालमुखावधि ।
प्रकाशनतिरोधानहस्तचक्रैर्विराजितम् ॥५६॥

सव्यापसव्यचलनकीलकद्वयशोभितम् ।
साङ्केतार्थं तन्मध्ये शब्दनालेन संयुतम् ॥५७॥
पक्षाघातकचक्राद्यैस्सकीलैस्सशलाककैः ।
संशोभितं रक्तवर्णं नालत्रयमतः परम् ॥५८॥
पीठस्थशकुनः पूर्वे ईशान्याग्नेयकेन्द्रतः ।
तथैव पश्चिमदिशि मध्यकेन्द्राद् यथाक्रमम् ॥५९॥
यानकुण्डलिनीमध्यमार्गस्थानावधिक्रमात् ।
सन्धार्यावृत्तादिकीलशङ्कुभिस्सुदृढं यथा ॥३०॥

उक्त विद्युत् धूमवात के मार्ग सन्धीनाल मुख अवधि तक प्रकाशक्रिया प्रकट करने और तिरोभावक्रिया बन्द करने के साधनरूप हस्तचक्रों से विराजित सीधी उल्टी गति देने वाली दो कीलों—पेंचों से शोभित उनके मध्य में संकेत देने वाले शब्दनाल से युक्त पक्षाघात—एक पक्ष में गति प्रेरणा देने वाले कीलसहित और शलाकाओंसहित चक्र आदि से युक्त लाल रंग की तीन नालें पीठस्थ शंकु के पूर्व में ईशान्य आग्नेय केन्द्र से पश्चिम दिशा में मध्य मार्ग के स्थान तक क्रम से लगा कर जोड कर घूमने वाली कीलों के शंकुओं से जैसे सुदृढ़—॥ ५६-६० ॥

संस्थाप्य विधिवत् केन्द्रत्रयमूलावधि दृढम् ।
चालनादिक्रियास्सर्वैर्हस्तचक्रैर्यथाक्रमम् ॥ ६१ ॥
तत्तत्कीलचालनेन तत्तन्नालमुखान्तरात् ।
भवेत् तेन व्योमयानसञ्चारः प्रभवेत् ततः ॥ ६२ ॥
उक्तकेन्द्राष्टस्थानमध्यपीठाद् यथाविधि ।
एकैकनालतन्त्रीं सरन्ध्रां दृढतरां क्रमात् ॥ ६३ ॥
सन्धार्य शङ्कुनः पूर्वकेन्द्रपीठान्तरादितः ।
पूर्वोक्तनालत्रयोर्ध्वभागे वातायनान्तरे ॥ ६४ ॥
सन्धारयेत् तदग्राणि कीलकैस्सुदृढं यथा ।
यानसञ्चारोपयोगं कृत्वा शक्तित्रयं तथा ॥ ६५ ॥

—हो ऐसे विधिवत् तीन केन्द्र के मूल तक संस्थापित करके चालन आदि क्रियाएं सब हस्त-चक्रों से यथाक्रम उनकी कीली चलाने से उस उस नालमुख के अन्दर से हो सके फिर उससे विमान-सञ्चार बन सके। उक्त केन्द्र के आठ स्थान के मध्य पीठ से यथाविधि छिद्रसहित दृढ एक एक नालतार को शंकु से पूर्व केन्द्र के पीठ के अन्दर से जोड कर पूर्वोक्त तीन नालों के ऊपरि भाग में वातायनयन्त्र के अन्दर लगावे उनके अग्रभाग कीलों से दृढ विमानचालन में उपयोग करके तीनों शक्तियों—॥६८-६५॥

शक्तित्रयावशिष्टांशं समग्रमतिवेगतः ।
उक्ताष्टनालरन्ध्रेषु योजयेत् कीलचालनात् ॥ ६६ ॥

ततश्शक्तित्रयं गत्वा आकाशे पतति स्वयम् ।
पश्चाद् वातप्रवाहे सम्मिलित्वा नाशमेधते ।। ६७ ।।
तस्माद् विमानसञ्चारो अनायासेन सिध्यति ।

—तीनों शक्तियों के अवशिष्ट समग्र अंश को अतिवेग से कहे हुए आठ नालों के छिद्रों में कील पच चला कर लगा दे फिर तीनों शक्तियां आकाश में पहुंच कर गिर जाती हैं—स्वयं नष्ट हो जाती हैं पश्चात् वायुप्रवाह में मिल कर नाश को प्राप्त हो जाती हैं अतः विमानसञ्चार अनायास सिद्ध होता है ।। ६६-६७ ।।

अथ शक्त्युद्गमयन्त्रनिर्णयः—अब शक्त्युद्गम यन्त्र का निर्णय देते हैं—

एवमुक्त्वा प्राणकुण्डलिनीयन्त्रमतः परम् ।
अथ शक्त्युद्गमयन्त्रस्संग्रहेण निरूप्यते ।। ६८ ।।

इस प्रकार प्राणकुण्डलिनी यन्त्र कहकर उससे आगे शक्त्युद्गम यन्त्र संग्रह से निरूपित किया जाता है ।। ६८ ।।

उक्तं हि खेटविलासे—खेटविलास में कहा है—

ग्रहभानामष्टशक्तीर्महावारुणीशक्तितः ।
आकृष्यन्ते पौर्णिमायां कार्तिके मासि वेगतः ।। ६९ ।।
अकाशकक्ष्यपरिधिकेन्द्रेष्वथ यथाक्रमम् ।
सप्तत्रिंशोत्तरशतकेन्द्ररेखापथि क्रमात् ।। ७० ।।
जलपिञ्जूलिकाशक्त्याकर्षणादतिवेगतः ।
तच्छक्तयोऽष्टौ सर्वत्र व्याप्नुवन्ति विशेषतः ।। ७१ ।।
अन्योन्यशक्तिसंसर्गाद्धिमोद्रेको भयङ्करः ।
भवेत् पश्चात् त्रिधा तद्विभागस्स्याच्छक्तिभेदतः ।। ७२ ।।
तेष्वेकांशो शीतरसरूपवातो भवेत् ततः ।
अपरो जलशी (सी ?) तस्य सीकराकारमेधते ।। ७३ ।।
अन्यो भवेद् वातशीतरसप्रावाहिकः क्रमात् ।
यदा यानस्समायाति केन्द्ररेखापथि क्रमात् ।। ७४ ।।
वातशीतरसप्रवाहिकशक्तिस्स्ववेगतः ।
विमानशक्तिसर्वस्वमपकर्षति तत्क्षणम् ।। ७५ ।।

ग्रह नक्षत्रों की आठ शक्तियां महावारुणी शक्ति से कार्तिक मास में पौर्णमासी में वेग से खींची जाती हैं, आकाशकक्षा सम्बन्धी परिधि केन्द्रों में यथाक्रम १३७ वें केन्द्ररेखामार्ग में जल की पिनी रूई जैसी भाप शक्ति—अभ्रशक्ति के आकर्षण से अतिवेग से वे आठ शक्ति सर्वत्र विशेष व्याप जाती हैं, एक दूसरे के शक्तिसंसर्ग से भयंकर हिम का उत्थान हो जावे पश्चात् शक्तिभेद से उसका विभाग तीन प्रकार हो जावे, उनमें एक अंश शीतरसरूप वायु—ठण्डी भापमय वायु हो

फिर दूसरी शीत जल की फुवार रूप को प्राप्त हो जाती है, तीसरी शीत वायुधारा को प्रवाहित करने वाली शक्ति। जब विमान केन्द्ररेखा के नीचे के मार्ग में आता है तो शीतवायुधारा को प्रवाहित करने वाली शक्ति स्ववेग से विमानशक्ति के सर्वस्व—सामर्थ्य को तुरन्त खींच लेती है ॥ ६६–७५ ॥

तथा शीतरसरूपवातशक्तिस्स्वभावतः ।
यानस्थसर्वयन्तॄणां बलमाकर्षति क्रमात् ॥ ७६ ॥
जलस्य सीत्कराकारशक्तिः पश्चात् स्ववेगतः ।
यानमावृत्य सर्वत्राहश्यं कुर्वीत नान्यथा ॥ ७७ ॥
बलापकर्षणाद् यानपतनं तद्वदेव हि ।
यन्तॄणां प्राणहानिश्च यानागोचरमेव च ॥ ७८ ॥
प्रभवेदेककालेन कष्टात्कष्टतरं ततः ।
तस्मात् तत्परिहाराय यन्त्रं शक्त्युद्गमाभिधम् ॥७६॥
विमाननाभिकेन्द्रस्य मध्ये संस्थापयेद् दृढम् ॥ इत्यादि ॥

और दूसरी शीतरसरूप वायु—ठण्डी भापमय शक्ति अपने स्वभाव से विमान में स्थित यात्रियों के बल को खींच लेती है, तीसरी जल की फुवारा के आकार वाली शक्ति विमान को घेरकर सब ओर उसे अदृश्य कर देती है। 'इस प्रकार तीनों शक्तियों के द्वारा' बल को खींचलेने से विमान गिर जाता है यात्रियों की प्राणहानि और विमान का अदृश्य-लापता हो जाना एक साथ कष्ट से अधिक कष्ट हो जावे। अतः उसके परिहार के लिये शक्त्युद्गमनामकयन्त्र विमाननाभि के केन्द्र मध्य में दृढरूप से संस्थापित करे ॥ ७६—७८ ॥

उक्तं हि खेटसंग्रहे—कहा है खेटसंग्रह ग्रन्थ में—

कुजार्कशनिजाम्भरिबुधमाण्डलिको रुरुः ।
विश्वप्रकाशकश्चेति ग्रहाश्चाष्टावितीरिताः ॥ ८० ॥
कृत्तिका शततारश्च मखामृगशिरास्तथा ।
चित्राश्रवणपुषाश्वीत्यष्टभा इति निर्णिताः ॥ ८१ ॥
स्वस्वसञ्चारपरिधिमण्डलकेन्द्ररेखासु चारतः ।
एते ग्रहाश्च नक्षत्रास्सामीप्यं शरदि क्रमात् ॥ ८२ ॥

कुज—मङ्गल, अर्क--सूर्य, शनि, जाम्भारि ?,-शुक्र?, बुध, माण्डलिक—चन्द्रमा, रुरु ?, विश्वप्रकाशक—बृहस्पति ये आठ ग्रह कहे गए हैं। कृत्तिका, शततार--शतभिषक्, मखा—मघा, मृगशिराः—मृगशीर्ष चित्रा, श्रवण, पूषा, अश्विनौ ये आठ दीप्त नक्षत्र निर्णय किए हैं। ये ग्रह नक्षत्र अपने अपने सञ्चार-गतिमार्ग के परिधिमण्डल की केन्द्ररेखाओं में गतिक्रम से क्रमशः शरद् ऋतु में समीपता को प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ८०—८२ ॥

हस्तलेख कापी संख्या १३—

प्राप्यन्ते चारक्रमेण तेन शक्तचष्टकं भवेत् ।। इत्यादि ।।

प्राप्त होते हैं चार-सञ्चारक्रम से उससे शक्तयष्टक होवे ।

चारनिबन्धनेऽपि—चारनिबन्धनग्रन्थ में भी कहा है—

गणितोक्तप्रकारेण ग्रहभानां यथाक्रमम् ।
स्वस्वपरिधिमण्डलकेन्द्रे रेखानुसारतः ।।१।।
चारातिचारादिवशात् सामीप्यं केवलं भवेत् ।
शक्तिसंघर्षणं तेन भवेदन्योन्यमद्भुतम् ।।२।।
एवमेकैकनक्षत्रग्रहयोश्शक्तिघर्षणात् ।
शक्तयोष्टौ प्रजायन्तेत्यन्तशीतघनात्मिकाः ।।३।। इत्यादि ।।

गणित-गणित ज्योतिष् में कहे प्रकार से ग्रह नक्षत्रों का यथाक्रम अपने अपने परिधिमण्डल केन्द्र में रेखा के अनुसार चार अतिचार-गति सञ्चार आदि के वश केवल-अधिक समीपता हो जावे तो उससे परस्पर अद्भुत शक्तिसंघर्ष हो जावे, इस प्रकार एक एक ग्रह और नक्षत्र के शक्तिसंघर्ष से अत्यन्त शीतमूर्तिरूप आठ शक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं ।।१ – ३।।

उक्तं हि शक्तिसर्वस्वे-शक्तिसर्वस्व में कहा है—

कृत्तिकाकुजयोश्शक्तिसंघर्षणवशात् स्वतः ।
काचिच्छक्तच्युद्गमा नाम शक्तिस्सञ्जायते क्रमात् ।।२।।
तथैव शततारार्कशक्तिसंघर्षणेन च ।
शीतज्वालामुखी नाम काचिच्छक्तिः प्रजायते ।।५।।
मघा (खा ?) शन्योश्शक्तिसंघर्षणवेगात् तथैव हि ।
शैत्यदंष्ट्राभिधा (दा?) शक्ति र्जायते सर्वतोमुखा ।।६।।
तथा मृगशिराबम्भारिशक्त्योर्घर्षणेन च ।
सञ्जायते शीतरसवातशक्तिर्महोज्वला ।।७।।
तथैव चित्रा (त्त ?) बुधयोश्शक्तिसंघर्षणक्रमात् ।
शैत्यहैमाभिधा (दा?) काचिज्जायजे शक्तिरुज्वला ।।८।।

तथा श्रवणमाण्डलयोश्शक्तिसंघर्षणक्रमात् ।
जायते स्फोरणी नाम शक्तिश्शीतप्रवाहिका ॥९॥

कृत्तिका नक्षत्र और मङ्गलग्रह की शक्तियों के संघर्षवश स्वतः शक्त्युद्मा नामक कोई शक्ति प्रकट हो जाती है वैसे ही शतभिषक् नक्षत्र और सूर्य की शक्तियों के संघर्ष से शीतज्वालामुखी नाम की कोई शक्ति प्रकट हो जाती है वैसे ही मघा नक्षत्र और शनि ग्रह की शक्तियों के संघर्ष से शैत्यदंष्ट्रा नामक शक्ति सर्वतोमुख उत्पन्न हो जाती है। तथा मृगशिराः नक्षत्र और वम्भारि–प्रजापति वा बृहस्पति ? की शक्तियों के संघर्ष से शीतरसव्रातशक्ति महोज्ज्वला उत्पन्न हो जाती है। वैसे ही चित्रा नक्षत्र और बुध ग्रह की शक्तियों के संघर्ष से शैत्यहैमा नामक कोई उज्ज्वल शक्ति उत्पन्न हो जाती है। तथा श्रवण नक्षत्र और माण्डल–मण्डलवृत्रवाले चन्द्र ? की शक्तियों के संघर्ष से स्फोरणी नामक शीतप्रवाहिका शक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥४–९॥

पूषारुरुकयोश्शक्तिसंघर्षणवशात् तथा ।
संजायते शीतघनरसशक्तिर्महोर्मिला ॥१०॥
विश्वप्रकाशाश्विन्योश्च शक्तिसंघर्षणवशात् स्वतः ।
शैत्यमण्डूकिनी नाम काचिच्छक्तिः प्रजायते ॥११॥
शैत्योद्गमाभिधा शक्तिश्शीतज्वालामुखी तथा ।
शैत्यदंष्ट्रा शीतरसज्वालाशक्तिस्तथैव च ॥१२॥
शैत्यहेमा स्फोरणी च शीतघनरसात्मिका ।
शैत्यमण्डूकिनी चेति शक्तयोष्टौ प्रकीर्तिताः ॥१३॥
ताश्चान्योन्ययोगेन ऋतकालानुसारतः ।
भिद्यन्ते षट् प्रकारेण शक्तिभेदस्ततोभवेत् ॥१४॥

पूषा–रेवती नक्षत्र और रुरुक ? की शक्तियों के संघर्षवश शीतघनरसशक्ति महोर्मिला–नदीतरङ्गोंवाली उत्पन्न हो जाती है, विश्वप्रकाश ? और अश्विनियों की शक्ति के संघर्षवश शैत्यमण्डूकिनी नामक कोई शक्ति प्रकट हो जाती है। शैत्योद्गमनामक शक्ति, शीतज्वालामुखी, शैत्यदंष्ट्रा, शीतरसज्वालाशक्ति, शैत्यहेमा, स्फोरणी, शीतघनरसात्मिका, शैत्यमण्डूकिनी ये आठ शक्तियां कही हैं वे अन्योन्य के सम्बन्ध से ऋतुकालानुसार भिन्न भिन्न होती है शक्तिभेद तो छः प्रकार का है ॥१०–१४॥

तदुक्तमृतुकल्पे—वह ऋतुकल्प ग्रन्थ में कही है—

वसन्ते पञ्चधा ग्रीष्म ऋतौ सप्तप्रकारतः ।
अष्टधा वार्षिके तद्वत् त्रिधा शरदि वर्णितः ॥१५॥
हे (है?) मन्ते दशधा प्रोक्तो द्विधा शिशिरतौं* क्रमात् ।
एवं क्रमेण भिद्यन्ते शक्तयष्षट् प्रकारतः ॥१६॥

* शशऋतौ सस्तेलेखे ।

त्रिधा यदुक्तं शरदि शक्तिभेदोत्र शास्त्रतः ।
तत्स्वरूपं प्रसङ्गत्या संग्रहेण निरूप्यते ॥१७॥
पश्चादादित्यकिरणसम्पर्कात् ता यथाक्रमम् ।
विभिद्यन्ते त्रिधा सम्यक् शक्तिसम्मेलनक्रमात् ॥१८॥

वसन्त में पांच प्रकार की ग्रीष्म ऋतु में सात प्रकार से वर्षा ऋतु में आठ प्रकार की शरद्‌ऋतु में तीन प्रकार की कही हैं। हेमन्त ऋतु में दश प्रकार की कही शिशिर ऋतु में दो प्रकार की। इस क्रम से शक्तियां छः प्रकार से विभक्त होती हैं। शरद् ऋतु में जो शक्तिभेद तीन प्रकार का है उसका स्वरूप प्रसङ्ग से संक्षेप से निरूपित किया जाता है, पश्चात् सूर्यकिरण के सम्पर्क से यथाक्रम तीन प्रकार से विभक्त हो जाती हैं शक्तिसम्मेलन के क्रम से ॥ १५—१८ ॥

तासां नामानि शास्त्रोक्तप्रकारेणाभिवर्ण्यते ।
शीतज्वाला शैत्यदंष्ट्रा तथा शैत्योद्गमा क्रमात् ॥ १९ ॥
सम्मिलित्वा शीतरसवातशक्तिरभूत् स्वतः ।
एवं शैत्यरसज्वाला शैत्यहेमा च स्फोरणी ॥ २० ॥
मिलित्वैता वारिशीतसीकरा शक्तितां ययुः ।
तथा शीतघनरसा शैत्यमण्डूकिनी क्रमात् ॥ २१ ॥
परस्परं मिलित्वाथ महावेगेन तत्क्षणात् ।
शीतवातरसप्रवाहिकशक्तित्वमापतुः ॥ २२ ॥
एवं शरदि शक्तीनां त्रैविध्यं शास्त्रतस्स्मृतम् ॥ इत्यादि ॥

उनके नामों को शास्त्र में कहे प्रकार से वर्णित करते हैं। शीतज्वाला शैत्यदंष्ट्रा शैत्योद्गमा मिलकर शीतरस वातशक्ति हो गई, इसी प्रकार शैत्यरस ज्वाला शैत्य हेमा स्फोरणी मिलकर वारिशीत शक्ति को प्राप्त हो गईं और शीतघन रसा शैत्यमण्डूकिनी परस्पर मिलकर महावेग से तत्क्षण शीतवात रस प्रवाहित शक्तिता को प्राप्त हो गईं इस प्रकार शरद्‌ऋतु में शक्तियों की त्रिविधता शास्त्र से कही गई है ॥ १९—२२ ॥

यन्त्रस्वरूपमुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यन्त्रस्वरूप कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

शक्तित्रयविनाशार्थं यन्त्रशक्त्युद्गमाभिधाम् (दम्?) ॥२३॥
संग्रहेण यथाशास्त्रं यथामति निरूप्यते ।
यन्तॄणां च विमानस्य सप्रमाणं यथाविधि ॥ २४ ॥
आदावावरकौ कुर्याच्छैत्यग्राहकलोहतः ।
संकोचनविकासनकीलकद्वयबन्धनम् ॥ २५ ॥
कुर्याद् विमानावरणाग्रेन्त्यभागे च शास्त्रतः ।
उभयोर्मध्यदण्डाग्रे सन्धिकीलीं प्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥

शीतघ्नदर्पणात् पश्चात् कुर्यान्नालत्रयं क्रमात् ।
यन्तृस्थानादूर्ध्वमुखे पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ २७ ॥
विमानयन्ता (त्वो ?)वरणावावृत्यैव यथाविधि ।
नालत्रयं विमानेस्मिन् स्थापयेत् सुदृढं यथा ॥ २८ ॥
शीतवातायनीनालतन्त्रीन् नालत्रयान्तरे ।
सन्धारयेत्तथैवाग्रे भ्रामणीचक्रमप्यथ ॥ २९ ॥
यावच्छक्तित्रयं व्योमयानमावृत्य वेगतः ।
यानशक्तिं हरेत् तावद् यानावरकतः क्रमात् ॥ ३० ॥

उपर्युक्त घातक तीन शक्तियों के विनाशार्थ यन्त्रशक्ति-उद्गमानामक को संक्षेप से यथाशास्त्र यथामति निरूपित की जाती है। विमान के यात्रियों के सप्रमाण आदि में शैत्यग्राहक लोहे से दो आवरक—रक्षक करे। बन्द करने खोलने के साधनभूत दो कीलबन्धन भी विमानावरण के आगे और सामने अन्तवाले भाग में शास्त्ररीति से दोनों के मध्यदण्ड के अग्रभाग में सन्धिकीली को बनावे। पश्चात् शीतनाशक दर्पण से क्रम से तीन नाल करे चालक के स्थान के ऊपर की ओर दोनों पार्श्वों में भी करे। विमानचालक दो आवरणों को डालकर यथाविधि इस विमान में तीन नाल स्थापित करे, शीतवातायनीनाल तारों को तीनों नालों के अन्दर लगावे तथा आगे भ्रामणीचक्र भी लगावे। तीनों शक्तियों के अनुरूप विमान को वेग से आवृत कर विमानयान की शक्ति को हरण करे। तब तक विमानयान के आवरक से क्रमशः—॥ २९—३० ॥

निवारयेत् तच्छक्तिवेगं निश्शेषं शीघ्रतः क्रमात् ।
वेगात् संचालयेद् विकसनकीलीं यथाविधि ॥ ३१ ॥
आदावावरकं तेन यन्तॄणां प्रभवेत् स्वतः ।
पश्चाद् विमानावरकं समग्रं भवति ध्रुवम् ॥ ३२ ॥
ततश्शक्तित्रयं व्योमयानस्यावरकोपरि ।
आमूलाग्रं व्याप्य वेगात् तस्योद्वेगं करिष्यति ॥ ३३ ॥
पश्चात् सम्भ्रामयेद् वेगाद् भ्रामणीचक्रमद्भुतम् ।
चक्रवेगस्समाहृत्य शक्तिवेगं शनैश्शनैः ॥ ३४ ॥
शीतवातायनीनालतन्त्रीणां सम्मुखं यथा ।
प्रेषयेत् तन्त्रिमूलकीलकान् भ्रामयेत्ततः ॥ ३५ ॥
तच्छक्तित्रयवेगस्तु पश्चान्नालत्रयान्तरे ।
प्रविश्य बाह्याकाशेथ तन्मुखाल्लयमेधते ॥ ३६ ॥
यन्तॄणां त्राणनं तस्माद् यानसंरक्षणं तथा ।
अदृश्यत्वनिवृत्तिश्च प्रभवेदेककालतः ॥ ३७ ॥
तस्माच्छक्त्युद्गमनाम यन्त्रमुक्तं यथाविधि । इत्यादि ॥

उस शक्तिवेग को निःशेष शीघ्र निवृत्त करे। विकसनकीली को यथाविधि वेग से सञ्चारित करे, आदि में यन्त्राओं का आवरक स्वतः हो जावे। फिर समग्र विमानावरक निश्चित हो जाता है। फिर विमान यान के आवरक के ऊपर तीनों शक्तियां मूल से अग्रभाग तक व्याप्त करके वेग से उसका उद्वेग करेंगी पश्चात् वेग से अंगुल भ्रामणी कील को घुमावे। चक्रवेग शक्तिवेग को धीरे धीरे इकट्ठे करके शीतवातायनी नालतारों के सम्मुख प्रेरित करदे तारों के मूल कीलें-पेंच घुमादे उन तीनों शक्तियों का वेग तो पश्चात् तीन नालों के अन्दर प्रविष्ट होकर वाहिरी आकाश में उस मुख से लय को प्राप्त हो जाता है। चालक यात्रियों का त्राण तथा यानरक्षण अदृश्यत्व होने वाले संकट की निवृत्ति हो जावे एक काल में उससे शक्त्युद्गम यन्त्र यथाविधि कहा है ॥ ३१-३७ ॥

शैत्यग्राहकलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—शैत्यग्राहक लोहा लोहतन्त्र में कहा है—

चन्द्रोपलं क्रौडिकसोमकन्दे विश्वावसुं क्रौञ्चिकचन्द्रमास्ये।
वार्ध्यश्वकं वारुणपञ्चकुड्मले सिंहास्यकं शङ्कलवाङ्कपाले(णे?) ॥ ३८ ॥
एतान् समांशान् परिशोधितान् क्रमात् संगृह्य शुण्डालकमूषमध्ये।
सम्पूर्य चञ्चूमुखकुण्डगर्भे संस्थाप्य पञ्चाननभस्त्रिकामुखात् ॥ ३९ ॥
वेगेन संगाल्य च तद्रसं शनैर्यन्त्रास्यमध्ये परिपूरयेत् क्रमात्।
एवं कृते शुद्धमतीवसूक्ष्मं भवेत् सुशैत्यग्राहकलोहमद्भुतम् ॥ ४० ॥ इत्यादि ॥

चन्द्रोत्पल—नीलोत्पल—नीलोफर, क्रौडिक—वाराही कन्द या गेण्डे का सींग, सोमकन्द ?, विश्वावसु ? धातुविशेष ?, क्रौञ्चिक—कृत्रिम लोहा, चन्द्रमास्य—चन्द्रकान्त पत्थर ?, वार्ध्यश्वक वाध्र्यश्वक—तीक्ष्ण लोहा ?, वरुण—वरना वृक्ष या थूहर, पञ्चकुड्मल—पञ्चकली ? सिंहास्य—वासा, शङ्कलवा—शङ्खवास—भीमसेनी कपूर, अङ्कपाल—अङ्कपाला, धात्री—आंवला। इन्हें शोधित समानांश में लेकर शुण्डालकमूषा के मध्य भर कर चञ्चुमुख कुण्ड के मध्य में रख कर पञ्चमुखवाली भस्त्रिकामूल से वेग से गला कर उसके रस को धीरे से यन्त्रके मुख में भरदे तो शुद्ध अतीवसूक्ष्म सुशैत्य ग्राहक लोहा हो जावेगा ॥ ३८-४० ॥

शीतघ्नदर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—शीतनाशक दर्पण कहा है दर्पणप्रकरण में—

सीसं कपालिं वरचन्द्रमास्यं पञ्चाङ्गुलिं शैशिरिकं तृणाङ्गम्।
क्षारत्रयं शुद्धं(रं?) सुवर्चलं सिञ्चाणुकं सूक्ष्मतरं च वालुकम् ॥ ४१ ॥
बम्भारिकं चाञ्जनिकं कुरङ्गं पञ्चोर्मिकं चन्द्ररसं शिवारिकम्।
एतान् समाहृत्य समांशतः क्रमात् विशोधितान् सैंहिकमूषमध्ये ॥ ४२ ॥
सम्पूर्य पद्माकरकुण्डगर्भे संस्थाप्य शूर्पोदरभस्त्रिकामुखात्।
संगाल्य कक्ष्यत्रिशतोष्णतः क्रमाद् रसं समाहृत्य शनैर्यथाविधि ॥४३॥
सम्पूरयेद् यन्त्रमुखान्तरे क्रमादेवं कृते शुभ्रमतिदृढं लघु।
भवेत् सुशीतघ्नकदर्पणं ततश्शुभ्रं सुसूक्ष्मं सुमनोहरं च ॥ ४४ ॥ इत्यादि ॥

सीसा, कपालि ? कपाली—विडङ्ग या कपाल—तालमखाना, चन्द्रमास्य—चन्द्रकान्त मणि ?, पञ्चागुलि—पञ्चांगुल—एरण्ड, शैशारिक—शैशोरिक—निम्बबीज, तृणाङ्ग—तृणमूल—गन्धतृण ?,

नौदासर, यवक्षार सज्जीखार, शुद्ध सौञ्चलनमक, सिञ्चाणुक ?, अतिसूक्ष्म बालु। वम्भारिक ?, अञ्जनिक-सुरमा, कुरङ्ग—अककंरा, पञ्चोर्मिक ?, चन्द्ररस—काम्पिल्लक रस ?, शिवारिक ? इनको समान लेकर क्रम से शोधकर सैंहिक मूषा बोतल मध्य में भर कर पद्माकर कुण्डगर्भ में रख कर शूर्पोदर भस्त्रिका मुख से ३०० दर्जे की उष्णता से गला कर पिघला रस धीरे से लेकर यन्त्रमुख के अन्दर क्रम से भर दे ऐसा करने पर शुभ्र अतिदृढ हल्का शीतघ्न दर्पण सूक्ष्म सुमनोहर हो जावे ॥ ४१-४४ ॥

अथ वक्रप्रसारणयन्त्रः—अब वक्रप्रसारण यन्त्र कहते हैं—

उक्त्वा शक्त्युद्गमयन्त्रं संग्रहेण यथामति ।
वक्रप्रसारणं नामयन्त्रमद्य प्रचक्षते ॥ ४५ ॥

शक्त्युद्गम यन्त्र संक्षेप से यथामति कह कर वक्रप्रसारण यन्त्र अब कहते है ॥ ४५ ॥

उक्तं हि क्रियासारे—क्रियासार में कहा ही है—

विमानच्छेदनार्थं यच्छत्रुभिः कृत्रिमान्मिथः ।
पथियानाभिमुखतः दम्भोलिस्स्थाप्येत यदि ॥ ४६ ॥
यन्ता मुकुरयन्त्राद्यैस्तद्विज्ञायाथ तत्क्षणात् ।
तत्स्थानं दूरतस्त्यक्त्वा स्वविमानं यथाविधि ॥ ४७ ॥
वक्रप्रसारणाच्छीघ्रं योजयेदन्यमार्गतः ।
तस्माद् यानाधारपार्श्वे कीलचक्रैर्यथाविधि ॥ ४८ ॥
वक्रप्रसारणं नामकीलयन्त्रं नियोजयेत् ॥ इत्यादि ॥

गुप्तकृत्रिम उपाय से शत्रुओं ने विमान के छेदनार्थ मार्ग में विमान के सामने दम्भोलि-वज्र लोहे आदि से बना घातक (तारपीडो जैसा) पदार्थ यदि फैंक दिया गिरा दिया तो चालक मुकुर-दर्पण यन्त्र आदि से उसे जान कर उस स्थान को दूर से त्याग कर अपने विमान को वक्रप्रसारण—टेढा चलानेवाले यन्त्र अन्यमार्ग से शीघ्र युक्त करे, अतः विमानयान के आधार पार्श्व में कीलचक्रों से यथा-विधि वक्रप्रसारण यन्त्र को युक्त करे ॥ ४४-४८ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

यानविच्छेदनार्थाय शत्रुभिस्सन्निवेशितैः ॥ ४६ ॥
दम्भोल्याद्यष्टयन्त्रैर्यदपायस्सम्भवेत् क्रमात् ।
तदपायनिवृत्त्यर्थं विमानस्य यथाविधि ॥ ५० ॥
वक्रप्रसारणं नाम कीलयन्त्रमिहोच्यते ।
लोमशाश्वत्थसञ्जातशुल्वषोड्शभागके ॥ ५१ ॥
लघु क्ष्विङ्कात्रयं पञ्चैकांशाञ्जनिकमेव च ।
सम्मेल्य शतकक्ष्योष्णवेगात् संगालयेत् ततः ॥ ५२ ॥
आरारताम्रं प्रभवेत् स्वर्णाकारं दृढं लघु ।
वितस्तित्रयमायामं वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥ ५३ ॥

वर्तुलं कारयेच्चक्रं नालदण्डेन योजितम् ।
यानस्येषादण्डमूलगुहावर्ते यथाविधि ॥ ५४ ॥
चतुरङ्गुलमायामं बाहुमात्रं मनोहरम् ।
क्रकचाङ्गुलचक्रेभ्यष्षोडशेभ्यो यथाविधि ॥ ५५ ॥

विमान यान के नाशार्थ शत्रुओं द्वारा डाले हुए दम्भोलि आदि आठ यन्त्रों से नाश सम्भव है उस नाश की निवृत्ति के अर्थ विमान का वक्रप्रसारण कील यन्त्र यहां कहते हैं। लोमश—कसीस, अश्वत्थ सञ्जात–पीपल की लाख या गोन्द, शुल्व – ताम्बा १६ भाग,लघु–काला अगर ३ भाग,क्ष्विङ्का–लोह विशेष या जस्ता ?, ५, आञ्जनिक—सुरमा १ भाग मिला कर १०० दर्जे की उष्णता से गलावे, फिर यह आरावाला ताम्र स्वर्ण के आकार का हल्का दृढ हो जाए, ३ बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त ऊंचा गोल चक्र करावे नालदण्ड से युक्त करे यान के ईषादण्ड मूल गहरे घेरे में यथाविधि ४ अंगुल मोटा बाहु-मात्र लम्बा मनोहर १६ क्रकचांगुलचक्र--आरांगुल वाले चक्रों से यथाविधि—॥ ४६–५५ ॥

प्रतिष्ठितं तैलसंशुद्धं दण्डद्वयमुखान्तरे ।
चक्रमूलं समारभ्य यद्दण्डान्तरतः क्रमात् ॥ ५६ ॥
यानस्येषादण्डमूलगुहावर्तस्थनालयोः ।
अष्टधाङ्गुलचक्रेभ्यः कृतमार्गानुसारतः ॥ ५७ ॥
त्रिपर्वसन्धिसंयुक्तशलाकान् तैलसंस्कृतान् ।
सन्धार्य विधिवत् पश्चात्तदन्ते शास्त्रतः क्रमात् ॥ ५८ ॥
चक्रसन्धि प्रकल्प्याथारारचक्रमुखान्तरे ।
कीलीं सन्धारयेत् सम्यगुभयोः पार्श्वयोः क्रमात् ॥५६॥
मध्ये धूमप्रसारणकीलकौ पार्श्वयोस्तथा ।
सन्धारयेत् तथा धूमबन्धने कीलद्वयम् ॥ ६० ॥

प्रतिष्ठित तैल से शुद्ध दो दण्डों के मुख के अन्दर चक्रमूल को आरम्भ कर दण्डों के अन्दर से विमान के ईषादण्ड—धुरा दण्ड मूल के गुहावर्तस्थ दो नालों में आठ अंगुल वाले चक्रों से मार्ग के अनुसार बनाए तीन पर्वसन्धिसंयुक्त तैल से संस्कृत शलाकाओं को लगा कर फिर उनके अन्त में चक्र-सन्धि बना कर आरावाले चक्रमुख में दोनों पार्श्वों में कीली लगावे; बीच में धूमप्रसारण दो कीलें दोनों पार्श्वों में लगावे तथा धूम को रोकने की दो कीलें भी लगावे ॥ ५६--६० ॥

सन्धितन्त्रीचक्रवर्गैस्तत्तन्मार्गानुसारतः ।
परस्परं सन्धिसंयोजनकीलीनिबन्धनम् ॥ ६१ ॥
कारयेत् सरलेनैव तत्तत्स्थानप्रमाणतः ।
बाहुमात्रे ताम्रपीठे एतत्सर्वं यथाविधि ॥ ६२ ॥
प्रकल्प्याधारपार्श्वेथ विमानस्य दृढं यथा ।
संस्थापयेद् यथाकामं पश्चात् कालानुसारतः ॥ ६३ ॥

सार्पतिर्यग्दण्डवक्रगतिभेदादिभिः क्रमात् ।
विमानं चोदयेद् बुद्ध्या पुरोभागस्थचक्रतः ॥ ६४ ॥
तथैवान्यैः कीलकादिसहायैरपि शास्त्रतः ।
एतद्यन्त्रसहायेन भवेद् वक्रगतिः क्रमात् ॥ ६५ ॥
विमानस्यातिवेगेन तेन दम्भोलिकादिभिः ।
सम्भवापायनाशस्तु तत्क्षणादेव जायते ॥ ६६ ॥
विमानरक्षणं तस्माद् यन्तॄणां च विशेषतः ।
भवेत् तस्मात् संग्रहेण यथावच्छास्त्रतः क्रमात् ॥ ६७ ॥
वक्रप्रसारणं नामयन्त्रमुक्तं मनोहरम् ॥ इत्यादि ॥

सन्धि तन्त्री चक्रवर्गों से उस उस मार्ग के अनुसार परस्पर सन्धि संयोजन कीली का निबन्धन उस उस स्थान के प्रमाण से सरलरूप में करे बाहुपरिमाण लम्बे के पीठ में यह सब यथाविधि रच कर विमान के आधार पार्श्व में दृढ यथेष्ट स्थापित करे। पश्चात् समयानुसार सर्प की भांति तिरछे दण्ड जैसी वक्रगति भेद आदि से विमान को बुद्धि से सामने के भाग वाले चक्र से प्रेरित करे तथा अन्य कील आदि सहायक से भी शास्त्रानुसार इस यन्त्र की सहायता से वक्रगति विमान की अतिवेग से दम्भोलि—(तारपीडो) जैसी वस्तुओं से होने वाले अनिष्ट का नाश तत्क्षण हो जाता है विमान की तथा विशेषतः चालक और यात्रियों की रक्षा होजावे अतः शास्त्रानुसार संक्षेपसे मनोहर चक्रप्रसारण यन्त्र कहा है ॥ ६१--६७ ॥

अथ शक्तिपञ्जरकीलयन्त्रनिर्णयः—अब शक्तिपञ्जरकीलयन्त्र का निर्णय देते हैं—

एवमुक्त्वा वक्रप्रसारणयन्त्रमतः परम् ।
शक्तिपञ्जरकीलकयन्त्रमद्य प्रचक्षते ॥ ६८ ॥

इस प्रकार वक्रप्रसारण यन्त्र कहकर इससे आगे शक्तिपञ्जरकील यन्त्र अब कहते हैं।

तदुक्तं क्रियासारे—यह वह क्रियासार ग्रन्थ में कहा—

विमानसर्वाङ्गसन्धिस्थानभेदेषु शास्त्रतः ।
विमानाङ्गेषु सर्वत्र आमूलाग्रं यथाविधि ॥ ६९ ॥
विद्युत्सञ्चोदनार्थाय तत्तत्कालानुसारतः ।
शक्तिपञ्जरकीलकयन्त्रसंस्थापनं क्रमात् ॥ ७० ॥
विमानमध्यकेन्द्रेऽथ कुर्याच्छास्त्रविधानतः ॥ इति

विमान के सब अङ्गों के भिन्न भिन्न सन्धिस्थानों में शास्त्र से विमान के अङ्गों में सर्वत्र मूल से अग्रभाग तक यथाविधि विद्युत् को प्रेरित करने के अर्थ उस उस समय के अनुसार क्रम से शक्तिपञ्जर कीलक यन्त्र का संस्थापन विमान के मध्यकेन्द्र में विधान से करे ॥ ६९—७० ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यह वह यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में कहा है—

विद्युत्सञ्चोदनार्थाय यानसर्वाङ्गसन्धिषु ॥ ७१ ॥

शक्तिपञ्जरकीलकयन्त्रनिर्णयमुच्यते ।
कान्तक्रौञ्चिकलोहान् त्रीन् दशाष्टनवभागतः ।। ७२ ।।
सम्पूर्य मूषिकामूषामुखे पश्चाद् यथाविधि ।
निधायातपकुण्डेथ शतकक्ष्यमोष्णतः क्रमात् ।। ७३ ।।
सङ्गाल्य तन्मुखे विद्युच्छक्ति संयोजयेद् दश ।
ततो यन्त्रमुखे वेगात् पूरयेदेकतः क्रमात् ।। ७४ ।।
अत्यन्तमृदुलं शुद्धं शक्तिगर्भाभिधं (दं ?) दृढम् ।
भवेल्लोहं तेन यन्त्रं कुर्यात् तद्विधिरुच्यते ।। ७५ ।।

विद्युत् को प्रेरित करने के अर्थ विमानयान के सर्वाङ्ग की सन्धियों में शक्तिपञ्जर कीलकयन्त्र का निर्णय कहा जाता है। कान्त—अयस्कान्त, क्रौञ्चिक—कृत्रिम लोह विशेष, लोह—साधारण लोहा इन तीनों को १०, ८, ९ भागों से मूषिका आकार की मूषा—बोतल के मुख में भरकर पश्चात् यथाविधि आतपकुण्ड में रखकर १०० दर्जे की उष्णता से क्रम से गलाकर उसके मुख में विद्युत् शक्ति १० संख्या में युक्त करे फिर यन्त्रमुख में वेग से एक वार भर दे, अत्यन्त मृदुल शुद्ध शक्तिगर्भ नामक लोहा वह हो जावे उस से यन्त्र बनावे उसकी विधि कही जाती है—विधि कहते हैं ।। ७१–७५ ।।

बाहुमात्रमुन्नतं तावदायामं द्रोणिवत् सुधीः ।
पीठं कुर्याच्छक्तिगर्भलोहेनैव यथाविधि ।। ७६ ।।
पीठमूले तथामध्ये तदन्ते च यथाक्रमम् ।
अर्धचन्द्राकारमुखकीलस्तम्भान् दृढं यथा ।। ७७ ।।
आदौ संस्थापयेत् पट्टिकां ताम्रनिर्मिताम् ।
संयोजयेत् ततः कीलशङ्कुभिर्बन्धयेद् दृढम् ।। ७८ ।।
तन्त्रीन् शलाकान् तच्छक्तिगर्भलोहेन शास्त्रतः ।
सच्छिद्रदण्डनालान् त्रीन् (त्री ?) कृत्वा पश्चाद् यथाविधि ।।७९।।
दण्डछिद्रेषु सर्वत्र शलाकान् योजयेत् ततः ।
सप्रमाणं लोहतन्त्रीं शलाकोपरि वेष्टयेत् ।। ८० ।।

बाहुमाप में ऊंचा बाहुमाप लम्बा द्रोणी हाण्डी की भांति पीठ—विमानस्थली बुद्धिमान् उस शक्तिगर्भ लोहे से ही यथाविधि बनावे। पीठ के मूल में मध्य में और अन्त में यथाक्रम अर्धचन्द्राकार मुखवाली कीलों के स्तम्भों को दृढ़रूप में आदि में संस्थापित करे पश्चात् ताम्बे से बनी पट्टिका को लगावे फिर कील शङ्कुओं से बान्ध दे, तारों को शलाकाओं को उस शक्तिगर्भ लोहे से शास्त्रानुसार छिद्रसहित दण्डरूप नालों को तारों को बनाकर पश्चात् यथाविधि दण्डों के छिद्रों में सर्वत्र शलाकाओं को जोड़ दे फिर माप से लोहे के तारों को शलाकाओं के ऊपर लपेट दे ।। ७९–८० ।।

वर्तुलं पञ्जरं तेन भवेत् सुदृढमद्भुतम् ।
तत्पञ्जरं ताम्रपट्टिकोपरि स्थापयेत् ततः ।। ८१ ।

विद्युच्छक्ति पञ्जरस्याधोभागे न्यसेत् क्रमात् ।
पञ्जरस्थशलाकानां तन्त्रीणामपि शास्त्रतः ॥ ८२ ॥
विद्युत्सञ्चोदनार्थाय कीलकं स्थापयेत् तथा ।
विमानस्थाङ्गयन्त्राणां द्वात्रिंशत्यंघ्रिषु (घिषु ?) क्रमात् ॥८३॥
विद्युत्संचोदनार्थायोपसंहारार्थमेव च ।
अनुलोमविलोमाभ्यां द्वात्रिंशत्कीलकान् क्रमात् ॥ ८४ ॥
सन्धारयेत् सूक्ष्मकीलीं शङ्कुभिस्सुदृढं यथा ।
विद्युत्प्रयोगं सर्वत्र कर्तुं तेन यथोचितम् ॥८५॥
भवेद् विमाने शास्त्रोक्तरीत्या स्वेष्टप्रकारतः ।
दिक्प्रभेदेन सर्वत्र गतिवैचित्र्यतः क्रमात् ॥८६॥
भवेच्चोदयितुं व्योमयान तस्माद् यथाविधि ।
तस्मादुक्तं समासेन विद्युत्पञ्जरयन्त्रकम् ॥८७॥

इससे पञ्जरगोल सुदृढ़ अद्भुत हो जावेगा उस पञ्जर को ताम्बे की पट्टिका के ऊपर स्थापित करदे पुनः पञ्जर के नीचले भाग में विद्युत्शक्ति को रखदे क्रमशः पञ्जरस्थ शलाकाओं तारों के भी (अन्दर) शास्त्र से विद्युत् को प्रेरित करने के अर्थ कील-पेंच स्थापित करे—लगावे। विमान में स्थित अङ्गयन्त्रों के ३२ पैरों में-नीचलेभागों में क्रम से विद्युत् को प्रेरित करने के अर्थ और उपसंहार-सङ्कोचकरने खींच लेने के अर्थ भी अनुलोम-सीधे विलोम-उल्टे प्रकार से ३२ कीलों-पेंचों को क्रम से सूक्ष्मकील शंकुओं से दृढ़ लगादे इससे शास्त्रोक्त रीतिसे विमान में विद्युत्का यथोचित और स्वेच्छानुसार प्रयोग करना हो सकता है। दिशा के भेद से सर्वत्र विचित्र गति से विमान यान को प्रेरित करना हो सके अतः यथा-विधि संक्षेप से विद्युत्पञ्जर कहा गया है॥८१-८७॥

अथ शिरःकीलकयन्त्रनिर्णयः—अब शिरःकीलकयन्त्रनिर्णय करते हैं—

इत्युक्त्वा शक्तिपञ्जरयन्त्रमद्य यथाविधि ।
संग्रहेण शिरःकीलकयन्त्रं सम्प्रचक्षते ॥८८॥

शक्तिपञ्जर यन्त्र कहकर अब यथाविधि संक्षेप से शिरःकीलकयन्त्र को कहते हैं॥८८॥

तदुक्तं क्रियासरे—वह क्रियासारग्रन्थ में कहा है—

विमानोपर्यशनिपातं मेघवृन्दाद् भवेद् यदा ।
तदा विनाशमायाति व्योमयानोतिशीघ्रतः ॥८९॥
तस्मात् तत्परिहाराय शिरःकीलकयन्त्रकम् ।
शिरोभागे विमानस्य स्थापयेच्छास्त्रतः क्रमात् ॥९०॥ इत्यादि ॥

निमान के ऊपर मेघराशि से विद्युत् का गिरना जब हो तब विमान अति शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है अतः उसके परिहार के लिये शिरःकीलकयन्त्र विमान के शिरोभाग में शास्त्र से स्थापित करे॥८९—९०॥

यन्त्रस्वरूपमुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यन्त्रस्वरूप यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

यदपायो विमानस्य भवेदशनिपाततः ।
तदपायनिवृत्त्यर्थं शिरःकीलकयन्त्रकम् ॥६१॥
सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्यामि शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
यावत्प्रमाणं यानस्य शिरसस्तावदेव हि ।६२॥
कुर्याच्छत्रिं शलाकाद्यैर्लोहावरणतः क्रमात् ।
विषकण्ठाख्यलोहेनैवान्यथा निष्फलं भवेत् ॥६३॥
तेनैव बाहुमात्रेण तद्दण्डं पीठमेव च ।
कुर्याच्चक्राकृतिं पश्चाद् वक्रतुण्डिलोहतः ॥६४॥
त्रिचक्रकीलकान् कृत्वा त्रीन् विमानस्य शास्त्रतः ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते स्थापयित्वा ततः परम् ॥६५॥

विद्युत् के गिरने से जिससे कि विमान का विनाश हो जाता है उस विनाश या बिगाड़ की निवृत्ति के अर्थ शिरःकीलकयन्त्र संक्षेप से शास्त्र मार्ग से कहूंगा, जितना माप विमान के शिर का हो उतने माप की छत्री शलाका आदि से लोहे के आवरण से करे विषकण्ठ नामक लोहे से करे अन्यथा निष्फलता होजावे। उसी लोहे से बाहुमाप से उसके दण्डे और चक्राकार पीठ को बनावे पश्चात् वक्रतुण्ड लोहे से तीन चक्रवाली तीन कीलों को करके विमान के आदि में मध्य में और अन्त में स्थापित करके फिर—॥६१-६५॥

सदण्डं स्थापयेच्छत्रिं कीलद्वयमध्यतः ।
मणिमग्निकुठाराख्यं लोहपञ्जरसंयुतम् ॥६६॥
किरीटवत्तच्छिरसि स्थापयेन् सरलं यथा ।
त्रिचक्रकीलभ्रमणकीलकं यन्तृपार्श्वतः ॥६७॥
स्थापयित्वा यथाशास्त्रं कुलिशध्वंसलोहतः ।
कृत्वा तन्त्रीन् मणिस्थाननालरन्ध्राद् यथाविधि ॥६८॥
त्रिचक्रभ्रामणी कीलस्थानामूलावधि क्रमात् ।
समाहृत्याथ तत्स्थानमध्ये सन्धारयेत् ततः ॥६९॥
तन्मुखे शब्दनालं च सकीलं स्थापयेद् दृढम् ।
सुरञ्जिकादर्पणेन तद्यन्त्रावरणं सुधीः ॥१००॥

दो कीलों के मध्य में दण्डसहित छत्री स्थापित करे, अग्निकुठारनामक मणि लोहपञ्जर से युक्त मुकुट की भांति शिर में—विमान के शिरोभाग में सरल स्थापित करे। तीन चक्रोंवाली—पेचों को घुमाने वाली कील चालक के पास यथाशास्त्र स्थापित करके कुलिश ध्वंस (वज्रध्वंसक—विद्युत् का नाश करने वाले) लोहे से तारों को मणिस्थान नाल के छिद्र से यथाविधि त्रिचक्रभ्रामणीकीलस्थ मूल तक यथाविधि लाकर उनमें स्थान के मध्य में जोड़ दे, फिर उनके मुख में कीलसहित शब्दनाल स्थापित करे, सुरञ्जिकादर्पण से यन्त्र का आवरण बुद्धिमान्—॥६६-१००॥

कुर्याच्छास्त्रोक्तविधिना पश्चादावरयेद् दृढम् ।
यदा स्यादशनिपातसूचकं घनगर्जितम् ॥१०१॥
तत्क्षणाद् यन्त्रावरणदर्पणस्त्रुटितो (तं?) भवेत् ।
पश्चात् तन्त्रीमुखनालरन्ध्राच्छब्दः प्रजायते ॥१०२॥
अत्यन्तचलनं तेन भवेत् तन्त्र्यां स्वभावतः ।
दृश्यन्ते यन्तॄणां याने चिह्नान्येतान्यथाक्रमात् ॥१०३॥
पतत्यशनिपातोद्य इति मत्वातिशीघ्रतः ।
त्रिचक्रकीलभ्रमणं कुर्यादत्यन्तवेगतः ॥१०४॥
भ्राम्यते तेन तच्छत्री शतलिङ्कप्रमाणतः ।
पश्चात् तन्मणिकीलं च भ्रामयेद् वेगतः क्रमात् ॥१०५॥

—करे, शास्त्रोक्तविधि से ढक दे। जब विद्युत् गिरने का सूचक मेघगर्जन हो तो तत्क्षण यन्त्र का आवरणदर्पण टूट जाता है, पश्चात् तारों के सिरे की नाल के छिद्र से शब्द होता है, इससे तार में अत्यन्त हलचल स्वभावतः होती है। चालकयात्रियों के विमान यान में जब ये चिह्न दिखलाई पडते हैं तो अब विद्युत् का गिरना होगा ऐसा समझ अति शीघ्र अत्यन्त त्रिचक्रकील का भ्रमण करदे इससे वह छत्री १०० डिग्री के प्रमाण से घूमने लगती है पश्चात् उस मणिकील को भी वेग से घुमा देती है—॥१०१—१०५॥

तेन सम्भ्रमते वेगात् तन्मणिस्सर्वतोमुखः ।
छत्रीवेगादशनिपातवेगशान्तिर्भविष्यति ॥१०६॥
मणिवेगादशनिपातः क्रोशान्ते यानतो भवेत् ।
विमानरक्षणं तेन यन्तॄणां पालनं तथा ॥१०७॥
भवेत् तस्माच्छिरःकीलयन्त्रमुक्तं यथाविधि ।

उससे मणि सर्वतोमुख वेग से घूमती है, छत्री के वेग से विद्युत् गिरने के वेग की शान्ति हो जावेगी—हो जाती है। मणि के वेग से विद्युत् गिरने का वेग विमान से कोस भर परे हो जावेगा, इससे विमान का रक्षण तथा चालकयात्रियों का बचाव हो जावे—हो जाता है अतः शिरःकीलकयन्त्र यथाविधि कहा है ॥१०६—१०७॥

अब शब्दाकर्षणयन्त्रनिर्णयः—अब शब्दाकर्षणयन्त्र का निर्णय है—

एवमुक्त्वा शिरःकीलयन्त्रमत्र यथाविधि ।
शब्दाकर्षणयन्त्रोद्य संग्रहेण प्रकीर्त्यते ॥१०८॥

इस प्रकार शिरःकीलयन्त्र यहां यथाविधि कहकर शब्दाकर्षणयन्त्र आज—अब संक्षेप से कहा जाता है।

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है—

अष्टदिक्षु विमानस्य क्रोशाद् द्वादशकोपरि ।
सतन्त्रयतन्त्रीमार्गेण मृगपक्ष्यादिभिस्तथा ॥१०९॥

सन्ताडनभ्रामणाद्यैर्मनुष्यैरष्टयन्त्रकैः ।
गूढेन वा प्रकाशेन ये शब्दास्सम्भवन्ति हि ॥११०॥
तेषां संग्रहणार्थाय शब्दाकर्षणयन्त्रकम् ।
व्योमायनभुजे सम्यक् स्थापयेद् विधिवत्सुधीः ॥१११॥ इत्यादि ॥

विमान की आठों दिशाओं में १२ कोश से ऊपर तारसहित ताररहित मार्ग से तथा मृगपक्षी आदि के द्वारा सन्ताडन भ्रमण आदि से मनुष्यों से आठयन्त्रों से गूढ़ या प्रकट जो शब्द उत्पन्न होते हैं उनके पकडने के अर्थ शब्दाकर्षण यन्त्र विमान की भुजा में सम्यक् विधिवत् बुद्धिमान् स्थापित करे ॥१०६—१११॥

यन्त्रस्वरूपमुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यन्त्रस्वरूप यन्त्रसर्वस्व में कहा है:—

चतुरस्रं वर्तुलं वा शुद्धवैडाललोहतः ।
पीठं कृत्वाथ तन्मध्ये शङ्कुं संस्थाप्य पार्श्वयोः ॥११२॥
सङ्कल्पस्वरवादित्रशब्दभाषापकर्षकम् ।
रोरुवापक्षिणो नोचेद् गृञ्जनीपक्षिणोपि वा ॥११३॥
शुद्धीकृतेन देहस्थचर्मणा मृदुलेन च ।
कृत्वा कन्दु(तु?)कवद् गोलद्वयं सूक्ष्मं लघु दृढम् ॥११४॥
स्थापयेद् विधिवत् पश्चात् तन्मध्ये कटनद्रवम् ।
सम्पूर्य सुरघादर्शपात्रे संस्थापयेत् क्रमात् ॥११५॥

चौकोर या गोल शुद्धवैडाल लोहे से पीठ-भूमिका बनाकर उसके मध्य में शंकु संस्थापित करे दोनों पार्श्वों में संकल्प स्वर वादित्र—बाजे शब्द भाषा—भाषण के खींच लेनेवाले यन्त्र को लगावे, रोरुवा ? पक्षी के नहीं तो गृञ्जनी ? पक्षी के भी शुद्ध किए देहस्थ मृदुल चमड़े से गेंद के समान सूक्ष्म छोटे दृढ दो गोल विधिवत् स्थापित करे पश्चात् उनके मध्य में कटनद्रव ? भरकर सुरघादर्श ? पात्र में क्रम से संस्थापित कर दे ॥११२—११५॥

ध्वन्याकर्षणघण्टारलोहनिर्मितमद्भुतम् ।
तन्त्रीगुच्छसमायुक्तं शब्दोन्मुखशलाककम् ॥ ११६ ॥
दृढं पिण्डद्वयोर्मध्ये द्रावकोपर्यथाक्रमम् ।
प्रतिष्ठाप्याथ क्वणकदर्पणावरणं क्रमात् ॥ ११७ ॥
कृत्वा मूलेङ्गुष्ठमात्रचक्रग्रन्थित्रयं ततः ।
सन्धारयेत् तदारभ्य शलाकान्तं यथाविधि ॥ ११८ ॥
अत्यन्तसूक्ष्मान्मृदुलान् संयोजयेत् क्रमात् ।
एतत्तन्त्रीन् समावृत्य न्यग्बिलं सूक्ष्मरन्ध्रकम् ॥ ११६ ॥
क्वणादर्शेन रचितं करण्डमुपरि न्यसेत् ।
द्रोणास्यपात्रं तेनैव कृतं तस्योपरि क्रमात् ॥ १२० ॥

ध्वनि को आकर्षित करने वाले घण्टार लोहे † से बना हुआ अद्भुत तारों के गुच्छे से युक्त शब्द को प्रकट करने के उन्मुख शलाकाओं वाले दृढ दोनों पिण्डों—गोलों के मध्य में द्रावक के ऊपर यथाक्रम रखकर क्वणकदर्पण—शब्द करनेवाले के आवरण को क्रम से करके अङ्गुष्ठमात्र चक्र की तीन ग्रन्थियों के मूल में लगावे वहां से आरम्भ करके शलाकापर्यन्त यथाविधि अत्यन्त सूक्ष्म कोमल तारों को क्रम से जोड़ दे इन तारोंको सूक्ष्मछिद्रवाले नीचले बिल में को घुमाकर क्वणआदर्शदर्पण से रची करण्ड-सन्दूकची या डलिया के ऊपर रखदे, द्रोणमुख वाला—हाण्डी मुखवाला पात्र उसी क्वणादर्श से किया हुआ हो उस के ऊपर क्रम से—॥ ११६—१२० ॥

संस्थापयेत् ततस्तस्मिन् पूर्वपश्चिमयोस्तथा ।
दक्षिणोत्तरतश्चैव रुदन्तीरटिकाभिधान् (दान् ?)॥१२१॥
संयोजयेन्मणीन् शुद्धान् चत्वारि समरेखतः ।
मणिमन्तरतः कृत्वा सूक्ष्मनालान् यथाविधि ॥ १२२ ॥
दर्पणेन कृतान् शुद्धाश्चतुर्दिक्षु दृढं यथा ।
स्थापयेदथ तस्योर्ध्वप्रदेशे शब्दफेनकम् ॥ १२३ ॥
तस्योपरि यथाशास्त्रं कुर्यादावरणं ततः ।
तस्मिन् सन्धारयेत् सूक्ष्मशङ्कून् संशोधितान् दृढान् ॥१२४॥
पश्चात् क्वणादर्शकृतावरणं तत्प्रमाणतः ।
तस्योपरि न्यसेदष्टसूक्ष्मछिद्रसमन्वितम् ॥ १२५ ॥

—उसमें संस्थापित करे, पूर्व पश्चिम में तथा दक्षिण उत्तर रुदन्तीरटिका नामक चार शुद्ध मणियों को समरेखा से जोड़ दे, मणि को बीच में करके दर्पण से बना हुआ शुद्ध सूक्ष्म नालों को यथाविधि चारों दिशाओं में स्थापित करे उसके ऊपरि प्रदेश में शब्दफेन—शब्द संस्कारशक्तियुक्त चक्र रख दे, उस के ऊपर यथाशास्त्र आवरण करे पुनः उस में शोधित सूक्ष्म शङ्कुओं को लगावे, पश्चात् क्वण आदर्श से किए आठ सूक्ष्मछिद्र युक्त आवरण उस प्रमाण से उसके ऊपर रखे ॥ १२१—१२५ ॥

एकैकछिद्रमार्गेणान्तश्शङ्कुमुखान्तरात् ।
सूक्ष्मतन्त्रीन् समाहृत्य न्यसेदावरणोपरि ॥ १२६ ॥
तन्मध्येङ्गुलमानेन छिद्रं कृत्वा यथाविधि ।
सिंहास्यदण्डनालं च मध्ये संस्थापयेत् क्रमात् ॥ १२७ ॥
वातापकर्षकं चक्रं षोडशारं सुसूक्ष्मम् ।
न्यसेत् तस्य पुरोभागे तन्त्रीसंवेष्टितं यथा ॥ १२८ ॥
एवं क्रमेणाष्टदिक्षु सूक्ष्मचक्राणि विन्यसेत् ।
पूर्वोक्तसिंहास्यमुखेष्टदिक्षु यथाक्रमम् ॥ १२९ ॥
प्रदक्षिणावर्तकीलचक्रान् संस्थापयेदथ ।
शुद्धवाजीमुखलोहकृतवर्तुलपट्टिकान् ॥ १३० ॥

† घण्टार लोहा पीछे कहा गया है कृत्रिम है ।

एक एक छिद्रमार्ग से भीतर शङ्क के मुख के अन्दर से सूक्ष्म तारों को निकालकर आवरण के ऊपर लगादे, उस के अन्दर अङ्गुल मात्र से छिद्र करके यथाविधि सिंहास्यदण्डनाल को मध्य में संस्थापित करदे। वातापकर्षक चक्र १६ अराओंवाला सुसूक्ष्म उसके सामने वाले भाग में तारों से लिपटा हुआ लगावे, इस प्रकार क्रम से आठ दिशाओं में सूक्ष्म चक्र लगावे, पूर्वोक्त सिंहास्य मुख में आठ दिशाओं में घूमनेवाले कीलचक्रों को संस्थापित करे अनन्तर शुद्ध वाजी मुखलोहे से की हुई गोल पट्टिकाओं को—॥ १२६-१३० ॥

सुदृढान् च(छ?)षकाकारान् तरलं स्थापयेत् ततः ।
पूर्वोक्तावरणाष्टछिद्रमुखसंस्थितान् क्रमात् ॥ १३१ ॥
तन्त्रीन् सङ्गृह्य विधिवत् तेषु संयोजयेत् क्रमात् ।
तथैव वाताहरणचक्रस्थानाद् यथाविधि ॥ १३२ ॥
सरन्ध्रानत्यन्तसूक्ष्मतन्त्रीनाहृत्य शक्तितः ।
सिंहास्यस्थाष्टचषकपट्टिकामूलसन्धिषु ॥ १३३ ॥
संयोज्य शब्दफेनस्थशङ्कूनां मूलकेन्द्रतः ।
द्रवपात्रस्थमणिमावृत्य तन्त्रीन् यथाक्रमम् ॥ १३४ ॥
समाहृत्याथ विधिवद् बध्नीयात् सुदृढं यथा ।
वातसंयोजनाच्चक्रभ्रमणं भवति स्वतः ॥ १३५ ॥

—सुदृढ गलासपात्र या लोटापात्र के आकारवालों को सरल स्थापित करे फिर पूर्वोक्त आवरण के आठ छिद्रमुखों में स्थित तारों को लेकर विधिवत् उन में लगादे वैसे ही वात को खींचने वाले चक्रस्थान से यथाविधि छिद्रसहित अत्यन्त सूक्ष्म तारों को शक्ति से लेकर—खींचकर सिंहास्य में स्थित आठ चषकपात्र पट्टिकामूलसन्धियों में जोड़कर शब्दफेनचक्र में स्थित शङ्कुओं के मूलकेन्द्र से द्रवपात्रस्थित मणि को आवृत कर तारों को यथाक्रम लेकर विधिवत् दृढ बान्ध दे जिससे वातसंयोजन से चक्रभ्रमण स्वतः हो जाता है—हो जावे ॥ १३१—१३५ ॥

हस्तलेख कापी संख्या १४—

सम्भ्राम्यते मणी पश्चात् तेन सव्यापसव्यतः ।
तद्वेगाद् भ्राम्यते शब्दफेनचक्रमतः परम् ॥ १ ॥
भ्राम्यन्तेन्तश्शङ्कुमूलचक्राण्यपि यथाक्रमम् ।
तस्मात् सिंहास्यनालस्थचक्राण्यष्ट विशेषतः ॥ २ ॥
भ्राम्यन्ति तेन ध्वन्याकर्षणघण्टारलोहतः ।
कृतशब्दोन्मुखशलाकचालनं भवेत् स्वतः ॥ ३ ॥
रोरुवागृञ्जनीचर्मकृतगोलद्वयं ततः ।
शलाकचालनात् सर्वशब्दान् तत्तत्स्वरैस्सह ॥ ४ ॥
संगृह्य स्वान्तरे पश्चात् सन्नियम्यति नान्यथा ।
तन्मूलकीलचालनात् पुनस्सिंहास्यमार्गतः ॥ ५ ॥
द्रोणास्यपात्रे वेगेन प्रविश्याथ यथाक्रमम् ।
परश्रोत्रग्रहणयोग्यान् सर्वान् शब्दान् स्फुटं यथा ॥ ६ ॥
करोति तत्क्षणादेव सर्वदिङ्मुखतः क्रमात् ।

—मणि घूमती है पश्चात् उससे सीधे उलटे रूप में उसके वेग से शब्दफेनचक्र—शब्दसंस्कार चक्र घूमता है उस के पश्चात् भीतरी शङ्कुओं के मूलचक्र भी यथाक्रम घूमते हैं । अतः सिंहास्यनाल—सिंह के मुख समान नाल के आठ चक्र विशेषरूप से घूमते हैं उससे ध्वनि को आकर्षित करनेवाले घण्टार—घण्टा वाले लोहे से शब्दोन्मुख किया शलाकाचालन स्वतः हो जावे रोरुवा गृञ्जनी अतिशय शब्द को गुञ्जानेवाली ? के चर्म के दो गोल ढोल जैसे शलाका चलाने से सब शब्दों को उन उन के स्वरों के साथ अपने अन्दर लेकर पश्चात् नियन्त्रित करता है उस मूल कील के चलाने से पुनः सिंहास्यमार्ग से द्रोणास्य पात्र में वेग से प्रविष्ट हो यथाक्रम दूसरे के श्रोत्रग्रहण के योग्य सब शब्दों को तुरन्त सब ओर स्फुट करता है ॥ १—६ ॥

तत्तद्दिश्यागतं शब्दं श्रुत्वा यन्ता सुधीः स्वयम् ॥ ७ ॥
परचक्रविचारं यत् सर्वं विज्ञाय यन्त्रतः ।
इति कर्तव्यतां ज्ञात्वा स्वयानपरिपालने ॥ ८ ॥
कुर्यात् प्रयत्नं विधिवदन्यथा नाशमेधते ।

तस्मादुक्तं समासेन शब्दाकर्षणयन्त्रकम् ॥ ९ ॥
शब्दाकर्षणयन्त्रास्तु द्वात्रिंशद्भेदतः क्रमात् ।
शास्त्रेषु निर्णितास्सम्यग्यन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥ १० ॥
एतच्छब्दाकर्षणयन्त्रं यानाङ्गतः पृथक् ।
कृतमित्यवगन्तव्यं सर्वैश्शास्त्रप्रमाणतः ॥ ११ ॥ इत्यादि ॥

उस उस दिशा से आये हुए शब्द को सुनकर बुद्धिमान् यन्त्रचालक परचक्र के सब विचार को यन्त्र से जान कर अपने विमान की रक्षा के लिये यह कर्तव्य है यह जान कर प्रयत्न करे अन्यथा नाश को प्राप्त हो जावे । अतः संक्षेप से शब्दाकर्षण यन्त्र कहा । शब्दाकर्षण यन्त्र ३२ भेद के शास्त्रों में यन्त्रशास्त्रज्ञ विद्वानों ने क्रमशः कहे हैं, यह शब्दाकर्षण यन्त्र विमानयान का अङ्गरूप से है ॥७ ११॥

एतद्यन्त्रोपयुक्तं वस्तुस्वरूपवर्णनम्--इस यन्त्र के उपयुक्त वस्तु स्वरूप वर्णन है—

वैडालिकलोहमुक्तं लोहसर्वस्वे--वैडालिक लोहा कहा है लोहसर्वस्व में—

क्ष्विङ्काशर्करकान्तवज्रकमठाडिम्भारिघोण्टाकरग्रथिनी-
शुल्वविरञ्चिकर्णपटलीगुम्भालिदम्भोलिकाः ।
क्षारकान्तिसिंहपञ्चदलिनीपाराञ्जनक्षोणिकावीरस्वर्ण-
सुरञ्जिनीमृडरुटीकं सार्तिपारावताः ॥ १२ ॥
एतान् संगृह्य विधिवच्छुद्धिं कृत्वा त्रिवारतः ।
शशमूषामुखे वस्तून् पूरयेत् समभागतः ॥ १३ ॥
मण्डूककुण्डमध्ये संस्थाप्य पञ्चास्यभस्त्रिकात् ।
उष्णाद्विशतकक्ष्यप्रमाणेन ध्मानयेत् क्रमात् ॥ १४ ॥
आनेत्रान्तं गालयित्वा समाहृत्याथ तद्रसम् ।
वेगान्निषिञ्चेद् यन्त्रास्ये शास्त्रोक्तविधिना क्रमात् ॥१५॥
एवं कृते यन्त्रशुद्धं स्पर्शनात् पुष्टिवर्धनम् ।
नीलवर्णं सुसूक्ष्मं च सुदृढं भारवर्जितम् ॥ १६ ॥
लोहं वैडालिकं नाम भवेद् भास्वरमद्भुतम् ॥ इत्यादि ॥

क्ष्विङ्का–लोह विशेष या जस्ता?, पाषाणचूर्ण कान्त–कृष्ण–लोह, वज्र–अभ्रक, कमठा–शिलारस डिम्भारि ?, घोण्टा–सुपारि या मैनफल, कर–तरवर ग्रथिनी ?, शुल्व–ताम्बा, विरञ्चि–ब्राह्मी ?, कर्ण–अर्कमन्दार, पटली-परवल, गुम्भालि ?, दम्भोलिक–लोहा जाति, क्षार–सुहागा या सवक्षार, कान्तिक–वैकान्तमणि ? सिंह–लाल सौञ्जना, पञ्च–कडवा परवल ?, दलिनी ?, पारा अञ्जन—सुरमा, क्षोणिक—क्षुण—रीठा—क्षौणिक रीठे का बीज या तैल ?, वीर –सिन्दूर स्वर्ण—धतूरा सुरञ्जिनी--सुरञ्जी—मजीठ, मृडरुटी ? कंस, कंसार्ति–कांसा ?, पारावत–लोहा । इन वस्तुओं को समान भाग लेकर विधिवत् तीन वार शुद्धि करके शशमूषामुख बोतल में भरदे, मण्डूक कुण्ड के मध्य में रख कर पञ्चास्य भस्त्रिका से २०० दर्जे की उष्णता से धोंके नेत्र पर्यन्त गला कर उस रस

को लेकर शीघ्र यन्त्र के मुख में शास्त्रोक्त विधि से डाल दे। ऐसा करने पर शुद्ध स्पर्श से पुष्टिवर्धक नीलवर्ण अत्यन्त सूक्ष्म सुदृढ भाररहित भास्वर वैडालिक लोहा हो जावेगा ॥

रुटनद्रावकमुक्तं मूलिकार्कप्रकाशिकायाम्--रुटनद्रावक मूलिकार्कप्रकाशिका में कहा है—

कनककरण्डगुञ्जापार्वणिचञ्चूलिभण्टिकारम्भाः ।
विश्वेशचण्डिकामरशुण्डालिकबर्बरास्यसौरम्भाः ॥ १७ ॥
प्राणक्षारत्रितयविरञ्चिकटङ्कणार्किसुरभीः ।
सम्मेल्य द्रवयन्त्रे वेदानलमूर्तितारसागरार्कांशान् ॥ १८ ॥
तथैव पञ्चदशगिरिगजदिगवतारनेत्रबाणांशान् ।
संगृह्यापि च त्रिंशद्द्वादशविंशाष्टभागसंख्यातः ॥ १९ ॥
संगृह्णीयाद् द्रावकमष्टोत्तरशतकक्ष्योष्णमानेन ।
रुटनद्रावकमेतद् भवति विशुद्धं सुसूक्ष्मकं पीतम् ॥ २० ॥ इत्यादि ॥

कनक–धतूरा, करण्ड–महालमक्खी का छत्ता, गुञ्जा–घूंघची, पार्वणि–हरिण शृङ्ग ?, चञ्चूलि–चञ्चुलु–लाल एरण्ड, भण्टिका–मजीठ, कारम्भा–प्रियङ्गु, विश्वेश?, चण्डिका–अलसी, अमर–वज्रीवृक्ष–थूहर, शुण्डालिक–हाथीशुण्डा वृक्ष ?, बर्बरास्य ?, सौरम्भ–सौरभ–तुम्बुरु–तेजवल, प्राणक्षार–तीनों प्रकार के मूत्र क्षाररूप नवसादर, विरञ्चि ?, सुहागा, आर्किका–अर्क–आख ?, सुरभी–तुलसी । इनको मिलाकर द्रवपात्र में ४, ३, ३, ५, ७, १२,१५, १, ३, १०, २४, २, ५, ३०, १२, २०, ८ भागों को ले ले, १०८ दर्जे की उष्णता से यह रुटनद्रावक शुद्ध सूक्ष्म और पीला हो जाता है ॥ १७-२० ॥

घण्टारवलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—घण्टारवलोहा लोहतन्त्र में कहा है—

कांस्यमाराररुचकौ गारुडं शल्यकृन्तनम् ।
पञ्चास्यं वीरणं रुक्मं शुकतुण्डं सुलोचनम् ॥ २१ ॥
दशलोहानिमान् सम्यक् शुद्धि कृत्वा यथाविधि ।
तारानलार्कनयनमुन्यब्धिशरवासराः ॥ २२ ॥
वेदावतारभागांशप्रकारेण यथाक्रमम् ।
सम्पूर्य शुक्तिमूषायां मृत्पटं वेष्टयेद् दृढम् ॥ २३ ॥
अलाबुकुण्डमध्येथ स्थापयित्वा यथाविधि ।
कक्ष्याणां पञ्चशतोष्णप्रमाणेनातिवेगतः ॥ २४ ॥
आनेत्रावधि संगाल्य पश्चाद् यन्त्रमुखे शनैः ।
निषिञ्चेद् विधिवत् पश्चाद् रक्तवर्णं दृढम् ॥२५ ॥
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं भारहीनं बलविवर्धनम् ।
भवेद् घण्टारलोहाख्यं सर्वशब्दापकर्षणम् ॥ २६ ॥ इत्यादि ॥

कांस्य, आरा, रुचक, गारुड, शल्यकृन्तन, पञ्चास्य, वीरण, रुक्म, शुकतुण्ड, सुलोचन इन दश लोहों को यथाविधि सम्यक् शोध कर ५, ३, १२, २, ३ ७, ५, ३०, ४, २४ भागांश प्रकार से यथाक्रम

शक्तिमूषा बोतल में भर कर मिट्टी कपडा—कप्पड मिट्टी लपेट कर अलाबुकुण्ड के मध्य में रख कर ५०० दर्जे की उष्णता के प्रमाण से अतिवेग से नेत्र अवधि तक गला कर पश्चात् धीरे से यन्त्रमुख में छोड़ दे पश्चात् वह लाल रंग दृढ मृदु अति सूक्ष्म हल्का बलिष्ठ सब शब्दों का आकर्षक घण्टार लोहा हो जावेगा ॥ २१--२६ ॥

क्वणदर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—क्वणदर्पण दर्पणप्रकरण में कहा है—

काकारिं करिशल्यकं गरदकं क्षाराष्टकं सिंहकम् ।
शल्याकं वरशर्करं बुडिलकं ज्वालामुखं तुण्डिलम् ॥
वैडालं शुकतुण्डकं रविमुखं चञ्चूलिकं पार्थिवम् ।
लुण्टाकं वरतालकं कुरवकं कम्बोदरं कामुकम् ॥ २७ ॥
संगृह्यैतान् यथाशास्त्रं शुद्धिं कृत्वा त्रिवारतः ।
पद्माख्यमूषामध्यास्ये पूरयित्वा समांशतः ॥ २८ ॥
कुण्डे पद्माकारे स्थाप्य शशभस्त्राद् यथाविधि ।
कक्ष्याणां सप्तशतोष्णप्रमाणेनातिवेगतः ॥ २९ ॥
संगाल्य तद्रसं नीत्वा यन्त्रास्ये पूरयेच्छनैः ।
एवं कृते भवेच्छुद्धं क्वणदर्पणमद्भुतम् ॥ ३० ॥ इत्यादि ॥

काक—गुञ्जा ? अरि-रक्त खैर ? करि—विट् खैर ? शल्यक—श्वेतखैर, गरदक—वत्सनाभ, आठ क्षार—पलाश सौंजना चिरचिटा जौ इमली आक तिलनाल सज्जी के क्षार, गन्दा विरोजा, पीली लोध ? वर—सैन्धव लवण, शर्करा-पाषाणकण, बुडिलकक्षार ?, ज्वालामुख—कलियारी, तुण्डिल-कन्दूरी, वैडाल—हरिताल ? शुकतुण्ड—शिंगरफ, रविमुख—सूर्यकान्तमणि, चञ्चूलिक—रक्त एरण्ड, अर्जुन या तगर ?, लुण्टाक—लुण्टक—शाक विशेष ?, वरताल—गोदन्ती हरताल, कुरवक—श्वेत अर्क या कटसरिया ?, कम्बोदर-कम्बूदर-शंखमध्य ?, पुन्नाग सुलतान चम्पा इनको समान भाग लेकर यथा-शास्त्र तीन बार शोध कर पद्माख्य मूषामध्य के मुख में भर कर पद्माकार कुण्ड में रख शशभस्त्रा से यथा-विधि ७०० दर्जे की उष्णता से गला कर उस द्रव रस को लेकर यन्त्र के मुख में धीरे से भर दे ऐसा करने पर शुद्ध क्वणदर्पण हो जावेगा ॥ २७--३० ॥

रुदन्तीमणिरुक्तं मणिप्रकरणे—रुदन्तीमणि कहा है मणिप्रकरण में—

क्षारत्रयमाञ्जनिकं कान्तं सज्जीकं वरकर्णवराटिम् ।
माक्षिकशर्करस्फाटिककांस्यं पारदतालकसत्त्वं गैरम् ॥३१॥
रुरुकं रौच्यककुडुपौ गरदं पञ्चमुखं शिङ्गरशुण्डिलकम् ।
एतानेकविंशतिवस्तून् सम्पूर्याणिकमूषास्यमुखे ॥३२॥
वरशौक्तिकव्यासटिकामध्ये संस्थाप्य दृढं वरभस्त्रमुखात् ।
सङ्गाल्य त्रयुत्तरशतकक्ष्योष्णेन निषिञ्चेन्मणियन्त्रमुखे ॥३३॥
पश्चात् सुदृढं बलदं भवति रुदन्तीमणिरुत्कृष्टम् ॥ इत्यादि ॥

क्षारत्रय—तीनों क्षार—सज्जीक्षार यवक्षार सुहागा, आञ्जनिक—सुरमा, कान्त—सूर्यकान्त—बिल्लौर, सज्जीक-सज्जी ? सञ्जीव-सञ्जीवनी-रुदन्तो क्षुप ?, वर-सैन्धवलवण, कर्ण-आख, कौडी, सोनामाखी, पाषणचूरा, फिटकरी, कांसा, पारा, तालकसत्त्व—हरिताल का सत्त्व, गेरू, रुरुक—उपधातु शोरा जैसा ? या वनरोहडा ? या लोहविशेष, रौच्यक-रुच्य-सौवर्चललवण, कुडुप ?, गरद—वच्छनाग, पञ्चमुख—लोहविशेष ? या वासा ?, शिङ्गर—शिङ्घाण—लोहमल—मण्डूर ?, शुण्डिलक—हाथीशुण्डी वृक्ष । इन २१ वस्तुओं को आणिकमूषास्यमुख बोतल में भरकर श्रेष्ठ सोपाकार व्यासटिका कुण्डे में रख श्रेष्ठ भस्त्रामुख से १०३ दर्जे की उष्णता से गलाकर मणियन्त्रमुख में डाल दे । पश्चात् सुदृढ़ बलवान् बलप्रद रुदन्तीमणि बन जाती है ॥ ३१—३३॥

रुटिकामणिरुक्तं तत्रैव—रुटिकामणि कही वहां ही—

फेनं चमरीनखमुखशल्यं चुम्बकपार्थिवशर्करधूमान् ॥३४॥
पारदप्राणक्षारस्फाटिकान् नागवराटिकमाक्षिकशुण्डान् ।
रुण्डककुडुपसुवर्चलवोर्यान् जम्बालिकवरवैडालिकदन्तान् ।
रञ्जकमञ्जिषपार्वणिरुक्मान् कौशिकनखवरमौक्तिकशुक्तीन् ॥३५॥
शुद्धानेतान् समभागांशान् नतमुखमूषामुखमध्यविले ।
सम्पूर्य महोदरकुण्डमुखे संस्थाप्य च षण्मुखभस्त्रमुखात् ॥३६॥
विधिवत्सङ्गाल्यानेत्रान्तं मणियन्त्रमुखे वेगात् सिञ्चेत् ।
पश्चात् सुदृढं श्यामलवर्णं प्रभवति रुटिकामणि भारयुतम् ॥३७॥ इत्यादि ॥

समुद्रफेन, चमरी–मञ्जरी–मुक्ता, नखमुखशल्य–एक सामुद्रिक जन्तु का नखाकारमुखरूप शल्य-काण्टा या नख मुख–दहहल ?, शल्य–मैनफल ?, चुम्बक–अयस्कान्त, पार्थिव–रेह ? शर्कर-पाषाणचूर्ण, धूम–शिलारस या सुरमा ?,पारा, प्राणक्षार—नवसादर ? बिल्लौर या फिटकरी ?सीसा, कौडी, सोनामाखी, शुद्ध--प्रवाल ? या हाथीशुण्डावृक्ष ? रुण्डक--अगर, कुडुप ?, सुवर्चलवीर्य--सज्जीखार, जम्बा-लिक--कमलबीज ? या शैवाल ? या केतकी ?, वैडालिकदन्त -गन्धमार्जार के दान्त ? या हरिताल दन्त--दन्तीहरिताल--गोदन्ती हरिताल, रञ्जक- शिंगरफ, मञ्जिषक ?--मञ्जिष्ठा -मजीठ ?, पार्वणि--हरिणशृङ्ग ?, रुक्म--स्वर्ण या धतूरा ?, कौशिकनख--नेवलेके नख ? या उल्लूके नख ?, वर--सैन्धवलवण, मौक्तिकशुक्ति--मोती की सीपी । इन सब शुद्ध हुए समान भागों को नखमुखमूषामुखमध्य बिल में भरकर महोदर कुण्ड में रखकर छः मुख भस्त्रामुख से विधिवत् नेत्र तक गलाकर मणियन्त्रमुख में वेग से छोड़ दे फिर सुदृढ़ श्यामल रुटिकामणि भारयुक्त हो जाती है ॥३४--३७॥

शब्दफेनमुक्तं शब्दमहोदध्याम् ?-शब्दफेन (मणि) कहा है शब्दमहोदधिग्रन्थ में—

बाडवारवमाकाशाज्जलात् प्राणनमेव च ।
वाताग्नि खमुखात् तद्वच्छिलादनुकरध्वनिम् ॥३८॥
किरणानां स्फोटनाख्यशक्तिं शैवालवल्कलम् ।
समुद्रफेनं ग्रीवाकं जलपाकं माछुलं तृणम् ॥३९॥
गृभ्णारकं रुद्रशल्यं गोकर्णं मुसलिं तथा ।

सप्तद्वाविंशतिः पञ्चचत्वारिंशत् त्रयोदश ॥४०॥
द्वात्रिंशदेकोनविंशदष्टत्रिंशच्चतुर्दश ।
द्वाविंशदष्टत्रिंशद्द्विचत्वारिंशत् त्रयोदश ॥४१॥
पञ्चविंशन्नव तथा त्रयोविंशद् यथाक्रमम् ।
संगृह्य विधिवच्छब्दफेनं पक्त्वात् प्रकल्पयेत् ॥४२॥

आकाश से वाडवारव गर्जना ७, जल से गीलापन या वेग से वहन श्वास-सैंसैं करना २२, खमुख--आकाशगोल से वाताग्नि वायु की सनसनाहट करनेवाली अग्निशक्ति ४५ को, उसी प्रकार शिला चट्टानपरतों या परस्पर घटनसे अनुकार ध्वनि १३को, किरणों की किरणस्फोटन नामकशक्ति--विदारण--करने वाली एवं अतिसूक्ष्म व्यापकशब्दशक्ति ३२को, शैवाल--शैवाल का वल्कल--पद्मकाष्ठ पदमाखकी छाल या या शैवाल--जलकाई का ऊपरिभाग ?, १६ भाग, समुद्रफेन ३८ भाग, ग्रीवाक ? १४ भाग, कदाचित् वांस ?, जलपाक ? २२ भाग कदाचित् शंख, माछुल ? मञ्जुल--मजीठ ? ३८ भाग, तृण--दर्भ ४२ भाग, या माछुल-तृण ३८ भाग ?, गृभ्णारक ?, ११ भाग, रुद्रशल्य ? २५ भाग, गोकर्ण--अश्वगन्ध या वाजीवल्ली ? ६भाग, मुसलि--तालमूल १३ भाग, इनको विधिवत् लेकर पके रस से—शब्दफेन पकाए हुए से कल्याण हो जाए ॥३८—४२॥

उक्तं हि तत्रैव--कहा ही वहां —

शैवालादिमुसल्यन्तान् वस्तून संशोध्य शास्त्रतः ॥४२॥
तत्तत्प्रमाणानुसारात् यन्त्रे फेनाकरे क्रमात् ।
संस्थाप्य पाचयेत् सम्यग्यथाविधि दिनत्रयम् ॥४३॥
घटिकार्धादेकवारं कीलीं सङ्कलनाभिधाम् ।
भ्रामयेद्वेगतो नित्यं फेनवद् भवति क्रमात् ॥४४॥
यन्त्रात् फेनमाहृत्य शक्तिसम्मेलनाभिधे ।
यन्त्रे नियोजयेत् पश्चान्नालषट्कैर्यथाक्रमम् ॥४५॥

शैवाल से आदि कर मुसलीपर्यन्त वस्तुओं को शास्त्र से शोधकर उस उसके मान के अनुसार फेन करनेवाले यन्त्रमें क्रमशः रख तीन दिन तक ठीक पकावे आधी घडीमें एकवार सङ्कलननामक कीली को घुमावे, नित्य वेग से घुमावे तो क्रम से फेन जैसा हो जाता है, यन्त्र से फेन लेकर शक्ति-सम्मेलन नामकयन्त्र में नियुक्त कर दें पश्चात् छः नालों से यथाक्रम–॥४२–४३॥

प्राणनादिस्फोटनाख्यशक्त्यन्तं क्रमशस्सुधीः ।
तत्तत्संख्यानुसारेण शक्तिमेकैकतः क्रमात् ॥४६॥
पूर्वोक्तनालतो यन्त्रस्थितफेनोपरिक्रमात् ।
सम्मेलयेद् यथाशास्त्रं सावधानान्मुहुर्मुहुः ॥४७॥
समीकरणचक्रस्य कीलकं पट्टिकान्वितम् ।
पार्श्वे यन्त्रस्य विधिवद् भ्रामयेत् कालमानतः ॥४८॥
मन्दोष्णात् पाचयेत् पश्चादेवं यथाक्रमम् ।
प्राणनादिस्फोटनान्तशक्तिसंयोजनं बुधः ॥४९॥

कुर्यात् पृथक् पृथक् पश्चादातपे सन्निवेशयेत् ।
विद्युच्छक्तिं संयोज्य पञ्चाशीतिप्रमाणतः ॥५०॥
तत्फेनमध्ये यन्त्रस्य नालात् संचोदयेच्छनैः ।
तया संपाचयेत् पश्चाद् दिनषट्कं यथाविधि ॥ ५१ ॥
ततस्संगृह्य तत्फेनं तद्यन्त्रात् सावधानतः ।
वाजीमुखाख्यलोहस्य पेटिकायां न्यसेद् दृढम् ॥ ५२ ॥
एवं क्रमेण विधिवच्छब्दफेनं विचारतः ।
कृतं चेत् सर्वशब्दापकर्षणं कारयेत् स्वतः ॥ ५३ ॥

प्राणन आदि स्फोटनाख्य शक्ति तक क्रम से बुद्धिमान् उस उस की संख्या के अनुसार एक एक शक्ति को क्रम से पूर्वोक्त नाल से यन्त्र में रखे फेन के ऊपर सावधानी से वार वार मिलावे, समीकरण–बराबर करने वाले चक्र की कील को पट्टिकासहित यन्त्र के पास में विधिवत् घुमावे काल के अनुसार मन्दोष्णता से पकावे फिर यथाक्रम इसी प्रकार प्राणन आदि स्फोटनपर्यन्त शक्ति का संयोजन बुद्धिमान् पृथक् पृथक् करे, फिर धूप में रख दे ८५ प्रमाण से विद्युत्शक्ति को सुसंयुक्त करके उस फेन के मध्य यन्त्र के नाल से धीरे धीरे प्रेरित करे–डाल दे, फिर उस से छः दिन तक यथाविधि पकावे, फिर यन्त्र से फेन को लेकर वाजीमुखनामक लोहे की पेटिका में बन्द कर रख दे, इस प्रकार क्रम से विधिवत् विचार से शब्दफेन यदि करे सब शब्दों का अपकर्षण आकर्षण करावे ॥ ४६—५३ ॥

वाजीमुखलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—वाजीमुखलोहा कहा है लोहतन्त्र में—

शुल्वत्रयगरुडद्वयक्ष्विङ्काष्टकवीरद्वयकान्तत्रितयं वरबम्भारिकमेकम् ।
कंसारिकत्रितयं वरपञ्चाननषट्कगौरीमुखद्वितयं वरशुण्डालकषट्कम् ॥५४॥
एतान् दशवस्तूनतिशुद्धान् परिगृह्य शुण्डालकमूषामुखमध्ये विनियोज्य ।
शूर्पास्यककुण्डोपरि संस्थाप्याथ वज्राननभस्त्रेणविगाल्यार्किकवज्राननयन्त्रे ॥५५
सम्पूर्य च कीलीं तद्रससंस्करणार्थं वेगेन भ्रामयेदथ शास्त्रोक्तविधानात् ।
क्रियते यद्येवं वरवाजीमुखलोहं प्रभवेदतिमृदुलं लघु पिंगलवर्णम् ॥५६॥ इत्यादि

ताम्बा ३ भाग, सोनामाखी २ भाग, क्ष्विङ्क–लोहाविशेष, कृष्णलोहा २ भाग, अयस्कान्त ३ भाग, वरवम्भारिक ? १ भाग, कंसारिक ? ३ भाग, गरपञ्चानन ? ६ भाग, गौरीमुख ? गौरीतेज—अभ्रक २ भाग, शुण्डालक ? ६ भाग। इन दश शुद्ध वस्तुओं को शुण्डालमूषामुख के मध्य में भरकर शूर्पास्य—छाजसदृश मुखवाले कुण्ड के ऊपर रखकर वज्रानन—वज्रमुखभस्त्रा से गला कर आर्किकवज्रानन यन्त्र में भरकर उस रस के संस्कारार्थ कीली वेग से घुमावे यदि शास्त्रविधान से ऐसा किया जाता है तो श्रेष्ठ वाजीमुखलोहा अतिमृदु हल्का पिङ्गल रंग वाला हो जाता है ॥ ५४—५६ ॥

अथ पटप्रसारणयन्त्रम्—अब पटप्रसारणयन्त्र कहते हैं—

उक्त्वा शब्दाकर्षणाख्ययन्त्रमद्य यथाविधि ।
पटप्रसारणं यन्त्रं संग्रहेण निरूप्यते ॥ ५७ ॥

शब्दाकर्षणनामक यन्त्र यथाविधि कहकर अब पटप्रसारण यन्त्र संक्षेप से निरूपित किया जाता है ।। ५७ ।।

तदुक्तं क्रियासारे—वह वृत्त क्रियासार ग्रन्थ में कहा है–

दिक्प्रभेदेन यानस्य गमनार्थं तथैव हि ।
अ (आ ?) पायोपायसङ्केतविज्ञानार्थं समासतः ।।५८।।
पटप्रसारणं यन्त्रं क्रमाद् यानभुजे न्यसेत् । इत्यादि ।।

दिशाभेद से विमानयान के जाने को तथा संक्षेप से थोड़े में प्रतिकूलबाधक अनुकूलसाधक के सङ्केतज्ञानार्थ पटप्रसारण यन्त्र क्रम से विमान की भुजाओं में लगा दे ।

तदुक्तं पटकल्पे—वह बात पटकल्प में कही है—

रक्तकृष्णश्वेतनीलपीतवर्णादिभिः क्रमात् ।
रञ्जितं पटमेकं तु कुर्याच्छास्त्रविधानतः ।। ५९ ।।
मुञ्जारक्तकल्याणगोमारी शम्बरस्तथा ।
शणराजावर्ततृणक्रव्यादान् शास्त्रतः क्रमात् ।। ६० ।।
त्रिवारं शोधयित्वाथ कृत्वा सूर्यपुटत्रयम् ।
पाचनायन्त्रमध्ये तद्वस्तून् संस्थाप्य शास्त्रतः ।। ६१ ।।
पाकमानानुसारेण त्रिदिनं पाचयेत् क्रमात् ।
कुट्टिणीयन्त्रमध्येथ तत्संगृह्य न्यसेत् ततः ।। ६२ ।।
यामत्रयं कुट्टिणीकीलकचालनतः क्रमात् ।
समीकृत्य यथाशास्त्रं पाचनेथ पुनः पचेत् ।। ६३ ।।
पटक्रियायन्त्रमुखे स्थापयित्वा ततः परम् ।
कीलीचालनतस्सम्यगोतप्रोतात्मना क्रमात् ।। ६४ ।।
समीकृत्याथ विधिवत् पटं कुर्यान्मनोहरम् ।
सप्तवर्णादिभिस्सम्यग्रञ्जितं स्याद् यथा स्वतः ।। ६५ ।।

लाल काले सफेद नीले पीले वर्ण आदि से क्रमशः रंगा एक पट (वस्त्र) शास्त्रविधान से करे । मूञ्ज, अरक—लाख या आरक्त–लाल चन्दन, कल्याण–राल, गोमारी—गोमरी—लालबैंगन ?, शाम्बर–लोध या अर्जुनवृक्ष की छाल ?, शण—सन, राजावर्त—लाल फिटकरी, तृण–दर्भ, क्रव्याद—जटामांसी ?, इन्हें शास्त्र से क्रमशः तीन वार शोधकर तीन सूर्यपुट कर दे, पाचानायन्त्र के मध्य में रखकर पाकप्रमाणानुसार तीन दिन तक पकावे, फिर कुट्टिणी यन्त्र में रख दे ३ प्रहर कुट्टिणीयन्त्र चलाते हुए समान करके फिर पाचनयन्त्र में पकावे पुनः पट्टक्रियायन्त्रमुख में रखकर कीली चलाने से सम्यक् ओत प्रोत एकीभाव हो जाने से बराबर करके विधिवत् मनोहर पट बनावे फिर वह स्वतः सात रंग आदि से रंगा हुआ हो जावेगा ।। ५९—६५ ।।

संगृह्य तत्पटं दीर्घदण्डे संवेष्ट्य शास्त्रतः ।
तद्दण्डं त्रिमुखीनालयन्त्रे सन्धार्य यत्नतः ॥ ६६ ॥
सकीलकं यानभुजे स्थापयेत् सुदृढं यथा ।
रक्तादिवर्णसंक्लृप्तपटसन्दर्शनात् सुधीः ॥ ६७ ॥
वर्णसङ्केततोपायादीन् विज्ञाय यथाविधि ।
तिर्यग्गमनतो यानं यन्ता दूरे नियोजयेत् ॥ ६८ ॥
तथैव श्वेतपीतादिपटसञ्चालनक्रमात् ।
दिक्प्रभेदं सुविज्ञाय तत्सङ्केतानुसारतः ॥ ६९ ॥
विमानं चोदयेत् प्राज्ञो नानागतिप्रभेदतः ।
विमानरक्षणं तेन प्रभवेन्नात्र संशयः ॥ ७० ॥
तस्मादेतद्यन्त्रमुक्तं समासेन यथाविधि ॥ ७१ ॥ इत्यादि ॥

उस पट को लेकर लम्बे दण्डे पर शास्त्रानुसार लपेटकर उस दण्डे को त्रिमुखीनाल यन्त्र में जोडकर कीलसहित विमानयान की भुजा में दृढ़ स्थापित करे, बुद्धिमान् जन रक्त आदि रंग से सम्पन्न रंगे पट के देखने से रंग संकेत से बाधक आदि को जानकर यन्ता—चालक तिर्यक् गमन से विमान को दूर नियुक्त कर देगा वैसे ही सफेद पीले आदि पट के सञ्चालन क्रम से दिशा भेद को जानकर उस संकेतानुसार विमान को नाना गतियों के भेद से विद्वान् प्रेरित करे, इस से विमानरक्षण हो जावे, इस में संशय नहीं अतः यह यन्त्र संक्षेप से कहा है ॥ ६६—७१ ॥

अथ दिशाम्पतियन्त्रः—अब दिशाम्पति यन्त्र का वर्णन करते हैं—

पटप्रसारणं यन्त्रमेवमुक्त्वा यथाविधि ।
संग्रहेण दिशाम्पतियन्त्रमद्य विविच्यते ॥ ७२ ॥

इस प्रकार पटप्रसारणयन्त्र यथाविधि कहकर संक्षेप से दिशाम्पति यन्त्र का अब विवेचन करते हैं ॥ ६२ ॥

तदुक्तं क्रियासारे-वह क्रियासार में कहा है—

आकाशगमने व्योमयानस्याष्टदिशि क्रमात् ।
ग्रहांशुपथसन्धीनामन्तराले ऋतुक्रमात् ॥ ७३ ॥
प्रजायन्ते पञ्चदश कौवेराख्याः प्रभञ्जनाः ।
तैर्विमानप्रयातॄणां चर्मसंशोषणं भवेत् ॥ ७४ ॥
पश्चात् का (खा ?) सादयो रोगास्सञ्जायन्तेतिदुःखदाः ।
तस्मात् तत्परिहाराय विमानस्य यथाविधि ॥ ७५ ॥
दिशाम्पतियन्त्रमपि वामकेन्द्रभुजे न्यसेत् ॥ इत्यादि ॥

विमान के आकाशगमन में आठ दिशाओं में क्रम से ग्रह और किरणों के मार्गों की सन्धियों के बीच में ऋतु क्रम से १५ कौबेरनामक वायुएं हैं उनसे—उनके स्पर्श सेवन से विमान के यात्रियों

का चर्म शोषण हो जावे पश्चात् खांसी आदि अतिदु:खद रोग उत्पन्न हो जावें अत: उसके दूर करने के लिये विमान का दिशाम्पति यन्त्र भी वामकेन्द्र भुजा में यथाविधि रखे ।। ७३-७५ ।।

यन्त्रस्वरूपमुक्तं यन्त्रप्रकरणे—यन्त्रस्वरूप कहा है यन्त्र प्रकरण में—

कौबेरवातविषसंशोषणार्थं यथाविधि ।। ७६ ।।
दिशाम्पतिं प्रवक्ष्यामि यन्त्रं लोकोपकारकम् ।
चतुरश्रं वर्तुलं वा पीठं कुर्याद् यथाविधि ।। ७७ ।।
पार्वणीदारुणा द्रावसंस्कृतेन त्रिधा क्रमात् ।

कौबेर वायु के विष का संशोषण करने के लिये यथाविधि लोकोपकारक दिशाम्पति यन्त्र कहूंगा, चौकोन या गोल पीठ यथाविधि करे पार्वणी काष्ठ से जो द्राव से ३ वार संस्कृत की गई हो ।। ७६—७७ ।।

पार्वणीदारुस्वरूपमुक्तमगतत्त्वलहर्याम्–पार्वणीदारु का स्वरूप कहा है अगतत्त्वलहरी में–

प्रति पर्वणि पर्वाणि प्रभवेदिक्षुदण्डवत् * ।। ७८ ।।
यस्मिन्नविरलं तत्तु पार्वणीदार्वितीरितम् ।
रक्तवर्णं दीर्घपर्णं रक्तपुष्पविराजितम् ।। ७९ ।।
सूक्ष्मकण्टकसंयुक्तं भुजङ्गविषनाशनम् ।
अत्यन्तकटुसारं च भूतप्रेतविनाशनम् ।। ८० ।।
कृष्णपक्षे मुकुलितं पार्वणीदारुलक्षणम् । इत्यादि ।

जिस वृक्ष के प्रतिपर्व में पर्व—स्वसदृश भाग गन्ने के समान अविच्छिन्न रूप में हों वह पार्वणी दारु कही गई है । लाल रंग वाला लम्बे पत्ते वाला लाल फूलों से विशेष भूषित सूक्ष्म कांटे वाला सर्प विष नाशक अत्यन्त कडवे मध्य भाग वाला भूत प्रेत निवारक कृष्णपक्ष में खिलने वाला पार्वणी दारु का लक्षण है ।

एकोनविंशत्संख्याकदर्पणेन यथाविधि ।। ८१ ।।
बाहुमात्रं नालशङ्कुं नवद्वारसमन्वितम् ।
नवकीलसंयुक्तं नवतन्त्रिभिरन्वितम् ।। ८२ ।।
कृत्वा संस्थापयेत् पीठमध्ये शास्त्रविधानत: ।
तन्मूलदेशतस्सम्यगीशान्यादिक्रमात् तत: ।। ८३ ।।
अष्टदिक्ष्वष्टकेन्द्राणि कल्पयेत् समसंख्यया ।
विस्तृतास्यं सूक्ष्ममूलं मध्ये वर्तुलरूपकम् ।। ८४ ।।
वितस्तिद्वयमायामं षड्वितस्त्युन्नतं तथा ।
वितस्तित्रयमायामवर्तुलं नालमध्यमे ।। ८५ ।।

---

* 'प्रभवेत्' वचनव्यत्यय: ।

१९ वीं संख्यावाले दर्पण से यथाविधि भुजा के बराबर नालशंकु—पोला शंकु नौ द्वारों से युक्त नौ कील पेंचों वाला नौ तारों से युक्त बना कर पीठ के मध्य में शास्त्रविधान से स्थापित करे उसके मूलस्थान से भली प्रकार ईशानी आदि क्रम से आठ दिशाओं में आठ केन्द्र बनावे, समान संख्या से खुले मुख वाला सूक्ष्म मूल वाला बीच में गोल २ बालिश्त लम्बा ६ बालिश्त ऊंचा ३ बालिश्त लम्बा चौड़ा गोल नाल के मध्य में—॥ ८१-८५ ॥

एवं क्रमेण कर्तव्यं नालाष्टकमतः परम् ।
गणितोक्तविधानेन पत्राष्टकविराजितम् ॥ ८६ ॥
पद्ममेकं कल्पयित्वा शङ्कुनोपरि विन्यसेत् ।
शङ्कुरन्ध्रेष्वष्टनालान् सम्यक् सन्धारयेद् दृढम् ॥ ८७ ॥
गोभि (वि ?) लोक्तप्रकारेणावरणं शशचर्मणा ।
नालाष्टकान्तर्बाह्ये च कर्तव्यं सप्रमाणतः ॥ ८८ ॥
माञ्चूलिकावल्कलं तन्मूलमध्ये नियोजयेत् ।
नालस्थतन्त्रीस्संगृह्य पद्माष्टदलसन्धिषु ॥ ८९ ॥
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं पद्मोपरि यथाक्रमम् ।

इस प्रकार क्रम से आठ नालें बनानी चाहिएं गणितोक्त विधान से आठ पत्रों-पंखडियों से विराजित एक कमल बनाना चाहिए, उसे शंकु के ऊपर रखदे, शंकु छिद्रों में ८ नालें सम्यक् लगावे गोभिल के कहे प्रकारानुसार शशचर्म से आवरण आठों नालों के अन्दर और बाहिर सप्रमाण करना चाहिए। माञ्चूलिका वल्कल ? उसके मुखमध्य में लगा दे नालस्थ तारों को लेकर आठों पद्मों की सन्धियों में यथाशास्त्र पद्मों के ऊपर जोड दें ॥ ८६-८९ ॥

माञ्चूलिकावल्कलमुक्तं पटप्रदीपिकायाम्—माञ्चूलिकावल्कल पटप्रदीपिका में कहा है—

वासन्तीमृडरञ्जिकासुररुचिकासंवर्तकीफाल्गुणी,
चञ्चोरारुणकान्तकं कुदलनी मण्डूरिकामारिका ।
लङ्कारिकपिवल्लरी विषधरा संवालिकामञ्जरी,
रुक्माङ्गा वरधुण्डिकार्कगरुडागुञ्जावरीजञ्झरा ॥ ९० ॥
एतेषां वरकाण्डपिञ्जुलिमथ त्वङ्मञ्जरीकं क्रमात्,
संग्राह्य वरपाकयन्त्रमुखतस्सम्पूर्य सम्पाचयेत् ।
क्रौञ्चद्रावकसेचनेन च पुनः पाकेन संक्षालनात्,
तच्छास्त्रोदितवर्त्मना त्रिदिनतः पाकप्रमाणाद् यदि ॥ ९१ ॥
कुर्याच्चेदतिशुभ्रवर्णममलं भद्रं मनोज्ञमृजु,
श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं भवेत् सुमृदुलं मांजूलिकावल्कलम् ॥ इत्यादि ॥

वासन्ती—पुष्पवृक्ष—जूही फूलवृक्ष, मृड ?, रञ्जिका-रञ्जिनी—नागवल्ली या मजीठ या हरिद्रा, सुर—देवदारु, रुचिका—रुचक-कागजी निम्बु, संवर्तकी-संवर्तक—बहेडा वृक्ष, फाल्गुणी—अर्जुन वृक्ष, चञ्चोर चञ्चुर—रक्त एरण्ड, अरुणकान्त-सूर्यकान्त ? या अरुण-रक्तपुष्प तरु, कान्त—केसर या तूण ?, कुदलनी-कुदलि--अश्मन्तक वृक्ष, मण्डूरिका—मण्डूर ?-लोहमल, मारिका—मारक—शिंगरफ या मारिच-कङ्कोल वृक्ष, लङ्कारी—लङ्कारिका-असवर्ग, कपिवल्लरी—कपिवल्ली—गजपिप्पली या कैथ, विषधरा ?—संवालिका ? संवाटिका—शिंघाडा, मञ्जरी—गन्धतुलसी या तिलवृक्ष या अशोक वृक्ष ? रुक्माङ्गा—स्वर्णाङ्गा-महारग्वध वृक्ष—अमलतास, वरधुण्डिका—श्रेष्ठ ढिण्ढिका ?-जल शिरीष वृक्ष, अर्क-आख, गरुडा-गरुडी-गडूची-गिलोय, गुंजा-चौंटली, वरी-शतावरी, या अवरी-अवरिका-धन्या ?, जञ्झरा-झर्झर-सुगन्ध द्रव्य विशेष ? इनके श्रेष्ठ काण्ड कोंपल छाल बूर को लेकर श्रेष्ठ पाक यन्त्रमुख में भर कर पकावे क्रौञ्चद्रावक क्रौञ्च पद्मबीज रस ? डालने से फिर पकाने से शोधन से शास्त्रोक्त मार्ग से ३ दिन पकाने से शुभ्र वर्ण निर्मल भद्र मनपसन्द कोमल अति श्रेष्ठ सुमृदु माञ्जूलिकावल्कल हो जावे ॥९०—९१॥

वातपामणिमाहृत्य पश्चान्मध्ये प्रकल्पयेत् ।
अंशुपादर्पणं तस्य पुरोभागे ततो न्यसेत् ॥ ९२ ॥
कौबेरवातसंसर्गो दिक्प्रभेदक्रमात् स्वतः ।
सम्भवेद् यदि मार्तण्डकिरणेषु मनागपि ॥ ९३ ॥
तदांशुपादर्पणस्य मुखं दिगनुसारतः ।
नीलरक्तप्रभामिश्रवर्णं भवति नान्यथा ॥ ९४ ॥
दर्पणान्तरसन्धानात् तद्विज्ञाय यथाविधि ।
कीलकान् नवसंख्याकान् भ्रामयेदतिवेगतः ॥ ९५ ॥
एकैककीलकवेगेन तत्तन्नालान्तरे क्रमात् ।
शक्तिसंयोजनाच्चैव शशचर्मणि वेगतः ॥ ९६ ॥
जायते सम्मार्ष्णिकाख्या काचिच्छक्तिर्महत्तरा ।
माञ्जूलिकावल्कलं तच्छक्तिमाहृत्य वेगतः ॥ ९७ ॥
चोदयेत् पद्मपत्रेषु तत्तत्पत्राण्यपि तन्त्रिभिः ।
तच्छक्तिं प्रेरयेद् वातपामणि स्वीयशक्तितः ॥ ९८ ॥
वातपामणिः कौबेरविषवायुमतः परम् ।
सम्मार्ष्णिकासहायेन पिबेदत्यन्तवेगतः ॥ ९९ ॥
पश्चात् पद्माष्टदलमध्यस्थनालमुखान्तरात् ।
कौबेरवातसम्बन्धविषशक्त्यतिवेगतः ॥ १०० ॥
लयमायाति बाह्याकाशस्थवायौ स्वभावतः ।
पश्चात् खेटस्थयन्तॄणामारोग्यं भवति ध्रुवम् ॥ १०१ ॥
तस्माद् दिशाम्पतियन्त्रमेतदुक्तं यथाविधि ॥ इत्यादि ॥

फिर वातपा मणिको लेकर मध्य में रखे, अंशुपादर्पण उसके सामने वाले भाग में रखे। कौवेर वातसंसर्ग दिशाओं के भेद से स्वतः यदि सूर्यकिरणों में थोडा भी हो जावे तो अंशुपादर्पण का मुख दिशा के अनुसार नीला लाल प्रभा मिश्रित वर्ण वाला हो जाता है अन्यथा नहीं। दर्पण के अन्दर सन्धान से उसे यथाविधि जानकर नौ कीलों को अति वेग से घुमा दे एक एक कील के वेग से और उस उस नाल के अन्दर शक्तिसंयोजन से शशचर्म में सम्मार्ष्णिक—टक्कर लेने वाली अतिमहती कोई शक्ति उत्पन्न हो जाती है उस शक्ति को आञ्जूलिकावल्कल लेकर वेग से पद्मपत्रों पद्मपत्र की पंखडियों में प्रेरित करता है वे पद्मपत्र तारों के द्वारा उस शक्ति को वातपामणि को अपनी शक्ति से प्रेरित करे वातपा मणि कौवेरविष वायु को सम्मार्ष्णिका के सहाय से अतिवेग से पीती है पश्चात् पद्म के आठ दलों में स्थित नालमुख के अन्दर कौवेरवात से सम्बन्ध रखने वाली विषशक्ति वाह्य वायु में लय को प्राप्त हो जाती है पश्चात् विमान के चालक यात्रिओं को अरोगता हो जाती है अतः दिशाम्पति यन्त्र यथाविधि कहा है ॥ ९२-१०१ ॥

एकोनविंशं दर्पणमुक्तं दर्पणप्रकरणे—दर्पण प्रकरण में १९वां दर्पण कहा है—

उरगत्वक् पञ्चमुखं व्याघ्रदन्तं च सैकतम् ।
लवणं पारदं सीसं चेति निर्यासमृत्तिका ॥ १०२ ॥
स्फाटिकं रुरुकं वीरं मृणालं रविकर्पटिम् ।
चञ्चोलं बालजं पञ्चप्राणक्षा(सा?)रं शशोडुपम् ॥ १०३ ॥
त्रिसप्तपञ्चद्वाविंशचतुःपञ्चदशस्तथा ।
द्विपञ्चविंशतिस्सप्तत्रिंशत् पञ्चदशस्तथा ।
चत्वारिंशत् त्रयोविंशत् सप्तविंशत् त्रयोदश ॥ १०४ ॥
एकोनविंशाष्टदशभागसंख्यानुसारतः ।
त्रिवारं शोधयित्वाष्टादशवस्तून् यथाविधि ॥ १०५ ॥
मत्स्यमूषामुखे सम्यगापूर्य विधिवत् ततः ।
नलिकाकुण्डमध्ये संस्थापयित्वा दृढं यथा ॥ १०६ ॥
एकोनशतकक्ष्योष्णप्रमाणेन यथाविधि ।
गालयेद् गोमुखीभस्त्रात् पश्चाद् यन्त्रमुखे न्यसेत् ॥ १०७ ॥
एवं कृते पिङ्गलाख्यदर्पणं भवति दृढम् ।
एतदेकोनविंशत्संख्याकमिति शास्त्रैभिर्वर्णितम् ॥ १०८ ॥

उरगत्वक्—नागकेसर वृक्ष की छाल या सांप की केंचुली, पञ्चमुख ?—वासा ? या जवाकुसुम ? या लोहा विशेष, व्याघ्रदन्त ?, सैकत—शिंगरफ, लवण, पारा, सीसा, निर्यास—लाख ?, मृत्तिका—सौराष्ट्र मृत्तिका ? या गेरू ?, स्फाटिक—स्फटिक मणि, रुरुक—वनरोहेडा या हरिण शृङ्ग, वीर—लोहा ? या सिन्दूर, मृणाल—खस (ठण्डी घासमूल) या कमलमूल, रविकर्पट ?—ताम्बे का पत्तर या आख की

रूई ?, चञ्चोल—चञ्चुलु—लाल एरण्ड ? बालज-सुगन्धबालासत्त्व, पांचों प्राणक्षार-मनुष्य घोडा गधा बैल बकरी के मूत्रों का क्षार नवसादर, शशोड्डुप—लोध काष्ठ। क्रमशः ३, ७, ५, २२, ४, १५, २, ५, २०, ७, ३०, १५, ४०, २३, २७, १३, १६, १८ भागों के अनुसार इन १२ वस्तुओं को तीन वार शोधकर मत्स्यमूषा मुख बोतल में विधिवत् भर कर नलिकाकुण्ड के मध्य में रख कर ६६ दर्जे की उष्णता से यथाविधि गोमुखी भस्त्रा से गलावे पश्चात् यन्त्रमुख में डाल दे ऐसा करने पर पिङ्गलाख्य दर्पण हो जावेगा यही १६वीं संख्या वाला दर्पण शास्त्र में वर्णित किया है ॥ १०३-१०८ ॥

हस्तलेख कापी संख्या १५ —

अथ पट्टिकाभ्रकयन्त्रम्—अब पट्टिकाभ्रक यन्त्र कहते हैं ।

एवमुक्त्वा संग्रहेण दिशाम्पतिमतः परम् ।
पट्टिकाभ्रकयन्त्रस्वरूपमत्र निरूप्यते ॥१॥

इस प्रकार 'दिशाम्पति' यन्त्र संक्षेप से कहकर अब आगे, 'पट्टिकाभ्रक' यन्त्र के स्वरूप का निरूपण किया जाता है।

तदुक्तं क्रियासारे—वह यह वृत्त 'क्रियासार' ग्रन्थ में कहा है—

ग्रहसन्धिसमुद्भूतज्वालामुखविनाशने ।
पट्टिकाभ्रकयन्त्रं च यानावरणमध्यमे ॥२॥
स्थापयेद्विधिवद् धीमान् सर्वदुःखविनाशनम् ।

ग्रहों की सन्धि में प्रकट हुए ज्वालामुख--अति ज्वालनशक्ति के विनाश निमित्त पट्टिकाभ्रक यन्त्र को भी यानावरण के मध्य भाग में बुद्धिमान् स्थापित करे जो कि सर्वदुःखों का विनाशसाधन है ।

उक्तं हि यन्त्रसर्वस्वे--यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में कहा ही है-

ग्रहसञ्चारमार्गेषु ग्रहाणां तु परस्परम् ॥३॥
एकरेखाप्रवेशेन ग्रहसन्धिर्भवेदतः ।
ज्वालामुखाभिधा * काचिद्विषशक्तिः प्रजायते ॥४॥
यानारूढास्तया सर्वे मरिष्यन्ति न संशयः ।
तस्मात्तच्छक्तिनाशाय संग्रहेण यथाविधि ॥५॥
पट्टिकाभ्रकयन्त्रस्वरूपमद्य निरूप्यते ।
तृतीयवर्गाभ्रकेषु तृतीयाभ्रकतः क्रमात् ॥६॥
कारयेत्पट्टिकाभ्रकयन्त्रं शास्त्रविधानतः ।

ग्रहों के सञ्चरण मार्गों में ग्रहों के परस्पर एकरेखाप्रवेश से ग्रहसन्धि होती है अतः वहां ज्वालामुखनामक कोई विषशक्ति--घातक विप्रयोगशक्ति† विरुद्ध संयोगशक्ति प्रकट हो जाती है उससे

---

* दा (हस्तलेखे)
† "विष विप्रयोगे" (क्र्यादि०) विरुद्ध संयोग--घर्षण या मन्तर्दाह ।

यान--व्योमयान या विमानयान पर सवार हुए सब निःसंशय मर जायेंगे। अतः उस विषशक्ति-विरुद्ध योगवाली शक्ति के नाशार्थ संक्षेप से पट्टिकाभ्रकयन्त्र का स्वरूप आज--अब विधिवत् निरूपित किया जाता है। तृतीयवर्ग के अभ्रकों में क्रमानुसार तृतीय अभ्रक से शास्त्रविधान से पट्टिकाभ्रकयन्त्र करावे-बनवाए या करे बनवावे‡ ।।३—६।।

तदुक्तं शौनकीये--यह शौनकीय वचन में कहा है-

अथ तृतीयवर्गस्थाभ्रकनामान्यनुक्रमिष्यामो † शारदपङ्क्तिलसोममार्जालिकरक्तमुखविनाशका इति। सोमेनैवैतदिति + केचित् ।।

अब तृतीय वर्गवाले अभ्रक नामों को कहेंगे शारद, पङ्क्तिल, सोममार्जालिक, रक्तमुख, विनाशक या रक्तमुखविनाशक। सोम से ही करे ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं। (सोम की तृतीय संख्या है)।

सोमाभ्रकलक्षणमुक्तं लोहतन्त्रे—सोम नाम के अभ्रक का लक्षण लोहतन्त्र में कहा है—

मेघवर्णोऽतिसूक्ष्मश्च सुदृढो रसपस्तथा ।
नेत्ररोगहरस्स्पर्शाद् देहे शीतलदो भवेत् ।। ७ ।।
वज्रगर्भो व्रणहरः मूत्रकृच्छ्रविनाशकृत् ।
सर्वत्र रक्तरेखाभिः सावर्तैस्सुविराजितः ।। ८ ।।
एतल्लक्षणसंयुक्तो सोमाभ्रक इतीरितः ।

मेघ के समाज रंगवाला अत्यन्तसूक्ष्म—अत्यन्त पतले दलवाला दृढ रसप पारे को अन्दर पीए हुए × नेत्ररोग हर स्पर्श से देह में ठण्ड करनेवाला वज्रयुक्त घाव को हरनेवाला मूत्रकृच्छ्ररोगनाशक सब ओर गोल लाल रेखाओं से युक्त हो, इन लक्षणों वाला सोम अभ्रक कहा गया है।

रसमाताबीजतैलादभ्रकं शोधयेद्द्विधा* ।। ९ ।।
वितस्तिद्वयमायामं बाहुमात्रोन्नतं तथा।
गालयित्वाभ्रकं पश्चात् पट्टिकां कारयेत् ततः ।। १० ।।
आदौ कुर्यात् कूर्मपीठं वारिवृक्षस्य दारुणा।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं बाहुमात्रोन्नतं क्रमात् ।। ११ ।।
कुर्याच्छङ्कुपट्टिकाकारेण शास्त्रविधानतः ।
प्रदक्षिणावर्तकीलचक्राणि तदनन्तरम् ।। १२ ।।
शौण्डीरमणियुक्तानि तस्मिन् सन्धारयेत्ततः ।
तन्त्रीन् सन्धारयेत् पश्चात् मूलकेन्द्राद् यथाक्रमम् ।।१३।।

---

‡ णिच् प्रयोग सामान्यस्वार्थ में।

† उत्पाठः प्रायोऽत्र मूलग्रन्थे पुरातन प्रयोगो यद्वा ऽऽर्षप्रयोगः।

+ सोमेनैवेत ? (मूलपाठे)

× रसग्राहक नाम भी कृष्णाभ्रक का भेद है।

* द्विविधा या द्विधा।

अभ्रक को रसमाताबीज तैल रस—हिङ्गुल और माताबीज—आखुकर्णी या इन्द्रवारुणी के बीज के तैल से विधि से या दो वार, शोधे फिर अभ्रक को गलाकर दो वितस्ति—वालिश्तमात्र लम्बी चौड़ी बाहु—हाथ भर ऊंची पट्टिका बनावे। प्रथम कूर्मपीठ (नीचे का स्थान) वारिवृक्ष—ह्रीवेर—सुगन्ध वाला वरणा ? वृक्ष की लकड़ी से सोलह अङ्गुल लम्बा बाहुमात्र ऊंचा शङ्कपट्टिकाकार से शास्त्रानुसार बनावे, पुन: सीधी घूमनेवाले कीलचक्र विधिवत् शौण्डीर मणि‡ से युक्त कील चक्र लगावे उस शंकु में लगावे, पश्चात् मूलकेन्द्र से तन्त्रियों-तारों को लगावे ॥ ९—१३ ॥

आपट्टिकान्तं विधिवत्कीलचक्रानुसारत: ।
पश्चाद्भागे दन्तपात्रं स्थापयित्वा तत: परम् ॥ १४ ॥
शैवालद्रावकं तस्मिन् सम्पूर्य रविचुम्बकम् ।
पारदं च न्यसेत् पश्चात् तन्त्रीनाहृत्य शास्त्रत: ॥१५॥
तस्मिन् सन्धारयित्वाथ शृंगिण्याच्छाद्य नालत: ।
तन्नालमूलमाकाशे दृढं सन्धारयेत् क्रमात् ॥ १६ ॥
प्रदक्षिणावर्तकीलपञ्चचक्रैर्विराजितम् ।
पूर्वोक्ताभ्रकशुङ्कुं तत्पीठमध्ये दृढं यथा ॥ १७ ॥

पुन: पट्टिकापर्यन्त चक्रों के अनुसार दन्तपात्र—जिस में दान्ते हों—दान्ते लगे हों चक्रों को घुमाने के लिने उसे स्थापित करके पुन: उस दन्तपात्र में शैवालद्रावक को भर के पश्चात् रविचुम्बक—सूर्यतेज को खींचने वाले सूर्यकान्त और पारा डाले तन्त्रियों—तारों को लेकर शास्त्रानुसार उस में बन्द कर शृङ्गी ? में नाल से ढक कर, उस नाल के मूल को आकाश में दृढ लगादे घूमनेवाले पांच कीलचक्रों से वह नालमूल युक्त हो, जिस से पूर्व कहा अभ्रक शङ्क पीठ के मध्य दृढ रहे ॥ १४—१७ ॥

स्थापयित्वा तस्य मूर्ध्नि पट्टिकां द्रवशोधिताम् ।
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं यानावरणमध्यमे ॥ १८ ॥
यदा सन्ध्यन्तराज्ज्वालामुखशक्तिस्स्वभावत: ।
सम्भूय व्योमयानस्य मार्गान्तं प्रसार्यते ॥ १९ ॥
कीलीं सन्धारयेच्छङ्कुमूलकेन्द्रे तदा बुध: ।
तेन तन्त्रीमुखाच्छैत्यवेगस्पन्दनसंयुत: ॥ २० ॥
द्रवपात्रात्समुत्थाय पञ्चचक्रमुखान्तरात् ।
पूर्वोक्तपट्टिकामूलकेन्द्रं प्रविशति स्वयम् ॥ २१ ॥
पश्चात्तन्तुमुखमासाद्य शक्ति ज्वालामुखाभिधाम् ।
समाकृष्यातिवेगेन पट्टिकामूलकेन्द्रत: ॥ २२ ॥

---

‡ शौण्डीर मणि आगे कहीं हुई कृत्रिममणि है।
† शृंगिण्या ? (हस्तलेखे पाठ:)

उस शङ्कु की मूर्धा में द्रवशोधित अभ्रकपट्टिका को स्थापित करे व्योमयान के आवरण के मध्य भाग में शास्त्रानुसार जोड दे। जब ग्रहमार्गों के सन्धिरेखास्थान से ज्वालामुख शक्तिस्वभाव से ग्रहमार्गोंसे परस्पर मिलकर व्योमयान के मार्ग तक प्रसारित की जाती है तब बुद्धिमान् विद्वान् शंकुमूल के केन्द्र में कीली को लगावे—बन्द करे उस से तन्त्रीमुखतार के सिरे से शीतता का वेग स्पन्दन करता हुआ पांच चक्रों के मुख जिस में लगे हैं उस द्रावकपात्र से उठकर पूर्वोक्त पट्टिकामूलकेन्द्र में स्वयं प्रवेश करता है। पश्चात् उस मुख को प्राप्त कर ज्वालामुखनामक शक्ति को पट्टिकामूलकेन्द्र से अतिवेग से खींचकर-।१८-२२।

प्रदक्षिणावर्तकीलमध्यस्थितमणौ क्रमात् ।
सञ्चोदयति वेगेन तच्छक्तिं तदनन्तरम् ॥२३॥
तन्मणिस्स्वीयवेगेन समाकृष्यातिवेगतः ।
सम्पूरयेन्नालमुखे तन्मूलात् खे लयं व्रजेत् ॥२४॥
तेन यानस्थयन्तॄणामपमृत्युविनाशनम् ।
भवेत्तस्मात्पट्टिकाभ्रकयन्त्रं यथाविधि ॥२५॥
यानावरणमध्ये संस्थापयेदतिशीघ्रतः ॥ इत्यादि ॥

पुनः क्रम से सीधी घूमनेवाली कील के मध्यस्थित मणि में उस शक्ति को वेग से प्रेरित करता है। वह मणि अपने वेग से अतिवेग से खींच कर नाल के मुख में भर देती है उस नालमुख से वह आकाश में लय को प्राप्त हो जाती है नष्ट हो जाती है इससे विमानयान में बैठे चालकयात्रियों के घटना से मृत्यु अकाल मृत्यु का नाश—अभाव हो जाता है। अतः पट्टिकाभ्रकयन्त्र यथाविधि अतिशीघ्र विमानयान के आवरण में संस्थापित करे ॥२३—२५॥

सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्र—

इत्येवमुक्त्वा पट्टिकाभ्रकयन्त्रं यथाविधि ॥२६॥
सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्रमद्य प्रकीर्त्यते ॥

इस प्रकार पट्टिकाभ्रकयन्त्र यथाविधि कहकर अब सूर्यशक्ति को अपकर्षित करनेवाला सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्र कहते हैं।

तदुक्तं क्रियासारे—वह यह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है—

शरद्धेमन्तयोश्शैत्यपरिहाराय केवलम् ॥२७॥
सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्रं यानोपरि न्यसेत् ।

शरद् और हेमन्त ऋतु की शीतता के परिहार के लिये ही सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्र विमानयान के ऊपर रखे—जड़े।

उक्तं हि यन्त्रसर्वस्वे—कहा ही है यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में—

शरद्धेमन्तयोश्शैत्यनिवृत्त्यर्थं यथाविधि ॥२८॥
सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्रमद्य निरूप्यते ।
सप्तविंशतिकादर्शात्सूर्यशक्त्यपकर्षकम् ॥२९॥
यन्त्रं कुर्याद् यथाशास्त्रमन्यथा निष्फलं भवेत् ।

शरद् और हेमन्त ऋतुओं की शीतता की निवृत्ति के अर्थ यथाविधि सूर्यशक्त्यपकर्षणयन्त्र अब निरूपित किया जाता है। सत्ताईसवें ? आदर्श से सूर्यशक्त्यपकर्षकयन्त्र शास्त्रानुसार करे अन्यथा निष्फल हो जावे।

तदुक्तं दर्पणप्रकरणे—वह दर्पणप्रकरण में कहा है—

स्फाटिकमञ्जुलफेनसुवर्चान् सैकतपारदगरदकिशोरान् ।
गन्धकबुंरप्राणक्षारान् रविशशिपञ्चमुखामरपङ्कान् ॥३०॥
रविवसुदिङ्नक्षत्रविभागान् वेदानलसागरवसुभागान् ।
सायकपादपभूतविभागान् वसुमुनिनिधिनेत्रविभागांशान् ॥३१॥
एतान् शुद्धान् चतुर्दशवस्तून् तत्तद्भागांशानुक्रमेण ।
सम्पूर्यान्तर्मुखमूषायां तच्छुकमुखव्यासटिकामध्ये ॥३२॥
सङ्गाल्योष्णरसं पश्चात्संगृह्यान्तर्मुखयन्त्रबिले ।
शीघ्रं सम्पूर्योक्तविधानात्कीलकचक्रं भ्रमयेद् वेगात् ॥३३॥

स्फटिकमणि या फिटकड़ी, मजीठ, समुद्रफेन, सज्जीखार, हिंगुल–सिंगरक, पारा, गरद–बछनाग, तलपर्णी, गुञ्जा गन्धक, हरिताल, प्राणक्षार––नवसादर† ? ये सब क्रमशः १२, १, ५, १, १३,...., १२, ८, १०, २७, ४, ३, ७, ८, ५, १, ५, ८, ३, ९, २, भागांशों के अनुक्रम से इन १४ शुद्ध वस्तुओं को लेकर अन्तर्मुखमूषा* में भरकर शुकमुखमूषा के मध्य में गलाकर फिर गरम तरल को लेकर भीतर मुख वाले छिद्र में शीघ्र भरकर कीलचक्र को वेग से घुमादे।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मं मृदुलं शुद्धं पिङ्गलवर्णं भारविहीनम् ।
भद्रं स्पर्शाच्छीतविमानं मूत्रव्याधिविनाशकरं च ॥३४॥
प्रभवेद् रविशक्तचपकर्षदर्पणमेवं क्रियते यदि सिद्धम् ॥ इत्यादि ॥

अतिसूक्ष्म मृदुल शुद्ध पिङ्गलवर्ण भारहीन भद्र स्पर्श से शीत विमान मूत्रव्याधिका नाशक हो जावे रविशक्त्यपकर्षदर्पण इस प्रकार किया जाता है जब कि सिद्ध होता है।

अशीत्यङ्गुलमायामं विंशत्यङ्गुलविस्तृतम् ।
एकाङ्गुलघनादेतद्दर्पणात् पट्टिकां दृढाम् ॥३५॥
कृत्वा पश्चाद् यथाशास्त्रं तस्मिन् केन्द्रत्रये क्रमात् ।
प्रकल्प्य विधिवन्नालद्वयं बाहुसमं ततः ॥३६॥
दशाङ्गुलास्यं तद्दर्पणतः कुर्याद् दृढं यथा ।
अर्धचन्द्राकृतिं पीठं नालरूपमतः परम् ॥३७॥

अस्सी अंगुल लम्बे बीस अंगुल चौड़े एक अंगुल मोटे दर्पण से दृढ़ पट्टिका बनाकर फिर यथाशास्त्र क्रम से उसमें केन्द्रत्रय में दो नालों को बाहु के समान विधिवत् फिर उस दर्पण से दशांगुल मुख वाले बनावे, अर्द्धचन्द्राकृतिवाला नालरूप पीठ रचे ॥३५—३७॥

---

† नृसार नरसार भी कहते हैं प्राणों का या प्राणियों का क्षार प्राणक्षार नौसादर है। (रसतरङ्गणी)

* रेतीली पीली मिट्टी तुषराख शण मिलाकर बनी बोतल (रसतरङ्गिणी)

रचयेद्वर्तुलं पश्चाच्चतुरस्रमथापि वा ।
वितस्तिद्वयमायामं षड्वितस्त्युन्नतं तथा ॥३८॥
पीठान्तरं च तेनैव कृत्वा तस्मिन्नतः परम् ।
अर्धचन्द्राकृति नालपीठं सन्धारयेद् दृढम् ॥३९॥
पार्श्वयोरुभयोस्तस्य नालद्वयमथ क्रमात् ।
सन्धार्य मध्येऽष्टाशीत्यङ्गुलायामं तथैव च ॥४०॥
अङ्गुलत्रयविस्तारं शङ्कुमेकं दृढं न्यसेत् ।
पूर्वोक्तपट्टिकां तस्य शिरोभागे दृढं यथा ॥४२॥
स्थापयेद्विधिवत् पश्चात् तस्य केन्द्रत्रये क्रमात् ।

उस पीठ को गोल बनावे या चतुष्कोण बनावे, दो बालिश्त लम्बा चौड़ा छः बालिश्त मोटा दूसरा पीठ भी उसी से करके उसमें फिर अर्धचन्द्राकृति नाल पीठ दृढ़ रूप से जोड़ दे उसके दोनों पश्वों में—दोनों आसपास भागों में दो नाल क्रमसे जोड़कर मध्य में अठास्सी अंगुल लम्बा तीन अंगुल चौड़ा मोटा एक शंकु दृढ़रूप में लगादे फिर वह पूर्व कही पट्टिका उसके शिरोभाग अर्थात् सिरे पर विधिवत् दृढ़ स्थापित करदे फिर क्रम से केन्द्रत्रय—तीनों केन्द्रों पर—॥३८--४१॥

तद्दर्पणकृतान् पद्मदलवद् दलसम्मितान् ॥४२॥
मध्ये च (छ ?) षक्रसंयुक्तान् सच्छिद्रान् द्विमुखाकृतीन् ।
पद्माकारान् सुसन्धायावर्तकीलशङ्कुभिः ॥४३॥
बध्नीयात् सुदृढं पश्चाच्छैवालद्रावकं तथा ।
श्रुणिद्रवं च संशुद्धं सप्रमाणं यथाविधि ॥४४॥
नालद्वयेथ सम्पूर्य तस्मिन् छायामुखं मणिम् ।
न्यसेत्तच्छङ्कुमूलेऽथ ज्योत्स्नाद्रावं न्यसेत् क्रमात् ॥४५॥
शैत्यापहारकान् तन्त्रीन् सकीलान् मञ्जुलावृतान् ।
ज्योत्स्नाद्रावकमध्ये संस्थापयेदथ बन्धयेत् ॥४६॥
तन्त्रीन् पार्श्वस्थनालमध्यादाहृत्य शास्त्रतः ।
पट्टिकापार्श्वकमलकेन्द्रयोरुभयोः क्रमात् ॥४७॥
संवेष्टय च पुनस्तत्केन्द्राभ्यामाहृत्य यत्नतः ।
पट्टिकामध्यकमलमावेष्टयाथ पुनः क्रमात् ॥४८॥

पद्मपत्र की भांति पत्ते के आकार में उस दर्पण के बने हुए—बीच में पात्रयुक्त सच्छिद्र दो मुखों की आकृतिवाले पद्मरूप—कमलरूप जैसों को रखकर या जडकर घुमानेवाली कीलोंवाले शंकुओं से सुदृढ़ बान्ध दे पश्चात् शैवालद्रावक—जलकाई का द्रावक और श्रुणि—शृणि या सृणि का द्रव ?—नीलाथोथा शुद्ध यथाविधि मापसहित दो नालों में भरकर उस छायामुखमणि ? को डालदे क्रम से शंकुमूल में ज्योत्स्नाद्राव—मालकंगनी का तैल फिर शीतता हटानेवाले

कीलसहित तन्त्री तारों को जो मञ्जुलों—अंजीरों से आवृत हों अंजीर यहां गोली हो सकती है उन तन्त्रियों—तारों को ज्योत्स्नाद्रावक में रखदे और बान्धदे, उन तारों को शास्त्रानुसार पार्श्ववाले नाल में से निकालकर पट्टिकापार्श्वों के कमलाकार वाले स्थानों के दोनों केन्द्रों में लपेटकर पुनः उन केन्द्रों से यत्नपूर्वक निकालकर पुनः क्रमशः पट्टिकामध्यकमल पर लपेट कर—

तत्पश्चाद्भागतस्तन्त्रीन् समाहृत्य यथाविधि ।
शङ्कुमूलस्थितज्योत्स्नाद्रावके सन्निवेशयेद् ॥४९॥
पश्चान्नालान्तरात्तत्पात्रमाच्छाद्य समग्रतः ।
तन्नालमूलाधोभागे व्योम्नि प्रकल्पयेत् ॥५०॥
यदा हेमन्तशिशिरशैत्यव्याप्तिर्विमानके ।
दृश्येत तत्क्षणादेव शङ्कुमूलस्थितं क्रमात् ॥५१॥
बृहच्चक्रमुखं कीलं भ्रामयेदतिवेगतः ।
पूर्वोक्तपट्टिकाकेन्द्रस्थिततन्त्रीप्रचालनम् ॥२५॥
भवेत्तेनातिवेगेन पार्श्वस्थकमलान्तरात् ।
सम्भूयात्यन्तचलनाद् वायुश्शैत्यं प्रकर्षति ॥५३॥
तच्छैत्यं पुनराहृत्य तद्वायुरतिवेगतः ।
पट्टिकामध्यकमलच(छ?)षके तन्त्रिभिस्स्वयम् ॥५४॥

उसके पिछले भाग से तारों को यथाविधि समेटकर या लेकर शंकुमूल में पड़े ज्योत्स्नाद्रावक-मालकंगुनीतैल में डालदे। पुनः दूसरे नाल से पात्र को सब ओर से पूरा ढककर उस नालमूल को यान के नीचले भागवाले आकाश में युक्त करदे। जब हेमन्त शिशिर ऋतुओं की शीतता की व्याप्ति विमान में दिखलाई पड़े तो तत्क्षण ही क्रम से शंकुमूलस्थित बड़े चक्र मुखवाली कील—पेंच को अतिवेग से घुमादो तो पूर्वोक्तपट्टिकाकेन्द्रस्थित तार चल पडे उससे अति वेग से पार्श्वों में स्थित दूसरे कमल से मिलकर अत्यन्त चलन से वायु शीतता को खींच लेता है फिर उस शीतता को खींचकर वह वायु अतिवेग से पट्टिकामध्यकमलवाले चषक पात्र में स्वयं तारों से—॥४९--५४॥

संयोजयति वेगेन पश्चान्नालद्वयान्तरे ।
प्रविशेत्तच्छैत्यशक्तिः पश्चान्नालसंस्थितौ ॥५५॥
शैवालश्रृणिनामानौ द्रावकावतिवेगतः ।
तच्छैत्यशक्तिमाहृत्य च्छायामुखमणौ क्रमात् ॥५६॥
वेगेन संयोजयतः पश्चादत्यन्तवेगतः ।
तन्मणिस्स्वीयवेगेन तच्छक्ति तन्त्रिभिः क्रमात् ॥५७॥
शङ्कुमूलस्थितज्योत्स्नाद्रावके सन्निवेशयेत् ।
द्रावकाद् व्योम्नि तन्नालात्तच्छक्तिर्लयमेधते ॥५८॥
पश्चात्तच्छैत्यसम्बन्धविषनाशो भवेद् ध्रुवम् ।

तेन यानप्रयातॄणामत्यन्तसुखदं भवेत् ॥५६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सूर्यशक्तयपकर्षकम् ।
यन्त्रं संस्थापयेद् यानोपरि शास्त्रविधानतः ॥६०॥ इत्यादि

दो नालों के अन्दर संयुक्त करता है फिर वह शैत्यशक्ति नालस्थ शैवाल और सृणिनामक द्रावकों में अतिवेग से प्रविष्ट हो जाती है, उस शैत्यशक्ति को क्रम से खींचकर छायामुखमणि में वेग से संयुक्त करते हैं वह मणि अपने वेगसे उस शक्तिको क्रम से तारों के द्वारा शंकुमूलस्थित ज्योत्स्नाद्रावक में डाल दे, द्रावक आकाश में उस नालसे शक्ति लय–नाश को प्राप्त होती है। पश्चात् उस शैत्यसम्बन्ध विप्रयोग–घातकप्रभाव का निश्चय नाश हो जाता है। इससे व्योमयान के यात्रियों के लिये अत्यन्त सुखद हो जाता है अतः सर्वप्रयत्न से सूर्यशक्त्यपकर्षक यन्त्र को व्योमयान के ऊपर शास्त्रविधि से संस्थापित करे ॥५५–६०॥

अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्र—

इत्युक्त्वाशास्त्रविधिना सूर्यशक्तयपकर्षकम् ।
अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्रमतः परम् ॥६१॥
संग्रहेण प्रवक्ष्यामि यथाशस्त्रं यथामति ॥

यह शास्त्रविधि से सूर्यशक्त्यिपकर्षकयन्त्र कहकर अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्र यहां से आगे शास्त्रानुसार यथामति संक्षेप से कहूंगा।

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासार ग्रन्थ में—

स्वकीयव्योमयानस्य विनाशार्थं यदा क्रमात् ॥६२॥
परेषां व्योमयानावरणं च प्रभवेद् यदि ।
तन्निवारयितुं वेगात् सन्धिनालमुखोत्तरे ॥६३॥
यानस्य स्थापयेद् धीमान् यानतत्त्वविदां वरः ।
अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्रं दृढं यथा ॥६४॥ इत्यादि

अपने व्योमयान—विमान के विनाशार्थ जब क्रमशः दूसरों के—शत्रुओं के व्योमयानों का घेरा यदि प्रबल हो जावे उसे हटाने के लिये वेग से सन्धिनालमुख के उत्तर में;व्योमयान के यानतत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ बुद्धिमान् अपस्मार धूमप्रसारणयन्त्र को दृढरूप में स्थापित करे ॥६२–६४॥

उक्तं हि यन्त्रसर्वस्वे—कहा ही है यन्त्रसर्वस्व में—

स्वयानरक्षणार्थाय परयानैर्यथाविधि ।
अपस्मारधूमप्रसारणयन्त्रं प्रचक्षते ॥ ६५ ॥
क्षौण्डीरलोहात् कर्तव्यमेतद्यन्त्रं न चान्यथा ।
कृत्वा चेदन्यलोहेन स्वयानं नाशमेधते ॥ ६६ ॥

अपने विमान के रक्षणार्थ दूसरों के यानों के द्वारा विधि के अनुसार अपस्मार धूमप्रसारण

यन्त्र कहते हैं, चौण्डीर लोहे से यह यन्त्र बनाना चाहिए अन्यथा नहीं, अन्य लोहे से करके स्वयान नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ६५—६६ ॥

चौण्डीरलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—चौण्डीरलोहा लोहतन्त्र में कहा है—

क्ष्विङ्काष्टकं पारदपञ्चकं च वीरत्रयं क्रौञ्चिकसप्तकं तथा ।
कान्तत्रयं हंसचतुष्टयं च माध्वीकमेकं रुरुपञ्चकं क्रमात् ॥ ६७ ॥
एतान् विशुद्धान् वरमूषिकायां सम्पूर्य छत्रीमुखकुण्डमध्ये ।
संस्थाप्य पश्चात्सुरसाख्यभस्त्रात् संगालयेत् कक्ष्यशतोष्णवेगात् ॥६८॥
पश्चात्समाहृत्य शनैश्शनैः क्रमात् सम्पूरयेद् यन्त्रमुखे च तद्रसम् ।
एवं कृतेऽत्यन्तमनोहरं दृढं क्षौण्डीरलोहं प्रभवेद् विशुद्धम् ॥६९॥ इत्यादि ।

क्ष्विङ्का—लोहविशेष ८ भाग, पारा ५ भाग, लोहा ३ भाग, क्रौञ्चिक कृत्रिमलोहा ७ भाग, चुम्बक ३ भाग, हंस–रूपाधातु ४ भाग, माध्वीक–लोहभेद १ भाग, रुरु–धातुविशेष इन शुद्ध हुओं को वरमूषिकानामक कृत्रिम बोतल में भरकर छत्रीमुखकुण्ड के बीच में भरकर पश्चात् सुरसानामक भस्त्रा से सौ दर्जे की उष्णता से गलावे, पश्चात् लेकर धीरे धीरे क्रम से उस पिघले द्रव को यन्त्रमुख में डालदे, ऐसा करने पर अत्यन्त मनोहर दृढ चौण्डीर लोहा अच्छा बन जाता है ॥ ६७—६९ ॥

पट्टिकायन्त्रमध्येऽथ क्षौण्डीरं स्थाप्य वेगतः ।
कीलीसञ्चालनात्सम्यक् सन्ताड्य त्रिशतोष्णतः ॥ ७० ॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरां शुद्धां पट्टिकां कारयेद् दृढाम् ।
एतत्पट्टिकया कुर्यात्पञ्चबाहून्नतं तथा ॥ ७१ ॥
बाहुत्रितयविस्तारं भस्त्राकारं यथाविधि ।
मुखनालेन संयोज्य षड्वितस्तिप्रमाणतः ॥ ७२ ॥
पेषिणीयन्त्रवत् कार्यं तन्मुखं सुदृढं तथा ।
तन्मुखाच्छादनार्थाय मुखावरणकीलकम् ॥ ७३ ॥
सन्धारयेत्ततस्तस्य मूले कोशत्रयं क्रमात् ।
कल्पयित्वा मध्यभागे सकीलं वर्तुलं मृदुम् ॥ ७४ ॥

चौण्डीर लोहे को पट्टिकायन्त्र के मध्य स्थापित करके वेग से कीली सञ्चालनद्वारा ताडन करके तीन सौ दर्जे की उष्णता से शुद्ध दृढ पतली से पतली पट्टिका बनावे इस पट्टिका से पांच बाहु उठा हुआ तीन बाहु लम्बा भस्त्रा के आकार का करे, उसे मुखनाल से जोडकर छः बालिश्त माप से पेषिणीयन्त्र–चक्की के समान वह दृढ मुख करना चाहिए, उस मुख के आच्छनार्थ मुखावरणकील लगादे, उसके मूल में तीन कोश–कोठे रखकर मध्यभाग में कीलसहित कोमल—॥ ७०–७४ ॥

शशचर्मसमायुक्तं कुर्यादावरणं ततः ।
धूमपूरककीलीं तन्मूले सन्धारयेद् दृढम् ॥ ७५ ॥

तदूर्ध्वे चूर्णपात्रं स्थापयेद् विधिवद् दृढम् ।
कीलीमुखं तत्पात्रकुक्षिमूले नियोजयेत् ॥ ७६ ॥
एवं क्रमेण चत्वारि भस्त्रान् कुर्याद् यथाविधि ।
परयानावरणकाले यानावरणकभस्त्रकात् ॥ ७७ ॥
कृत्वा विमानावरणं पश्चात्तदुपरि क्रमात् ।
दिक्पीठोपरि पूर्वोक्तभस्त्रिकान् स्थाप्य सत्वरम् ॥
विद्युत्संयोजनं कुर्याच्चूर्णपात्रान्तरे क्रमात् ।
तत्क्षणाद् धूमतां याति तच्चूर्णमतिवेगतः ॥ ७८ ॥

शशचर्म युक्त आवरण करे, उसके मूल में धूम भरनेवाली कीली दृढ लगावे उस के ऊपर चूर्णपात्र विधिवत् दृढ रखे, उस पात्र के कुक्षिमूल में कीली का मुख युक्त करे इस प्रकार से चार भस्त्रों–धोकनियों को यथाविधि लगावे, दूसरे के—शत्रु के यानों के आवरणकाल में यानावरण भस्त्रक—धोंकने से विमानावरण करके पश्चात् क्रम से ऊपर दिक्पीठ के ऊपर पूर्वोक्त भस्त्रिकों को शीघ्र स्थापित करके चूर्ण-पात्र में विद्युत का संयोजन करे वह चूर्ण अतिवेग से धूमता को प्राप्त हो जावेगा धूंवा बन जावेगा—

भस्त्रिकामुखमुद्घाट्य पश्चात् कीलीं प्रचालयेत् ।
तेन प्रसारितो धूमो सूक्ष्मभस्त्रत्रये क्रमात् ॥ ७९ ॥
प्रविश्य तन्मुखेभ्योऽथ मध्यकुण्डान्तरे क्रमात् ।
प्रविश्यपूरणात् सर्वं व्याप्य पश्चाद् यथाक्रमम् ॥८०॥
भस्त्रिकामुखपर्यन्तमतिवेगेन धावति ।
पश्चात्कीलकसन्धानात्परयानोपरि क्रमात् ॥ ८१ ॥
एककाले चतुर्दिक्षु सर्वतोमुखतः स्वयम् ।
व्याप्याथापस्मारधूमः परयानान् समग्रतः ॥ ८२ ॥
परेषां तत्क्षणात् स्वीयशक्तिप्रधानतः ।
करोत्यपस्मारवशान् सर्वान् शत्रून्न संशयः ॥ ८३ ॥
तेन सर्वे विमानाग्रात् पतिष्यन्त्यवनीतले ।
परयानविनाशं च स्वयानपरिपालनम् ॥ ८४ ॥
भवेत् तेन ततस्सर्वे सुखं यान्ति विमानगाः ।
तस्मादेतद्यन्त्रं वरं विमाने स्थापयेत्सुधीः ॥ ८५ ॥ इत्यादि ॥

भस्त्रिका के मुख को खोलकर फिर कीली चलावे उस से फैलाया हुआ धूंआं सूक्ष्म तीन भस्त्रों में–धोकनों में क्रम से प्रविष्ट होकर उनके मुखों से मध्यकुण्ड के अन्दर प्रविष्ट होकर भर जाने से सर्वत्र व्याप्त हो पश्चात् क्रमानुसार भस्त्रिकामुखपर्यन्त अत्यन्त वेग से दौड़ता है, फिर कील बन्द करने से–पर विमानयानों के ऊपर एक समय में चारों दिशाओं में सर्वतोमुख हो स्वयं अपस्मार धूवां सभी परविमान-यानों को व्याप्त हो अपनी विषशक्ति की प्रधानता से सब शत्रुओं को निःसंशय अपस्मार के वश–अचेत

कर देता है उस से सब विमानस्थान से भूमितल पर गिर जावेंगे परविमानयानविनाश और स्वविमान-यान का परिपालन—बचाव हो जाता है उस से अपने विमान में चलनेवाले सुख से जाते हैं—यात्रा करते हैं अतः इस श्रेष्ठ यन्त्र को बुद्धिमान् स्थापित करे ॥ ७६—८५ ॥

स्तम्भनयन्त्र—

इत्युक्त्वापस्मारधूमयन्त्रं शास्त्रविधानतः ।
इदानीं स्तम्भनयन्त्रं यथाविधि निरूप्यते ॥ ८६ ॥

इस प्रकार अपस्मारधूमयन्त्र शास्त्रविधान से कहकर अब स्तम्भनयन्त्र विधि के अनुसार निरूपित किया जाता है ॥ ८६ ॥

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासार ग्रन्थ या प्रकरण में—

यदा तु वारिपरिधिरेखामण्डलसन्धिषु ।
शक्त्युद्रेको यदि भवेन्महाविषसमाकुलः ॥ ८७ ॥
प्रचण्डमारुतोद्रेको भवेदत्यन्तदारुणः ।
तत्तत्सन्धिषु वातानां पश्चाद् युद्धं भविष्यति ॥ ८८ ॥
तेनाकाशे भवेद् वातप्रवाहस्सर्वतोमुखः ।
तत्सम्पर्काद् याननाशस्तत्क्षणात्सम्भविष्यति ॥ ८९ ॥
तस्मात्तत्परिहाराय यानाधोभागकेन्द्रके ।
संस्थापयेत्स्तम्भनाख्ययन्त्रं शास्त्रविधानतः ॥ ९० ॥ इत्यादि ।

जब कभी वारिपरिधि रेखामण्डल सन्धियों में आकाशीयमण्डल शक्ति का उद्रेक-उत्थान महाविष से पूर्ण हो तब प्रचण्ड मारुतोद्रेक—वायव्य उत्थान अत्यन्त दारुण होता है पुनः उन सन्धियों में वायुओं का युद्ध हो जावेगा, उस से आकाश में सब ओर वायु का प्रवाह चलने लगे, उस के सम्पर्क से तुरन्त विमानयान का नाश हो जावेगा, अतः उसके परिहार के लिये विमान के नीचे के भागवाले केन्द्र में शास्त्रानुसार स्तम्भननामकयन्त्र स्थापित करे ॥ ८७—९० ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यह यन्त्रसर्वस्व ग्रन्थ में कहा है—

वातप्रवाहसंसर्गपरिहाराय केवलम् ।
विमानस्तम्भनयन्त्रं यथामति निरूप्यते ॥ ९१ ॥
चतुरस्रं वर्तुलं वा वक्रतुण्डाख्यलोहतः ।
विमानपीठभ्रामणे चतुर्थांशप्रमाणतः ॥ ९२ ॥
घने वितस्तित्रितयं पीठमन्यत्प्रकल्पयेत् ।
ईशानादिक्रमात्तस्मिन्नष्टदिक्षु यथाक्रमम् ॥ ९३ ॥
केन्द्राणि विधिवत् कुर्यात्सच्छिद्रावरणं यथा ।
आवर्तदन्तसंयुक्तचक्राणि विधिवत्क्रमात् ॥ ९४ ॥
अनुलोमविलोमैश्च कुर्यात्तेनैव लोहतः ।

आवर्तकीलसंयुक्तांश्चक्रदण्डान् यथाविधि ॥ ९५ ॥
त्रिवृत्करणतो लोहरज्जूञ्छिद्रानुसारतः ।
कुर्यात्तेनैव लोहेन शङ्कुकीलादयः क्रमात् ॥ ९६ ॥
अन्तश्चक्रयुतान्नालस्तम्भान्तन्त्रीसमाकुलान् ।
ईशान्यादिक्रमात्केन्द्रस्थानेषु स्थापयेत् क्रमात् ॥ ९७ ॥

वायुप्रवाहों के संसर्ग—संघर्षण के हटाने या प्रतीकार के लिये ही विमानस्तम्भन यन्त्र यथा-मति निरूपित किया जाता है। वक्रतुण्ड नामक लोह से चतुष्कोण—चौकोर या गोल विमान पीठ के भ्रमण में चतुर्थांश प्रमाण से, घन में मोटाई में तीन बालिश्त अन्य पीठ बनावे ईशान आदि के क्रम से उसमें आठ दिशाओं में यथाक्रम केन्द्र बनावे तथा छिद्रसहित आवरण भी घूमनेवाले दान्तों से युक्त चक्र विधिवत् क्रमशः अनुलोम और विलोमों से करे उसी लोह से, घूमने वाली कीलों से संयुक्त चक्रदण्डों को यथाविधि तीन लपेट वाली लोहे की रस्सियों को छिद्र के अनुसार बनावे। उसी लोहे से शंकु कील आदि भी क्रम से बनावे। भीतरी चक्रयुक्त तारों से घिरे हुए नालस्तम्भों को क्रम से ईशानी आदि केन्द्रस्थानों में स्थापित करे ॥ ९१–९७ ॥

विमानाङ्गोपसंहारस्थाननालमुखान्तरात् ।
सकीलतन्त्रीनाहृत्य नालस्तम्भान्तरात्पुनः ॥ ९८ ॥
अन्तर्नालैस्समाकृष्य मध्यकेन्द्रावधि क्रमात् ।
पीठमध्यावर्तकीलस्तम्भमूलान्तरे क्रमात् ॥ ९९ ॥
तच्छिद्रमुखे कीलशङ्कुभिर्बन्धयेद् दृढम् ।
आवर्तकीलस्तम्भस्तु पीठमध्ये निवेशयेत् ॥ १०० ॥
पूर्वोक्तवातप्रवाहो यदा सन्दृश्यते क्रमात् ।
तदा यानाङ्गोपसंहारकीलकं प्रचालयेत् ॥ १०१ ॥
तेन यानस्सङ्कुचितो भवेत्पश्चात्तथैव हि ।
पश्चादष्टाङ्गकीलचक्राणि भ्रामयेद् दृढम् ॥ १०२ ॥
तेन वेगोपसंहारो विमानस्य भवेत् क्रमात् ।
पश्चात् पीठस्थाष्टनालस्तम्भकीलान् प्रचालयेत् ॥ १०३ ॥

विमानाङ्गों के उपसंहारस्थान में वर्तमान नालमुखों के अन्दर से कीलसहित तारों को निकाल कर फिर नालस्तम्भ के अन्दर से भी भीतरी नालों से खींच कर मध्य केन्द्र की अवधि के क्रम से और पीठ में लगी घूमने वाले कीलस्तम्भों में उस उस छिद्र मुख में कीलशंकुओं द्वारा दृढ बांध दे और घूमने वाले कीलस्तम्भों को पीठ में लगा दे। पूर्वोक्त वातप्रवाह जब दिखलाई पडे तब विमानयानाङ्गों का उपसंहार करने वाली कील को चलावे, उससे फिर विमानयान संकुचित हो जावे पश्चात् अष्टाङ्ग—आठ अङ्गों से सम्बन्ध रखने वाले कील चक्रों को दृढरूप से घुमा दे उस विमान का वेगोपसंहार क्रमशः हो जावे पश्चात् पीठ में स्थित अष्टनाल स्तम्भ की कीलों को चलावे ॥ ९८–१०३ ॥

विमानवेगसर्वस्वं तेन संशान्तिमेधते ।
पीठमध्यस्थितदण्डकीलं तदनन्तरम् ॥ १०४ ॥
भ्रामयेदतिवेगेन तेन स्तम्भो दृढी भवेत् ।
स्तम्भप्रतिष्ठा यानान्तःपीठे यदि भवेद् दृढम् ॥ १०५ ॥
तत्क्षणादेव यानस्य स्तम्भनं प्रभवेद् दृढम् ।
पक्षाघातककीलकं च भ्रामयेत्तदनन्तरम् ॥ १०६ ॥
वायूत्पत्तिर्भवेत् तेन तद्वातः सर्वतोमुखात् ।
विमानमूलमावृत्य मण्डलाकारतस्स्वयम् ॥ १०७ ॥
विमानं धारयेत्पश्चाद् विद्युत्स्थानाद् यथाविधि ।
पृथिव्यन्तं शक्तिनालशलाकं कीलचालनात् ॥ १०८ ॥
स्थापयेत् सुदृढं तेन यानस्त्वचलतां व्रजेत् ।
तस्माद् वातप्रवाहेण(न?) यानसंरक्षणं भवेत् ॥ १०९ ॥
अतस्सर्वप्रयत्नेन यानाधोभागकेन्द्रके ।
यानस्तम्भनयन्त्रं च स्थापयेत्सुदृढं यथा ॥ ११० ॥ इत्यादि ॥

उससे विमान वेग का सर्व बल या कल पुरजा शान्ति को प्राप्त हो जाता है पुनः पीठ के मध्य में स्थित दण्ड की कील को अतिवेग से घुमावे उससे स्तम्भ दृढ हो जावे—स्थिर हो जावे, यदि स्तम्भ प्रतिष्ठा—स्तम्भ की स्थिरता यान के भीतर पीठ में हो जावे तो उसी समय या तुरन्त यानस्तम्भन हो जावे। पश्चात् पक्षाघातक—एक ओर को ठोकर देने वाली कील को घुमावे तो उससे वायु की उत्पत्ति हो जावे वह वायु सब ओर से विमान के मूल को चक्राकार से स्वयं घेर कर विमान को धारण कर ले सम्भाल ले थाम ले फिर विद्युत् के स्थान से यथाविधि पृथिवीपर्यन्त शक्तिनाल शलाका को कीलचालन से सुदृढ स्थापित करे उससे विमान यान अचलता को प्राप्त हो जावे उससे वातप्रवाह से यान का संरक्षण हो जावे अतः सर्व प्रयत्न से विमान के नीचले भाग वाले केन्द्र में यानस्तम्भ यन्त्र सुदृढ स्थापित करे॥ १०४-११० ॥

वैश्वानरनाल यन्त्र—

एवमुक्त्वा स्तम्भनाख्ययन्त्रं शास्त्रानुसारतः ।
वैश्वानरनालयन्त्रमिदानीं सम्प्रचक्षते ॥ १११ ॥

इस प्रकार स्तम्भन नामक यन्त्र शास्त्रानुसार कहकर वैश्वानर नाल यन्त्र अब कहते हैं ॥१११॥

उक्तं हि क्रियासारे--कहा ही है क्रियासार ग्रन्थ में—

खेटयानप्रयातॄणामग्निहोत्रार्थमादरात् ।
पाकार्थं च विशेषेण अग्निरावश्यको भवेत् ॥ ११२ ॥
तस्मात् पावकदानार्थं यानाभिमुखान्तरे ।
वैश्वानरनालयन्त्रमपि संस्थापयेद् बुधः ॥ ११३ ॥

खेटयान–विमान के यात्रियों के अग्निहोत्रार्थ आदर से तथा विशेषत: पाकार्थ अग्नि आवश्यक है उससे अग्नि देने के लिये विमान के सामने अन्दर वैश्वानरनालयन्त्र बुद्धिमान् स्थापित करे ॥ ११२–११३ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

खेटयानप्रयातॄणामग्निसिद्धयर्थमेव हि ।
वैश्वानरनालयन्त्रमिदानीं सम्प्रचक्षते ॥ ११४ ॥
वितस्तिद्वयमायामं द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ।
चतुरस्रं वर्तुलं वा नागलोहेन शास्त्रतः ॥ ११५ ॥
पीठं कृत्वा ततस्तस्मिन् कुर्यात् केन्द्रत्रयं क्रमात् ।
ताम्रखर्परसम्मिश्रलोहात् पात्राणि कारयेत् ॥ ११६ ॥
गन्धकद्रावकं शुद्धमेकपात्रे प्रपूरयेत् ।
रूक्षाकद्रावमेकस्मिन् पात्रे तद्विनियोजयेत् ॥ ११७ ॥
माञ्जिष्ठिकाद्रावकं च न्यसेत् पात्रान्तरे तथा ।
एतानि द्रवपात्राणि पीठकेन्द्रेषु स्थापायेत् ॥ ११८ ॥
मणिं प्रज्वलकं नाम गन्धकद्रावके न्यसेत् ।
तथैव धूमास्यमणिं रूक्षाकद्रावके ततः ॥ ११९ ॥
माञ्जिष्ठिकाद्रावके तु महोष्णिकमणिं न्यसेत् ।
विमाने पाकशालाश्च यत्र यत्राग्निहोत्रिणः ॥ १२० ॥

विमान के यात्रियों के अग्निहोत्रार्थ वैश्वानर नालयन्त्र—अग्नि प्रज्वालन यन्त्र अब कहते हैं। दो बालिश्त लम्बा बारह अंगुल चौडा अर्थात् मोटा चतुष्कोण या चारों ओर से गोल शास्त्रानुसार नाग लोहे से पीठ करके उसमें क्रम से तीन केन्द्र (मीटर ?) करे ताम्बे खपरिये–जस्ते ? से मिले लोहे से पात्र बनाए, शुद्ध गन्धकद्रावक—गन्धक रस (तेजाब) एक पात्र में भर दे, एक पात्र में रूक्षाद्रावक दन्तीतैल या रस ? नियुक्त करदे डाल दे, तीसरे पात्र में माञ्जिष्ठिकाद्रावक—मजीठ का तैल ? रस डाल दे, इन द्रवभरे पात्रों को पीठ के केन्द्रों में रखे। प्रज्वलक मणि गन्धकद्रावक में डाल दे ऐसे ही धूमास्य मणि रूक्षाद्रावक में और माञ्जिष्ठिकाद्रावक में तो महोष्णिक मणि डाल दे। विमान में जहां जहां पाकशालाएं और अग्निहोत्री हों—॥११४–१२०॥

स्थापयेत्कीलकस्तम्भान् तत्र तत्र दृढं यथा ।
द्रवपात्रान्तरे तन्त्रीन् भद्रमुष्ट्याख्यकीलके ॥ १२१ ॥
त्रिसंख्याकान् प्रबध्नीयाद् यथाशास्त्रमतः परम् ।
मूलस्तम्भं समारभ्य द्रवपात्रान्तमेव हि ॥ १२२ ॥
तन्त्रीत्रयं समाहृय मण्यग्रे योजयेत्क्रमात् ।
स्तम्भाग्रे चुबुकीकीलमध्ये ज्वालामुखीमणिम् ॥ १२३ ॥

काचावरणतस्स्थाप्य पश्चात्तत्पार्श्वयोः क्रमात् ।
सिञ्जीरकमणिं तद्वद्रु टि (द्दडि?) काख्यमणिं क्रमात् ॥ १२४ ॥
सन्धार्य पश्चादेकैकमणिमूलाद् यथाविधि ।
एकैकतन्त्रीमाहृत्य मध्यस्तम्भाग्रकीलकात् ॥ १२५ ॥
स्तम्भमूले ग्रन्थिकीलमुखान्तं सन्नियोजयेत् ।
तदारभ्य यथाशास्त्रं चुल्लिकान्तं तथैव हि ॥ १२६ ॥
अग्निहोत्रस्य कुण्डाग्रावधि याने ऋ (रु?) जुर्यथा ।
वर्तुलं कुल्यवत्कृत्वा लोहनालान्ततः परम् ॥ १२७ ॥
तस्मिन् सन्धाय विधिवत् पश्चात्तन्त्रीन् यथाक्रमम् ।
तत्तन्नालेषु संयोज्य चुल्लिकासु तथैव हि ॥ १२८ ॥

वहां वहां कीलस्तम्भों को दृढ स्थापित करे, द्रवपात्रों के अन्दर तीन तारों को भद्रमुष्टिनामक कील में शास्त्रानुसार बान्ध दे पुनः मूलस्तम्भ से लेकर द्रवपात्रपर्यन्त तीन तारों को निकालकर मणियों के आगे क्रमशः युक्त कर दे - फिट करदे। स्तम्भाग्र में चुम्बककील में ज्वालामुखी मणि को कांच के ढकने में स्थापित करके दोनों पार्श्वों में सिञ्जीरकमणि उसी भांति ऋडिकाख्यमणि को‡ क्रम से लगाकर एक एक मणिमूल से एक एक तार लेकर मध्यस्तम्भ की अग्रकील से स्तम्भमूल में ग्रन्थिकील के मुख तक नियुक्त करे । उसे यथाशास्त्र अङ्गीठी (हीटर) तक लावे अग्निहोत्र के कुण्डाग्र तक यान में आवे। गोल कुल्य की भांति बनाकर लोहनाल के अन्त से परे उस में विधिवत् तारों को यथाक्रम जोडकर उस उसके नाल में संयुक्त कर—जोड़कर तथा अङ्गीठी (हीटर) में जोड़कर—

अग्निहोत्रस्य कुण्डेषु समाहृत्य यथाविधि ।
तत्रत्यखर्परकृतपट्टिकां सुन्यसेद् दृढम् ॥ १२९ ॥
आदौ भ्रामयेद् भद्रमुष्टिकीलकमद्भुतम् ।
द्रवपात्रस्थितद्रावकोऽत्यन्तोष्णत्वतामियात् ॥ १३० ॥
रूक्षणद्रावकसञ्जातोष्णो माञ्जिष्ठिकामणौ ।
संव्याप्य धूमं जनयेन्महोष्णिकमणौ तथा ॥ १३१ ॥
तद्द्रावकोष्णवेगेन महोष्णस्सम्प्रजायते ।
पश्चाद् गन्धकद्रावकस्थमणौ प्रज्वलिकाभिधे ॥ १३२ ॥
ज्वालोत्पतिर्भवेत्तद्द्रावकोष्णव्याप्तितस्तथा ।
धूमोष्णज्वालकाः पश्चात्तत्तत्तन्त्रीमुखास्स्वतः ॥ १३३ ॥
सिञ्जीर रुटि (ऋढि?) काज्वालामुखीमणिषु वेगतः ।
व्याप्नुवन्ति ततश्चुम्बकीकीलं च यथाविधि ॥ १३४ ॥

अग्निहोत्र के कुण्डों में यथाविधि सञ्चित कर वहां की खपरिया—जस्ते की पट्टिकाओं में दृढ

‡ ये मणियां कृत्रिम हैं बनाई जाती हैं। (देखो पीछे मणिप्रकरण)

रूप में जोड़ दे, आदि में अद्भुत भद्रमुष्टिकील को घुमावे तो द्रवपात्रस्थित द्रावक अत्यन्त उष्णता को प्राप्त हो जावे रुद्राद्रावक से उत्पन्न उष्णत्व मञ्जिष्ठिकामणि में भली भांति व्याप्त होकर धूवां उत्पन्न करदे और महोष्णिकामणि में उस द्रावक के उष्णवेग से महोष्णता प्रकट हो जावे पश्चात् गन्धकद्रावकस्थ प्रज्वलिकानामक मणि में ज्वाला की उत्पत्ति हो जावे उस द्रावक की उष्णता की व्याप्ति से धूमोष्णज्वालक तारमुखरूप सिञ्जीररुटिका ज्वालामुखीमणियों में वेग से व्याप्त हो जाती हैं। फिर चुम्बकीकील को यथाविधि— ॥ १२९–१३४ ॥

भ्रामयेदतिवेगेन पश्चाद् धूमोष्णज्वालकाः ।
तन्त्रीमुखात्स्वभावेन धूमस्तम्भाग्रकीलकम् ॥ १३५ ॥
व्याप्नुवन्त्यतिवेगेन तत्कीलं भ्रामयेत् ततः ।
स्तम्भमूलग्रन्थिकीलीं तद्वेगात्संविशन्ति हि ॥ १३६ ॥
तत्कीलभ्रमणादेव चुल्लिका पट्टिकान्तरे ।
धूमोष्णज्वाला विशिखाः प्रविशन्ति यथाक्रमम् ॥१३७॥
तथाग्निहोत्रकुण्डस्थपट्टिकास्वपि वेगतः ।
पश्चाद् वैश्वानरोत्पत्तिस्तत्र तत्र भवेद् ध्रुवम् ॥१३८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विमानाभिमुखे क्रमात् ।
वैश्वानरनालयन्त्रमपि संस्थापयेत्सुधीः ॥ १३९ ॥
एवमुक्त्वाङ्गयन्त्राणि इदानीं शास्त्रतः क्रमात् ।
व्योमयानं प्रवक्ष्यामि संग्रहेण यथामति ॥ १४० ॥ इत्यादि ।

—अति वेग से घुमादे पश्चात धूमोष्णज्वालाएं स्वभावतः तारों के मुख से धूमस्तम्भाग्रकील को अतिवेग से व्याप्त हो जाती हैं, पुनः उस कील को घुमादें फिर स्तम्भमूलग्रन्थिकीली को वे ज्वालाएं प्रविष्ट हो जाती हैं, उस कीली के भ्रमण से ही अङ्गीठी (हीटर) की पट्टिका के अन्दर धूमोष्णज्वालाओं की विविध लहरें यथाक्रम प्रविष्ट हो जाती हैं इसी प्रकार अग्निहोत्रकुण्ड की पट्टिकाओं में भी वेग से प्रविष्ट हो जाती हैं पुनः वहां वैश्वानर–अग्नि की उत्पत्ति उस उस स्थान में निश्चित हो जावे। अतः सर्वप्रयत्न से विमान के सामने क्रम से वैश्वानरनालयन्त्र भी बुद्धिमान् संस्थापित करे। इस प्रकार अङ्गयन्त्रों को कहकर शास्त्रानुसार क्रम से व्योमयान को संक्षेप से यथामति कहूंगा ॥ १३५–१४० ॥

हस्तलेख कापी संख्या १६—

अथ जात्यधिकरणम्

जातित्रैविध्यं युगभेदाद् विमानानाम् (अ० २ सू० १)†

बो० वृ०

एवमुक्त्वा विमानाङ्गयन्त्राणि विधिवत्क्रमात् ।
अथेदानीं व्योमयानस्वरूपं जातितोच्यते ॥१॥
विमानजातिभेदप्रबोधकानि यथाक्रमम् ।
पदानि त्रीणि सूत्रेऽस्मिन् वर्णितानि स्फुटं यथा ॥२॥
तत्रादिमपदाद् यानजातिभेदो निरूपितः ।
तेषां संख्याविभागस्तु द्वितीयपदतस्स्मृतः ॥३॥
जातिसंख्याविभागेन पुष्पकाद्या यथाक्रमम् ।
तृतीयपदतस्सम्यग्विमानाः परिकीर्तिताः ॥४॥
एवं सामान्यतस्सूत्रपदार्थस्सम्प्रकीर्तितः ।
इदानीं तद्विशेषार्थस्सम्यगत्र विविच्यते ॥५॥

इस प्रकार विमानाङ्ग यन्त्रों को क्रम से विधिवत् कहकर अनन्तर अब व्योमयान विमान का स्वरूप जातिरूप कहा जाता है। विमान के जातिभेदबोधक यथाक्रम तीन पद इस सूत्र में स्पष्ट वर्णित हैं। उनमें आदि पद से विमानयान का जातिभेद निरूपित किया गया है उनका संख्या-विभाग तो द्वितीयपद से स्मरण किया—कहा, जातिसंख्या के विभाग से पुष्पक आदि यथाक्रम तृतीयपद से सम्यक् विमान कहे गये हैं। इस प्रकार सामान्यतः सूत्रपदों का अर्थ कहा अब उसका विशेष अर्थ का भली प्रकार विवेचन किया जाता है ॥१—५॥

यतश्चतुष्पाद् धर्मोऽभूत्कृते सर्वजनास्ततः ।
योगमन्त्राद्यनुष्ठानं विना धर्मप्रभावतः ॥६॥
अभूवन् सिद्धपुरुषास्सात्त्विका ज्ञानवित्तमाः ।
आकाशगमनं तेषां वायुवेगादयस्तथा ॥७॥

† जातित उच्यते, विसर्गलोपानन्तरमेकादेशसन्धिरार्षः ।

अणिमाद्यास्सिद्धयोऽष्टौ स्वतस्सिद्धा बभूवतुः ।
तस्मात् कृतयुगे व्योमयानानि त्रिविधान्यपि ॥८॥
नास्तीत्येव प्रवक्ष्यामि यानतत्त्वार्थपारगाः ।
त्रेतायामेकोनपादधर्मोभूत्कालभेदतः ॥९॥
त्रिपादधर्मप्रकारत्वात्सर्वेषां प्राणिनां क्रमात् ।
बुद्धिमान्द्यमभूत् तेन वेदतत्त्वार्थनिर्णयः ॥१०॥

—क्योंकि कृतयुग में धर्म चतुष्पाद होता है सारे मनुष्य योग मन्त्रादि अनुष्ठान के विना धर्मप्रभाव से सिद्धपुरुष सात्त्विक विशेषज्ञानवेत्ता हुए उनका आकाशगमन वायु के समान वेग भी, अणिमा आदि आठ सिद्धियां भी स्वतः सिद्ध थीं अतः कृतयुग में व्योमयान विमान के भी तीन प्रकार थे। ऐसा नहीं है विमानयान तत्त्वार्थ के पारङ्गत विद्वान् कहेंगे त्रेतायुग में धर्म कालभेद से एकापद से कम हो गया। त्रेता में धर्म के त्रिपाद प्रचारित होने से सब मनुष्यों की बुद्धिमन्दता हो गई इससे वेदतत्त्वार्थ का निर्णय—॥८–१०॥

अणिमाद्यास्सिद्धयोष्टावपि मालिन्यतां गताः ।
तस्मादाकाशगमनवायुवेगादिषु क्रमात् ॥११॥
शक्तिर्नाभूत्स्वभावेन धर्मविप्लवहेतुतः ।
एतद् विज्ञाय भगवान् महादेवो महेश्वरः ॥१२॥
सर्ववेदार्थविज्ञानप्रदानार्थं द्विजन्मनाम् ।
अवातरत्स्वयं साक्षाद् दक्षिणामूर्तिरूपतः ॥१३॥
सनकादिमुनीन् पश्चान्निमित्तीकृत्य हर्षतः ।
मन्त्रद्रष्टृत्वसिद्ध्यर्थं वेदमन्त्रान् यथाविधि ॥१४॥
विभज्यानुष्ठानकल्पप्रभेदानकरोद्विभुः ।
पश्चान्मुनीन् समालोक्य गुरुश्चाक्षुषदीक्षया ॥१५॥
मन्त्रानुष्ठानकल्पादीनुपदेशं चकार हि ।
पश्चात्तन्मन्त्रद्रष्टृत्वसिद्ध्यर्थं जगदीश्वरः ॥१६॥
अत्यन्तकृपया सर्वानालिङ्ग्य मुनिपुङ्गवान् ।
प्रविश्य हृदयं तेषां ज्ञप्तिरूपमनीनयन् ॥१७॥

—और अणिमा आदि आठ सिद्धियां भी मलिनता को प्राप्त होगई अतः आकाश में उडने वायुबल प्राप्त करने में धर्म के विचलित हो जाने से शक्ति न रही, यह बात भगवान् महादेव महेश्वर मानो दक्षिणामूर्ति के रूप में ब्राह्मणों—ऋषियों को सर्ववेदार्थ विज्ञान के प्रदानार्थ साक्षात् अवतरित हुए पश्चात् सनक आदि मुनियों को हर्ष से निमित्त बनाकर उनके लिये मन्त्रद्रष्टृत्वसिद्धि के अर्थ वेदमन्त्रों को यथाविधि विभक्त कर अनुष्ठान और विधान के भेदों को किया पश्चात् मुनियों को देखकर गुरुदेव ने नेत्रपातरूप दीक्षा से मन्त्र, कर्मकाण्ड, और विधि का उपदेश किया पुनः मन्त्रद्रष्टृत्व-

सिद्धि के लिए (योगविधि से साक्षात् हुए) जगदीश्वर ने ? अत्यन्त कृपा से सब श्रेष्ठ मुनियों का आलिङ्गन करके उनके हृदय में प्रविष्ट होकर ज्ञापन पहुंचाया—सूक्ष्म दी ॥११—१७॥

ततस्ते मुनयस्सर्वे पुलकाङ्कितविग्रहाः ।
तदनुग्रहे संलब्धज्ञप्तिमाश्रित्य केवलम् ॥१८॥
गद्गदस्वरतो भक्त्या त्रिलोकी गुरुमव्ययम् ।
शतरुद्रीयमन्त्राद्यैस्तुष्टुवुर्हर्षमाश्रितः ॥१९॥
ततः प्रसन्नो भगवान् दक्षिणामूर्तिरव्ययः।
मन्त्रस्वरूपद्रष्टृत्वे तद्रहस्यप्रबोधने ॥२०॥
अनुभूतिं ददौ तेषां ज्ञप्तिपूर्वकमद्भुतम् ।
पुनः समालोक्य मुनीन् प्रहसन् परमेश्वरः ॥२१॥
उवाच परमानन्दरसपूरितवाक्यतः ।
एतावन्तमभूत् कालं युष्माकं मुनिनामतः ॥२२॥
इदनीं मत्प्रभावेन मन्त्रद्रष्टृत्वकारणात् ।
स्वतो मद्भावमाश्रित्य ऋषयो भवत स्वयम् ॥२३॥
इत्युक्त्वा तान् पुनः प्राहसद् गुरुः करुणानिधिः ।
भो भो महर्षयस्सर्वे वेदमन्त्रान् यथाविधि ॥२४॥
मदनुग्रहसंलब्धकल्पानुष्ठानमार्गतः ।
अनुष्ठाय यथाशास्त्रं ब्रह्मचर्यं समाश्रिताः ॥२५॥
ईशाज्ञारूपिणीं चित्प्रबोधरूपां माहेश्वरीम् ।
समाराध्यैकाक्षरेण शाङ्करीं वेदमातरम् ॥२६॥

पाश्चात् वे सब मुनियियों ने पुलकितशरीर हुए उसकी कृपा से प्राप्त सूक्ष्म को आश्रित कर पाकर गद्गद स्वर से भक्ति से त्रिलोकी के अमर गुरु को शतरुद्रीयमन्त्र आदि "नमस्ते रुद्र मन्यव...." (यजु० अ० १६। १) से हर्षित हो स्तुति की तब भगवान् दक्षिणामूर्त्ति प्रसन्न हो मन्त्रस्वरूप के द्रष्टा होने में उसके रहस्यप्रबोधन में उन्हें सूक्ष्म के साथ अनुभवशक्ति—ज्ञानशक्ति दी। फिर परमेश्वर ? मुनियों को देखकर हंसता हुआ (आलङ्कारिक कथन) परमानन्दरसपूरितवाक्य बोला कि तुम मुनियियों का इतना काल हो गया अब मेरे प्रभाव से मन्त्रद्रष्टृत्वकारण से स्वतः मेरे प्रति समर्पण करके ऋषि हो जाओ यह कहकर करुणानिधि गुरु फिर हंसे हे हे महर्षियो ! यथाविधि वेदमन्त्रों को मेरी कृपा से प्राप्त विधान और अनुष्ठान के मार्ग से सेवन कर शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य को आश्रित हुए ईश्वराज्ञारूपी चेतन आत्मा को प्रबुद्ध करनेवाली महेश्वर सेप्राप्त हुई कल्याणकर ईश्वरवाणी वेदमाता की एकवार ओ३म् से आराधन करके—॥१८-२६॥

तदनुग्रहमासाद्य ज्ञात्वा मन्त्ररहस्यकान् ।
तदधिष्ठानरूपस्य महोदेवस्य केवलम् ॥२७॥

विज्ञाय हृदयं भक्त्या समाधिबलतस्तथा ।
ईश्वरानुग्रहात् तद्वन्मदनुग्रहतः क्रमात् ॥२८॥
प्रज्ञानघनमाविश्य प्रज्ञानेत्रेण केवलम् ।
सर्ववेदार्थतात्पर्यरहस्यं स्वानुभूतितः ॥२९॥
अनुभूय विचार्याथ प्रसन्नेन्द्रियमानसाः ।
धर्मशास्त्रपुराणेतिहासादींश्च ततः परम् ॥३०॥
भूतभौतिकशास्त्राणि वेदतत्त्वानुसारतः ।
सर्वलोकोपकाराय कल्पयित्वा यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥
संस्थापयत लोकेस्मिन् सर्वेषां भुक्तिमुक्तये ।
आकाशगमनार्थं व्योमयानानि तथैव च ॥ ३२ ॥
वायुवेगादिसिद्धचर्थं घुटिकापादुकाविधिम् ।
रचयित्वा कल्पशास्त्रैर्लोके स्थापयत क्रमात् ॥ ३३ ॥
इत्यादिदेश भगवान् दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।
ततस्ते मुनयस्सर्वे दक्षिणामूर्तिरूपिणम् ॥ ३४ ॥

—उसकी कृपा को प्राप्त कर मन्त्ररहस्यों को जान कर उस आश्रयरूप महादेव के हृदय को जान कर भक्ति से और समाधि बल से, ईश्वरकृपा से उसी भांति मेरे अनुग्रह से प्रज्ञानेत्र से प्रज्ञानघन में आविष्ट हो अपनी अनुभवशक्ति से सर्व वेदार्थ तात्पर्य-रहस्य को अनुभव करके विचार कर पवित्र इन्द्रिय-मन वाले हुए धर्मशास्त्र, पुराण-अलङ्कार इतिहास-इतिवृत्त को भूतशास्त्रों भौतिक शास्त्रों वेदतत्त्वानुसार सर्वलोकोपकार के लिये यथाक्रम रच कर सब के भोग मोक्ष के लिए स्थापित करो-प्रचार करो। आकाशगमनार्थ व्योमयानों को भी वायु के बल साधने आदि के निमित्त गुटिका (घुटिका) और पादुका को भी कल्पशास्त्रों से रच कर लोक में क्रम स्थापित करो। इस प्रकार भगवान् दक्षिणामूर्ति ने आदेश दिया तब सब मुनि दक्षिणामूर्तिरूपी—॥२७-३४॥

हृदि कृत्वा महादेवं सद्गुरुं करुणालयम् ।
धर्मशास्त्रपुराणेतिहासादीन् वेदमार्गतः ॥ ३५ ॥
तथैव भौतिकादीनि शास्त्राणि विविधान्यपि ।
कल्पशास्त्राणि सर्वाणि श्रौतस्मार्तपराणि च ॥ ३६ ॥
चक्रुर्वेदहृदयमनुसृत्य यथाविधि ।
पश्चात् प्रतिष्ठां चक्रुर्लोके तानि यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥
तेष्वन्तरिक्षविमानबोधकानि यथाविधि ।
षट् शास्त्राणीति कीर्त्यन्ते पूर्वाचार्यकृतानि हि ॥ ३८ ॥
यान्त्रिकास्तान्त्रिकास्तद्वत्कृतका इति च क्रमात् ।
तेषु सम्यङ् निरूप्यन्ते विमानाः सर्वतोमुखाः ॥ ३९ ॥

—करुणालय सद्गुरु महादेव को हृदयमें करके वेदमार्ग से-वेदानुसार धर्मशास्त्र, पुराण-अलङ्कार ग्रन्थ, वस्तु का इतिवृत्त आदि तथा भौतिक आदि विविध शास्त्रों को एवं विधिशास्त्रों सब श्रौत स्मार्तपरक शास्त्रों को भी वेदरूप हृदय का अनुसरण करके बनाया। पश्चात् लोक में उनकी प्रतिष्ठा—व्यवहार प्रचार परम्परा को यथाक्रम किया। उनमें उन अन्तरिक्षविमान के बोधक शास्त्रों को भी यथाविधि किया, वे छः शास्त्र कहे जाते हैं। यान्त्रिक, तान्त्रिक और कृतक क्रम से विमान हैं उनमें से प्रत्येक सर्व प्रकार से निरूपित किये जाते हैं ॥ ३५-३९ ॥

उक्तं हि विमानचन्द्रिकायाम्—कहा ही है विमानचन्द्रिका में—

व्योमयानप्रभेदानि प्रवक्ष्यम्यद्य शास्त्रतः।
मन्त्रप्रभावाधिक्यत्वात् त्रेतायां केवलं नृणाम् ॥ ४० ॥
विमाना अपि मन्त्रप्रभावादेव विनिर्मिताः।
तस्माद् विमानाश्शास्त्रेण मान्त्रिका इति निर्णिताः ॥४१॥
तन्त्रप्रभावाधिक्यत्वाद् द्वापरे सर्वदेहिनाम्।
तन्त्रप्रभावादेव सर्वे विमानास्सम्प्रकल्पिताः ॥ ४२ ॥
विमाना द्वापरे तस्मात्तान्त्रिका इति वर्णिताः।
मन्त्रतन्त्रविहीनत्वाद् विमानाः कृतका इति ॥ ४३ ॥
प्रोक्ताः कलियुगे व्योमयानशास्त्रविशारदैः।
त्रैविध्यं व्योमयानानां धर्मव्यत्ययकारणात् ॥ ४४ ॥
पूर्वाचार्यैर्विशेषेण शास्त्रेष्वेवं प्रकीर्तितम् ॥ इत्यादि ॥

व्योमयान के भेदों को अब शास्त्रानुसार कहूंगा, मन्त्रप्रभाव की अधिकता से त्रेता में मनुष्यों के होने से विमान भी मन्त्रप्रभाव से ही बनाये गये। अतः विमान शास्त्र द्वारा मान्त्रिक निश्चित किये गये। द्वापर में मनुष्यों के तन्त्रप्रभाव—वस्तुयोग प्रभाव की अधिकता से सब विमान तन्त्रप्रभाव से सम्पन्न किये गये अतः द्वापर में तान्त्रिक कहे गये। कलियुग में मन्त्रतन्त्रविहीन होने से विमान कृतक (यान्त्रिक यन्त्रवाले) कहे गये व्योमयान शास्त्र के कुशल जनों द्वारा। धर्म के व्यतिक्रम—उलटफेर से व्योमयानों के तीन प्रकार पूर्वाचार्यों द्वारा विशेषतः शास्त्रों में कहे गये हैं ॥ ४०-४४ ॥

व्योमयानतन्त्रेपि—व्योमयानतन्त्र में भी—

मन्त्रप्रभावात् त्रेतायां विमाना मान्त्रिका इति।
द्वापरे तन्त्रप्रधानत्वाद् विमानास्तान्त्रिकाः स्मृताः ॥ ४५ ॥
मन्त्रतन्त्रविहीनत्वात् तिष्ये तु कृतका इति।
त्रैविध्यं व्योमयानानामेवं जात्यनुसारतः ॥ ४६ ॥
उक्तं शास्त्रेयु सर्वत्र पूर्वाचार्यमतं यथा ॥ इति ॥

त्रेता में मन्त्रप्रभाव से विमान मान्त्रिक, द्वापर में तन्त्र के प्रधान होने से विमान तान्त्रिक, कलियुग में मन्त्र तन्त्र विहीन होने से कृतक (यान्त्रिक) कहे जाते हैं। इस प्रकार जाति के अनुसार विमानों की त्रिविधता शास्त्रों में सर्वत्र आचार्यों ने मानी है ॥

यन्त्रकल्पेऽपि—यन्त्रकल्प में भी—

जातिभेदो विमानानां मान्त्रिकादिप्रभेदतः ।
युगशक्त्यनुसारेण प्रोक्तं यानविदां वरैः ॥ ४७ ॥ इत्यादि ॥

विमानों का जातिभेद मान्त्रिक आदि प्रकार से युगशक्ति के अनुसार यानवेत्ताओं में श्रेष्ठ-जनों ने कहा है ॥ ४७ ॥

मान्त्रिको तान्त्रिकश्चैव कृतकश्चेति शास्त्रतः ।
जातिभेदास्त्रिधा प्रोक्ता विमानानां बुधैः क्रमात् ॥ ४८ ॥
इति यानविन्दौ

मान्त्रिक तान्त्रिक और कृतक शास्त्रानुसार जातिभेद तीन प्रकार के विमानों के विद्वानों ने कहे हैं ॥ ४८ ॥ यह यानविन्दु में कहा है ।

युगभेदाज्जातिभेदो विमानानां महर्षिभिः ।
मान्त्रिकादिप्रभेदेन त्रिधा शास्त्रेषु वर्णितम् ॥ ४९ ॥
इति खेटयानप्रदीपिकायाम् ।

युगभेद से जातिभेद विमानों का महर्षियों ने मान्त्रिक आदि प्रकार से तीन प्रकार शास्त्रों में कहा है ॥४९॥ यह खेटयान प्रदीपिका में कहा ॥

त्रैविध्यं व्योमयानानां युगभेदानुसारतः ।
उक्तं हि शास्त्रतस्सम्यग्यानशास्त्रविदां वरैः ॥ ५० ॥
इति व्योमयानार्कप्रकाशिकायाम् ॥

युगभेद के अनुसार व्योमयानों की त्रिविधता शास्त्रसम्मत ठीक यानशास्त्रज्ञ श्रेष्ठ विद्वानों ने कही है ॥५०॥ यह व्योमयानार्कप्रकाशिका में कहा है ।

एवं शास्त्रानुसारेण सूत्रेऽस्मिन् जातिभेदतः ।
त्रैविध्यं व्योमयानानामुक्तं सम्यग्यथाविधि ॥ ५१ ॥ इत्यादि ॥

इस प्रकार शास्त्रानुसार इस सूत्र में जातिभेद से विमानों की त्रिविधता यथाविधि सम्यक् कही है ॥५१॥

पञ्चविंशन्मान्त्रिकाः पुष्पकादिप्रभेदेन ।, अ० २ । सू० २ ॥१

बो० वृ०

पूर्वसूत्रे विमानानां त्रैविध्यं जातिभेदतः ।
युगरूपानुसारेण वर्णितं सप्रमाणतः ॥ ५२ ॥
मान्त्रिका इति ये प्रोक्ता विमानास्तेषु शास्त्रतः ।
पुष्पकादिप्रभेदेन तेषां संख्याविनिर्णयः ॥ ५३ ॥
विशदी क्रियते सम्यक् सूत्रेऽस्मिन् शास्त्रतः ।
पदानि त्रीणि शास्त्रेऽस्मिन् यानसंख्याविनिर्णये ॥ ५४ ॥

तत्रादिमपदाद् यानसंख्या सम्यक् प्रदर्शिता ।
द्वितीयपदतो व्योमयानजातिर्निरूपिता ॥ ५५ ॥
तृतीयपदतस्तेषां नामभेदा निरूपिताः ।
एवं सूत्रस्थपदानां सामान्यार्थो निरूपितः ॥ ५६ ॥
इदानीं सप्रमाणेन ? विशेषार्थो विविच्यते ।
ये तु मन्त्रप्रभावेण (न?) व्योम्नि संचरति ? स्वयम् ॥५७॥
तेष्वेकैकविमानस्य पुष्पकादिप्रभेदतः ।
पञ्चविंशतिनामानि शौनकीये यथाक्रमम् ॥ ५८ ॥
निरूपितानि तान्येव क्रमादत्र प्रचक्षते ।

पूर्व सूत्र में जातिभेद से विमानों की त्रिविधता युगरूपानुसार सप्रमाण वर्णित की है, उसमें जो शास्त्र में मान्त्रिक विमान कहे हैं पुष्पक आदि भेद से उनकी संख्या का निर्णय स्पष्ट इस सूत्र में शास्त्रमान से सम्यक् किया जाता है, यानसंख्या निर्णय के सम्बन्ध में इस शास्त्र-सूत्र में तीन पद हैं। आदि पद से यानसंख्या सम्यक् दिखलाई है द्वितीय पद से व्योमयान जाति कही है तृतीय पद से उनके नाम निरूपित किये हैं। इस प्रकार सूत्रस्थ पदों का सामान्य अर्थ निरूपित किया है। अब सप्रमाण विशेष अर्थों का विवेचन करते हैं, जो तो मन्त्रप्रभाव से आकाश में स्वयं सञ्चार करते हैं उनमें एक एक विमान का पुष्पक आदि प्रभेद से पच्चीस नाम शौनकीय सूत्र में यथाक्रम निरूपित किये हैं उन्हें ही क्रम से कहते हैं॥ ५२-५८॥

तत्र तावच्छौनकं सूत्रम्--उस विषय में शौनक सूत्र कथन—

अथ विमानेषु त्रेतायां पञ्चविंशतिस्ते मान्त्रिकास्तेषां नामान्यनुक्रमिष्यामः । पुष्पकाजमुखभ्राजस्वज्योतिर्मुखकौशिकभीष्मशेषवज्राङ्गदैवतज्वलकोलाहलार्चिषभूष्णुसोमांकपञ्चवर्णषण्मुखपञ्चबाणमयूरशङ्करत्रिपुरवसुहारपञ्चाननाम्बरीषत्रिणेत्रभेरुण्डा इति ॥

त्रेतायुग में विमानों में मान्त्रिक विमान हैं उनके नामों का वर्णन करेंगे—पुष्पक, अजमुख, भ्राज, स्वज्योतिर्मुख, कौशिक, भीष्म, शेष, वज्राङ्ग, दैवत, ज्वल, कोलाहल, आर्चिष, भूष्णु, सोमाङ्क, पञ्चवर्ण, षण्मुख, पञ्चबाण, मयूर, शङ्कर, त्रिपुर, वसुहार, पञ्चानन, अम्बरीष, त्रिणेत्र, भेरुण्ड ॥

माणिभद्रकारिका—इस विषय में माणिभद्रकारिका कथन—

त्रेतायुगविमानास्स्युर्द्वात्रिंशन्मान्त्रिका इति ।
गौतमोक्तानि नामानि तेषामत्र यथाक्रमसु ॥ ५९ ॥
विविच्यन्ते समालोड्य मुलसूत्रं यथामति ।
पुष्पकोऽजमुखो भ्राजस्स्वयंज्योतिश्च कौशिकः ॥ ६० ॥
भीष्मकश्शेषवज्राङ्गो दैवतो ज्वल एव च ।
कोलाहलोर्चिषो भूष्णुस्सोमाङ्को वर्णपञ्चकः ॥ ६१ ॥

षण्मुखः पञ्चबाणश्च मयूरो शङ्करप्रियः ।
त्रिपुरोवसुहारश्च पञ्चाननोंबरीषकः ॥ ६२ ॥
त्रिणेत्रो भेरुण्ड इति मान्त्रिकाणां यथाक्रमम् ।
एतान्युक्तानि नामानि पञ्चविंशन्महर्षिणा ॥ ६३ ॥ इत्यादि ॥

त्रेतायुग के मान्त्रिक विमान बत्तीस हैं गौतम के कहे हुए उनके नामों का यहां मूल सूत्र का यथामति आलोडन करके करते हैं । पुष्पक, अजमुख, भ्राज, स्वयंज्योति, कौशिक, भीष्मक, शेष, वज्राङ्ग, दैवत, ज्वल, कोलाहल, आर्चिष, भूष्णु, सोमाङ्क, वर्णपञ्चक, षण्मुख, पञ्चबाण, मयूर, शङ्करप्रिय, त्रिपुर, वसुहार, पञ्चानन, अम्बरीषक, त्रिणेत्र, भेरुण्ड, ये मान्त्रिक विमानों के नाम यथाक्रम महर्षि ने पच्चीस कहे हैं ॥

हस्तलेख कापी नं १७—

भैरवादिभेदात् तान्त्रिकाष्षट्पञ्चाशत् ॥ अ० ३, सू० ३ ॥ १

बो० वृ०

पूर्वसूत्रे मान्त्रिकाणां नामसंख्यादिनिर्णयः ।
कृतो यथा तान्त्रिकव्योमयानानां तथैव हि ॥ १ ॥
नामसंख्यानिर्णयार्थं सूत्रोयं परिकीर्तितः ।
तान्त्रिकाणां नामसंख्याबोधकानि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
पदानि त्रीणि सूत्रेस्मिन् वर्णितानि यथाक्रमम् ।
तत्रादिमपदाद् याननामभेदो निरूपितः ॥ ३ ॥
द्वितीयपदतस्तेषां जातिभेदः प्रदर्शितः ।
तृतीयपदतस्संख्यानिर्णयस्समुदीरितः ॥ ४ ॥
एवं सामान्यतस्सूत्रपदार्थः परिकीर्तितः ।
इदानीं तद्विशेषार्थस्संग्रहेण निरूप्यते ॥ ५ ॥
आकारगतिवेगाद्या मान्त्रतान्त्रिकयोः क्रमात् ।
समानमिति वर्ण्यन्ते यानशास्त्रविदां वरैः ॥ ६ ॥
तथापि तान्त्रिकेष्वेकप्रभेदः परिकीर्त्यते ।
द्यावापृथिव्योस्सन्ध्यस्थशक्तिसम्मेलनक्रमः ॥ ७ ॥
एकप्रभेद इत्याहुस्तान्त्रिकेषु मनीषिणः ।

पूर्व सूत्र में मान्त्रिक विमानों के नाम और संख्या आदि का निर्णय जैसे कर दिया वैसे ही तान्त्रिक व्योमयानों के भी नाम और संख्या के निर्णयार्थ यह सूत्र कहा गया है। तान्त्रिकों के नाम और संख्या के बोधक पृथक् पृथक् तीन पद इस सूत्र में यथाक्रम वर्णित हैं। आदिपद से नाम भेद निरूपित किया है, द्वितीय पद से उनका जातिभेद दिखलाया है, तृतीय पद से संख्या निर्णय प्रकट किया है। इस प्रकार सामान्य से सूत्र का पदार्थ—सूत्र पदों का अर्थ कहा गया है अब उसका विशेष अर्थ संक्षेप से निरूपित किया जाता है। आकार गति वेग आदि मान्त्रिक और तान्त्रिक में क्रम से यानशास्त्रवेत्ताओं द्वारा समान कहे जाते हैं तथापि तान्त्रिकों में एक प्रभेद कहा गया है, द्यावापृथिवी की सन्धि में स्थित शक्ति का सम्मेलनक्रम ही भेद मनीषी तान्त्रिकों में कहते हैं॥ १—७॥

लल्लोऽपि—लल्ल आचार्य भी कहते हैं—

एक एव प्रभेदस्स्यान्मान्त्रिकादपि तान्त्रिके ॥ ८ ॥
द्यावापृथिव्योर्यच्छक्तिः तस्यास्सम्मेलनक्रमः ।
आकारगतिवैचित्र्यादिषु सर्वत्र हि क्रमात् ॥ ९ ॥
एतद्विना समानत्वमुभयोरपि वर्णितम्(:?) ।
तान्त्रिकाणां प्रभेदस्तु षट्पञ्चाशदिति क्रमात् ॥ १० ॥
सूत्रे यदुक्तं तच्छौनकोक्तरीत्या निरूप्यते ।

मान्त्रिक विमान से तान्त्रिक विमान में एक ही भेद है वह यह कि द्यावापृथिवी की जो शक्ति है उसका सम्मेलन क्रम विना इसके आकार गति वैचित्र्य आदि में क्रम से सर्वत्र ही दोनों में समानत्व है तान्त्रिकों का भेद ५६ निर्णय किया है। जो कि शौनक की कही रीति के अनुसार निरूपित किए जाते हैं ॥ ८—१० ॥

तत्र तावच्छौनकसूत्रम्—उस विषय में अब शौनक सूत्र कथन है—

द्वापरे* तान्त्रिकाष्षट्पञ्चाशत्तेषां नामान्यनुक्रमिष्यामः । भैरवनन्दनवटुकविरिञ्चितुम्बरवैनतेयभेरुण्डमकरध्वजशृङ्गाटकाम्बरीषशेषास्यसैंहिकमातृकभ्राजपैङ्गलटिट्टिभप्रमथभूर्ष्णिचम्पकद्रौणिकरुक्मपुङ्खभ्रामणिककुभकालभैरवजम्बुकगिरीशगरुडास्यगजास्यवसुदेवशूरसेनवीरबाहु बृसुण्डगण्डकशुकतुण्डकुमुदक्रौञ्चिकाजगरपञ्चदलचुम्बुकदुन्दुभिरम्बरास्यमायूरकभीरुनलिककामपालगण्डर्क्षपारियात्रशकुन्तरविमण्डनव्याघ्रमुखविष्णुरथसौवर्णिकमृडदम्भोलिबृहत्कुञ्जमहानट इति ।

द्वापर युग में तान्त्रिक विमान ५६ हैं उनके नाम कहेंगे। भैरव, नन्दन, वटुक, विरिञ्चि, तुम्बर, वनतेय, भेरुण्ड, मकरध्वज, शृङ्गाटक, अम्बरीष, शेषास्य, सहिक, मातृक, भ्राज, पैङ्गल, टिट्टिभ, प्रमथ, भूर्ष्णि, चम्पक, द्रौणिक, रुक्मपुङ्ख, भ्रामणि, ककुभ, कालभैरव, जम्बुक, गिरीश, गरुडास्य, गजास्य, वसुदेव, शूरसेन, वीरबाहु, बृसुण्ड, गण्डक, शुकतुण्ड, कुमुद, क्रौञ्चिक, अजगर, पञ्चदल, चुम्बुक, दुन्दुभि, अम्बरास्य, मायूरक, भीरु, नलिक, कामपाल, गण्डर्क्ष, पारियात्र, शकुन्त, रविमण्डन, व्याघ्रमुख, विष्णुरथ, सौवर्णिक, मृड, दम्भोलि, बृहत्कुञ्ज, महानट ॥

माणिभद्रकारिका–इस विषय में माणिभद्रकारिका कथन है—

षट्पञ्चाशदिति प्रोक्तास्तान्त्रिका द्वापरे युगे ।
तेषां नामानि विधिवद् गौतमोक्तप्रकारतः ॥ ११ ॥
निरूप्यन्तेऽत्र विधिवद् यथाशास्त्रं समासतः ।
भैरवो नन्दकस्तद्वद्वटुकोथ विरिञ्चिकः ॥ १२ ॥
तुम्बरो वैनतेयश्च भेरुण्डो मकरध्वजः ।
शृङ्गाटकोम्बरीषश्च शेषास्यो सैंहिकस्तथा ॥ १३ ॥

* त्रेतायां (हस्तपाठे) लेखक प्रमादतः ।

मातृको भ्राजकश्चैव पैङ्गलो टिट्टिभस्ततः ।
प्रमथो भूर्ष्णिकस्तद्वच्चम्पको द्रौणिकस्तथा ॥१४॥
रुक्मपुङ्खो भ्रामणिकः ककुभः कालभैरवः ।
जम्बुकाख्यो गिरीशश्च गरुडास्यो गजास्यकः ॥१५॥
वसुदेवश्शूरसेनो वीरबाहुभृसुण्डकः ।
गण्डको शुकतुण्डश्च कुमुदः क्रौञ्चिकस्ततः ॥१६॥
अजगरः पञ्चदलश्चुम्बको दुन्दुभिस्तथा ।
अम्बरास्यो मयूरश्च भीरुश्च नलिकाह्वयः ॥१७॥
कामपालोऽथगण्डर्क्षः पारियात्रो शकुन्तकः ।
रविमण्डनो व्याघ्रमुखः पश्चाद् विष्णुरथस्तथा ॥१८॥
सौवर्णिको मृडश्चैव दम्भोल्याख्यस्तथैव च ।
बृहत्कुञ्जविमानश्च महानट इति ॥१९॥
एते षट्पञ्चाशतिकास्तान्त्रिका इति द्वापरे । इति

द्वापर युग में तान्त्रिक विमान ५६ कहे हैं उनके नाम गौतम के कहे प्रकार से यथाशास्त्र संक्षेप से निरूपित किए जाते हैं। भैरव, नन्दक, वटुक, विरिञ्चिक, तुम्बर, वैनतेय, भेरुण्ड, मकरध्व, शृङ्गाटक, अम्बरीष, शेषास्य, सैंहिक, मातृक, भ्राजक, पैङ्गल, टिट्टिभ, प्रमथ, भूर्ष्णि, चम्पक, द्रौणिक, रुक्मपुङ्ख, भ्रामणिक, ककुभ, कालभैरव, जम्बुकनामक, गिरीश, गरुडास्य, गजास्यक, वसुदेव, शूरसेन, वीरबाहु, भृसुण्डक, गण्डक, शुकतुण्ड, कुमुद, क्रौञ्चिक, अजगर, पञ्चदल, चुम्बक, दुन्दुभि, अम्बरास्य, मयूर, भीरु, नलिकनामक, कामपाल, गण्डर्क्ष, पारियात्र, शकुन्तक, रविमण्डन, व्याघ्रमुख, विष्णुरथ, सौवर्णिक, मृड, दम्भोलिनामक, बृहत्कुञ्ज, महानट क्रम से ये ५६ तान्त्रिक विमान हैं द्वापर में ॥११-१९॥

शकुनाद्याः पञ्चविंशत् कृतकाः ॥ अ० ३ सू० ४ ॥ १

॥ बो० वृ० ॥

एवमुक्त्वा तान्त्रिकाणां नामभेदादिनिर्णयः ।
कृतकानां नामभेदनिर्णयार्थं तथैव हि ॥२०॥
क्रमेण शास्त्रतस्सम्यक् सूत्रोऽयं परिकीर्तितः ।
कृतकानां यानसंख्याबोधकानि पृथक् पृथक् ॥२१॥
पदानि त्रीणि सूत्रेऽस्मिन् वर्णितानि यथाक्रमम् ।
तत्रादिमपदाद् याननामभेदो निरूपितः ॥२२॥
तेषां संख्याविभागस्तु द्वितीयपदतस्स्मृतः ।
तृतीयपदतस्तद्वज्जातिभेदः प्रकीर्तितः ॥२३॥
एवं सामान्यतस्सूत्रपदार्थस्सन्निरूपितः ।

इदानीं तद्विशेषार्थस्संग्रहेण विविच्यते ॥२४॥
आकारगतिवैचित्र्यादिषु शास्त्रान्महर्षिभिः ।
समानमिति हि प्रोक्तं मन्त्रतन्त्रादिकं विना ॥२५॥
कृतकानां प्रभेदस्तु पञ्चविंशदिति क्रमात् ।
सूत्रे निरूपितं यत्तच्छौनकोक्तप्रकारतः ॥२६॥
समालोड्य विशेषेण यथामति निरूप्यते ।

इस प्रकार तान्त्रिकविमान का नाम भेद आदि निर्णय कहकर कृतकविमानों के नामभेद आदि के निर्णयार्थ भी वैसे ही क्रम से शास्त्ररीति से सम्यक् यह सूत्र कहा गया है। कृतकविमानों के नाम संख्याबोधक पृथक् पृथक् तीन पद इस सूत्र में यथाक्रम वर्णित हैं, उनमें आदिमपद से यान के नाम और भेद निरूपित किये हैं, उनका संख्याविभाग तो द्वितीयपद से जानना तृतीयपद से जातिभेद कहा गया है। इस प्रकार सामान्य से सूत्र का पदार्थ निरूपित कर दिया, अब उसके विशेषार्थ का संक्षेप से विवेचन किया जाता है। शास्त्र से आकार विचित्रगति आदियों में समान है मन्त्रतन्त्र आदि के बिना ऐसा महर्षियों ने कहा है। कृतकों के भेद पच्चीस हैं, यहां सूत्र में शौनक में कहे प्रकार से निरूपित किया है उसे यथामति सम्यक् मन्थन करके विशेषरूप से निरूपित किया जाता है॥

तत्र तावच्छौनकसूत्रम् – उसमें शौनक सूत्र कथन है—

अथ तिष्ये कृतकभेदाः पञ्चविंशतिस्तेषां नामान्यनुक्रमिष्यामः ॥
शकुनसुन्दररुक्ममण्डलवक्रतुण्डभद्रकरुचकवैराजभास्करगजावर्तपौष्कलविरञ्चिनन्दककुमुद-
मन्दरहंसशुकास्यसौमकक्रौञ्चकपद्मकसैंहिकपञ्चबाण और्यायणपुष्करकोदण्डा इति ॥

कलियुग में कृतकविमान के भेद पच्चीस हैं उनके नाम कहेंगे। शकुन, सुन्दर, रुक्म, मण्डल, वक्रतुण्ड, भद्रक, रुचक, वैराज, भास्कर, गज, आवर्त, पौष्कल, विरञ्चि, नन्दक, कुमुद, मन्दर, हंस, शुकास्य, सोम, क्रौञ्चक, पद्मक, सैंहिक, पञ्चबाण, और्यायण, पुष्कर, कोदण्ड॥

माणिभद्रकारिका—माणिभद्रकारिका कथन है—

पञ्चविंशदिति प्रोक्ताः कृतकास्तु कलौ युगे।
तेषां नामानि विधिवद् गौतमोक्तविधानतः ॥२७॥
विविच्यन्तेऽत्र विधिवत्संग्रहेण यथाक्रमम् ।
शकुनो सुन्दरश्चैव रुक्मको मण्डलस्तथा ॥२८॥
वक्रतुण्डो भद्रकश्च रुचकश्च विराजकः ।
भास्करश्च गजावर्तपौष्कलोथ विरञ्चकः ॥ २९ ॥
नन्दकः कुमुदस्तद्वन्मन्दरो हंस एव च ।
शुकास्यस्सौम्यकश्चैव क्रौञ्चको पद्मकस्ततः ॥ ३० ॥
सैंहिको पञ्चबाणश्च और्यायणस्तथैव हि ।
पुष्करः कोदण्ड इति कृतकाः पञ्चविंशतिः ॥ ३१ ॥ इति

कलियुग में कृतकविमान पच्चीस कहे हैं उनके नामों का गौतम के कहे विधान से विवेचन विधिवत् संक्षेप से करते हैं। शकुन, सुन्दर, रुक्मक, मण्डल, वक्रतुण्ड, भद्रक, रुचक, विराजक, भास्कर, गज, आवर्त, पौष्कल, विरञ्चिक, नन्दक, कुमुद, मन्दर, हंस, शुकास्य, सौम्यक, क्रौञ्चक, पद्मक, सैंहिक, पञ्चबाण, औयायण, पुष्कर, कोदण्ड। ये कृतकविमान पच्चीस हैं ॥ २६—३१ ॥

राजलोहादेतेषामाकाररचना ॥ अ० ३, सू० ५ ॥ १

बो० वृ०

एवमुक्त्वा कृतकयानप्रभेदान्‡ शास्त्रतः क्रमात् ।
शकुनादिविमानानामाकाररचनादयः ॥ ३२ ॥
अथेदानीं राजलोहादेवेत्यस्मिन्निरूप्यन्ते (ते?) ॥ ३३ ॥

इस प्रकार कृतकविमानयान के भेदों को शास्त्र से क्रमशः कहकर राजलोहे से शकुन आदि विमानों के आकाररचना आदि हों अब इस में निरूपित किए जाते हैं ॥ ३२—३३ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह क्रियासार ग्रन्थ में कहा है—

कृतकव्योमयानानामाकाररचनाविधौ ।
उक्तेषु सर्वलोहेषूष्मपास्सुप्रशस्तकाः ॥ ३४ ॥
तेषु राजाख्यलोहोत्र शुकनस्य प्रशस्तकः ॥

कृतकव्योमयानों के आकार रचनाविधि में कहे सारे लोहों में उष्मपा प्रशस्त लोहे हैं उनमें भी राजनामक लोहा यहां शकुनविमान का प्रशस्त है ॥ ३४ ॥

तदुक्तं लोहप्रकरणे—वह कहा है लोहप्रकरण में—

सोमसौण्डालमौर्त्विकलोहवर्गत्रये क्रमात् ।
त्र्यष्टद्विलोहभागांशान् टङ्कणेन समन्वितान् ॥ ३५ ॥
मूषायां पूरयित्वाग्नौ न्यसेद् व्यासटिकान्तरे ।
द्वासप्तत्युत्तरद्विशतकक्ष्योष्णप्रमाणतः ॥ ३६ ॥
सङ्गालयेत् ततो राजलोहो भवति नान्यथा । इत्यादि ॥

सोम, सौण्डाल, मौर्त्विक तीनों लोहवर्ग-जाति में क्रम से तीन आठ दो लोहभाग मात्राओं को टङ्कण—सुहागा के साथ मूषा (कृत्रिम बोतल) में भरकर अग्नि में रखदे व्यासटिका कुण्ड के अन्दर दो सौ बहत्तर कक्ष्य-दर्जे की उष्णता से गलावे फिर वह राजलोहा बन जाता है ॥ ३५—३६ ॥

विश्वम्भरोपि-विश्वम्भर आचार्य ने भी कहा है-

लोहाधिकरणे सम्यग्विमानरचनाविधौ ।
ऊष्मपाष्षोडश प्रोक्ताश्श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरा इति ॥ ३७ ॥
चतुर्थलोहस्तेषु राजाख्यलोह इतीरितः ।
तेनैव कुर्याच्छकुनविमान इति वर्णितः ॥ ३८ ॥ इत्यादि ॥

---

‡ प्रभेदाश्शास्त्रतः (हस्तलेखे?)

सम्यक् विमानरचनाविधि में लोहाधिकरण में—लोहप्रसङ्ग में सोलह ऊष्मप श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोहे हैं उनमें चतुर्थ लोहा राजनामकलोहा कहा है उसी से शकुनविमान बनावे यह वर्णित किया है।

आदौ पीठस्ततो नालस्तम्भः पश्चाद् यथाक्रमम् ।
त्रिचक्रकीलकान्यस्य सरन्ध्राणि ततः परम् ॥ ३९ ॥
चतुरौष्म्यकयन्त्राश्च वातनालास्तथैव हि ।
ततो जलावरणनालस्तैलपात्रमतः परम् ॥ ४० ॥
वातपाचकतन्त्रीनालोथच्चुल्ली तथैव च ।
विद्युद्यन्त्रश्चाथ वातचोदनायन्त्र एव च ॥ ४१ ॥
तथैव वातपायन्त्रो दिक्प्रदर्शध्वजस्तथा ।
पश्चाच्छकुनयन्त्रश्च तत्पक्षद्वयमेव च ॥ ४२ ॥
विमानोत्क्षेपणार्थं तत्पुच्छभागस्तथैव हि ।
ततो विमानसञ्चारकारणौष्म्यकयन्त्रकः ॥ ४३ ॥
किरणाकर्षणमणिरित्यष्टाविंशतिः क्रमात् ।
अङ्गान्युक्तानि शकुनविमानस्य यथाक्रमम् ॥ ४४ ॥

प्रथम पीठ भूमिका—नीचे का ढांचा फिर नालस्तम्भ, पश्चात् यथाक्रम तीन कीलचक्र छिद्र-सहित, चार औष्म्यकयन्त्र कदाचित् ऐञ्जिन, वातनाल, फिर जलावरणनाल, पुनः तैलपात्र, वातपाचक तन्त्रीनाल—वायु को गरम करने वाला तारों का नाल, चुल्ली—अगींठी (हीटर), विद्युद्यन्त्र, वातचोदना-यन्त्र—वायु को फेंकने वाला यन्त्र, दिशाप्रदर्शक ध्वजा, शकुनयन्त्र उस विमान के दो पंख, विमान के ऊपर उठाने को पुच्छभाग, विमान गति का कारण औष्म्यक यन्त्र—एंजिन, किरणों का आकर्षण करने वाली मणि। ये अठाईस २८ शकुनविमान के अङ्ग यथाक्रम कहे हैं ॥ ३९-४४ ॥

अथ यानरचनाविधिरुच्यते—अब विमानयान रचना की विधि कही जाती है—

पट्टिकायन्त्रतो लोहं समीकृत्य यथाविधि ।
चतुरश्रं वर्तुलं वा दो*लाकारमथापि वा ॥ ४५ ॥
विमानाकारो†भारस्तु भारवाणां शतं यदि ।
कुर्यात् पीठं विमानस्य तदर्धेन यथाविधि ॥ ४६ ॥
यानमानानुसारेण पीठमेवं प्रकल्पयेत् ।
तन्मध्ये स्थापयेन्नालस्तम्भमावर्तकीलकैः ॥ ४७ ॥

पट्टिकायन्त्र से लोहे को यथाविधि एकसा करके—बराबर करके चतुष्कोण—चौकोण या गोल या दोला के आकारवाला—लम्बा गोलाकार झूलनासा विमानाकार हो भार तो भारवों—भारवालों-भार ले

* डोला (हस्तलेखे)

† विमानकारभारस्तु (हस्तलेखे)

जाने वालों (विमानों) का शतांश हो इस प्रकार विमान का पीठभाग बनावे, विमानयान के ऊंचाई के माप के आधे माप से पीठ बनावे, उसके मध्य में नालस्तम्भ को घूमनेवाली कीलों के साथ स्थापित करे ॥ ४५-४७ ॥

नालस्तम्भलक्षणं लल्लेनोक्तम्—नालस्तम्भलक्षण लल्ल आचार्य ने कहा है—

लल्लेनोक्तं यथा शास्त्रे यन्त्रकल्पतरौ क्रमात् ।
तदेवात्र प्रवक्ष्यामि नालस्तम्भस्य लक्षणम् ॥ ४८ ॥
हाटकास्येन लोहेन नालस्तम्भं प्रकल्पयेत् ।
न कुर्यादन्यलोहेन कृतश्चेन्नाशमेधते ॥ ४९ ॥

लल्ल आचार्य ने यन्त्रकल्पतरु शास्त्र में जैसे क्रम से कहा है वह ही यहां नालस्तम्भ का लक्षण कहूंगा। हाटकास्य लोहे से नालस्तम्भ बनाना चाहिए अन्य से किया तो नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ४८—४९ ॥

हाटकास्यलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—हाटकास्य लोहा कहा है लोहतन्त्र में—

सुवर्चलस्याष्टमभागान् लघुक्ष्विङ्कस्य षोडश ।
लघुबम्भारिकस्याष्टादशभागान् रवेस्तथा ॥ ५० ॥
शतभागान् सुसंयोज्य मूषायां सन्निवेश्य च ।
कूर्मव्यासटिकामध्ये संस्थाप्य सुदृढं यथा ॥ ५१ ॥
सप्तोत्तरत्रिशतकक्ष्यप्रमाणेन वेगतः ।
महोर्मिभस्त्रिकात्सम्यक् तन्नेत्रोन्मीलनावधि ॥ ५२ ॥
गालयेद् विधिवत् पश्चाद्धाटकास्यं भविष्यति । इत्यादि ॥

सुवर्चल-सज्जीक्षार आठ भाग, लघुक्ष्विङ्क हल्का लोहा-जस्ती टीन? सोलह भाग, लघुम्बभारिक? अठारह भाग, रवि-ताम्बा सौ भाग, इन्हें मिलाकर मूषिका (कृत्रिम बोतल)में भरकर कूर्मव्यासटिका-कूर्माकार कुण्ड के मध्य में रखकर तीन सौसात दर्जे की उष्णता से वेग से महोर्मिनामक भस्त्रिक-धोकनी से भली भांति नेत्रोन्मीलन अवधि तक गलावे फिर हाटकास्यलोहा हो जावेगा ॥ ५०—५२ ॥

पीठनिर्णयः—पीठ—भूमिका—नीचे के ढांचे का निर्णय कहते हैं—

पीठौन्नत्यं वितस्तीनामशीतिरिति वर्णितम् ।
षट्पञ्चाशद्वितस्तीनामायामं च तथैव हि ॥ ५३ ॥
वितस्तिसप्तत्यौन्नत्यं दक्षिणोत्तरभागयोः ।
ह्रस्वो भूत्वान्त्यभागे तु त्रिकोणाकारसंयुतम् ॥५४॥
शकुनाख्यविमानस्य पीठाकारमितीरितम् ॥ ५५ ॥

पीठ की ऊंचाई अस्सी बालिश्त कही, छप्पन बालिश्त लम्बाई चौड़ाई, दक्षिण और उत्तर भागों में ऊंचाई सत्तर बालिश्त, अन्तवाले भाग में छोटा होकर त्रिकोण आकारयुक्त पीठ का आकार शकुनविमान का कहा है ॥ ५३-५५ ॥

अथनालस्तम्भनिर्णयः—अत्र नालस्तम्भ का निर्णय कहते हैं—

स्तम्भमूलं वितस्तीनां पञ्चत्रिंशदितीरितम् ।
प्रदक्षिणावृतौन्नत्यवर्तुलाकारतो बहिः ॥ ५६ ॥
अन्तर्वलयमानन्तु त्रिंशद्वितस्तयः क्रमात् ।
स्तम्भमध्यप्रमाणं तु वर्तुलाकारतो बहिः ॥ ५७ ॥
वर्णितं शास्त्रतः सम्यक् पञ्चविंशद्वितस्तयः ।
तदन्तर्वलयाकारो वितस्तीनां हि विंशतिः ॥ ५८ ॥
स्तम्भान्त्यस्य बहिर्गात्रो वर्तुलाकारतः क्रमात् ।
विंशद्वितस्तयः प्रोक्ताः(ो) तदन्तर्वलयाकृतिः ॥ ५९ ॥
वितस्तीनां पञ्चदशेत्युक्तं शास्त्रे मनीषिभिः ।
एवं प्रमाणतोशीतिवितस्त्यौन्नत्यतः क्रमात् ॥ ६० ॥
नालस्तम्भो राजलोहात्कारयेद् यानकर्मणि ।
तन्मूले पञ्चदशाङ्गुलप्रमाणावधिक्रमात् ॥ ६१ ॥
पीठे स्तम्भप्रतिष्ठार्थं कुर्यादावर्तकीलकम् ।
कर्तुं न्यूनाधिकं वायुवेगं कालोचितं यथा ॥ ६२ ॥
स्तम्भान्तरे दृढं चक्रषट्कं संस्थापयेत् क्रमात् ।

पीठ के मध्य जो नालस्तम्भ लगता है उसका मूल—नीचलाभाग ३५ बालिश्त कहा है, घूम के साथ उठकर बाहिर से गोल हो । पीठ के अन्दर गोलाई में ३३ बालिश्त रहे स्तम्भ के बीच का प्रमाण तो बाहिर गोलाकार २५ बालिश्त शास्त्र से वर्णित किया है, उसके अन्दर वलयाकार २० बालिश्त स्तम्भ का अन्त्य-सिरा हो बाहिरी अङ्ग गोल हो । उसके अन्दर २० बालिश्त फिर उसके अन्दर अन्य भाग १५ बालिश्त शास्त्र में मनीषियों ने कहा है, इस प्रकार प्रमाण से पांच भागों की ८० बालिश्त ऊंचाई होनी चाहिए । नालस्तम्भ राजलोहे से करावे विमानयानकर्म में, उसके मूल में १५ अंगुल स्तम्भ के प्रतिष्ठार्थ घूमनेवाली कील पीठ में करे अथवा वायुवेग समय के अनुसार न्यूनाधिक करे । स्तम्भ के अन्दर छः दृढ चक्र क्रम से स्थापित करे ॥५६-६२॥

चक्रनिर्णयः—चक्र का निर्णय कहते हैं—

पीठाच्चतुर्थवितस्तीनामूर्ध्वे स्तम्भान्तरे क्रमात् ॥६३॥
सरन्ध्रं वर्तुलं चक्रत्रयं सन्धारयेत् क्रमात् ।
चक्रावर्तं वितस्तीनां सार्धपञ्चदश स्मृतम् ॥६४॥
पीठाच्चतुश्चत्वारिंशद्वितस्त्योर्ध्वे तथैव हि ।
सरन्ध्रं वर्तुलं चक्रत्रयं सम्यक् प्रतिष्ठितम् ॥६५॥
एतेषूर्ध्वाधस्थचक्रद्वयं दृढमचञ्चलम् ।
यथा भवेत् तथा सम्यग्बध्नीयाच्छङ्कुभिः क्रमात् ॥६६॥

कालानुसारतो मध्यचक्रसम्भ्रमणाय हि ।
नालस्तम्भस्य बाह्ये कीलकास्सम्यक् प्रतिष्ठिताः ॥६७॥
चक्रेषु रन्ध्रस्थितत्वादचलत्वाद् द्विचक्रयोः ।
मध्यचक्रभ्रमात् सम्यक्चक्रत्रयसमूहतः ॥६८॥
वायुसञ्चरणार्थाय सम्यक् मार्गं कृतं भवेत् ।
एतेन वायुसञ्चारस्तिरोधानोप्यथाक्रमम् ॥६९॥
अनुलोमाद्विलोमाच्च बाह्यकीलकचालनात् ।
भवेत्कालानुसारेण सप्रमाणं यथाविधि ॥७०॥

पीठ से चार बालिश्त ऊपर स्तम्भ में क्रम से छिद्रसहित गोलाकार तीन चक्र लगादे, चक्रों का घेरा साढे पन्द्रह बालिश्त हो। उसी प्रकार पीठ से ४४ बालिश्त ऊपर छिद्रसहित गोलाकार तीन चक्र प्रतिष्ठित हों इनमें ऊपर नीचे दो अचल चक्र हों इस प्रकार उन्हें शंकुओं से बान्धे, कालानुसार मध्यचक्र के घूमने के लिये नालस्तम्भ के बाहिर कीलें लगादे, चक्रों में छिद्र होने से और दो चक्रों के अचल होने से मध्यचक्र के घूमने से तीनों चक्रों के समूह–तीनों के होने से वायु सञ्चार के लिये सम्यक् मार्ग हो जाता है इस वायु का सञ्चार और उसका तिरोधान—बन्द हो जाना समयानुसार यथा-विधि क्रम से कील के सीधा उल्टा चलाने से हो जाता है—होता रहेगा ॥६३-७०॥

गवाक्षशिखरनिर्णयः—गवाक्ष शिखर का निर्णय—

बाह्यावृत्तं गोपुरस्य सार्धपञ्चदशक्रमात् ।
वितस्तिप्रमाणमिति शास्त्रैः प्रोक्तं महर्षिभिः ॥७१॥
तदन्तर्वलयं पञ्चवितस्तय इतीरितम् ।
वितस्तिद्वयमौन्नत्यं सु दृढं च मनोहरम् ॥७२॥
गवाक्षशिखरं सम्यङ् नालस्तम्भोपरि न्यसेत् ।

गोपुर–सूर्यकिरण द्वार का बाहिरी घेरा साढ़े पन्द्रह बालिश्त माप का शास्त्रों से महर्षियों ने कहा है उसके अन्दर का घेरा पांच बालिश्त कहा है दो बालिश्त उठाव आडेपन का सुन्दर गवाक्षशिखर–झरोके की ऊंचाई नालस्तम्भ के ऊपर रखे।

अथ रविचुम्बकमणिनिर्णयः—अब सूर्यकान्तमणि का निर्णय—

प्रदक्षिणावृतस्सप्तवितस्तिस्स्यान्मणेस्तथा ॥७३॥
वितस्तिद्वयमायामं वितस्तिद्वयगात्रकम् ।
आदित्यचुम्बकमणिं शिखरस्योपरि न्यसेत् ॥७४॥

सूर्यकान्तमणि का घेरा ७ बालिश्त दो बालिश्त लम्बा चौड़ा दो बालिश्त मोटाईवाला हो उस सूर्यचुम्बकमणि को गवाक्ष की चोटी पर रखे—ऊपरिभाग पर रखे जडदे।

चतुरौष्मिकयन्त्राणि—चार औष्मिकयन्त्र—

पीठस्योपरिभागे तु वितस्तीनां चतुर्दश ।

ततस्त्र्यङ्गुलमानेन सौधत्रयं मनोहरम् ।।७५।।
वितस्तीनां दशौन्नत्ये गात्रे त्र्यङ्गुलसंयुतम् ।
एतदाकारसंयुक्तं स्तम्भोपरि यथाविधि ।।७६।।
संस्थापितं कीलशङ्कुबन्धनात्सुदृढं यथा ।
प्रतिस्तम्भान्तरायस्तु वितस्तिदशकं स्मृतम् ।।७७।।
प्रतिस्तम्भाग्रभागान्ते चक्रावर्तप्रकल्पनात् ।
परस्परं मिलित्वाथान्योन्यं सम्परिगृह्यते ।।७८।।
एतत्पीठे चतुर्दिक्षु तत्तत्केन्द्रोपरि क्रमात् ।
वितस्तिदशकायामं वितस्त्यष्टौन्नत्यं तथा ।।७९।।
सुदृढं स्थापयेत् सम्यगौष्म्ययन्त्रचतुष्टयम् ।
यन्त्रप्रदक्षिणावृत्तौ वितस्तिदशकं स्मृतम् ।।८०।।

पीठ के ऊपरिभाग पर तीन सुन्दर भवन १४ बालिश्त और ३ अंगुल माप प्रसार से तथा १० बालिश्त ऊंचाई में और ३ अंगुल मोटाई में बनावे। इस आकार से युक्त स्तम्भ के ऊपर यथाविधि संस्थापित कील शंकुबन्धनों से सुदृढ करे, स्तम्भ की दूरी १० बालिश्त कही है। स्तम्भ के अग्रभाग के अन्त में चक्र आवर्त—घेर बनाने से परस्पर मिलकर एक दूसरेसे संयुक्त किया जाता है। यह पीठमें चारों दिशाओं में उस उस केन्द्र के ऊपर क्रम से १० बालिश्त लम्बाई ८ बालिश्त ऊंचाई पर सुदृढ चार औष्म्य यन्त्र (एंजिन) हों, औष्म्ययन्त्र का घेरा १० बालिश्त कहा गया है—।।७५-८०।।

वितस्त्यष्टकमौन्नत्यमिति शास्त्रविनिर्णयः ।
एतन्मध्यस्थितस्तम्भपंक्तिमार्गानुसारतः ।।८१।।
व्योमयानं प्रयातॄणामुपवेष्टुं यथाविधि ।
गृहान् प्रकल्पयेच्छिल्पशास्त्ररीत्या पृथक् पृथक् ।।८२।।
एवमुक्त्वा प्रथमसौधप्रदेशे गृहकल्पनाम् ।
विमानस्याङ्गयन्त्राणां स्थापनार्थमतः परम् ।।८३।।
द्वितीयसौधप्रमाणमुक्त्वा तस्मिन् यथाविधि ।
स्तम्भपक्तंचनुसारेण गृहान् सम्यक् पृथक् पृथक् ।।८४।।
अङ्गयन्त्रप्रमाणानुसारतः परिकल्पयेत् ।
अथैकैकगृहे सिद्धान्यङ्गयन्त्राण्यथाविधि ।।८५।।
एकैकं स्थापयेत्सम्यग्दृढं कीलैः पृथक् पृथक् ।
वितस्तीनां षष्टितमौन्नत्यमुक्तं तथैव हि ।।८६।।

और ऊंचाई ८ बालिश्त हो यह शास्त्र का निर्णय है। इसके मध्य में स्थित स्तम्भपंक्तिमार्ग के अनुसार व्योमयान के यात्रियों के बैठने को यथाविधि घर—शास्त्ररीति से पृथक् पृथक् बनावे। इस प्रकार प्रथम सौध-महल घेरे प्रदेश में गृह(कम्पार्टमेण्ट) बनाना। विमानके अंगयन्त्रों के स्थापनार्थ

दूसरे सौध-महल घेरे में यथाविधि कहकर स्तम्भपंक्ति के अनुसार घरों को पृथक् पृथक् अंगयन्त्रों के प्रमाणानुसार बनावे, एक एक घर में सिद्ध अंगयन्त्रों को यथाविधि एक एक को कीलों से स्थापित करे, ६० बालिश्त ऊंचाई कही है—॥८१-८६॥

वितस्तिषोडशायाममूर्ध्वौन्नत्यमतः परम् ।
चतुर्दशवितस्त्योपर्यङ्गुलत्रयमेव च ॥८७॥
द्वितीयसौधप्रमाणमुक्तं (खलु?) महर्षिभिः ।
चत्वारिंशद्वितस्तिप्रमाणमुन्नतमद्भुतम् ॥८८॥
वितस्त्यष्टमायामं तदूर्ध्वौन्नत्यकं तथा ।
चतुर्दशवितस्त्योपर्यङ्गुलत्रयमेव हि ॥८९॥
तृतीयसौधप्रमाणमेवं शास्त्रेण वर्णितम् ।
अङ्गयन्त्रस्थापनार्थं तत्रत्यस्तम्भपंक्तिभिः ॥९०॥
जनोपवेशनार्थं च गृहान् सम्यक् प्रकल्पयेत् ।
पीठात् त्र्यावरणान्तं च तदारभ्य पुनः क्रमात् ॥९१॥
नालस्तम्भान्तपर्यन्तं चतुर्दिक्षु पृथक् पृथक् ।
रज्वाकाराद् रन्ध्रनालादेकैकस्य परस्परम् ॥९२॥
विना बन्धं योजितं स्यात् सुदृढं क्रमात् ।
पीठावरणतस्तद्वत्सार्धसप्तवितस्तचधः ॥९३॥
यावत्पीठप्रमाणं स्यात् तावदेव यथाविधि ।
एकमावरणं कुर्यात्सुदृढं सुमनोहरम् ॥९४॥

१६ बालिश्त लम्बा ऊपर उन्नत हुआ १४ बालिश्त ३ अंगुल अधिक दूसरे सौध—महल का प्रमाण महर्षियों ने कहा है। ४० बालिश्त प्रमाण का उन्नत ८ बालिश्त लम्बा उससे ऊपर, १४ बालिश्त ३ अंगुल तीसरा सौध—महल का प्रमाण शास्त्र में कहा है। अंगयन्त्रों के स्थापनार्थ वहां की स्तम्भ-पंक्तियों से तथा मनुष्यों के बैठने के लिये घर सम्यक् बनावे। पीठ से आवरणपर्यन्त और पुनः आवरण से आरम्भ करके चारों दिशाओं में नालस्तम्भपर्यन्त रस्सी के आकार छिद्रवाली नाल से एक एक का परस्पर विनाबन्धन के स्थान सुदृढयुक्त किया हो। पीठावरण से साढेसात बालिश्त नीचे पीठ के माप का एक आवरण मनोहर करे।

यानोपयुक्तयन्त्राण्येतस्मिन् संरचितानि हि ।
तन्मध्यकेन्द्रनालस्तम्भमूलोस्ति दृढं यथा ॥९५॥
एतन्नालस्तम्भमूले चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।
वाताकर्षणयन्त्राणि चत्वारि स्थापितानि हि ॥९६॥
तत्प्रेरकाणि चत्वारि औष्म्ययन्त्राण्यपि क्रमात् ।
पश्चाद्भागे विमानस्य पूर्वभागेऽपि च स्थिते ॥९७॥

वातापकर्षणयन्त्रद्वयमध्यस्थकेन्द्रके ।
वातपाचकयन्त्रं च सुदृढं स्थापितं भवेत् ॥९८॥
एतद्यन्त्रमुखे वातपाचनार्थं यथाविधि ।
बाह्यवायुं पूरयितुं पृथग्यन्त्रद्वयं क्रमात् ॥९९॥
यानस्य पूर्वपश्चाद्भागयोस्सम्यक् प्रतिष्ठितम् ।
विमानोभयपार्श्वस्थपक्षयोरुभयोरपि ॥१००॥
प्रसारणाघात*क्रियासिद्ध्यर्थं च तथैव हि ।
तिर्यङ्न्यग्गुलरूपेणोपसंहाराय शास्त्रतः ॥ १०१ ॥
स्वानुकूलं यथा तत्र कीलकास्स्थापितास्तथा ।
विमानस्य पुरोभागस्थितपङ्क्†भ्रमाय हि ॥ १०२ ॥
शलाकानालमध्यस्था योजिताश्चौष्म्ययन्त्रके ।

विमानयान के उपयुक्त यन्त्र इसमें रचे हैं उसके मध्यकेन्द्र में नालस्तम्भ मूल दृढ करे, इस नालस्तम्भ मूल में चारों दिशाओं में यथाक्रम चार वाताकर्षण यन्त्र—वायु का आकर्षण करने वाले यन्त्र स्थापित हों, उनके प्रेरक चार औष्म्य यन्त्र ताप देने वाले यन्त्र (ऐंजिन) भी रखे हों। विमान के पिछले भाग और पूर्व भाग में दोनों यन्त्रों के मध्यकेन्द्र में वातापकर्षण यन्त्र—वात को फैंकने वाले यन्त्र हों और वातपाचक यन्त्र भी सुदृढ लगावे। इस यन्त्रमुख में यथाविधि वातपाचनार्थ बाह्य वायु को अन्दर भरने को क्रम से पृथक् दो यन्त्र होने चाहिएं वे विमान यान के पूर्व पश्चात् के भागों में ठीक रखे हों। विमान के दोनों पार्श्वों में स्थित पंखों को प्रसारण के आघात या प्रसारण और आधानक्रिया सिद्धि के लिए तिर्यक्—तिरछा नीचे समेटनेरूप से उपसंहार के लिये भी शास्त्र से अनुकूल कीलें वहां लगानी चाहिएं। विमान के सम्मुख भाग स्थित वातव्यक्तिकरण चक्र भ्रमण के लिए औष्म्यक यन्त्र (ऐञ्जिन) में शलाकाएं नाल के मध्य में युक्त हों ॥ ९५–१०२ ॥

अथ पक्षनिर्णयः—अब पंखों का निर्णय करते हैं—

विंशद्वितस्त्युन्नतं तदायामोऽष्टवितस्तिकः ॥ १०३ ॥
गात्रे सार्धवितस्तीति निर्णितं पक्षमूलयोः ।
तन्मूलौ कीलके सम्यक् सुदृढं योजितं क्रमात् ॥ १०४ ॥
पक्षयोः पश्चिमभागे रेखावत्परिदृश्यते ।
तत्पुरोभागविस्तारो वितस्तिदशकं भवेत् ॥ १०५ ॥
पश्चाद्भागस्य विस्तारो चत्वारिंशद्वितस्तयः ।
पक्षौन्नत्यं वितस्तीनां भवेत् षष्टितमः क्रमात् ॥ १०६ ॥
एतदाकारसंयुक्तं पक्षद्वयमितीरितम् ।

* घात (हस्तलेखे)
† पचि व्यक्तिकरणे (म्वादि०)

उसकी ऊंचाई लम्बाई २० बालिश्त ८ बालिश्त चौडाई पंखों के मूल में डेढ बालिश्त मोटा, उनके अपने मूल कील में दृढ युक्त हों। पंखों के पिछले भाग में रेखा की भांति दिखलाई पडता है, उसके सामने के भाग का विस्तार १० बालिश्त हो पिछले भाग का विस्तार लम्बाई ४० बालिश्त पंखों का उन्नतिपथ ६० बालिश्त हो। इस आकार के दो पंख हों ॥ १०३-१०६ ॥

अथ पुच्छप्रमाणम् अब पुच्छ का प्रमाण कहते हैं—

पुच्छौन्नत्यं वितस्तीनां विंशतिस्स्यात्तथैव हि ॥ १०७ ॥
तत्पुरोभागविस्तारस्सार्धत्रयवितस्तिकः ।
तत्पश्चाद्भागविस्तारो वितस्तीनां तु विंशतिः ॥ १०८ ॥
एतत्पुच्छाकारमिति प्रवदन्ति मनीषिणः ।

पुच्छ का ऊपर उठाव २० बालिश्त, सामने वाले भाग की मोटाई साढे तीन बालिश्त उसके पिछले भाग की लम्बाई २० बालिश्त यह पुच्छ का आकार मनीषी कहते हैं ॥ १०७-१०८ ॥

वाताकर्षक यन्त्रं तदौष्म्यक यन्त्रं च—वाताकर्षक यन्त्र और उसका औष्म्यक यन्त्र भी—

यन्त्रौन्नत्यं वितस्तीनामुक्तं पञ्चदश क्रमात् ॥ १०९ ॥
वितस्तित्रयमायाममिति शास्त्रे निरूपितम् ।

यन्त्र की ऊंचाई १५ बालिश्त मोटाई ३ बालिश्त शास्त्र में कही है ॥ १०९ ॥

नालप्रमाणम्—नाल का प्रमाण—

वितस्तित्रयमौन्नत्यं तन्नालानां तथैव हि ॥ ११० ॥
बाह्यावृत्तं वितस्तीनां चत्वारीति विनिर्णितम् ।
एतद् यन्त्रशलाकाश्च कीलकाद्यास्तथैव हि ॥ १११ ॥
कृतास्तदनुसारेण शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।

इसी प्रकार उनके नालों की ऊंचाई मोटाई तीन बालिश्त हो, बाहिरी आवृत्त – मूठ की मोटाई चार बालिश्त हो ऐसे ही यन्त्र की शलाकाएं कील आदि भी अपने माप के अनुसार शास्त्र में कहे मार्ग से हों ॥ ११०-१११ ॥

अथ वातपायन्त्रनिर्णयः—अब वातपा-वायुरक्षकयन्त्र का निर्णय—

वितस्तिद्वादशौन्नत्यं वर्तुलावरणं तथा ॥ ११२ ॥
वितस्तिसार्धनवकप्रमाणेनाभिवर्णितम् ।
इत्युक्तं वातपायन्त्रप्रमाणं शास्त्रतः क्रमात् ॥ ११३ ॥
अन्तःप्रदक्षिणावृत्ततन्त्रिभिः परिवेष्टितम् ।
एतदन्तर्मुखे नालमेकं सन्धारितं भवेत् ॥ ११४ ॥
आवृत्ततन्त्रीनालेऽन्तर्वातसञ्चारतस्तथा ।
तद्बहिः पक्वतैलस्य ज्वालसन्धारवेगतः ॥ ११५ ॥

१२ बालिश्त उठा हुआ गोल आवरण भी साढे नौ बालिश्त प्रमाण से कहा है। शास्त्र से वातपा यन्त्र का प्रमाण कह दिया है। अन्दर घूमने वाले तारों से लपेटा हुआ हो उसके भीतरी मुख में एक नाल लगाई हो। घूमने वाले तारों के नाल में अन्दर वातसञ्चार होगा, उसके बाहिर गरमतैल ज्वलन-शक्ति वेग से--॥ ११२-११५ ॥

भवेत्सन्तापितो वायुश्शतकक्ष्यप्रमाणतः ।
एतत्सन्तापितं वायुमौष्म्ययन्त्रे नियोजितुम् ॥ ११६ ॥
बाह्यस्थशीतवायोराकर्षणाय तदन्तरे ।
नालाश्च कीलका एतद्यन्त्रे सन्धारिताः क्रमात् ॥ ११७ ॥
तैलज्वालासमुत्पन्नधूमं वेगान्मुहुर्मुहुः ।
बाह्ये नियोजितुं यन्त्रात्स्तम्भमूलावधि क्रमात् ॥ ११८ ॥
षडङ्गुलगात्रनाला यन्त्रेऽस्मिन् सम्प्रतिष्ठिताः ।
बाह्यस्थं पूर्वोक्तशीतवायुं यन्त्रान्तरे क्रमात् ॥ ११९ ॥
नियोजितुं पुनर्वातयन्त्राणि स्थापितानि हि ।
वितस्तिदशकावृत्तचक्राकाराणि शास्त्रतः ॥ १२० ॥

वायु सौ दर्जे के प्रमाण से तपाया जावे, इस तपाए वायु को औषम्ययन्त्र में नियुक्त करे उसके अन्दर बाहिरी शीत वायु के आकर्षण करने के लिए, इस यन्त्र में नाल और कील क्रम से लगाए हुए हों, तैलज्वाला से उत्पन्न धूंआ वेग से पुनः पुनः—निरन्तर यन्त्र से बाहिर नियुक्त करने को—निकालने को स्तम्भमूल तक छः अंगुल नाल इस यन्त्र में लगाई गई हो, पूर्वोक्त बाहिरी शीतवायु को यन्त्र के अन्दर नियुक्त करने को—लाने को फिर वातयन्त्र स्थापित हों, तथा १० बालिश्त घूमने वाले चक्राकार हों ॥ ११६-१२० ॥

अथ चुल्ली--अब अङ्गीठी (हीटर) कहते हैं—

वातपाचक्रयन्त्रस्य पूर्वभागे यथाविधि ।
तैलप्रज्वलनार्थाय दीपचुल्ली प्रतिष्ठिता ॥ १२१ ॥
तस्मिन् दीपप्रतिष्ठार्थमग्न्युत्पत्त्यर्थमेव तु ।
विद्युद्यन्त्रं स्थापितं स्यात्कीलकैस्सुदृढं यथा ॥ १२२ ॥
एतेनाग्निं ज्वलयितुं भवेत् कालानुसारतः ।
दीपोसंहारकाले तैलसंरक्षणाय हि ॥ १२३ ॥
प्रतिष्ठितं भवेदेककीलकं च यथाविधि ।
पुच्छान्तरप्रदेशान्ते कर्तुं स्याद् रज्जुबन्धनम् ॥ १२४ ॥
यन्तॄणां कृतरज्वाकर्षणातस्तु मुहुर्मुहुः ।
पुच्छो भ्राम्यति वेगेनोर्ध्वाधोभागदेशयोः ॥ १२५ ॥
एतेनारोहणे तद्वद्विमानस्यावरोहणे ।

प्रयाणकाले सर्वत्र सहायो भवति ध्रुवम् ॥ १२६ ॥
तथैव व्योमयानस्य पार्श्वयोरुभयोरपि ।
न्यग्गुलीकरणार्थाय पक्षयोरुभयोः क्रमात् ॥ १२७ ॥
पक्षाघातककीलेपि कर्तुं स्याद् रज्जुबन्धनम् ।
एतद्रज्वाकर्षणेन पक्षयोरुभयोः क्रमात् ॥ १२८ ॥
विस्तृतत्वं च न्यग्भावं क्रमाद् भवति नान्यथा ।
प्रथमावरणादस्ति वितस्तिदशकादधः ॥ १२९ ॥
सार्धद्वयवितस्त्यूर्ध्वौन्नत्यमात्रं मनोहरम् ।
अन्यदावरणं पीठात् किञ्चिन्न्यूनं प्रमाणतः ॥ १३० ॥
वातनालस्तम्भमूलमेकस्मिन् शास्त्रतो दृढम् ।
प्रदक्षिणावृत्तभागात्सम्यक् संयोजितं भवेत् ॥ १३१ ॥

वातपा चक्र यन्त्र के पूर्व भाग में यथाविधि तैलप्रज्वलन के लिए दीपचुल्ली लगी हो, उसमें दीप प्रतिष्ठार्थ अग्नि की उत्पत्ति के निमित्त ही कीलों से विद्युद्यन्त्र दृढ स्थापित हो। इससे समयानुसार अग्नि जल जावे, दीप के उपसंहार समय—बुझाने के समय तैल संरक्षण के लिए एक कील यथाविधि लगी हो। पुच्छ के भीतरी प्रदेश के सिरे पर करने को रज्जुबन्धन हो, यन्त्रनियन्ता चालक द्वारा रज्जु के खींचने से बार बार निरन्तर पुच्छ वेग से ऊपर नीचेवाले भागों में घूमती है इससे विमान के आरोहण—ऊपर उठने वैसे ही अवरोहण—नीचे आने और प्रयाणकाल—उडते हुए सर्वत्र सहायक होता है। ऐसे ही व्योमयान के दोनों पंखों को क्रम से नीचे ऊपर झुकाने को पंखों को आघात करने—प्रेरित करने वाली कील में रज्जुबन्धन हो। इस डोरी के खींचने से दोनों पंखों का विस्तार गमन—अग्रगमन ऊर्ध्व-गमन और पश्चाद् गमन नीचे गमन क्रम से होता है। प्रथम आवरण से १० बालिश्त नीचे तथा पीठ से अढाई बालिश्त उठा हुआ अन्य आवरण हो, कुछ न्यून वातनाल मूल एक में घूमने वाले भाग से भली प्रकार लगी हो—फिट हो ॥ १२१-१३१ ॥

तैलपात्रनिर्णयः—तैलपात्र का निर्णय करते हैं—

एतस्मिन्नेव विधिवज्जलावरणसंयुतम् ।
वितस्तीनां सार्धनवप्रमाणौन्नत्यकं तथा ॥ १३२ ॥
चतुर्वितस्त्यावृत्तं चायामे नववितस्तयः ।
षडङ्गुलं तदुपरिप्रमाणेनाभिवर्णितम् ॥ १३३ ॥
वितस्तीनां पञ्चदशविस्तृताकारसंयुतम् ।
तैलपात्रद्वयं सम्यक् स्थापितं सुदृढं यथा ॥ १३४ ॥

इसी में विधिवत् जलावरण से युक्त साढे नौ बालिश्त ऊंचाई में तथा चार बालिश्त घेरेवाला या गोलाई में और नव बालिश्त छः अङ्गुल विस्तार में नाभि कही है पन्द्रह बालिश्त विस्तृत आकारवाला लम्बे दो तैलपात्र सुदृढ़ सम्यक् स्थापित करे ॥ १३२—१३४ ॥

अथ वातनालनिर्णयः—अब वातनाल का निर्णय दर्शाते हैं—

वितस्तीनां पञ्चदशप्रमाणौन्नत्यसम्मितम् ।
वितस्तिद्वयगात्रं च वर्णितं तदनन्तरम् ॥ १३५ ॥
सार्धषट्कवितस्तीनां विस्तारं सुमनोहरम् ।
वाताकर्षणभस्त्राणां चतुष्टयमुदाहृतम् ॥ १३६ ॥
वाताकर्षणयन्त्रैस्सम्भूतवायुं यथाविधि ।
एतस्मिन् सन्नियोज्याथ यावदिच्छानुसारतः ॥ १३७ ॥
बाह्ये प्रेरयितुं नालं कीलकं च सुशोधितम् ।
सन्धारितं भवेदस्मिन् शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ॥ १३८ ॥
एतदावरणाधस्ताच्चतुर्दिक्षु यथाविधि ।
वितस्तिसप्तवलयाकाराणि सुदृढान्यपि ॥ १३९ ॥
चक्राणि भूसञ्चारयोग्यानि सन्धारितानि हि ।
एवं शकुनयन्त्रस्य रचनाविधिरीरितम् ॥ १४० ॥

१५ बालिश्त प्रमाण ऊंचाई–ऊंची लम्बाई २ बालिश्त मोटाई कहा है, साढे छः बालिश्त विस्तार वात को खींचने वाले चार भस्त्राओं को कहा है, वाताकर्षण यन्त्रों से प्रकट या संगृहीत वायु को यथाविधि इसमें जितनी इच्छा हो उतनी बाहिर फेंकने को नाल और कील भी इस में शास्त्रोक्त मार्ग से ठीक शोधित लगाई गई हो इस आवरण की चारों दिशाओं में यथाविधि ७ बालिश्त गोल आकार वाले सुदृढ चक्र भूमि में सञ्चार करने योग्य लगाए हों, इस प्रकार शकुनयन्त्र—शकुनविमान की रचनाविधि कही है ॥ १३५—१४० ॥

हस्तलेख कापी संख्या १८—

सुन्दरोथ ॥ अ० ३, सू० ६ ॥ १

एवमुक्त्वा शकुनविमानं शास्त्रानुसारतः ।
अथेदानीं सुन्दरविमानं सम्यक् प्रचक्षते ॥ १ ॥
यानप्रवोधकपदद्वयमस्मिन्निरूपितम् ।
तत्रादिमपदाद् याननाम सम्यक् प्रकाशितम् ॥ २ ॥
आनन्तर्यवाची स्याद् द्वितीयपदमत्र (हि) तु ।
एवं पदद्वयस्यार्थस्सामान्येन निरूपितः ॥ ३ ॥
इदानीं तद्विशेषार्थं संग्रहेण प्रचक्षते ।
अष्टाङ्गान्यस्य शास्त्रेस्मिन्निर्णितानि यथाक्रमम् ॥४॥
तेषां स्वरूपं विधिवद् विचार्याथ पृथक् पृथक् ।
विलिख्यते यथाशास्त्रं संग्रहेण यथामति ॥ ५ ॥
आदौ पीठस्ततो धूमनालस्तम्भस्तथैव हि ।
पश्चाद् धूमोद्गमयन्त्रपञ्चकं च ततः परम् ॥ ६ ॥
भुज्युलोहकनालश्च ततो वातप्रसारणम् ।
विद्युद्यन्त्रं ततो चातुर्मुखोष्मकमतः परम् ॥ ७ ॥
विमाननिर्णयश्चैतान्यष्टाङ्गानि भवन्ति हि ।
तेष्वादौ यानपीठस्य रचनाविधिरुच्यते ॥ ८ ॥

इस प्रकार शकुनविमान शास्त्रानुसार कहकर अब सुन्दरविमान कहते हैं। यान के प्रबोध करानेवाले दो पद यहां निरूपित किए हैं, उनमें आदि पद से विमान यान का नाम सम्यक् प्रकाशित किया है द्वितीय पद अनन्तर अर्थ का वाचक यहां है। इस प्रकार दोनों पदों का सामान्य अर्थ निरूपित कर दिया। अब संक्षेप से इसका विशेष अर्थ कहते हैं। इस शास्त्र में इसके आठ अङ्ग निश्चित किए हैं इनका विधिवत् स्वरूप विचार कर यथाशास्त्र संक्षेप से पृथक् पृथक् लिखा जाता है। प्रथम पीठ फिर धूमनालस्तम्भ पश्चात् पांच धूमोद्गमयन्त्र, भुज्य लोहे की नाल, फिर वातप्रसारण फिर विद्युद्यन्त्र पश्चात् चातुर्मुखोष्मक यन्त्र। ये आठ अङ्ग विमाननिर्णय प्रसङ्ग में हैं जिनमें आदि में विमानयान के पीठ की रचनाविधि कही जाती है॥ १—८॥

अथ पीठनिर्णयः—अब पीठ का निर्णय कहते हैं—

चतुरश्रं वर्तुलं वा वितस्तिशतकावृतम् ।
अथवा यन्मनोद्दिष्टं* तत्प्रमाणेन शास्त्रतः ॥ ९ ॥
राजलोहादेव पीठं वितस्त्यष्टकगात्रकम् ।
कृत्वाथ पाचयेत्सप्तवारं मञ्जुकतैलतः ॥ १० ॥
ततः पीठं समाहृत्य तस्मिन् केन्द्राणि कारयेत् ।
केन्द्रयोरुभयोर्मध्ये वितस्तिदशकान्तरम् ॥ ११ ॥
विहायैकैकपार्श्वे च प्रत्येकं दश संख्यया ।
आहृत्य चत्वारिंशत्केन्द्राणि कुर्याद् यथाक्रमम् ॥ १२ ॥
केन्द्रमानं पञ्चदशवितस्तिरिति निर्णितम् ।
तन्मध्ये द्वादशवितस्त्यायामेन यथाविधि ॥ १३ ॥
धूमप्रसारणनालस्तम्भकेन्द्रं च कल्पयेत् ।

चौकोर या गोल १०० बालिश्त से घिरा हुआ अथवा मनोऽनुकूल यथेच्छ प्रमाण से शास्त्रानुसार राजलोहे से ही ८ बालिश्त मोटा पीठ बनाकर ७ वार मञ्जुक तैल—मंजीठतैल ? में पकावे फिर उस में से पीठ को निकालकर उसमें केन्द्र बनावे, दोनों केन्द्रों के मध्य में १० बालिश्त अन्तर छोडकर एक एक पार्श्व में प्रत्येक १० संख्या से जडकर ४० केन्द्र करे केन्द्र का माप १५ बालिश्त हो उनके मध्य में १२ बालिश्त लम्बाई रहे धूमप्रसारणनालस्तम्भ का केन्द्र भी बनावे ॥ ९—१३ ॥

अथ नालस्तम्भनिर्णयः—अब नालस्तम्भ का निर्णय कहते हैं—

षट्पञ्चाशद्वितस्त्यौन्नत्यं तथैव यथाविधि ॥ १४ ॥
चतुर्वितस्त्यायामं च नालस्तम्भं प्रकल्पयेत् ।
धूमसम्पूरणार्थाय तन्मूले वर्तुलाकृतिम् ॥ १५ ॥
वितस्त्यष्टकमायाममन्तर्वर्तुलविस्तृतम् ।
चतुर्वितस्त्युन्नतं कारयेत् कुम्भवत् ततः ॥ १६ ॥
स्थापयेत् तन्मध्यकेन्द्रे सुदृढं शास्त्रमानतः ।
षड्वितस्त्यन्तरायामं जलपात्रमतः परम् ॥ १७ ॥
तन्मूले कल्पयित्वाथ तैलपात्रं यथाविधि ।
चतुर्वितस्त्यायमं तन्मध्ये संस्थापयेद् दृढम् ॥ १८ ॥
तन्मूलेथ यथाशास्त्रं वितस्त्येकप्रमाणकम् ।
विद्युत्संघर्षणमणिकीलकं स्थापयेद् दृढम् ॥ १९ ॥
पात्रे धूमाञ्जनतैलं द्वादशांशं प्रपूरयेत् ।
शुकतुण्डिकतैलस्य विंशत्यंशस्तथैव हि ॥ २० ॥

* मनः-उद्दिष्टम्, मन उद्दिष्टम्, अत्र सन्धिरार्षः ।

५६ वितस्ति ऊंचाई यथाविधि ४ बालिश्त चौडाई में नालस्तम्भ बनावे। और धूम भरने के लिये उसके मूल में गोलाकार ८ बालिश्त मोटा अन्दर से गोल ४ बालिश्त ऊंचा घड़े जैसा बनावे फिर मध्य केन्द्र में शास्त्रानुसार सुदृढ स्थापित करे। इस से आगे जलपात्र ६ बालिश्त लम्बा बड़ा उसके मूल में बनाकर तैलपात्र ४ बालिश्त बडा मध्य रखदे। फिर उसके मूल में शास्त्रानुसार १ बालिश्त विद्युत्संघर्षणमणि की कील को स्थापित करे, पात्र में धूमाञ्जनतैल ? १२ भाग भरदे शुकुतुण्डिकातैल—शुकतुण्ड—हिङ्गुलतैल ? के २० अंश भरे॥ १४—२०॥

नवांशकुलटीतैलं पूरयेत्सप्रमाणतः ।
यथेष्टं पूरयेद् यद्वा एवं भागक्रमात्सुधीः ॥ २१ ॥
विद्युत्संयोजनार्थाय मणिकीलान्तरे क्रमात् ।
सन्धारयेन्नालमार्गात् तन्त्रीद्वयमतः परम् ॥ २२ ॥
नालस्तम्भान्तरे धूमस्तम्भनार्थं तथैव हि ।
प्रसारणार्थं च वेगादनुकूलं यथाभवेत् ॥ २३ ॥
आवृत्तचक्रत्रितयं सरन्ध्रं च दृढं यथा ।
स्थापयेत्सरलं कीलकद्वयेन यथाविधि ॥ २४ ॥
एतत्सञ्चालनार्थाय त्रिचक्रकीलकौ तथा ।
अनुलोमविलोमाभ्यां स्तम्भबाह्ये नियोजयेत् ॥ २५ ॥
स्तम्भान्तरस्थत्रिचक्रकीलकानां तथैव हि ।
बाह्यस्थत्रिचक्रकीलकेषु संयोजनं यथा ॥ २६ ॥
तथा नालान्तरात् तन्त्र्यस्समाहृत्य यथाक्रमम् ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते क्रमात् संख्यानुसारतः ॥२७॥
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं स्तम्भे स्थानत्रये क्रमात् ।
इति धूमप्रसारणनालस्तम्भविनिर्णयः ॥ २८ ॥

९ अंश कुलटीतैल—मनःशिला तैल सप्रमाण भरदे अथवा जितना चाहे इस प्रकार भागानुसार बुद्धिमान। विद्युत् के संयोजन (फिट्) करने के लिये मणिकील के अन्दर क्रम से नाल के मार्ग से दो तारों को लगावे। तथा नालस्तम्भ के अन्दर धूम को रोकने के निमित्त और वेग से फैलाने–छोडने के निमित्त जैसे अनुकूल हो छिद्रसहित घूमनेवाले तीन चक्र दो सरल कीलों से स्थापित करे इन चक्रों के सञ्चालनार्थ तीन चक्रोंवाली दो कीलों को सीधे और उलटे ढंग से स्तम्भ के बाहिर नियुक्त करे स्तम्भ के अन्दर स्थित त्रिचक्रकीलों का बाहिर स्थित तीन चक्रों में संयोजन करे, तथा नाल के अन्दर से तीन तारों को यथाक्रम निकालकर आदि मध्य तथा अन्त में यथासंख्य स्तम्भ में तीन स्थानों में जोडदे बस धूमप्रसारणनालस्तम्भ का निर्णय है ॥ २१—२८॥

अथ धूमोद्गमयन्त्रम्—अब धूमोद्गमयन्त्र (धूम को निकालने का यन्त्र) कहते हैं—

वेगादूर्ध्वमुखे धूमोत्क्षेपणं कुरुते यतः ।
अतो धूमोद्गम इति नाम यन्त्रस्य वर्णितम् ॥ २९ ॥

हिमसंवर्धकस्सोमस्सुण्डालश्च यथाक्रमम् ।
द्वात्रिंशत्पञ्चविंशाष्टत्रिंशद्भागान् क्रमेण तु ।। ३० ।।
सम्पूर्य नलिकामूषामुखे पश्चाद् दृढं यथा ।
स्थापयित्वा चक्रमुखकुण्डेऽजामुखभस्त्रतः ।। ३१ ।।
द्वादशोत्तरसप्तशतकक्ष्योष्णप्रमाणतः ।
संगालयेद् यथाशास्त्रमानेत्रोन्मीलनावधि ।। ३२ ।।
ततो भवेद् धूमगर्भलोहस्सूक्ष्मो मृदुर्दृढः ।
कुर्याद् धूमोद्गमं यन्त्रमेतेनैव यथाविधि ।। ३३ ।।
प्रदक्षिणावृत्तकीलवितस्तिदशकोन्नतम् ।
पीठस्याधो भागमध्यकेन्द्रस्थाने यथा भवेत् ।। ३४ ।।
पीठं कुर्यात्पञ्चदशवितस्त्यायामतस्तथा ।
धूमोष्म्यकप्रसारणार्थाय पश्चाद् यथाविधि ।। ३५ ।।

वेग से ऊपर मुख की ओर धूम को ऊपर फैंकता है अतः धूमोद्गमनामयन्त्र को वर्णित किया है। हिमसंवर्धक सोम सुण्डाल इन तीनों के यथाक्रम ३२, २५, ३८, भागों को मूषामुख नलिका में भरकर चक्रमुख कुण्ड में दृढ रखकर अजमुखभस्त्रा से आंख खुलजाने तक शास्त्रानुसार गलावे तब धूम-गर्भ लोहा सूक्ष्म कोमल दृढ हो जावे। इस लोहे से धूमोद्गम (धूम को फेंकनेवाला) यन्त्र करे। घूमने वाली कील १० बालिश्त उठी हो पीठ के नीचले भाग के मध्य केन्द्र स्थान में हो, पीठ १५ बालिश्त चौडी हो धूमोष्म्यक को प्रसारणार्थ पश्चात् यथाविधि—।।२६—३५।।

जलोष्म्यकधूमनालद्वयं तस्योभयपार्श्वयोः ।
स्थापयेत्सुदृढं सम्यग्दक्षिणोत्तरतः क्रमात् ।। ३६ ।।
धूमसम्पूरणार्थाय तन्नालद्वयमूलयोः ।
चतुर्वितस्त्यायामं च वितस्तित्रयमुन्नतम् ।। ३७ ।।
कुम्भवत्कारयेद् वर्तुलाकारं सुदृढं यथा ।
वितस्त्यायामकं चाष्टवितस्त्युन्नतमेव च ।। ३८ ।।
तदन्ते चषकाकारं वितस्तित्रयविस्तृतम् ।
एवं क्रमेण विधिवत् कृत्वा नालद्वयं ततः ।। ३९ ।।
धूमपूरकनालोर्ध्वभागे संयोजयेद् दृढम् ।
तन्मूले जलपात्रं च तन्मध्ये तैलपात्रकम् ।। ४० ।।

जलोष्म्यक—दो धूमनाल उसके दोनों पार्श्वों में दक्षिण उत्तर भागों में क्रमशः स्थापित करे। धूम को भरने के लिये उन दोनों नालों के मूलों में ४ बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त उठा हुआ घडे के समान गोलाकार सुदृढ स्थान बनादे उसके अन्त में ८ बालिश्त लम्बा और ऊंचा ३ बालिश्त चौडा पात्र विधि-वत् क्रम से बनाकर दो नाल जोड दे जिनमें धूम भरने वाले नाल के ऊपरि भाग में उसके मूल में जल-पात्र मध्य में तैलपात्र लगावे ।। ३६—४० ।।

तत्पुरस्ताद्विद्युद्घर्षकमण्योः कीलकद्वयम् ।
धूमप्रसारणनालस्तम्भवत्स्थापयेत्क्रमात् ॥ ४१ ॥
पार्श्वयोरुभयोरौष्म्यनालस्य च यथाविधि ।
जलकोशद्वयं पश्चात् कारयेत्सुदृढं यथा ॥ ४२ ॥
विद्युद्यन्त्रान्नालमेकं समाहृत्य सतन्त्रिकम् ।
विद्युद्घर्षकमणिकीलके सन्नियोजयेत् ॥ ४३ ॥
लिङ्काशीतिप्रमाणेन विद्युच्छक्तिं यथाविधि ।
पूर्वोक्तनालस्थतन्त्रीमार्गात् संचोदयेद् यदि ॥ ४४ ॥
तच्छक्तिवेगान्मणिसंघर्षणं प्रभवेत्स्वतः ।
शतकक्ष्यप्रमाणोष्णं तेन संजायते क्रमात् ॥ ४५ ॥

उसके सामने विद्युत् को घर्षित करनेवाली मणियों की दो कीलें धूम को फैलाने वाले नाल-स्तम्भ की भांति स्थापित करे, औष्म्यनाल के दोनों पार्श्वों में यथाविधि दो जलकोश पीछे करावे, विद्युद्यन्त्र से एक नाल तारसहित लेकर विद्युद्घर्षकमणि कील में नियुक्त करे, ८० लिङ्क (डिग्री) माप से विद्युत्-शक्ति को पूर्वोक्तनाल के तन्त्रीमार्ग से प्रेरित करे उस शक्ति के वेग से स्वतः मणि का घर्षण होगा उससे सौ दर्जे प्रमाण की उष्णता प्रकट हो जावेगी ॥ ४१—४५ ॥

तस्मात् पात्रस्थितं तैलं पाचितं स्याद्विशेषतः ।
तेनधूमो भवेत् तैलं पश्चात् सम्यक् शनैश्शनैः॥ ४६ ॥
विद्युच्छक्तिं च तद्धूमं नालमार्गाद् यथाक्रमम् ।
संगृह्य वेगाद्विधिवत्पश्चात्कीलकमार्गतः ॥ ४७ ॥
संचोदयेद् वारिकोशद्वयमध्ये प्रमाणतः ।
एतद्वेगादौष्म्यधूमाकारं भवति तज्जलम् ॥ ४८ ॥
तैलधूमं धूमनाले जलधूमं तथैव हि ।
जलौष्म्यनाले विधिवत्पूरयेत्सप्रमाणतः ॥ ४९ ॥
एतद् धूमद्वयं पश्चाद् यथोर्ध्वमुखतः क्रमात् ।
निर्गच्छेद् वेगतः पञ्चशतकक्ष्योष्णमानतः ॥ ५० ॥

उस से पात्रस्थित तैल विशेषतः पकाया हुआ शनैः शनैः धूम हो जावेगा । वह धूम यथाक्रम नालमार्ग से एकत्र होकर कीलमार्ग में वेग से विद्युत्शक्ति को दो जलकोशों में प्रेरित कर देवे—धक्का दे दे, इसके वेग से वह जल उष्ण धूमाकार हो जावेगा। तैलधूम तैलधूमनाल में जलधूम जलौष्म्यनाल में प्रमाण से भरदे, ये दोनों धूम पीछे यथोचित ऊपर से वेग से १०० दर्जे की उष्णता से निकल जावेगा ॥ ४६—५० ॥

तथा कीलकं सन्धानं कुर्यात् कालानुसारतः ।
धूमसंरोधनार्थं च चोदनार्थं तथैव हि ॥५१॥

संयोजयेत् कीलकाभ्यां सम्यक् सम्भ्रामयेद् यथा ॥
धूमबन्धप्रसरणौ पश्चात् कालानुसारतः ॥५२॥
भवेत्* कीलकसञ्चालनेन सम्यग्यथाविधि ।
एवं क्रमेण यन्त्राणि चत्वारिंशद्यथाविधि ॥५३॥
रचयित्वा पीठकेन्द्रस्थानेष्वथ पृथक् पृथक् ।
संस्थापयेत् ततस्तेषां चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥५४॥
एकैकयन्त्रौ(ो?)ष्म्यधूमनालमूलद्वये क्रमात् ।
वितस्त्येकावृतं चैव वितस्तिद्वादशोन्नतम् ॥५५॥
सन्धारयेत्कीलकेभ्यश्शुण्डालद्वयमद्भुतम् ।
एतत्सहायतो व्योमयानं वेगात् प्रधावति ॥५६॥

इस प्रकार कील लगावे काल के अनुसार धूमके रोकलेने फेंकने — छोड़ने के लिये दो कीलों से युक्त करे घुमावे। धूमका रुकजाना और फैलजाना कालानुसार कील चलाने से सम्यक् यथाविधि हो। इस प्रकार क्रम से ४० यन्त्र रचकर पीठ केन्द्रस्थानों में पृथक् पृथक् स्थापित करे उनके चारों ओर यथाक्रम एक एक यन्त्र औष्म्यधूमनालमूल दोनों में १ बालिश्त गोल १२ बालिश्त ऊंचाई कीलों से दो अंगुल शुण्डाल इसकी सहायता से व्योमयान वेगसे दौड़ता है ॥५१-५६॥

शुण्डालस्वरूपमुक्तं लल्लेन— शुण्डाल का स्वरूप लल्ल ने कहा है—

तैलस्य धूमसंयोगाज्जलस्यौ(ो?)ष्म्यकयोगतः ।
विमानमाकर्षयितुं शुण्डालान् कल्पयेत्सुधीः ॥५७॥
वटमञ्जूषमातङ्गाः पञ्चशाखी शिखावली ।
ताम्रशीर्ष्णी बृहत्कुम्भी महिषी क्षीरवल्लरी ॥५८॥
शेणपर्णी वज्रमुखी क्षीरणी च यथाक्रमम् ।
एते द्वादश शास्त्रेषु क्षीरवृक्षा इतीरिताः ॥५९॥
एतैराहृत्य विधिवन्निर्यासं क्षीरमेव वा ।
अग्निवाणाद्रिदिग्रुद्रवसुदेवमुनिस्तथा ॥६०॥

तैल के धूम सम्पर्क से जल के औष्म्यकयोग से विमान के खीचने को शुण्डालों को बनावे। वट, मञ्जूष-मञ्जीठ, मातङ्ग—गूलर या पीपल, पञ्चशाखी, शिखावली-चित्रकवृक्ष, ताम्रशीर्ष्णी-जटा ?, बृहत्कुम्भी-कायफल ?, महिषी, क्षीरवल्ली-क्षीरविदारी ? शेणपर्णी?, बज्रमुखी ?, क्षीरणी-कुम्भेर-दूधिया-वृक्ष, यथाक्रम वे १२ क्षीरवृक्ष शास्त्रों में कहे हैं इनसे विधिवत् गोन्द या दूध लेकर ३, ५, ७, १०, ११, ८, ७—॥५७-६०॥

गजाब्धिराश्यादित्यांशप्रकारेण यथाक्रमम् ।
तोलयित्वा बृहद्भाण्डे विनिक्षिप्य ततः परम् ॥६१॥

* एकवचनं व्यत्ययेन ।

ग्रन्थिलोहं च नागं च वज्रं बम्भारिकं तथा ।
वैनतेयं कन्दुरं च कुडुपं कुण्डलोत्पलम् ॥६२॥
एतान् सन्तोल्य विधिवत्समभागान् पृथक् पृथक् ।
भाण्डस्थनिर्याससमं तद्भाण्डे सन्नियोजयेत् ॥६३॥
पाचयेत् पाचनायन्त्राच्छास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
द्वादशोत्तराशीतिकक्ष्योष्णवेगाच्छनैश्शनैः ॥६४॥
पश्चान्निर्यासपटयन्त्रमुखे सम्प्रपूरयेत् ।
ततः सम्भ्रामयेद् वेगात् समीकरणकीलकान् ॥६५॥
एतेन तत्समीभूय कार्पासपटवत्क्रमात् ।
सुदृढं धूम्रवर्णं च सूक्ष्मं मृदु सुशीतलम् ॥६६॥
अच्छेद्यं छेदनायन्त्रैरुष्णवेगापहारकम् ।
निर्यासपटमुत्कृष्टं भवेदत्यन्तनिर्मलम् ॥६७॥

—४, ७, ३०, १७, अंश रीतिप्रमाण से यथाक्रम तोलकर बड़े पात्र में डालकर पुनः ग्रन्थिलोहा—गठीलालोहमल, सीसाधातु, वज्र—विशेषलोहा, बम्भारिक ?, वैनतेय ? कन्दुर ? कुडुप ? कुण्डलोत्पल ?, इनको पृथक् पृथक् समभाग तोलकर पात्र में रखे निर्यास - गोन्द में मिलादे फिर पकाने के यन्त्र से शास्त्रानुसार ६२ दर्जे की उष्णता से धीरे धीरे पकावे पश्चात् निर्यासपट यन्त्र के मुख में भरदे फिर समीकरण – बराबर करनेवाली कीलों को घुमादे इससे समान होकर रूई के पट–तह के समान रूई के वस्त्र की भांति सुदृढ धूएं के रंगवाला सूक्ष्म मृदु ठण्डा काटने के साधनों से अच्छेद्य–न कट सकनेवाला उष्णता के वेग को हटानेवाला निर्यासपट अत्यन्तनिर्मल बन जावेगा ॥६१—६७॥

एतत्पटं समाहृत्य रौहिणीतैलतः क्रमात् ।
यामत्रयं पाचयित्वा पश्चात् सङ्गृह्य वारिणा ॥६८॥
क्षालयित्वाकसीतैले पूर्ववत्पाचयेत्पुनः ।
पश्चादजामूत्रमध्ये दिनमेकं न्यसेत्क्रमात् ॥६९॥
दद्यात्सूर्यपुटे पश्चात् क्षालयित्वा यथाविधि ।
शोषयित्वातपेनाथ कनकाञ्जनात् (तत्तथा) ॥७०॥
सुवर्णवद् भाति रुचा तत्पटं सुमनोहरम् ।
एतत्पटेनैव कुर्याच्छुण्डालान् सुदृढं यथा ॥७१॥
वितस्त्यैकावृतं चैव वितस्तिद्वादशोन्नतम् ।
गजास्यवत् प्रकर्तव्यमन्तश्छिद्रं यथा तथा ॥७२॥

इस निर्यासपट को लेकर क्रमसे रौहिणीतैल से तीन प्रहर तक पकाकर पश्चात् लेकर जल से प्रक्षालन कर—साधारण धोकर अकसीतैल—अलसीतैल में पूर्व की भांति पकावे पीछे बकरी के मूत्र में एक दिन तक छोड़ रखे फिर सूर्यपुट में देदे–धूप में रखदे और धोकर धूप में सुखाकर कनकाञ्जन

सुहागे या रक्तपलाश पुष्प के रंग से लेप करदे फिर चमक से सोने जैसा वह पट मनोहर लगता है, इस पट से ही शुण्डालों को बनावे १ बालिश्त गोल १२ बालिश्त उन्नत-ऊपर लम्बा हाथी की शूण्ड की भांति अन्दर छिद्रवाला करना चाहिए।

प्रसारणोपसंहारकीलकौ द्वौ यथाक्रमम् ।
सन्धारयेदावृत्तकीलशङ्कुभिस्सुदृढं यथा ॥७३॥
उपसंहारकीलेन शुण्डालश्चक्रवत्क्रमात् ।
भवेत्संकुचितं यन्त्रमूले शष्कुलवत्पुनः ॥७४॥
ततः प्रसारणकीलचालनात् सरलं यथा ।
बाहुवल्लम्बमानं च भवेत्सम्यक् स्वभावतः ॥७५॥
शुण्डालमध्ये धूमप्रसारणार्थं यथाविधि ।
यन्त्राणां मूलतस्स्पष्टं कीलकान् परिकल्पयेत् ॥७६॥
यन्त्रस्य धूमश्शुण्डालमुखाद् बहिः प्रसारणे ।
पुनश्शुण्डालमुखतो बाह्यवातापकर्षणे ॥७७॥
यथा भवेत् तथा चक्रद्वयं कीलकसंयुतम् ।
सन्धारयेत् सप्रमाणं शुण्डाले सरलं यथा ॥७८॥

फैलाने—खोलने और संकोच करने में उपयुक्त दो कीलें भी घूमनेवाले कील शंकुओं से सुदृढ़ लगादे। उपसंहार कील से शुण्डालक्रम से चक्र की भांति यन्त्रमूल में संकुचित हो जाता है पुनः शष्कुल—गोलपूए की भांति फिर प्रसारणकील चलाने से सरल-सीधा भुजा के समान लम्बा स्वभावतः हो जाता है। शुण्डाल के बीचमें धूम भरने—सञ्चरित करनेके लिये यथाविधि यन्त्रोंके मूलसे छुई हुई कीलें बनावें, यन्त्र का धूम शुण्डालमुख से बाहिर फैलाने पुनः शुण्डालमुख से बाहिरी वायु को खीचने में जैसे हो सके वैसे चक्र कीलों से युक्त ठीक शुण्डाल में लगादे ॥७३—७८॥

यथा जलापकर्षणयन्त्रकीलं तथैव हि ।
तच्चक्रभ्रमणार्थाय योजयेत्कीलकत्रयम् ॥७९॥
एतत्सम्भ्रमणेनैव वेगाद्धूमः प्रधावति ।
एतत्संयोजनाच्चक्रयोः शुण्डालान्तरे क्रमात् ॥८०॥
गमागमौ†भवेद्वेगात्तेन वातापकर्षणम् ।
धूमप्रसारणं चैव भवेदेव न संशयः ॥८१॥
अष्टाशीत्युत्तरशतलिङ्कवातापकर्षणम् ।
धूमप्रसारणं चैव तावदेव मुहुर्मुहुः ॥८२॥
एकदा चक्रगमनागमनाद्वेगतो भवेत् ।
धूमप्रसारणं यस्मिन् दिशि शुण्डालतो भवेत् ॥८३॥

† 'भवेत्' क्रिया वचनव्यत्ययेन ।

तस्मिन्नेव? विमानस्य गमनं वेगतो भवेत् ।
आवर्तने चोर्ध्वमुखगमनेपि तथैव च ॥८४॥
अधोमुखाभिगमने कीलसञ्चालनात् स्वतः ।
यथा शुण्डालस(ा?)ङ्केतस्तथा यानः प्रधावति ॥८५॥

जिससे कि जलापकर्षणयन्त्र-जल के खींचनेवाले यन्त्र की कील उस चक्र के भ्रमणार्थ तीन लगावे, इसके भ्रमण से ही वेग से धूम दौड़ता है इसके लगाने से दोनों चक्रों में शुण्डाल के अन्दर गमन आगमन हो उससे वात का खींचना बन सके। इससे धूम का प्रसारण फैलना या निकलना भी निःसंशय होता है। १८८ लिङ्क (डिग्री) में वायु का खींचना बन जायगा और धूम का निकलना भी निरन्तर उतना ही एकबार वेग से चक्र के गमन और आगमन से हो जावेगा। तथा धूम का निकलना जिस दिशा में शुण्डाल से वेग से होगा उसी दिशा में? वेग से विमान का गमन हो, घूमने या लौटने ऊर्ध्वगति करने नीचे जाने का कार्य कीलसञ्चालन से स्वतः हो जावेगा, जैसे शुण्डाल का सङ्केत होता है वैसे विमानयान प्रगति करता है ॥७६—८५॥

यस्माच्छुण्डालान्तर्गतचक्रवेगात्प्रचालनम् ।
तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना कृत्वा शुण्डालान् क्रमात् ॥८६॥
प्रतिधूमोद्गमयन्त्रमूलदेशे पृथक् पृथक् ।
द्वौ द्वौ सन्धारयेत्कीलशङ्कुभिस्सुदृढं यथा ॥८७॥
धूमप्रसारणनालस्तम्भमूलेप्यथाविधि ।
दक्षिणोत्तरयोस्तद्वत्पूर्वपश्चिमयोरपि ॥८८॥
सन्धारयेदेवमेव प्रतिपार्श्वं दृढं यथा ।
अन्तर्बाह्योष्णवेगद्वयमग्न्यातपयोः क्रमात् ॥८९॥
सम्यङ् निवारयितुं विधिवद् यन्त्रोपरि क्रमात् ।
षट्संख्याकोष्मपालोहात्कुर्यादावरणं दृढम् ॥९०॥
यन्त्रस्योर्ध्वाधोभागप्रदेशयोः पार्श्वयोरपि ।
यथा स्याद् धूमसञ्चारः कीलकान् परिकल्पयेत् ॥९१॥
एवं धूमोद्गमं यन्त्रं कर्तव्यं सावधानतः ।
एतान्यन्त्राणि चत्वारिंशत्कृत्वा सुदृढं यथा ॥९२॥
स्थापयेत्पीठकेन्द्रेषु सम्यगावर्तकीलकात् ।
एतत्सहायतो व्योमयानं सञ्चरति क्रमात् ॥ ९३ ॥

इति धूमोद्गमयन्त्रः ॥

जिससे कि शुण्डाल के अन्दर चक्रवेग से व्योमयान का प्रचालन होता है अतः शास्त्रोक्तविधि से क्रम से शुण्डाल बना कर (उनमें से) प्रत्येक धूमोद्गम यन्त्र के मूलदेश में पृथक् पृथक् दो दो शुण्डालों को दृढ कील शंकुओं से लगावे, धूम प्रसारणनालस्तम्भ मूल में भी यथाविधि, दक्षिण उत्तर

में उसी भांति पूर्व पश्चिम में भी लगावे, इसी प्रकार प्रतिपार्श्वभाग में लगावे अन्दर बाहिर के दोनों उष्णवेग अग्नि आतप के सम्यक् हटाने को यन्त्र के ऊपर क्रम से, छठी संख्या वाले उष्मपा लोहे से यन्त्र के ऊपर नीचे भाग प्रदेशों में और पार्श्व भागों में दृढ आवरण करे, जिससे धूमसञ्चार हो इस प्रकार कील युक्त करे। इस प्रकार धूमोद्गम यन्त्र सावधानता से बनाना चाहिये, इन ४० यन्त्रों को सुदृढ बना कर पीठकेन्द्रों में घूमने वाली कील से स्थापित करे इनकी सहायता से व्योमयान गति करता है॥ ८६-९३॥ धूमोद्गम यन्त्रविषय समाप्त हो गया॥

अथ विद्युद्यन्त्रनिर्णयः—अब विद्युद्यन्त्र का निर्णय देते हैं—

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह यह यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

संघर्षणं पाकजन्यं जलपातं तथैव हि ।
सांयोजकं* किरणजन्यमित्यादीनि शास्त्रतः ॥ ९४ ॥
द्वात्रिंशदिति प्रोक्तानि विद्युद्यन्त्राण्यथाक्रमम् ।
एतेषु व्योमयानोपयुक्तं सांयोजकं भवेत् ॥ ९५ ॥
एतेनैव प्रकर्तव्यं विद्युद्यन्त्रं यथाविधि ।
शक्तितन्त्रे यथाप्रोक्तमगस्त्येन महर्षिणा ॥ ९६ ॥

संघर्षण, पाकजन्य, जलपात, सांयोजक, किरणजन्य इत्यादि ३२ विद्युद्यन्त्र शास्त्र से कहे हैं इनमें व्योमयान के उपयुक्त सांयोजक है इससे ही विद्युद्यन्त्र बनाना चाहिये जैसा कि महर्षि अगस्त्य ने शक्तितन्त्र में कहा है॥ ९४-९६॥

उक्तं हि शक्तितन्त्रे—कहा ही है शक्तितन्त्र में—

पूर्वोक्तसांयोजकलोहेन पीठं यथाविधि ।
पञ्चत्रिंशद्वितस्त्यावृताकारेणाथवा दृढम् ॥ ९७ ॥
कृत्वा पीठं ततस्तस्मिन् प्रादक्षिण्यक्रमेण तु ।
कल्पयेत्पञ्चकेन्द्राणि तन्मध्ये चैककेन्द्रकम् ॥ ९८ ॥
वितस्तिपञ्चकान्तरं कुर्यात्केन्द्रद्वयान्तरे ।
केन्द्रसंख्यानुसारेण कुर्यात् पात्राण्यथाक्रमम् ॥ ९९ ॥
चतुर्वितस्त्यायामं च वितस्तिद्वयमुन्नतम् ।
यथाकुम्भान्तरालं स्यात्तथैवास्यान्तरालकम् ॥ १०० ॥

पूर्वोक्त सांयोजक लोहे से यथाविधि पीठ बनावे, ३५ बालिश्त गोलाकार से पीठ बना कर उसमें घूम के क्रम से पांच केन्द्र बनावे उनके बीच में एक केन्द्र ५ बालिश्त के अन्तर से दो केन्द्रों में, केन्द्र संख्यानुसार पात्र बनावे, ४ बालिश्त लम्बा २ बालिश्त उठा हुआ जैसे घडे का भीतरी भाग—अवकाश हो वैसा अवकाश रखे॥ ९७-१००॥

---

* 'सांयोजिकम्' (मूल पाठ) परन्तु आगे सर्वत्र 'सांयोजकं' पाठ हैं।

कुर्यादेवं पात्रमूलाकारं पश्चाद् यथाविधि ।
वितस्त्यैकायामकं च वितस्त्यैकोन्नतं तथा ॥ १०१ ॥
नालवत्कल्पयित्वाथ तस्योपरि दृढं यथा ।
सन्धारयेद् यथाछिद्रं पात्रमध्यं भवेदिति ॥ १०२ ॥
चतुर्वितस्त्यायामेन वर्तुलाकारतः क्रमात् ।
तन्नालोर्ध्वमुखं कुर्यात्सुदृढं मनोहरम् ॥ १०३ ॥
पश्चान्मयूखकेशाख्यमृगचर्म सुशोधितम् ।
आहृत्य क्षारमातृण्णोत्पन्नद्रावकपूरिते ॥ १०४ ॥
भाण्डे निधाय विधिवत् पाचयेद् यामपञ्चकम् ।
सम्यक् संक्षालयित्वाथ शुद्धशीतकवारिणा ॥ १०५ ॥

इस प्रकार पात्रमूलाकार बना कर पीछे यथाविधि १ बालिश्त ऊंचा नाल के समान बना कर उसके ऊपर ऐसे दृढ युक्त करदे जिससे नाल का छिद्र पात्र के मध्य में हो जावे। ४ बालिश्त लम्बाई से गोलाकार उस नाल का ऊपरिमुख मनोहर दृढ करे पश्चात् मयूखकेश नाम मृग (सम्भवतः केसरी सिंह) के चर्म सुशोधित क्षार को लाकर आतृण्ण कत्तृण–लोहिष तृण से उत्पन्न द्रावक से भरे पात्र में रख कर विधिवत् ५ प्रहर तक पकावे फिर शुद्ध शीत जल से धोकर—॥ १०१–१०५ ॥

ज्योतिर्मुखी कारुवेल्ली सारस्वतमतः परम् ।
एतेषां बीजतस्तैलं समाहरेत् पृथक् पृथक् ॥ १०६ ॥
त्रिसप्तषोडशांशप्रकारेणैकघटे क्रमात् ।
सम्मेल्य पश्चात् क्षारस्य द्रावकं च यथाविधि ॥ १०७ ॥
चतुष्षष्ट्येकभागांशं तस्मिन् सम्मेलयेत् पुनः ।
तच्चर्म पुनरादाय एतत्तैले नियोजयेत् ॥ १०८ ॥
पश्चात् सूर्यपुटे दद्याच्चतुर्विंशद्दिनावधि ।
रक्तवर्ण(ा?)स्था (श्था ?) लतल्यं तच्चर्मणि भवेत् क्रमात् ॥१०९॥
पूर्वोक्तपात्रनालस्य मुखच्छिद्राकृतिर्यथा ।
प्रच्छिद्य तच्चर्म तस्मिन् पञ्चरन्ध्राणि कारयेत् ॥ ११० ॥

ज्योतिर्मुखी–मालकंगनी, करेला, सारस्वत–ब्राह्मी ? इनके बीज से निकले तैल पृथक् पृथक् लावे, तीन सात सोलह अंशों में क्रमशः लेकर घडे में मिला कर क्षार का द्रावक भी यथाविधि ६४ वें का १ भागांश उसमें मिलावे पुनः उस चर्म को लेकर तैल में २४ दिन तक नियुक्त करे–तर करे पश्चात् सूर्यपुट में दे दे–धूप में रख दे जब स्थाल–हण्डी का नीचे का भाग रक्त वर्ण उस चर्म पर हो जावे पूर्वोक्त यन्त्रनाल के मुखछिद्र की आकृति जैसी थी, उस चर्म को छेदकर उसमें पांच छिद्र करे—॥१०६–११०॥

पश्चात् समन्तात् तत्पात्रमुखे छिद्रं दृढं यथा ।
आच्छाद्य तच्चर्म पश्चाद् बन्धयेच्छङ्कुभिः क्रमात् ॥ १११ ॥

एवं क्रमेरगैव कृत्वा पञ्चपात्राण्यथाविधि ।
पीठस्थपञ्चकेन्द्रेषु स्थापयेत्कीलकशङ्कुभिः ।। ११२ ।।
पश्चान्मूत्रं ग(ा?)र्दभानां षोडशद्रोणसम्मितम् ।
लिङ्कषोडशकेंगालान् सुदृढं खनिजोद्भवान् ।। ११३ ।।
तथैव लवरणंलिङ्कत्रयं चैव ततः परम् ।
लिङ्कद्वयं शुद्धसार्पं शुद्धं लिङ्कद्वयं रविम् ।। ११४ ।।
पूरयेत् पूर्वदिक्पात्रे तत्तद्भागानुसारतः ।
एवं सम्पूर्य प्राचीदिक्पात्रे पश्चात् तथैव हि ।। ११५ ।।

फिर पात्रमुख में हुए छिद्र को दृढ सब ओर से ढक कर चर्म को शंकुओं से बान्ध दे पश्चात् पीठस्थ पांच केन्द्रों में पांच यन्त्र कीलशंकुओं से स्थापित कर दे। फिर गधों का मूत्र १६ द्रोण (मण) परिमाण १६ लिङ्क (डिग्री) उष्णता परिमाण खनिज से उत्पन्न अङ्गार तथा ३ लिङ्क परिमाण लवण २ लिङ्क शुद्ध सार्प सर्पविष, २ लिङ्क रवि–ताम्बा या आख वृक्ष, पूर्व दिशा के यन्त्र में भर दे उस उसके भागानुसार से इस प्रकार पूर्व पात्र में भर कर—।। १११–११५ ।।

पश्चात् पश्चिमदिक्पात्रे वक्ष्यमाणान् प्रपूरयेत् ।
सप्तविद्युद्गममरिणः प्राणक्षारत्रयोदश ।। ११६ ।।
द्वाविंशच्छशविष्ठां(ा?) च सम्मेल्य विधिवत्ततः ।
यन्त्रे सम्पूर्य विधिवदाहरेद् द्रावकं क्रमात् ।। ११७ ।।
भागद्वयं चोष्ट्रमूत्रं द्रावकस्यैकभागकम् ।
पूरयित्वा प्रतीचीदिग्भाण्डे सम्यक् प्रमाणतः ।। ११८ ।।
पश्चातखड्गमृगास्थीनि पञ्चाशल्लिङ्कमेव हि ।
लिङ्कत्रिंशद् गन्धकं च चिञ्चाक्षारस्तथैव हि ।। ११९ ।।
लिङ्कषोडशकं तद्वदयस्कान्तमतः परम् ।
अष्टाविंशल्लिङ्कमात्रे तन्मूत्रे सन्नियोजयेत् ।। १२० ।।

पश्चात् पश्चिम दिशा वाले पात्र में आगे कहे जाने वाले पदार्थों को भर दे, ७ भाग विद्युद्गममरिण—चुम्बक ? १३ भाग प्राणक्षार—नवसादर, २२ भाग शश की विष्ठा एक पात्र में विधिवत् मिला कर यन्त्र में भर कर द्रावक–अर्क निकाल फिर २ भाग ऊंट का मूत्र द्रावक का एक भाग पश्चिम दिशावाले पात्र में भर कर पश्चात् ५० लिङ्क गेण्डे मृग की हड्डियां ३० लिङ्क गन्धक, १६ लिङ्क चिंचाक्षार—अमली का क्षार, २ लिङ्क अयस्कान्त, २८ लिङ्क प्रमाण मूत्र में डालदे–मिलादे ।।११६-१२० ।।

पश्चात् सप्तदशोत्तरशतसंख्यात्मकं पुनः ।
तडिन्मित्रमरिंण तस्मिन् स्थापयेन्मध्यभागके ।। १२१ ।।
एवं सम्पूर्यं विधिवत् पश्चिमे केन्द्रपात्रके ।
वक्ष्यमाणपदार्थश्चोत्तरपात्रे प्रपूरयेत् ।। १२२ ।।

ततोपामार्गबीजानां तैलमेकादशांशकम् ।
सर्पास्यबीजतैलं च द्वात्रिंशांशं तथैव हि ॥ १२३ ॥
चत्वारिंशदयस्कान्ततैलांशं च यथाक्रमम् ।
त्र्युत्तराशीतिभागांशगजमूत्रे नियोजयेत् ॥ १२४ ॥
तैलत्रयतृतीयांशादधिकं गजमूत्रकम् ।
मेलयित्वा सप्रमाणमुदीची केन्द्रसंस्थिते ॥ १२५ ॥

पश्चात् ११७ संख्या तडित्मणि ? को मध्यभाग वाले में रखे, इस प्रकार पश्चिम केन्द्रपात्र में भर कर पुनः उत्तर पात्र में कहे जाने वाले पदार्थों को भरे फिर अपामार्ग—चिडचिडे के बीजों का तैल ११ भाग ३२ अंश सर्पास्य बीज—सर्पाख्य ? नागकेसर बीज का तैल ४० भाग अयस्कान्त का तैल ८३ गजमूत्र—हाथी के मूत्र में डाल दे फिर तीनों तैलों के तृतीय अंश से अधिक हाथी का मूत्र मिलाकर उत्तर दिशा के केन्द्र में स्थित हुए—॥ १२१-१२५ ॥

पात्रे सम्पूरयित्वाथ पश्चात् तस्मिन् यथाविधि ।
पारदं सैंहिकक्षारं तथा पार्वणिसत्त्वकम् ॥१२६॥
त्रिंशद्विंशत्पञ्चविंशत्पलभागान् पृथक् पृथक् ।
प्रत्येकं तोलयित्वाथ सम्यक् सम्पूरयेत् क्रमात् ॥१२७॥
मणिप्रकारेणोक्ताष्टशतसंख्यात्मकं शिवम् ।
स्थापयेद् भास्करमणिं तन्मध्ये तैलशोधितम् ॥ १२८ ॥
एवमुत्तरकेन्द्रस्थपात्रे वस्तुप्रपूरणम् ।
कृत्वा दक्षिणकेन्द्रस्थपात्रेप्येवं यथाविधि ॥ १२९ ॥
द्वादशश्चैकविंशत्षोडशभागांशकाः क्रमात् ।
ग्रन्थिद्रावकं (च) पञ्चमुखीद्रावकमेव च ॥ १३० ॥
श्वेतापुञ्जाद्रावकं च मेलयित्वा यथाविधि ।
गोमूत्रे द्रवभागांशात्पञ्भागाधिके क्रमात् ॥ १३१ ॥

पात्र में भर कर पश्चात् उसमें यथाविधि पारा, सैंहिक क्षार, बडी कटेली का क्षार, पार्वणि-सत्त्व—वंशसत्त्व-वंशलोचन ? या जिसके पर्व पर्व में वैसा ही अङ्ग हो ईख की भांति, लाल रंग, लम्बे पत्ते, लाल फूल, सूक्ष्म कांटे वाला, सर्पविष विनाशक, कडवे सार वाला कृष्णपक्ष में खिलने वाला (देखो कापी १४ श्लोक ७८-८०) पार्वणि वृक्ष होता है ये तीनों ३०, २०, २५ पल अर्थात् १२०, ८०, १०० तोला क्रम से भागों को पृथक् पृथक् प्रत्येक तोल कर भली प्रकार भर दे, मणि प्रकार से उक्त आठ सौ संख्यात्मक तैल से शोधित कल्याण कर भास्करमणि—सूर्यकान्त मणि को उसके मध्य में स्थापित करे। इस प्रकार उत्तर केन्द्र में स्थित पात्र में वस्तु प्रपूरण करके दक्षिण केन्द्रस्थ पात्र में भी यथाविधि १२, २१, १६ भाग रूप क्रम से ग्रन्थिद्रावक—पिप्पला मूलरस, वासारस, श्वेत शरपुंखा रस या श्वेतगुञ्जा रस यथाविधि मिला कर उक्त द्रव भागांशों से ५ भाग अधिक अर्थात् ५४ भाग गोमूत्र में क्रम से—॥ १२६—१३१ ॥

संयोज्य पूर्वोक्तपात्रे पूरयेत्सप्रमाणतः ।
ज्योतिर्मयूखकन्दं सप्तचत्वारिंशतिस्तथा ।। १३२ ।।
अष्टविंशल्लिङ्कं कान्तलोहं चाष्टादशात्मकम् ।
द्वात्रिंशल्लिङ्कप्रमाणकुडुपं दशसंख्यकम् ।। १३३ ।।
तोलयित्वाथ तत्पात्रे योजयित्वा तथैव हि ।
द्विनवत्यात्मकं ज्योतिर्मणिक्षीरविशोधितम् ।। १३४ ।।
तस्मिन् संस्थापयेत्पश्चाच्चाक्रायणिमतं यथा ।
एवं दक्षिणकेन्द्रस्थपात्रे वस्तुप्रपूरणम् ।। १३५ ।।
कृत्वाथ मध्यकेन्द्रस्थपात्रे शक्ति प्रपूरयेत् ।
कर्तव्यं पञ्चपलग्राहकलोहेनैव शास्त्रतः ।। १३६ ।।
विद्युत्सम्पूरणार्थाय शक्तिपूरकपात्रकम् ।

पूर्व पात्र में मिला कर भरदे, ज्योतिर्मयूख कन्द? ४७, १८ संख्या वाला कान्तलोहा, २८, १० संख्या वाला कुडुप ? ३२, तोल कर उस पात्र में डाल कर ९२ संख्या में ज्योतिर्मणि—आख ? के क्षीर में शोधित उसमें रख दे, चाक्रायणि के मतानुसार इस दक्षिण केन्द्र पात्र में वस्तु भर कर मध्यकेन्द्रस्थ पात्र में शक्ति को भरे चपलग्राहक लोहे से विद्युत् को भरने के लिये शक्तिपूरक पात्र करना चाहिए ।। १३२–१३६ ।।

चपलग्राहकमुक्तं लोहतन्त्रे—चपलग्राहक लोहा कहा है लोहतन्त्र में—

चूर्णग्रावश्वेतनिर्यासमृत्काचां तथैव हि ।। १३७ ।।
मधुशुण्डिककन्दर्पकर्कटत्वग्वराटिकान् ।
कङ्कोलनिर्यासकं चेत्येतत् संशोध्य शास्त्रतः ।। १३८ ।।
वसुरुद्राब्धिनक्षत्रदिग्बाणाग्निमरुत्क्रमात् ।
टङ्कणं द्वादशांशं च सन्तोल्य विधिवत् तथा ।। १३९ ।।
उरणास्याख्यमूषायां तत्तद्भागानुसारतः ।
सम्पूर्य विधिवत् पश्चात् कुण्डे कुण्डोदराभिधे ।। १४० ।।
संस्थाप्य त्रिमुखीभस्त्राद् ध्मनेत् सम्यग्यथाविधि ।
सप्तशोडषोत्तरचतुश्शतकक्ष्योष्णवेगतः ।। १४१ ।।
संगृह्य तद्रसं यन्त्रमुखे सम्पूरयेच्छनैः ।
चपलग्राहकं लोहं भवेत्पश्चाद् दृढं मृदु ।। १४२ ।।

चूना, ग्राव श्वेत—श्वेत ग्राव—सङ्गमरमर, निर्यास—लाख, मृत्—सोरठ मिट्टी, काच, मधुशुण्डिक कन्दर्प—हाथी शुण्डा वृक्ष का मूल ?, कर्कटत्वक्—बिल्व वृक्ष की छाल, कौडी, कंकोल निर्यास—शीतल चीनी का गोन्द । इन्हें शास्त्र से शोध कर ८,११, ७,२८,१०,५?(७),३, ५ भागों को लेकर सुहागा १२ भाग तोल कर विधिवत् उरणास्याख्य मूषा पात्र में उनके भागानुसार भर कर कुण्डोदर नामक कुण्ड

में रख कर तीन मुख वाली भस्त्रा से धमन करे ४२३ दर्जे की उष्णता के वेग से तपाकर—गला कर उस गले रस को यन्त्रमुख में धीरे से भर दे यह चपलग्राहक लोहा हो जावे ॥ १३७—१४२ ॥

शक्तिपूरकपात्रनिर्णयः—शक्तिपूरक पात्र का निर्णय—

वितस्तिपञ्चकायामं वितस्त्यष्टकमुन्नतम् ।
अर्धचन्द्राकृति पीठं गात्रमेकवितस्तिकम् ॥ १४३ ॥
चपलग्राहकलोहेनैव कुर्याद् यथाविधि ।
शक्तिपूरकपात्रं तन्मध्ये संस्थापयेत् क्रमात् ॥ १४४ ॥
पात्रमूलं बृहत्कुम्भाकारवद् वर्तुलं तथा ।
द्रोणवन्मुखभागं च कल्पयित्वा यथाविधि ॥ १४५ ॥
एतदाकारतः काचकवचं तस्य कारयेत् ।
वितस्तित्रयमायामं षड्वितस्त्युन्नतं तथा ॥ १४६ ॥
नालद्वयं प्रकर्तव्यं द्रोणवत्सुदृढं यथा ।
स्थापयेत् तत्पात्रमध्ये दक्षिणोत्तरतः क्रमात् ॥ १४७ ॥

५ बालिश्त लम्बा ८ बालिश्त ऊंचा अर्धचन्द्राकार वाला नीचे का भाग १ बालिश्त मोटा चपलग्राहक लोहे का शक्तिपूरक पात्र यथाविधि करे, उसके बीच में पात्रमूल बडे घडे के आकारजैसा गोल कलश की भांति मुखभाग बनाकर ऐसे आकार में कांच का कवच उसका बनावे, ३ बालिश्त लम्बा ६ बालिश्त उठा हुआ तथा दो नाल कलश की भांति दृढ करने चाहिएं, उन्हें पात्र के मध्य में दक्षिण और उत्तर के क्रम से स्थापित करे ॥ १४३–१४७ ॥

चक्रद्वयं चोभयनालमध्ये स्थापयेत् क्रमात् ।
तयोरावरणं कुर्यात् काचेनैवाथ पूर्ववत् ॥ १४८ ॥
चक्रयोरुभयोर्मध्ये नालयोर्बाह्यतः क्रमात् ।
सन्धिकीलं कल्पयित्वा स्थापयेत् सरलं यथा ॥ १४९ ॥
भ्रमणात् सन्धिकीलस्य नालयोरुभयोरपि ।
चक्राणि भ्रामयेद् वेगात् तेन शक्त्यूर्ध्वगा भवेत् ॥१५०॥
चतुर्दिक्षु स्थितविद्युत्पात्रमूलाद् यथाविधि ।
मध्यपात्रस्थनालद्वयमूलावधि क्रमात् ॥ १५१ ॥
नालद्वयमयस्कान्तलोहेन रचितं ततः ।
षडङ्गुलायामयुक्तं सन्धानं कारयेदथ ॥ १५२ ॥

दो नालों के मध्य में दो चक्र स्थापित करे उन चक्रों का कांच से आवरण पूर्व जैसा करे, दोनों चक्रों के बीच में नालों की बाहिरी ओर क्रमशः सन्धि कील लगा कर सरल रखे, सन्धिकील के भ्रमण से दोनों नालों के चक्र को वेग से घुमावे इससे चारों दिशाओं में स्थित विद्युत्पात्र मूल से मध्य-पात्रस्थ दो नालों के मूल के अवधिक्रम से शक्ति ऊर्ध्वगामी हो जावेगी, दो नालें अयस्कान्त से रचे पुनः ६ अंगुल लम्बा जोड लगावे ॥ १४८–१५२ ॥

वेष्टयेद् रुरुकमृगचर्म नालद्वयोपरि ।
तस्योपरि पुनः पट्टतन्तुर्वा पटमेव वा ।। १५३ ।।
वेष्टयेत्सुदृढं सम्यक् पश्चात् तन्नालयोः क्रमात् ।
कृत्वा वज्रमुखी ताम्रतन्त्रीन् द्रावकशोधितान् ।। १५४ ।।
एकैकनालान्तराले द्वौ द्वौ तन्त्रीन् नियोजयेत् ।
तत्तन्त्रीन् शक्तिपूरकपात्रनालद्वयान्तरे ।। १५५ ।।
सन्धारयेत्समाहृत्य काचकुप्पिकपूर्वकम् ।
शक्तिपूरकपात्रेथ पारमष्टपलं न्यसेत् ।। १५६ ।।
एकनवत्युत्तरत्रिशतसंख्याकात्मकं ततः ।
विद्युन्मुखमणिं ताम्रतन्त्रीभिः परिवेष्टितम् ।। १५७ ।।
संयोगकीलकयुतं तस्मिन् सन्धारयेत् क्रमात् ।
पश्चात् पूर्वोक्तनालस्थतन्त्रीनाहृत्य यत्नतः ।। १५८ ।।

उन दोनों नालों के ऊपर रुरुचर्म—काले हरिण के चर्म को लपेट दे फिर उसके भी ऊपर पटतन्तु—सूत या पटवस्त्र ही उन नालों पर सुदृढ लपेट दे फिर द्रावक में शुद्ध की हुई वज्रमुखी ताम्रतन्त्रियों को अर्थात् वज्रमुखी ताम्बे की तारों को एक एक नाल के अन्दर दो दो करके तारों को नियुक्त करे—फिट करे जो कि शक्तिपूरक पात्रस्थ दो नालें हैं उनके अन्दर कांच की कुप्पि—आवरण (बल्भ जैसे) के साथ लगावे। शक्तिपूरक पात्र में पारा आठ पल—३२ तोला रख दे, तीन सौ इक्यानवे ३९१ संख्या वाली विद्युन्मुखमणि को ताम्बे की तारों से लपेट संयोग कीलक युक्त उसमें लगा दे फिर पूर्वोक्त नालों की तारों को लेकर यन्त्र से—।। १५३–१५८ ।।

विद्युन्मुखमणेस्संयोजनकीलकतन्त्रिषु ।
सन्धारयेद् दृढं काचकं कुरन्ध्रमुखेन हि ।। १५९ ।।
एवं कृत्वा मध्यपात्रं विहायाथ पुनः क्रमात् ।
अवशिष्टेषु पात्रेषु पृथक् पृथग्यथाविधि ।। १६० ।।
मन्थानवत् स्थितौ द्वौ द्वौ मथनोन्मथनाभिधौ ।
स्थापयेत्कीलकस्तम्भौ सरलभ्रमणं यथा ।। १६१ ।।
पात्राणां मध्यकेन्द्रेषु शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
अयस्कान्तेन वा नोचेच्छक्तिस्कन्धेन वा कृतान् ।। १६२ ।।
स्तम्भान् संस्थापयेत् तेषु एकैकं च पृथक् पृथक् ।
वितस्तित्रयमौन्नत्यं गात्रमेकवितस्तिकम् ।। १६३ ।।

विद्युन्मुखमणि—डायनेमो ? की संयोजक कील वाली तारों में कांच को कुरन्ध्र मुख—नीचे भूमि वाले छिद्रमुख से दृढ जोड दे या कांच के दो कोश वाले छिद्रमुख से ऊपर कहे तारों को जोड दे। ऐसा करके मध्य पात्र को छोड कर अन्य अवशिष्ट पात्रों में यथाविधि पृथक् पृथक् मन्थनसाधन के समान स्थित दो दो मथन उन्मथ नामक कील स्तम्भ लगावे जिससे मध्यकेन्द्रों में वर्तमान पात्रों का

शास्त्रोक्त मार्ग से सरल भ्रमण हो सके अथवा अयस्कान्त से या शक्तिस्कन्ध से किये स्तम्भों को उनमें एक एक स्थापित करे। ३ बालिश्त ऊंचाई १ बालिश्त मोटाई—॥ १५६–१६३ ॥

एकैकस्तम्भप्रमाणमिति शास्त्रविनिर्णयः ।
मथनोन्मथनयन्त्रपूर्वभागे यथाक्रमम् ॥ १६४ ॥
उत्क्षेपणापक्षेपणचक्रकीलान् पृथक् पृथक् ।
सन्धारयेत् ततो मध्यस्तम्भस्थानाद् यथाक्रमम् ॥१६५॥
उत्क्षेपणापक्षेपणकीलावधिसुशोधितम् ।
अष्टाङ्गुलायामनालमेकं सन्धारयेद् दृढम् ॥ १३६ ॥
पश्चात्पञ्चाङ्गुलायामचक्राणि सुदृढान्यपि ।
कृत्वा जलाहरणयन्त्रचक्रवन्मनोहरम् ॥ १६७ ॥
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं पञ्चसंख्याक्रमेण तु ।
कीलकैस्सरलैस्सम्यङ्नालस्योभयपार्श्वयोः ॥ १६८ ॥
ततश्शक्तिस्कन्धलोहादङ्गुलद्वयमानतः ।
पट्टिकान् कारयित्वाथ शोधयित्वा यथाविधि ॥ १६९ ॥
आवृत्तनालान्तर्गतचक्राण्यारभ्य शास्त्रतः ।
मथनोन्मथनयन्त्रवामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ १७० ॥
संस्थितोत्क्षेपणापक्षेपणचक्रान्तरावधि ।
मथनोन्मथनयन्त्रोभयपात्रस्थकेन्द्रयोः ॥ १७१ ॥

एक एक स्तम्भ का प्रमाण है यह शास्त्र का निर्णय है, मथनोन्मथन यन्त्र के पूर्व भाग में यथाक्रम उत्क्षेपण—ऊपर फैंकने अपक्षेपण नीचे फैंकने की चक्रकीलें पृथक् पृथक् लगावे, मध्यस्तम्भ स्थान से यथाक्रम उत्क्षेपण अपक्षेपण की कील तक सुशोधित ८ अंगुल लम्बा एक नाल लगावे, पश्चात् ५ अंगुल लम्बे सुदृढ चक्र भी जलाहरण—चक्र—राहट की भांति मनोहर बनाकर शास्त्रानुसार सरल कीलों नाल के दोनों पासों में लगावे। फिर शक्तिस्कन्ध लोहे से २ अंगुल माप की पट्टिकाएं बना कर और यथाविधि शोध कर घूमने वाले नाल के अन्तर्गत चक्रों को आरम्भ कर शास्त्र से मथन-उन्मथन यन्त्र बाएं दाएं चक्रों की अवधि तक मथनोन्मथन यन्त्र के दोनों पात्रों के केन्द्र में—॥ १६४–१७१ ॥

(आगे देखो कापी संख्या १६)

हस्तलेख कापी संख्या १६—

संस्थितत्रिचक्रमुखस्तम्भकीलकयोः क्रमात् ।
संयोज्य विधिवत्पश्चात् स्तम्भस्थप्रतिनालयोः ॥ १७३ ॥*
पार्श्वयोरुभयोर्मध्ये चानुलोमविलोमतः ।
सन्धारयेद् भ्रामणकीलकान् सुदृढं यथा ॥ १७४ ॥
एतत्कीलकभ्रमणाद् दधिनिर्मन्थने यथा ।
मन्थानरज्जुग्रहणहस्तौ वेगात् पुनः पुनः ॥ १७५ ॥
ऊर्ध्वाधोभागयोस्सम्यगनुलोमविलोमतः ।
संभ्रामयेत् तथा नालोभयपार्श्वस्थपट्टिका (म्?) ॥१७६॥
ऊर्ध्वाधोभागयोस्सम्यग्भ्रामयेद् वेगतः क्रमात् ।
पश्चाद् दर्पणशास्त्रोक्तघृण्याकर्षणदर्पणात् ॥ १७७ ॥
उलूखलोपरि न्यस्तवेणुपात्राकृतिर्यथा ।
कुर्याच्चत्वारि पात्राणि चतुष्पात्रोपरि क्रमात् ॥१७८॥
विधिवद् योजयेत् सम्यङ् मुखस्थाने पृथक् पृथक् ।

—स्थित तीन चक्रमुख वाली दो स्तम्भकीलों में क्रम से संयुक्त कर पश्चात् स्तम्भस्थ प्रतिनाल के पार्श्वों में अनुलोम विलोम रीति से घूमनेवाली कीलों को दृढ लगादे इन कीलों के भ्रमण से दही मथने में जैसे मन्थन डोरी पकड़े हुए हाथ बेग से वार वार ऊपर नीचे भागों में अनुलोम विलोम—सीधे उलटे ढंग से घुमावे वैसे ही नालों के दोनों ओर वाली पट्टिका ऊपर नीचे भागों में सम्यक् वेग से घुमादे पश्चात् दर्पणशास्त्र में कहे घृण्याकर्षणदर्पण—सूर्य या सूर्यकिरण को खींच लेने वाले दर्पण—सूर्यकान्त से चार पात्र करे और चार पात्रों के ऊपर क्रम से विधिवत् सम्यक् मुखस्थान में युक्त करे ऊखल के ऊपर रख बांस पात्राकृति के समान— ॥ १७३—१७८ ॥

पात्रलक्षणं लल्लेनोक्तम्—पात्रलक्षण लल्ल आचार्य ने कहा है—

आदावष्टाङ्गुलायामं वितस्त्यैकोन्नतं तथा ॥ १७९ ॥
कृत्वा तन्मध्यदेशेथ शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
वितस्तिद्वयमायामं षड्वितस्त्युन्नतं तथा ॥ १८० ॥
कल्पयित्वा तदन्ते षड्वितस्त्यायामविस्तृतम् ।

* संख्या कापी १८ से आगे के क्रम से है ।

कुर्यान्मुखबिलं चैवं नाललक्षणमीरितम् ॥ १८१ ॥
वेणुक्षारं काचपात्रे पञ्चविंशतिपलं ततः ।
सम्पूर्य विधिवत् तस्मिन् संशुद्धद्रावकैः क्रमात् ॥१८२॥
पञ्चविंशदुत्तरत्रिशतसंख्यात्मकं तथा ।
शालीक्षारेण संयोज्य निक्षिपेदंशुपामणिम् ॥ १८३ ॥

आदि में ८ अङ्गुल लम्बा १ बालिश्त ऊंचा उसके मध्य देश में शास्त्रमार्ग से बनाकर उसके अन्त में २ बालिश्त लम्बा, ६ बालिश्त ऊंचा बनाकर उसका ६ बालिश्त लम्बा मुखबिल करे यह नाल का लक्षण कहा है। वेणुक्षार—बांस का क्षार २५ पल अर्थात् १०० तोले कांचपात्र में भरकर विधिवत् उसमें शुद्ध द्रावकों से ३२५ पल ? शालीक्षार से मिलाकर अंशुपामणि सूर्यकान्त ? को डालदे—॥ १७६–१८३ ॥

पश्चाच्छालीतृणं सम्यक् तस्योपरि प्रमाणतः ।
आच्छाद्य प्रतिपात्रस्य मुखभागे दृढं यथा ॥ १८४ ॥
सन्धारयेत् कीलकाभ्यां सूर्याभिमुखतः क्रमात् ।
एभिराकर्षितास्सम्यक् किरणास्सर्वतोमुखाः ॥ १८५॥
पञ्चोत्तरशतकक्ष्यप्रमाणोष्णेन संयुताः ।
चतुष्पात्रेषु वेगेन प्रत्यहं प्रविशन्ति हि ॥ १८६ ॥
एवं क्रमाद् द्वादशाहमातपे तापयेद् यदि ।
अशीत्युत्तरसाहस्रलिङ्कविद्युत् प्रजायते ॥ १८७ ॥
प्रतिपात्रेप्येवमेव शक्तिस्संलभते ध्रुवम् ।
एतच्छक्ति समाहृत्य शक्तिपूरकपात्रके ॥ १८८ ॥
सन्नियोजयितुं पश्चादयस्कान्तस्य लोहतः ।
कृत्वा षडङ्गुलायामनालानापात्रमूलतः ॥ १८९ ॥
आहृत्य शक्तिपूरकपात्रे सन्धारयेत् क्रमात् ।
कवचं कारयेत् पश्चात् तेषां रुरुकचर्मणा ॥ १९० ॥

पश्चात् शालीतृण उसके ऊपर प्रमाण से ढककर प्रत्येक पात्र के मुखभाग पर दो कीलों से सूर्य की ओर युक्त करदे, इनसे सब ओर से आकर्षित हुई किरणें १०५ दर्जे की उष्णता से युक्त हुई चारों पात्रों में वेग से प्रतिदिन प्रविष्ट होती हैं इस प्रकार १२ दिन धूप में यदि तपावे वो एक सहस्र अस्सी डिग्री की विद्युत् उत्पन्न हो जाती हैं प्रत्येक पात्र में भी इस प्रकार शक्ति मिल जाती है, इस शक्ति को लेकर शक्तिपूरकपात्र–शक्ति भरनेवाले यन्त्र में नियुक्त करने को अयस्कान्त लोहे से पात्र के मूल तक ६ अङ्गुल लम्बे नाल करके शक्ति पूरकपात्र में लेकर जोडदे लगादे उनके ऊपर आवरण रुरु—कृष्ण-हरिण के चर्म से करावे—बनावे ॥ १८४—१९० ॥

तस्योपरि विशेषेण वेष्टयेत् पट्टवस्त्रतः ।
तत्तन्तुभिर्वा विधिवत् ततो नालान्तरे क्रमात् ॥१९१॥

शुद्धवज्रमुखताम्रतन्त्रीद्वयं सुवर्चसम् ।
शक्तिपूरकपात्रेऽथ यथा संयोजितं भवेत् ॥ १९२ ॥
तथा सन्धारयेत्सम्यक् प्रतिनालेप्यथाविधि ।
शक्तिपूरकपात्रेऽथ रसं शतपले न्यसेत् ॥ १९३ ॥
पश्चादेकनवत्युत्तरत्रिशतात्मकं शिवम् ।
विद्युन्मुखमणिं पूर्वोक्ततन्त्रीपरिवेष्टितम् ॥ १९४ ॥
तस्मिन्निधाय विधिवत् पश्चात्तन्मणि तन्त्रिषु ।
पूर्वोक्त नालस्थतन्त्रीस्सम्यक् संयोजयेद् दृढम् ॥ १९५ ॥
चतुष्पात्रस्थितान् शुद्धखुरतैल प्रलेपितान् ।
सम्भ्रामयेद् वेगतो मथनोन्मथनकीलकान् ॥ १९६ ॥

उसके ऊपरि भाग को रेशमी वस्त्र या उसके धागों से लपेट दे फिर क्रम से नालों के अन्दर शुद्ध वज्रमुख ताम्बे की सुन्दर दो तारों को शक्तिपूरकपात्र में युक्त कर दिया जावे ऐसे प्रत्येक नाल में लगादे। शक्तिपूरकपात्र में १०० पल अर्थात् ४०० तोला पारा डालदे, फिर उन तारों से लपेटी हुई ३९१ सुन्दर विद्युन्मणि को उसमें रखकर पश्चात् मणितारों में पूर्वोक्त नालतारों को भली भांति लगादे, चारों पात्रों में स्थित खुरतैल–तिलतैल या नखीगन्धद्रव्य के तैल से मथनोन्मथन कीलों को चिकनी करके वेग से घुमावे–॥ १९१–१९६ ॥

कक्ष्यद्विशतोष्णवेगाद् भवेत्कीलकभ्रमो यदि ।
चतुष्पात्रस्थमूलेषु* पाचितेष्वंशुभिः क्रमात् ॥ १९७ ॥
मथनोन्मथनचक्राणि च (?) यथाक्रमम् ।
यथा भवेद् द्विसहस्रकक्ष्योष्णं वेगतो भृशम् ॥ १९८ ॥
तन्मूलानि विशेषेण दधिवन्मन्थयन्ति हि ।
एतेन प्रतिपात्रे ष्टशतलिङ्कप्रमाणतः ॥ १९९ ॥
वेगादाविर्भवेद् विद्युच्छक्तिश्शुद्धातिवेगिनी ।
आचतुष्पात्रमूलाग्रादाविद्युत्पूरकान्तरे ॥ २०० ॥
सन्धारितकान्तलोहनालान्तर्गततन्त्रिभिः ।
एतच्छक्तिं समाहृत्य शक्तिपूरकपात्रके ॥ २०१ ॥
सम्पूरयेत् सप्रमाणं सावधानेन चेतसा ।
तच्छक्तिं तत्रत्यमणिः पात्रे संगृह्य पूर्यति ॥ २०२ ॥

यदि मथनोन्मथन कीलों का घूमना २०० दर्जे की उष्णता से हो तो किरणों से पके चारों पात्रस्थ मूलों में मथनोन्मथ चक्र २००० दर्जे की उष्णता से वेग के लें वह मूल विशेषतः दही मथने की भांति मथन करती हैं उससे प्रत्येक पात्र में ८०० डिग्री प्रमाण के वेग से अतिवेगिनी विद्युत्शक्ति प्रकट हो जाती है चारों पात्रों के मूलाग्र से विद्युत्पूरकपात्र के अन्दर तक चलतेहुए कान्त लोहनालान्तर्गत

* 'मूत्रेषु' हस्तलेखे।

तारोंद्वारा इस शक्ति को लेकर पूरकपात्र में सावधान चित्त से सप्रमाण भरदे, वहां की मणि उस शक्ति को पात्र में संग्रह कर भर देती हैं ॥ १६७—२०२ ॥

शक्तिपूरकपात्रस्य पुरोभागे ततः परम् ।
वितस्तिपञ्चकायामं वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥२०३॥
कुम्भवद् वर्तुलाकारं पात्रमेकं न्यसेद् दृढम् ।
तत्पात्रं वेष्टयेत्सम्यग् वारिवृक्षस्य चर्मणा ॥२०४॥
सार्वकालं यतो वारि तस्मिन् प्रवहति स्वयम् ।
ततो वारिप्रतिनिधि वारिचर्मनिरूपितम् ॥२०५॥
एतेन पात्रस्य जलावरणं प्रभवेद् यथा ।
तथैव वारिवृक्षस्य चर्मणा भवति ध्रुवम् ॥२०६॥
सन्धार्य पश्चात् तत्पात्रे सप्रमाणं यथाविधि ।
शिखावलीद्रावकस्य द्वादशांशं तथैव हि ॥२०७॥
अष्टादशांशायस्कान्तद्रावकं तदनन्तरम् ।
वज्रचुम्बकद्रावस्य द्वाविंशांशं यथाक्रमम् ॥२०८॥
सम्पूर्य काचपात्रेषु स्थापयेत् सुदृढं यथा ।

शक्तिपूरक यन्त्र के सामनेवाले भाग में ५ बालिश्त लम्बा ३ वालिश्त ऊंचा घड़े के समान गोल पात्र रखदे उस पात्र को भली प्रकार वारिवृक्ष—ह्रीवेरवृक्ष की छाल से लपेट दे, जिससे कि सर्वकाल उसमें स्वयं वारि—जल बहता है तब ही वारि—जल का प्रतिनिधि वारिचर्म कहा गया है। इससे पात्र का जलावरण होजावे वैसे वारिवृक्ष के चर्म से यह ध्रुव होजाता है फिर उस पात्र में यथा-विधि सप्रमाण रखकर शिखावली द्रावक—(शिखी) चित्रकवृक्ष ? या अपामार्ग ? के द्रावक में या (शिखिकण्ठ) नीलाथोथा के द्रावक का १२ अंश १८ अंश अयस्कान्तद्रावक पुनः २२ अंश वज्रचुम्बक-द्रावक काचपात्रों में सुदृढ भरकर रखदेना ॥२०३—२०८॥

पूर्वोक्तकाचावरणलोहनालस्य तन्त्रिभिः ॥२०९॥
शक्तिपूरकपात्रादाहृत्य शक्तिं यथाविधि ।
पात्रस्थद्रवपात्रेषु सम्यक् पूरयितुं क्रमात् ॥२१०॥
एकैकनाले चत्वारि यन्त्रचस्संशोधितास्ततः ।
काचचक्रमुखात्सम्यक् सन्धार्याथ यथाविधि ॥२११॥
पूर्वोक्तपात्रान्तरस्थकाचपात्रेषु द्रावके ।
सम्पूर्य पश्चात् तत्पात्रमूलात् तन्त्रीद्वयं क्रमात् ॥२१२॥
शक्तिमाकर्षितुं बाह्ये कीलैस्संयोजयेद् दृढम् ।
पुनस्तत्कीलकाभ्यां तत्तन्त्रीद्वयमृजुर्यथा ॥२१३॥

समाहृत्यातिसरलात्काचकङ्कुरयोगतः ।
प्रादक्षिण्ये क्रमाद् याने धूमोद्गमपुरो भुवि ॥२१४॥
स्थितभुज्युकलोहस्य नालान्तर्गततन्त्रिभिः ।
सन्धाय विधिवत् पश्चात् प्रतिधूमोद्गमान्तरे ॥२१५॥

पूर्वोक्त काचावरणवाली लोहनालके तारोंसे शक्तिपूरकपात्रसे शक्तिको यथाविधि लेकर पात्रस्थ द्रवपात्रों में क्रम से भली भांति भरने को एक एक नाल में संशोधित चार तारें काचचक्रमुख से सम्यक् जोडकर पूर्वोक्त पात्रों में अन्दर रखे कांचपात्रों में द्रावक में भरकर फिर उस पात्रमूल से दो तारें क्रम से शक्ति को खीचने के लिये कीलों से वाहिर लगादे फिर उन दोनों कीलों से उन दोनों तारों को सरल लेकर अतिसरल कांचकङ्कुरयोग से—कांच घुण्डीवाले योग से घूमाकर यान में धूम को निकालने वाले यन्त्र के सामने भूमि में स्थित भुज्यु लोहे की नालों के अन्दरवाले तारों से विधिवत् जोडकर प्रत्येक धूम को निकालने वाले यन्त्र के अन्दर—॥ २०६–२१५ ॥

स्थितविद्युद्घर्षकमणिकीलकेषु यथाक्रमम् ।
शक्तिं संयोजयेत् ताभ्यां सप्रमाणं यथोचितम् ॥२१६॥
एवं धूमोद्गमनालस्तम्भस्थे च यथाविधि ।
उक्तविद्युद्घर्षकमणिकीलकैस्सन्नियोजयेत् ॥२१७॥
एतेन सर्वत्र विद्युद्व्याप्तिस्स्याद् व्योमयानके ।
तस्माद् विद्युद्यन्त्रमेव कृत्वा शास्त्रानुसारतः ॥२१८॥
वामभागे विमानस्य स्थापयेत् सुदृढं यथा । इत्यादि

—स्थित हुए विद्युद्घर्षणमणि की कीलों में यथाक्रम शक्ति को उन दो तारों से यथोचित युक्त करे, इस प्रकार धूमोद्गमनाल के स्तम्भ में भी यथाविधि उक्त विद्युद्घर्षकमणि की कीलों से संयुक्त करे जोड दे। इससे व्योमयान में सर्वत्र विद्युत् की व्याप्ति होजावे, अतः शास्त्रानुसार ही विद्युद्यन्त्र करके विमान के वामभाग में सुदृढ स्थापित करे ॥२१६–२१८॥

अथ वातप्रसारणयन्त्रनिर्णयः—अब वातप्रसारणयन्त्र का निर्णय है—

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासार ग्रन्थ या प्रकरण में—

विमानोत्क्षेपणार्थाय खपथे शास्त्रतः क्रमात् ।
वातप्रसारणं नाम यन्त्रं शास्त्रेषु वर्णितम् ॥२१९॥
इत्युक्तत्वाद् यन्त्रमद्य संग्रहेण निरूप्यते ।
एतद्यन्त्रं वातमित्रलोहादेव प्रकल्पयेत् ॥२२०॥
अन्यथा यदि कुर्वीत तत्क्षणान्नाशमेधते ॥२२१॥

आकाशमार्ग में विमान को ऊपर उठाने के लिये शास्त्रानुसार क्रम से वातप्रसारण नाम का यन्त्र शास्त्रों में कहा है। ऐसा कहे जाने से अब यन्त्र संक्षेप में कहा जाता है, यह यन्त्र वातमित्र लोहे से ही बनावे अन्यथा करेगा तो नाश को प्राप्त हो जावेगा ॥२१९–२२१॥

वातमित्रलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—वातमित्रलोह कहा है लोहतन्त्र में—

रसाञ्जनिकभागांशास्त्रयोदश तथैव हि ।
प्रभञ्जनस्य भागास्तु सप्तविंशदितीरिताः ॥२२२॥
पराङ्कुशस्य भागास्सप्तत्रिंशदिति कीर्तिताः ।
एतानि सर्पास्यमूषायां तत्तद्भागानुसारतः ॥२२३॥
सम्पूर्य विधिवच्चक्रमुखकुण्डे यथाविधि ।
संस्थाप्य पश्चाद् वारुणास्यभस्त्राद् वेगेन शास्त्रतः ॥२२४॥
ध्मनेत् षोडशोत्तरद्विशतकक्ष्योष्णमानतः ।
समीकरणयन्त्रेथ तद्रसं परिपूरयेत् ॥२२५॥
एवं कृते वातमित्रलोहं भवति नान्यथा ।
एतेनैव हि लोहेन कुर्याद् यन्त्राणि शास्त्रतः ॥२२६॥

रसाञ्जनिक—रसोत १३ भाग तथा प्रभञ्जन ? के २७ भाग पराङ्कुश ? के ३७ भाग कहे। इनको सर्पास्यमूषा-कृत्रिमबोतल में उनके भागानुसार भरकर विधिवत् चक्रमुखकुण्ड में यथाविधि स्थापित करके पश्चात् वारुणास्त्र हाथीमुख जैसी भस्त्रा—धौंकनी से २१६ दर्जे की उष्णता से धोक समीकरण यन्त्र में पिंघले द्रवको भरदे ऐसा करने पर वातमित्रलोह होजाता है अन्यथा नहीं यन्त्र ऐसे लोहे से शास्त्रानुसार करे ॥२२२—२२६॥

आदौ पीठस्ततो नालस्तम्भयन्त्रस्तथैव च ।
वाताप्रपूरकचक्रकीलकानि ततः परम् ॥२२७॥
वाताकर्षणभस्त्रिकामुखयन्त्रमतस्तथा ।
मुखसङ्कोचविकासनकीलकौ तदनन्तरम् ॥२२८॥
सकीलकयातायातनालश्चैव तथैव हि ।
यन्त्राणां कवचं तद्वद्वातस्तम्भास्तथैव हि ॥२२९॥
वातोद्गमाख्यनालश्च भस्त्रिकोन्मुखमेव च ।
तथैव वातपूरककीलकानि ततः परम् ॥२३०॥
वातनिरसनपङ्क्कीलकानीति द्वादश ।
एतानि यन्त्रस्याङ्गानीति यथाक्रमम् ॥२३१॥

प्रथम पीठ बनावे फिर नालस्तम्भयन्त्र उसके पश्चात् वातप्रपूरकचक्रकीलें पुनः वाताकर्षण भस्त्रिकामुखयन्त्र तथा उसके पीछे मुख के सङ्कोच विकास करने वाली दो कीलें फिर कीलोंसहित याता-यात नाल, यन्त्रों का कवच, उसी प्रकार वातस्तम्भ भी, वातोद्गमाख्यनाल भस्त्रिकोन्मुख भी उसी प्रकार वातपूरककीलें पुनः वातनिरसनपङ्क—अरापद्मचक्र को कीलें। ये यन्त्र के अङ्ग यथाक्रम वर्णित किए हैं ॥ २२७-२३१ ॥

अथ पीठनिर्णयः—अब पीठ का निर्णय करते हैं—

षड्वितस्त्यायामकं च ग्रात्रमेकवितस्तिकम् ।
चतुरश्रं वर्तुलं वा पीठं कुर्याद् यथाविधि ॥ २३२ ॥
त्रिचक्रनालस्तम्भसंस्थापनार्थं यथाविधि ।
कुर्यात्केन्द्रद्वयं पीठे दक्षिणोत्तरयोः क्रमात् ॥ २३३ ॥

६ बालिश्त लम्बा १ बालिश्त मोटा चौकोर या गोल पीठ यथाविधि बनाना चाहिए त्रिचक्र-नालस्तम्भ के संस्थापनार्थ दो केन्द्र पीठ में दक्षिण उत्तर में क्रम से करे ॥ २३२–२३३ ॥

त्रिचक्रनालस्तम्भयुक्तं यानविन्दौ–त्रिचक्रनालस्तम्भ यानविन्दु में कहा है–

वितस्तित्रयमायामौ वितस्त्यष्टकमुन्नतौ ।
नालस्तम्भौ कल्पयित्वा केन्द्रयोरुभयोः क्रमात् ॥ २३४ ॥
संस्थापयेत् ततो नालस्तम्भयो मूंलतः क्रमात् ।
कल्पयेदावृत्तकीलरन्ध्राणि त्रीण्यथाविधि ॥ २३५ ॥
तेषु सन्धारयेत् पश्चात् क्रमात् तत्कीलकान् दृढम् ।

३ बालिश्त लम्बे–चौड़े ८ बालिश्त ऊंचे दो नालस्तम्भ बनाकर (पीठ के) दोनों केन्द्रोंमें संस्थापित करदे लगादे फिर दोनों नालस्तम्भों के मूल से क्रमशः तीन घूमनेवाली या गोल कीलों के छिद्र उन छिद्रों में उन कीलों को जोड दे (फिट् कर दे) ॥ २३४–२३५ ॥

तदुक्तं यानविन्दौ–वह यह यानविन्दु में कहा है–

वितस्त्यैकायामयुक्तं वितस्तिद्वयमुन्नतम् ॥ २३६ ॥
सीत्कारीनालवत्कृत्वा योजयेत् स्तम्भरन्ध्रके ।
चक्राणि कारयेत् त्रीणि वितस्त्यायामतस्ततः ॥२३७॥
दन्तैः क्रकचवत् सम्यग्युक्तानि सुदृढान्यथा ।
अनुलोमविलोमाभ्यामूर्ध्वाधोगमनं यथा ॥ २३८ ॥
तथा नालान्तरे सम्यग्योजयेत् कीलकैस्सह ।
वातपूरकनालं तु चक्रमध्ये निवेशयेत् ॥ २३९ ॥
कीलचङ्क्रमणाच्चक्रभ्रमणं भवति स्वतः ।
वातपूरकनालस्य तेन सञ्चलनं भवेत् ॥ २४० ॥

१ बालिश्त लम्बा चौड़ा २ बालिश्त उठा हुआ–ऊंचा सीत्कारीनाल–वायु को खीचती हुई सीत् करनेवाली नाल जैसी बनाकर स्तम्भ के छिद्र में लगादे, तीन चक्र १ बालिश्त लम्बे सुदृढ बनावे दान्तों से युक्त आरे की भांति, जिससे अनुलोम विलोम से ऊपर नीचे गमन हो। नालों के अन्दर भली प्रकार कीलों से युक्त करदे और वातपूरक नाल को चक्रों के मध्य में लगादे कीलों के घूमने से चक्रों का घूमना स्वतः होगा इससे वातपूरक नाल का चलना होगा।

ऊर्ध्वाधोगमनान्नालो वेगाद् वायुं प्रकर्षति ।
स्तम्भद्वयस्य मूलाग्रात् पूर्वपश्चिमपार्श्वयोः ॥२४१॥

वातपूरकचक्रकीलकान्येवं नियोजयेत् ।
वाताकर्षणभस्त्रिकामुखयन्त्राण्यतः परम् ॥२४२॥
वातपूरकचक्रकीलकेभ्यस्सन्धारयेत् क्रमात् ।

ऊपर नीचे नाल के चलने से नालवेग से वायु को खींचता है, दोनों स्तम्भों मूलाग्र से पूर्व और पश्चिम में वातपूरक चक्र की कीलों को इस प्रकार करे, इससे आगे वाताकर्षण भस्त्रिकामुखयन्त्रों को वातपूरक चक्र की कीलों से जोडदे ॥२४१-२४२॥

भस्त्रिकामुखयन्त्रयुक्तं बुडिलेन—भस्त्रिकामुखयन्त्र कहा है बुडिल आचार्य ने—

चक्रकण्ठमृगचर्म समाहृत्य यथाविधि ॥२४३॥
संशोध्य पुत्रजीविकातैलेनाथ यथाक्रमम् ।
पाचयेत् त्रिदिनं पश्चात् क्षालयेच्छुद्धवारिणा ॥२४४॥
गजदन्तिकतैलेन लेपयित्वा मुहुर्मुहुः ।
आतपे स्थापयेत् पञ्चवासराणि ततः परम् ॥२४५॥
षड्वितस्तिप्रमाणेन पश्चाद् यन्त्रं प्रकल्पयेत् ।
यन्त्रमूलस्य विस्तारो वितस्तित्रयमुच्यते ॥२४६॥
तन्मध्यदेशविस्तारो वितस्तीनां चतुर्भवेत् ।
तमन्त्ये दशविस्तारो वितस्त्यैकमितीरितम् ॥२४७॥
भस्त्रिकामुखदेशेथ सङ्कोचनविकासकम् ।
अनुलोमविलोमाभ्यां स्थापयेत् कीलकद्वयम् ॥२४८॥
कीलकद्वयभ्रामण्याद् यातायातं यथा भवेत् ।
संस्थापयेदेकदण्डमेतन्मध्ये तथा क्रमात् ॥२४९॥
वेगात्सञ्चालनं तद्वत्स्तम्भनं च तथैव हि ।
यथाभवेत् तथा कर्तुं स्थापयेत् कीलकद्वयम् ॥२५०॥

चक्रण्ठमृग—चक्रदंष्ट्रमृग—वराह—सुवर ? का चर्म लेकर यथाविधि पुत्रजीवक-जीयापोता के तैल से यथाक्रम तीन दिन तक पकावे फिर शुद्ध जल से प्रक्षालित कर-गजदन्तिका ओषधि के तैल का पुनः पुनः लेप करके पांच दिन तक धूप में रखे फिर ६ बालिश्त यन्त्र बनावे यन्त्र के मूल का विस्तार ३ बालिश्त उसके मध्यदेश का विस्तार ४ बालिश्त अन्तवाले देश का विस्तार १ बालिश्त कहा है। भस्त्रिका के मुखदेश में सङ्कोच विकास के साधन दो कीलों अनुलोमविलोम रीति से स्थापित करे, दोनों कीलों के घुमाने से जिस प्रकार यातआयात हो सके इस प्रकार उनके मध्य में एक दण्ड लगावे फिर वेग से चालन और स्तम्भन हो सके ऐसा करने को दो कीलें स्थापित करे॥ २४३-२५०॥

कीलकभ्रमणाद् यातायातदण्डप्रचालनम् ।
भवेत्तद्वेगतस्सम्यग्भस्त्रिकामुखचालनम् ॥२५१॥

वाताकर्षणनालस्य यातायातमपि क्रमात् ।
भस्त्रिकामुखवाताकर्षणनालप्रकर्षणात् ॥२५२॥
प्रभवेद् वेगतो वाताकर्षणं तन्मुखान्तरात् ।
एवं त्रिचक्रनालस्तम्भेषु वातापकर्षणम् ॥२५३॥
यथा भवेत् तथा सर्वकीलकानि यथाक्रमम् ।
सन्धारयेद् विशेषेण तत्तत्स्थानेषु शास्त्रतः ॥२५४॥
विंशत्कक्ष्योष्णवेगेन कीलकानां परिभ्रमः ।
त्रिचक्रनालस्तम्भेषु यथा भवति तत्क्षणात् ॥२५५॥
क्रमात् सञ्जायते वायुरन्तर्नालात्स्वभावतः ।
शतप्रेङ्खणमानेन तथैव हि विशेषतः ॥२५६॥
भस्त्रिकामुखयन्त्रेभ्यश्चापि वायुस्स्वभावतः ।
जायते द्विसहस्रप्रेङ्खणमानेन निर्मलः ॥२५७॥
क्रमादेतद्वायुवेगादपि यानः प्रधावतिः ।
तस्मात् प्रकल्प्य विधिद् यन्त्राणि द्वादश क्रमात् ॥२५८॥

कीलों के भ्रमण से यातायात दण्ड का प्रचालन हो जावे उसके वेग से भस्त्रिकामुख का चालन हो जाता है वाताकर्षनाल का भी यातायात क्रम से भस्त्रिकामुखवाताकर्षणनाल को खींचने से वाताकर्षण उस नाल के मुख में से होने लगे, इस प्रकार तीन चक्रों के नालस्तम्भों में वात का खींचना जैसे हो वैसे सारी कीलों को उन उन स्थानों में शास्त्र से, २० दर्जे की उष्णतावेग से कीलों का घूमना तीन चक्रों के नालस्तम्भों में तत्क्षण क्रम से हो जाता है, वायु नाल के अन्दर से स्वभावतः सौ प्रेङ्खण-झूल-वेग-अश्ववेग-अश्वगति के मान से प्रकट हो जाता है भस्त्रिकामुख यन्त्रों से भी स्वभावतः वायु दो सहस्र अश्वगति मान से निर्मल वायु चलता है। इस वायु-वेग से भी यान दौडता है अतः १२ यन्त्रों को विविधियत् बनाकर—॥२५१—२५८॥

विमानस्य चतुर्दिक्षु वातोद्गमपुरो भुवि ।
एकैकपार्श्वे यन्त्राणि त्रीणि नियोजयेत् ॥२५९॥
कुर्यादावरणं तेषां तत्तन्मानानुसारतः ।
वितस्तित्रयमायामं वितस्तिद्वादशोन्नतम् ॥२६०॥
यथाभवेत् तथानालस्तम्भान् द्वादश कल्पयेत् ।
पूर्वोक्तयन्त्रावरणोर्ध्वप्रदेशे पृथक् पृथक् ॥२६१॥
वेगाद् वातोत्क्षेपणार्थं स्तम्भान् संस्थापयेद् दृढम् ।
षट्शतोत्तरद्विसहस्रप्रेङ्खणप्रमाणतः ॥२६२॥
एकैकस्तम्भतो वायुरूर्ध्वं गच्छति वेगतः ।
कालानुसारतो वायुर्यावदापक्षितं भवेत् ॥२६३॥

तावदेव गृहीतं स्यात् प्रतियन्त्रमुखान्तरात् ।
तस्मात् पृथक् पृथग्यन्त्राणीति शास्त्रे वर्णितम् ॥२६४॥
विमानस्यौर्ध्वगमनमेतेनापि भविष्यति ।
वायूत्पत्तिक्रमं व्यष्टचा मन्त्रै रेवं निरूपितम् ॥२६५॥

विमान की चारों दिशाओं में वातोद्गमयन्त्र के सम्मुख भूमि की ओर एक एक पार्श्वभाग में तीन यन्त्र लगावे, उनका आवरण भी उस उसके मान से करे। ३ बालिश्त लम्बा चौड़ा १२ बालिश्त ऊंचे जैसे हो ऐसे १२ नाल स्तम्भों को बनावे पूर्वोक्त यन्त्रावरण के ऊपरि प्रदेश में पृथक् पृथक्। वेग से वात के ऊपर फेंकने के लिये स्तम्भों को दृढ संस्थापित करे २६०० अश्वगति के मान से। एक एक स्तम्भ से वायु वेग से ऊपर जाता है कालानुसार जितना वायु अपेक्षित होना चाहिए उतना ही प्रत्येक यन्त्रमुख में से लिया जावे। अतः पृथक् पृथक् यन्त्र है वह शास्त्र में वर्णित है। विमान की ऊर्ध्वगमन—ऊपर जाना इससे भी हो जायगा, वायु की उत्पत्ति का क्रम व्यष्टिरूप से यन्त्रोंद्वारा ऐसे निरूपित किया है ॥२५९—२६५॥

समष्टचा वातमाहर्तुं बृहत्स्तम्भं प्रचक्षते ।
चतुर्वितस्त्यायामं त्रिंशद्वितस्त्युन्नतं तथा ॥२६६॥
वातोद्गमनालस्तम्भं कृत्वा पश्चाद् यथाविधि ।
यन्त्राणां मध्यकेन्द्रेऽथ स्थापयेत्सुदृढं यथा ॥२६७॥
भस्त्रिकोन्मुखयन्त्राणि स्तम्भमूले नियोजयेत् ।
यन्त्राणां वातमाकृष्य स्तम्भे पूरयितुं क्रमात् ॥२६८॥
यन्त्रादिस्तम्भमूलान्तं तत्तद्रेखानुसारतः ।
वाताकर्षणनालानि समाहृत्य यथाविधि ॥२६९॥
स्तम्भमूलान्तरे सम्यक् सन्धार्याथ यथाक्रमम् ।
वातपूरककीलानि तत्तन्नालमुखान्तरे ॥२७०॥

समष्टिरूप से वायु को आहरण करने के लिये बृहत्स्तम्भ चक्र कहते हैं वह ४० बालिश्त लम्बा चौड़ा ३० बालिश्त ऊंचा वातोद्गमनालस्तम्भ करके—बनाकर पश्चात् यथाविधि यन्त्रों के मध्यकेन्द्र में सुदृढ़ स्थापित करे। यन्त्रों के वायु को आकर्षित कर—खींचकर स्तम्भ में भरने को क्रम से भस्त्रिकोन्मुखयन्त्रों को स्तम्भ के मूल में लगावे यन्त्रों से लेकर स्तम्भमूल तक उस उसकी रेखा के अनुसार वाताकर्षणनालों को यथाविधि लेकर स्तम्भमूल के अन्दर सम्यक् यथाक्रम जोडकर वातपूरक कीलों को उस उस नालमुल के अन्दर—

संयोज्य विधिवत् पश्चान्नालस्तम्भमुखान्तरे ।
अष्टाङ्गुलायाममुखबिलं कृत्वा यथाविधि ॥२७१॥
तस्योपरि यथाशास्त्रं वितस्त्यैकोन्नतं तथा ।
वितस्तित्रयमायामं मुखयन्त्रं नियोजयेत् ॥२७२॥

एतत्पात्राद् बहिर्याति वातस्स्तम्भान्तरे स्थितः ।
वायुर्वेगाद् विशेषेण तरङ्गाकारवत् स्वतः ॥२७३॥
पश्चाद् धूमोद्गमयन्त्रस्थितधूमप्रसारणम् ।
वातप्रसारणं यन्त्रैस्तद्वदेव यथाविधि ॥२७४॥
तद्यन्त्रस्थितवातस्य क्रमाद् धूमोद्गमे यथा ।
भवेत् प्रवेशस्सरलात् तथा शास्त्रविधानतः ॥२७५॥

विधिवत् युक्त करके फिर नालस्तम्भमुख के अन्दर ८ अंगुल बडा मुख छिद्र उसके ऊपर यथाशास्त्र १ बालिश्त ऊंचा ३ बालिश्त लम्बा चौड़ा मुखपात्र—ढक्कन लगादे वातस्तम्भ के अन्दर स्थित वायु इस पात्र से वेग से तरङ्गाकार की भांति स्वतः बाहिर जाता है। पश्चात् धूमोद्गमयन्त्रस्थित धूम का प्रसारण यन्त्रों से उसी भांति होता है, उस यन्त्र में स्थित वात का धूमोद्गम में जैसे सरलता से प्रवेश हो उस प्रकार शास्त्रविधान से—

त्रिचक्रनालकीलांश्च सन्धार्याथ यथाक्रमम् ।
तत्कीलकैर्यथाकामं धूमं वा वायुमेव वा ॥२७६॥
समाकृष्याथ विधिवत् तत्तत्कालानुसारतः ।
उपयोक्तुं भवेत् सम्यग्यथेष्टं सप्रमाणतः ॥२७७॥
एतद्यन्त्रस्य विधिवच्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।
वातनिरसनपङ्कचक्राणि स्थापयेदथ ॥ २७८ ॥
एतच्चक्राणि वेगेन भ्रामयेद् यदि कीलकैः ।
वायुं निराकृत्य पश्चाद् व्योमयानः प्रधावति ॥ २७९ ॥
तेन सर्वत्र वेगेन निरातङ्कं यथा तथा ।

तीन चक्रों की नालकीलों को यथाक्रम लगाकर उन कीलों से यथेच्छ धूंएं को या वायु को खींचकर विधिवत् कालानुसार यथेष्ट मात्रा में भलीभांति उपयोग कर सके। इस यन्त्र की चारों दिशाओं में यथाक्रम वातनिरसनपङ्क—वायु निकलने के चपटे अरासंयुक्त चक्रों या पेंचचक्रों को स्थापित करे, इन चक्रों को यदि कीलों से वेग से घुमावे तो व्योमयान वायु को निकाल कर उस वेग से निरातङ्क निर्भय सर्वत्र दौडता है ॥ १७६–१७९ ॥

अथ विमानावरणनिर्णयः—अब विमान के आवरण का निर्णय करते हैं—

आवृत्य धूमोद्गमयन्त्राणि कुड्यान्यथाविधि ॥ २८० ॥
विमानावरणं कर्तुं कुर्याच्छकुनवत्क्रमात् ।
सुन्दराख्यविमानस्यावरणं च यथाविधि ॥ २८१ ॥
राजलोहेनैव कुर्यादन्यथा निष्फलं भवेत् ।
पश्चादावरणं यावद्गृहसंख्या विधीयते ॥ २८२ ॥
तावत्संख्यानुसारेण विभज्याथ यथाक्रमम् ।

कुर्याद् गृहाणि विधिवत्पूर्वोक्तशकुने यथा ॥ २८३ ॥
द्वात्रिंशदङ्गयन्त्राणां स्थानानि च यथाक्रमम् ।
चातुर्मुखौष्म्यकयन्त्रस्थापनार्थं यथाविधि ॥२८४॥
तद्गृहाणां मध्यदेशे चतुरश्राकृतिर्यथा ।
त्रिंशद्वितस्त्यायामप्राङ्ग(ङ्क?)णं परिकल्पयेत् ॥ २८५ ॥
अत्रैव स्थापयेत्सम्यक् चातुर्मुखौष्म्ययन्त्रकम् ।

धूमोद्गमयन्त्रों को ढक कर विमान का आवरण—आच्छादन करने को शकुनविमान की भांति कुडय—दीवारें बनावें सुन्दर विमान का आवरण भी यथाविधि राजलोह से ही करे अन्यथा निष्फल हो जावे। फिर घरों-कमरों की जितनी संख्या कही हो उतनी संख्या में आवरण यथाक्रम विभागशः करे उतनी संख्या में घर भी शकुनविमान की भांति ३२ अङ्गयन्त्रों के स्थान भी यथाक्रम करे, चारमुखवाला यथाविधि औष्म्यक यन्त्र स्थापनार्थ उन घरों के मध्य देश में चोकोर ३० बालिश्त लम्बा चौडा प्राङ्गण—आङ्गन स्थल-फर्श बनावे यहां ही चातुर्मुखौष्म्ययन्त्र स्थापित करे ॥ २८०-२८५ ॥

एतदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—यह यन्त्रसर्वस्व में कहा है—

चातुर्मुखौष्म्ययन्त्ररचना कुण्डोदरेण हि ॥ २८६ ॥
कर्तव्यमिति शास्त्रेषु प्रवदन्ति मनीषिणः ।

चातुर्मुखौष्म्ययन्त्ररचना कुण्डोदर लोहे से करनी चाहिए ऐसा शास्त्रों में मनीषीजन कहते हैं ॥२८६॥

कुण्डोदरलोहमुक्तं लोहसर्वस्वे—कुण्डोदर लोहा कहा है लोहसर्वस्व ग्रन्थ में—

सोमकञ्चुकशुण्डाललोहान्* शुद्धान् यथाविधि ॥ २८७ ॥
क्रमात्त्रिंशत्पञ्चचत्वारिंशद्विंशांशतः क्रमात् ।
सम्पूर्य पद्ममूषायां कुण्डे छत्रमुखाभिधे ॥ २८८ ॥
संस्थाप्य वासुकी भस्त्रात्सम्यग्वेगाद् यथाविधि ।
षोडशोत्तरसप्तशतोष्णकक्ष्यप्रमाणतः ॥ २८९ ॥
आनेत्रान्तं गालयित्वा यन्त्रे सम्पूरयेच्छनैः ।
एवंकृते नीलवर्णं सुसूक्ष्मं भारवर्जितम् ॥ २९० ॥
द्विसहस्रकक्ष्योष्णवेगसहं सुरुचं दृढम् ।
सहस्रघ्निशतघ्नीभिरच्छेद्यं चातिशीतलम् ॥ २९१ ॥
भवेत् कुण्डोदरं नामलोहं कृतवर्गजम् ।
एतल्लोहेन विधिवत् कुर्यात् यन्त्रं मनोहरम् ॥ २९२ ॥
एतदौष्म्ययन्त्राणां रचनादौ विनिर्णितम् ।

---

* 'पूनाफोटो पाठः परन्तु लुण्टार्कलोहत्रयं विशोधितम्' हस्तलेखपाठः ।

सोमं, कञ्चुक, शुण्डाल लोहों को यथाविधि शुद्ध करके क्रम से ३०, ४५, २० अंशों में ले पद्ममूषा यन्त्र में छत्रमुखनामककुण्ड में रखकर वासुकी—सर्परूप लम्बी भस्त्रिका से ७१६ दर्जे की उष्णता से नेत्रपर्यन्त गलाकर धीरे से यन्त्र में भर दे ऐसा करने पर नीले रंग का भाररहित अति सूक्ष्म दो सहस्र दर्जे की उष्णता वेग सहने तक सुन्दर चमक वाला शतध्नि सहस्रघ्नी तोपों से अच्छेद्य शीतल हो जावे तो कुण्डोदर लोहा कृतवर्ग किए हुए—बनाए हुए वर्ग में होनेवाला हो इस लोहे से विधिवत् यन्त्र मनोहर बनावे। यह औष्म्य यन्त्रों की रचनाविधि में निर्णय है ॥ २८७—२९२ ॥

अथ यन्त्राङ्गनिर्णयः—अब यन्त्राङ्गों का निर्णय करते हैं—

आदौ पीठस्तथा धूमपूरकुण्डस्तथैव हि।
जलकोशस्ततो वह्निकोशश्चैव ततः परम् ॥ २९३ ॥
गोपुरावरणं पश्चाज्जलकोशोपरि क्रमात्।
धूमप्रसारणस्तम्भनालाख्यचक्रद्वयम् ॥ २९४ ॥
वातायनशलाकानि पद्मचक्राण्यतः क्रमात्।
आवृतचक्रकीलं च उष्णप्रमापकं ततः ॥ २९५ ॥
वेगप्रमापकं तद्वत्कालप्रमापकं ततः।
रवप्रसारणकीलकनालः(च?)तथैव हि ॥ २९६ ॥

प्रथम पीठ फिर धूमपूर कुण्ड जलकोश फिर अग्निकोश उससे आगे गोपुरावरण—गवाक्ष का आवरण जलकोश के ऊपर का आवरण, धूमप्रसारण स्तम्भनाल नामक दो चक्र वातायन की शलाकाएं पद्मचक्र, घूमने वाले चक्र की कील उष्णता का मापक, शव्दप्रसारण यन्त्र तथा कील की नाल भी ॥ २९३–२९६ ॥

सान्तर्दण्डाघातनाला वातभस्त्राण्यतः परम्।
दीर्घशुण्डालनालाश्च ताम्रनालद्वयं ततः ॥ २९७ ॥
वातविभजनचक्रकीलकान्यपि च क्रमात्।
एतान्यष्टादशाङ्गानीत्याहुरौष्म्यकयन्त्रके ॥ २९८ ॥
पञ्चविंशद्वितस्त्युन्नतं विस्तारेपि च क्रमात्।
तावत्प्रमाणतः पीठं कूर्माकारं प्रकल्पयेत् ॥ २९९ ॥
पीठादौ रचयेदग्निकोशं पश्चाद् यथाविधि।
जलकोशं पीठमध्ये कल्पयेदत्र शास्त्रतः ॥ ३०० ॥
धूमपूरककोशं च पीठान्ते परिकल्पयेत्।

अन्दर के दण्डे से आघात–ठोकर देने वाले नाल, वात भस्त्रिकाएं–धोंकनियां, दीर्घशुण्डाल-नाल—लम्बी शुण्ड वाली नालें, दो ताम्बे की नालें फिर वात को विभक्त करने वाले चक्रों की कीलें भी क्रम से, ये १८ अङ्ग औष्म्य यन्त्र के हैं। २५ बालिश्त ऊंचा और लम्बा चौडा भी उतना ही कूर्माकार कछुवे के आकार का पीठ बनावे। पीठ के आदि में अग्निकोश फिर पीठ के मध्य में जलकोश पीठ के अन्त में धूमपूरक कोश शास्त्रानुसार बनावे ॥ २९७–३०० ॥

कोशत्रयलक्षणमुक्तं बुडिलेन—तीनों कोशों का लक्षण बुडिल ने कहा है—

अथाग्निकोशनिर्णयः—अब अग्निकोश का निर्णय देते हैं—

रविं माञ्चौलिकं तिग्मं समभागं यथाविधि ॥ ३०१ ॥
लोहे कुण्डोदरे सम्यङ् मेलयित्वा ततः परम् ।
पट्टिकाः कारयेत् सम्यगङ्गुलत्रयगात्रतः ॥ ३०२ ॥
संगृह्य पट्टिकामेकां कोशकेन्द्रोपरि क्रमात् ।
पीठे सम्यक् परिस्तीर्य समीकृत्वा यथाविधि ॥ ३०३ ॥
तत्तत्केन्द्रप्रमाणेन कोशान् सम्यक् प्रकल्पयेत् ।
चतुर्वितस्त्यायामं च षड्वितस्त्युन्नतं तथा ॥ ३०४ ॥
पीठादिकेन्द्रे विधिवदग्निकोशं प्रकल्पयेत् ।
इङ्गालानथवा काष्ठान् तस्मिन् संयोजनाय हि ॥ ३०५ ॥
कोशस्य प्रथमे भागे कुल्याकारेण शास्त्रतः ।
कल्पयेत् पट्टिकामञ्चमेकं कुड्यत्रयान्वितम् ॥ ३०६ ॥
कोशद्वितीयभागेग्निज्वलनार्थं यथाविधि ।
त्रिकोणाकारतः कुण्डं कारयेत् सप्रमाणतः ॥ ३०७ ॥
भस्मेंगालपतनार्थं तदधोभागतः क्रमात् ।
कुण्डमन्यत्प्रकर्तव्यं शलाकाच्छादितं यथा ॥ ३०८ ॥
कुण्डद्वयान्तराले तु पट्टिकां सप्रमाणतः ।
सन्धारयेत् कीलकाद्यैश्चालनार्थं यथा भवेत् ॥ ३०९ ॥
प्रसारणोपसंहारौ पट्टिकाया यथाक्रमम् ।
कीलसञ्चालनात् सम्यग्यथा स्यात् सरलं यथा ॥ ३१० ॥

रवि—ताम्बा, माञ्चौलिक ?, तिग्म ?, समान भाग लेकर कुण्डोदर लोहे में मिला कर पट्टिकाएं ३ अंगुल मोटी बनाए, एक पट्टिका लेकर कोशकेन्द्र के ऊपर पीठ पर फैला कर समान करके उस उस केन्द्रप्रमाण से कोशों को बनावे, ४ बालिश्त लम्बा ६ बालिश्त ऊंचा पीठ के आदि केन्द्र में विधिवत् अग्निकोश बनावे, अंगारे—कोयले या काष्ठ उसमें रखने को कोश के प्रथम भाग में कुल्याकार एक पट्टिकामंच ३ भित्तियों से युक्त बनावे। कोश के दूसरे भाग में अग्नि जलाने के लिए त्रिकोणाकार कुण्ड सप्रमाण बनावे अंगारों की भस्म गिरने के अर्थ उसके नीचे भाग में एक अन्य कुण्ड शलाकाओं से आच्छादित करना चाहिए दोनों कुण्डों के बीच में माप से पट्टिका लगा दे कील आदियों से चलाने के लिए पट्टिका का फैलाना—चलाना, उपसंहार करना—हटाना बन्द करना यथाक्रम कील के सञ्चालन से जैसे अच्छा सरल हो सके—॥ ३०१–३१० ॥

अग्निज्वलनकुण्डान्तप्रदेशेथ यथाविधि ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते चक्राणि त्रीण्यथाक्रमम् ॥३११॥

संयोजयेत् कीलकाद्यैरनुलोमविलोमतः ।
कीलसञ्चालनाच्चक्रभ्रमणं स्याद् यथा तथा ॥ ३१२ ॥
अग्नि ज्वालोन्मुखं कर्तुं प्रथमचक्रमीरितम् ।
मन्दमध्यमगाढज्वालाप्रकाशार्थमेव हि ॥ ३१३ ॥
द्वितीयचक्रमित्याहुस्तृतीयं तु यथाक्रमम् ।
समीकरणकार्यार्थं स्थापितं स्याद् यथाक्रमम् ॥ ३१४ ॥
अग्निकोशोपरि पुनः नालमेकं दृढं यथा ।
स्थापयेत् पट्टिकामध्ये ततो नालान्तरे क्रमात् ॥ ३१५ ॥

अग्नि जलने के कुण्डपर्यन्त प्रदेश में यथाविधि आदि मध्य तथा अन्त में तीन चक्र यथाक्रम संयुक्त करे कील आदियों से अनुलोम विलोम रीति से जिससे कि कील के सञ्चालन से चक्रों का भ्रमण हो सके। अग्नि को ज्वलनोन्मुख करने को प्रथमचक्र कहा है, मन्द मध्य तीव्र ज्वाला प्रकाशार्थ ही द्वितीय चक्र को कहा है, तृतीय चक्र को यथाक्रम समीकरण कार्यार्थ—शान्त करणार्थ यथाक्रम स्थापित किया है। फिर अग्निकोश के ऊपर एक नाल दृढ स्थापित करे फिर पट्टिका के मध्य नाल के अन्दर क्रम से—॥ ३११-३१५ ॥

प्रदक्षिणावृत्तवक्रतन्त्रीस्सन्धारयेत् ततः ।
नालवत् पट्टिकां तस्योपर्याच्छाद्य प्रमाणतः ॥ ३१६ ॥
धूमाकर्षणनालं च कल्पयित्वा ततः परम् ।
अग्निकोशान्तभागे संस्थापयित्वा यथाविधि ॥ ३१७ ॥
पूर्वोक्तवक्रतन्त्रीमुखप्रदेशे नियोजयेत् ।
अग्नेर्धूमं समाहृत्य जलकोशे नियच्छति ॥ ३१८ ॥
अग्निकोशाज्जलकोशावरणान्तं यथाविधि ।
जलनालानि सर्वत्र योजयेत् सप्तसंख्यया ॥ ३१९ ॥
जलकोशावरणदेशे सर्वत्रात्यन्तवेगतः ।
पञ्चसहस्रलिङ्कोष्णव्याप्तिरेतैर्भवेत् क्रमात् ॥ ३२० ॥

—घूमने वाली टेढी तारों को लगावे, नाल की भांति पट्टिका को उसके ऊपर प्रमाण से ढककर धूमाकर्षण नाल भी बना कर अग्निकोश पर्यन्त भाग में यथाविधि संस्थापित करके पूर्वोक्त टेढी तारों के मुख प्रदेश में जोड दे। अग्नि के धुएं को लेकर जल कोश में नियन्त्रित करता है अग्निकोश से जल-कोश पर्यन्त यथाविधि सात जलनालों को सर्वत्र लगावे, जलकोश के आवरण प्रदेश में सर्वत्र अत्यन्त वेग से इनसे पांच सहस्र लिङ्क-डिग्री की उष्णता व्याप्ति हो जावे ॥ ३१६-३२० ॥

तेन तप्तं जलं पश्चादौष्म्य धूमाकृतिं लभेत् ।
जलकोशप्रमाणं तु वितस्त्यष्टकमुच्यते ॥ ३२१ ॥
त्रिचक्रकीलनालानि जलकोशे यथाक्रमम् ।

त्रीणि सन्धारयेत्साम्यात् सुदृढं सरलं यथा ।। ३२२ ।।
जलौष्म्यधूमबन्धनार्थं प्रथमं चक्रकीलकम् ।
धूमराशिं कल्पयितुं द्वितीयं चक्रमीरितम् ।। ३२३ ।।
तत्पुरोभागस्थधूमकुण्डकोशेतिवेगतः ।
पूरणार्थं धूमराशेस्तृतीयं चक्रमीरितम् ।। ३२४ ।।
धूमपूरककोशष्षड्वितस्त्यायामसम्मितम् ।
चतुर्वितस्त्युन्नतं स्यादिति शास्त्रविनिर्णयः ।। ३२५ ।।

उससे तप्त हुआ जल औष्म्य धूम—गरम धूआं रूप हो जावे, जलकोश ८ बालिश्त कहा जाता है, तीन चक्रकील की तीन नालें जलकोश में समान सरल लगा दे । जलौष्म्य धूम के रोकने को प्रथम चक्रकील है, धूमराशि को समर्थ करने को दूसरा चक्र कहा है, उसके सामने वाले भाग के धूमकुण्ड कोश में अतिवेग से धूमराशि के पूरणार्थ तृतीय चक्र कहा है । धूमपूरक कोश ६ बालिश्त लम्बा ४ बालिश्त ऊंचा यह शास्त्र का निर्णय है ।। ३२१–३२५ ।।

औष्म्यधूमं पूरयितुं धूमकोशे यथाविधि ।
चक्रकीलकान् विशेषेण स्थापयेत् सप्रमाणतः ।। ३२६ ।।
जलकोशोपरि ततो गोपुराकारतः क्रमात् ।
कुर्यादावरणं सम्यक् सुदृढं सरलं यथा ।। ३२७ ।।
एतदावरणस्योद्घाटने सम्बन्धनेपि च ।
यथा स्यात् सरलं तद्वत् कीलकानि नियोजयेत् ।। ३२८ ।।
धूमपूरककोशस्य पुरोभागे यथाविधि ।
यथेष्टं धूमसञ्चोदनार्थं तद्बन्धनाय च ।। ३२९ ।।
सरन्ध्रं पट्टिकाचक्रद्वयं तत्र नियोजयेत् ।
एतच्चक्रभ्रमणार्थं सरलं स्याद् यथा तथा ।। ३३० ।।

धूमकोश में औष्म्य धूम—गरम धूआं भरने को यथाविधि चक्रकीलों को सप्रमाण विशेषरूप से स्थापित करे फिर जलकोश के ऊपर गोपुर-गवाक्ष आवरण—ढक्कन सरल दृढ कर दे, इस आवरण के खोलने और बन्द करने में सरलता हो इस प्रकार कीलें नियुक्त करे, धूमपूरक कोश के सामने वाले भाग में यथाविधि यथेष्ट धूम को धकेलने और बन्द करने को छिद्रसहित दो पट्टिका चक्र नियुक्त करे, इस चक्र के भ्रमणार्थ जैसे सरलता हो वैसे—।। ३२९–३३० ।।

सन्धारयेद् प्रामणिककीलकान्सुदृढान् क्रमात् ।
धूमपूरककुण्डस्य पूर्वभागे ततः परम् ।। ३३१ ।।
वातायनशलाकानष्टाङ्गुलान् मानतस्ततः ।
एकैकमेकाङ्गुलप्रदेशे संस्थापयेद् दृढम् ।। ३३२ ।।

ततो यन्त्रपुरोभागे मध्ये चोर्ध्वेऽप्यधः क्रमात् ।
पार्श्वयोरुभयोश्चैव यथाकालानुसारतः ।। ३३३ ।।
सर्वत्र धूमोद्गमं च स्तम्भनं च यथा भवेत् ।
पद्मचक्राकारकीलान् तत्तत्स्थानेषु शास्त्रतः ।।३३४।।
द्वौ द्वौ सन्धारयेत्सम्यक् पश्चात् तत्पृष्ठभागतः ।
काष्ठप्रक्षेपणार्थाय इङ्गालान् वा यथोचितम् ।।३३५।।

घुमानेवाली कीलों को क्रम से सुदृढ युक्त करे फिर धूमपूरक कुण्ड के सामनेवाले भाग में ८ अंगुल मापवाली वातायनशलाकाएं एक एक को एक एक अंगुल प्रदेश में दृढ स्थापित करे फिर यन्त्र के सामनेवाले भाग में मध्य भाग में और ऊर्ध्व भाग में नीचे भाग में भी क्रम से स्थापित करे तथा दोनों पार्श्वों में समयानुसार करे। सर्वत्र धूएं का निकलना और रोक देना जिससे बन जावे। पद्मचक्र के आकारवाली कीलों को उन उन स्थानों में शास्त्र से दो दो कीलें लगावे फिर पृष्ठभाग में काष्ठ फेंकने के लिये या अंगारों—कोयलों को यथोचित डालने के लिये—।।३३१—३३५।।

सार्धवितस्त्यायामेन विलं कुर्याद् यथाविधि ।
कवाटोद्घाटनार्थाय विलद्वारस्य शास्त्रतः ।।३३६।।
यथा स्यात्सरलं तद्वत्कीलकान् सन्नियोजयेत् ।
उष्णप्रमापकं यन्त्रं तथा वेगप्रमापकम् ।।३३७।।
दक्षिणोत्तरयोः पश्चात् तत्कीलस्य यथाक्रमम् ।
मनुष्यवत्प्रवचनं कुर्वन्तं सुस्फुटं क्रमात् ।।३३८।।
कालप्रमापकं यन्त्रं तथा तस्योर्ध्वभागके ।
संस्थापयेद् दृढं पश्चाद् दक्षभागे तथैव हि ।।३३९।।
द्वादशोत्तरद्विशतयुतसहस्रसंख्यकाः ।
यथा शब्दरवतरङ्गोत्पत्तिर्वेगतः क्रमात् ।।३४०।।

—डेढ बालिश्त लम्बा चौढा छिद्र यथाविधि करे, बिलद्वार के किवाडों को खोलने के अर्थ शास्त्रानुसार जैसे सरलता हो वैसी कीलें—पेंच लगावें। उष्णता का मापनेवाला वेग का मापनेवाला यन्त्र दक्षिण और उत्तर में लगावे, मनुष्य की भांति सुस्फुट बोलते हुए यन्त्र, कालमापक यन्त्र को उसके ऊपर भागमें लगावे पश्चात् दक्षिण भाग में १२१२ संख्या में शब्द की गूंज तरङ्ग की उत्पत्ति वेग से हो जावे ।। ३३६—३४० ।।

छोटिकावच्छिन्नकाले बहिर्याति तथास्थितम् ।
खप्रसारणं नाम कीलनालं नियोजयेत् ।।३४१।।
विमानस्य प्रसरणे स्तम्भने च तथैव हि ।
वेगातिवेगापायेषु एतत्साङ्केतकद्भवेत् ।।३४२।।
स्तम्भनादीन् पञ्चसङ्केतान् निदर्शयितुं पुनः ।

सकीलकानि विधिवन्मुखरन्ध्राणि पञ्चधा ।।३४३।।
रवप्रसारणे कृत्वा स्थापयेत् कीलकानि हि ।
एकैककीलभ्रमणादेकैकमुखरन्ध्रकः ।।३४४।।
एकैकसाङ्केतरवो वेगान्निस्सरति क्रमात् ।
साङ्केतकस्वररवश्रवणादेव तत्क्षणात् ।।३४५।।

—चुटकी बजाने जितने समय में वैसा स्थित बाहिर निकल जाता है, शब्दप्रसारण कील को भी नियुक्त करदे, इसी प्रकार विमान के चलाने रोकने में भी कील लगावे। वेग अतिवेग और उनके कम करने को भी यह संकेत करनेवाली हो। स्तम्भन आदि पांच संकेतों को प्रदर्शित करने के लिये कीलों-सहित पांच प्रकार के मुखछिद्र शब्द प्रसारणयन्त्र में करके कीलें स्थापित करें, एक एक कील के भ्रमण से एक एक मुख छिद्र एक एक संकेतवाले स्वर शब्द श्रवण से तत्क्षण—।।३४१-३४५।।

पूर्वोक्तपञ्चसङ्केतान् स्तम्भनालाद् यान्‡ यथाक्रमम् ।
विज्ञायन्ते विशेषेण रवभेदात् पृथक् पृथक् ।।३४६।।
एतद्यन्त्रस्य विधिवत्पार्श्वयोरुभयोः क्रमात् ।
षडङ्गुलायामयुतमुन्नते तु यथाविधि ।।३४७।।
षड्विंशतिवितस्तीनां प्रमाणेन विनिर्मितौ ।
आघातनालौ सुदृढौ पश्चात् सन्धारयेत् ततः ।।३४८।।
पञ्चाङ्गुलायामलोहदण्डौ नालद्वयान्तरे ।
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं नालमानानुसारतः ।।३४९।।
आदिमध्यावसानेषु नालयोरुभयोः क्रमात् ।
परिभ्रमणचक्रकीलकान्यथ यथाक्रमात् ।।३५०।।

पूर्वोक्त पांच जिन संकेत स्तम्भनाल से यथाक्रम विशेषरूप से शब्दभेद पृथक् पृथक् जाने जाते हैं, इस यन्त्र के दोनों पार्श्वों में क्रम से ६ अंगुल लम्बाई से युक्त ऊंचाई यथाविधि २६ बालिश्त प्रमाण से बनाये दो आघातनाल सुदृढ पश्चात् लगावे, पांच अंगुल लम्बे दो लोहदण्ड दोनों नालों के नालमापानुसार अन्दर लगादे। आदि में मध्य में और अन्त में दोनों नालों की भ्रमण चक्रकीलें भी ।। ३४६—३५०।।

सन्धारयेद् दृढं तेषां परिभ्रमणतः क्रमात् ।
नालद्वयान्तरे सम्यग्दण्डाघातो भविष्यति ।।३५१।।
एतेनापि व्योमयानगमनं वेगतो भवेत् ।
सकीलवातभस्त्रिकांश्च वाताहताय हि ।।३५२।।
पूर्वोक्तनालमुखयोस्सम्यक् सन्धारयेद् दृढम् ।
तेन नालान्तरे वाताघातश्चाप्यतिवेगतः ।।३५३।।

---

‡ "सुपाँ सुपो भवन्तीति जस् स्थाने शस्" विभक्तिव्यत्ययः प्रथमा स्थाने द्वितीया ।

भवेत् तेन व्योमयानवेगं स्याद् द्विगुणं क्रमात् ।
पश्चादौष्म्यधूमकोशचतुष्पार्श्वेष्वपि क्रमात् ॥३५४॥
यथा वातोद्गमयन्त्रे शुण्डालास्सम्प्रतिष्ठिताः ।
तथैवावृत्त चक्रकीलकैस्संस्थापयेद् दृढम् ॥३५५॥

—लगादे, उनके परिभ्रमण—घूमने से दो नालों के अन्दर वाले दण्ड को आघात होगा इससे भी व्योमयान वेग से चलता है। कीलसहित वायु की भस्त्रिकाएं वात को धकेलने के लिये पूर्वोक्त दो नालमुखों में सम्यक् लगादे इससे नालके अन्दर वातका आघात अतिवेग से होगा, इससे भी व्योमयान का वेग द्विगुण हो जावे पश्चात् औष्म्य धूमकोश चारों पार्श्वों में भी क्रम से जैसे वातोद्गमयन्त्र में शुण्डाल रखे हैं वैसे ही घूमनेवाली चक्रकीलों से दृढ स्थापित करे॥३५१-३५५॥

औष्म्यधूमं पूरयित्वा शुण्डालेषु यथाविधि ।
कीलकभ्रमणाद् यस्मिन् कस्मिन् वा दिश्यथाक्रमम् ॥३५६॥
शुण्डालसाङ्केतवशात् सरलं गमनं यथा ।
भवेद् वेगेन यानस्य ततोर्ध्वमुखतः* क्रमात् ॥३५७॥
स्तम्भने गमने चैव अनुकूलं यथा भवेत् ।
सन्धारयेद् भ्रामकचक्रकीलकान् यथाविधि ॥३५८॥
शुण्डालस्य तिरोभावप्रकाशौ च यथा भवेत् ।
कीलकानि तथा तत्र सम्यक् सन्धारयेत् ततः ॥३५९॥
तृतीयवर्गताम्रस्य नालद्वयं सुशोधितम् ।
यन्त्रस्याग्निजलधूमकोशादारभ्य शास्त्रतः ॥३६०॥

औष्म्य धूम—गरम धूम को शुण्डालों में यथाविधि भरकर कील भ्रमण से जिस किसी दिशा में यथाक्रम शुण्डालसंकेत के वश से यान का सरल गमन वेगसे हो तब ऊर्ध्वमुख के क्रम से स्तम्भन में और गमन में अनुकूल जिससे हो अतः भ्रामक चक्रकीलों को लगावे, शुण्डाल के तिरोभाव—सङ्कोच और प्रकाश—फैलाव भी जिससे हो सके वैसे कीलें लगावे। तृतीय वर्ग के ताम्बे की दो नाल सुशोधित यन्त्र के अग्नि जल धूमवाले कोश से आरम्भ करके शास्त्रानुसार—

अत्युष्णवेगोपसंहारार्थं सर्वत्र पार्श्वयोः ।
संवेष्ट्य विधिवत् पश्चात् कीलकैस्सुदृढं यथा ॥३६१॥
सन्धारयेत् ततोत्युष्णवेगं नालद्वयं ग्रसेत् ।
विमानस्य पुरोभागस्थितवायुविभञ्जने ॥३६२॥
वातविभाजनचक्रकीलकान्यपि शास्त्रतः ।
संस्थापयेद् यथाकालं वातसंख्यानुसारतः ॥३६३॥
एवं चातुर्मुखौ(ो?)ष्म्यकयन्त्रं कृत्वा यथाविधि ।
विमानमध्यप्रदेशे स्थापयेत् सुदृढं यथा ॥ ३६४ ॥

* तत ऊर्ध्वमुखतः, अत्र 'ततः' शब्दस्य विसर्गलोपे पुनरेकादेशसन्धिरार्षः ।

अधोभागस्थयन्त्राणां वातधूमौ(?)ष्म्यकैः क्रमात्।
विमानस्योर्ध्वगमनं भवत्येव न संशयः ॥ ३६५ ॥

अत्यन्त उष्णवेग के उपसंहारार्थ सर्वत्र पार्श्वों में विधिवत् लपेटकर पश्चात् कीलों से सुदृढ बन्द करे पुनः अत्युष्णवेग को दो नालें ग्रसलें—रोक लें। विमान के सम्मुख भाग में स्थित वायु के विभञ्जन में वात को विभक्त करने वाली कीलों को भी शास्त्र से यथावसर वातसंख्या के अनुसार संस्थापित करे। इस चतुर्मुखी औष्म्यक यन्त्र को यथाविधि बनाकर विमानके मध्यप्रदेशमें सुदृढ स्थापित करे, अधोभागस्थ यन्त्रों—वातधूमौष्म्यकों से क्रमशः निःसंशय विमान का ऊर्ध्वगमन होता है॥ ३६१-३६५॥

पश्चाद् विमानगमने धूमादीनां यथाक्रमम्।
वेगप्रमाणं निश्चित्य गणितागमतः क्रमात्॥ ३६६॥
गमने व्योमयानस्य वेगमत्र निरूप्यते।
छोटिकावच्छिन्नकाले यन्त्राद् धूमोद्गमात् स्वतः ॥३६७॥
लिङ्कानां द्विसहस्रं च शतं पश्चात् त्रयोदश।
एतत्प्रमाणतो धूमवेगस्सञ्जायते ध्रुवम्॥ ३६८॥
तथैव वातप्रसारणयन्त्रादपि च क्रमात्।
पञ्चशतोत्तरद्विसहस्रलिङ्कप्रमाणतः ॥ ३६९॥
छोटिकावच्छिन्नकाले वातवेगः प्रजायते।
तथैव नालस्तम्भाच्च लिङ्कानां षट्शतं क्रमात्॥ ३७०॥
वायुवेगस्स्वभावेन जायते नात्र संशयः।

पश्चात् विमान के गमन में—चलने में धूम आदि का वेगप्रमाण यथाक्रम गणितशास्त्र से निश्चय करके व्योमयान के गमन में यहां वेग निरूपित किया जाता है—दिखाया जाता है। चुटकी बजाने जितने काल में धूमोद्गम यन्त्र से स्वतः दो सहस्र एक सौ तेरह २११३ लिङ्क (डिग्री) प्रमाण से धूमवेग हो जाता है, इसी प्रकार वातप्रसारणयन्त्र से भी २५०० लिङ्क (डिग्री) से चुटकी बजाने जितने समय में वायु का वेग हो जाता है ऐसे ही नालस्तम्भ से भी ६०० लिङ्क (डिग्री) वायुवेग निःसंशय स्वभाव से हो जाता है॥ ३६६—३७०॥

एवंप्रकारतो पीठस्थाधोयन्त्रैः पृथक् पृथक्॥ ३७१॥
वातौ(?)ष्म्यधूमवेगाश्च उत्पद्यन्ते क्षणान्तरात्।
एवमेव व्योमयानस्योर्ध्वभागेपि च क्रमात्॥ ३७२॥
चातुर्मुखौष्म्यकयन्त्राच्चौष्म्यवेगस्स्वभावतः।
चतुश्शतोत्तरत्रिसहस्रलिङ्कप्रमाणतः ॥ ३७३॥
छोटिकावच्छिन्नकाले जायते नात्र संशयः।
चातुर्मुखौष्म्यवेगाच्च वातधूमौष्म्यकैस्तथा॥ ३७४॥

शुण्डालैश्च तथा कीलकादिभिः प्रेरितं क्रमात् ।
घटिकावच्छिन्नकाले योजनानां चतुश्शतम् ।। ३७५ ।।
विमानं वेगतो याति नात्र कार्या विचारणा ।
एवं सुन्दरयानस्य आकाररचनाविधिः ।। ३७६ ।।
आलोड्य पूर्वशास्त्राणि यथामति निरूपितः (निरूपितम्?) ।

इसी रीति से पीठस्थ अधोयन्त्रों से पृथक् पृथक् वातौष्म्य धूम के वेग क्षण में ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार व्योमयान के ऊर्ध्वभाग में भी क्रम से चतुर्मुखी औष्म्यकयन्त्र से औष्म्यवेग स्वभावतः ३४०० लिङ्क (डिग्री) प्रमाण से वेग चुटकी बजाने जितने समय में निःसंशय हो जाता है। चातुर्मुखौष्म्य वेग से वातधूमौष्म्यकों और शुण्डालों से तथा कील आदि से प्रेरित विमान घडीमात्र काल में चार सौ योजन (१६०० कोस एवं एक घण्टे में ४००० कोस) वेग से जाता है इसमें विचार करने की बात नहीं। इस सुन्दरविमान के आकाररचना की विधि पूर्वशास्त्रों का आलोडन करके यथामति निरूपित की है ।।३७१-३७६।।

हस्तलेख कापी संख्या २०—

अथ रुक्मविमाननिर्णयः—अब रुक्मविमान का निर्णय कहते हैं—

रुक्मश्च ॥ अ० २ अधि० ४ सू० ६१ ॥

एवमुक्त्वा सुन्दराख्यविमानं शास्त्रतः क्रमात् ।
इदानीं रुक्मविमानस्संग्रहात्सम्प्रचक्षते ॥१॥

इस प्रकार सुन्दरनामक विमान शास्त्र से क्रमशः कहकर अब रुक्मविमान संक्षेप से कहते हैं ।

विमानबोधकपदद्वयमस्मिन्निरूपितम् ।
तत्रादिमपदाद् व्योमयाननाम निदर्शितम् ॥२॥
समुच्चयार्थविबोधो द्वितीयपदतस्स्मृतः ।
एवं सामान्यतः प्रोक्तस्सूत्रार्थस्संग्रहेण तु ॥३॥

विमानबोधक दो पद यहां निरूपित किए हैं उनमें आदिमपद से व्योमयान—विमान का नाम दिखलाया दूसरे पद से समुच्चयार्थ का बोध किया गया है, इस प्रकार सामान्यतः संक्षेप से सूत्रार्थ कहा अब उसका विशेषार्थ शास्त्र से क्रमशः कहा जाता है ॥२—३॥

विमानो रुक्मवर्णत्वान्नाम्ना रुक्म इतीरितः ॥४॥
राजलोहादेव रुक्मविमानमपि कारयेत् ।
पाकभेदाद् राजलोहे रुक्मवर्णविकारता ॥५॥
यथा भवेत् तथा कुर्याच्छास्त्रोक्तेनैव मार्गतः ।
अन्यथा निष्फलं याति नात्र कार्या विचारणा ॥६॥

रुक्म (सुनेहरा) वर्ण होने से विमान रुक्म नाम का कहा है । राजलोहे से ही रुक्म विमान अवश्य बनाना चाहिए, पाकभेद से राजलोह में रुक्मवर्णविकारता जैसे हो जावे वैसे शास्त्रोक्त मार्ग से बनावे अन्यथा निष्फलता को प्राप्त हो जाता है इसमें विचारणा—शङ्का न करनी चाहिए ॥४—६॥

उक्तं हि यानविन्दौ—कहा ही है यानविन्दु ग्रन्थ में—

आदौ कृत्वा स्वर्णवर्णं राजलोहस्य शास्त्रतः ।
पश्चादाकाररचनां कुर्याद् यानस्य च क्रमात् ॥७॥ इत्यादि

आदि में राजलोहे का शास्त्रविधि से स्वर्णवर्ण करके पश्चात् विमानयान की आकाररचना क्रम से करे ॥७॥

वर्णस्वरूपमुक्तं वर्णसर्वस्वे—वर्णस्वरूप कहा है वर्णसर्वस्व में—

प्राणक्षारचतुष्टयं च चणकमारण्यकं कोमलम्,
द्वात्रिंशच्छशकन्दसत्त्वममलमष्टादशांशं तथा ।
विंशच्छोदितनागमब्ध्युदितरेखामुखं षोडश,
पश्चान्माक्षिकषट्कदिव्यममलं पञ्चाननं विंशतिः ॥८॥
पारं पञ्चदशाष्टविंशदमलं क्षारत्रयं ।
विंशतिर्व्योमं सप्तदशाष्ट हंसगरदं पञ्चामृतं षोडश ।
एतान् द्रावकयन्त्रकोशकुहरे सम्पूर्य पश्चाद् यथा-
शास्त्रं द्रावकमाहरेद् द्विमुखरन्ध्राभ्यां यथापाकतः ॥९॥
पश्चात् कुण्डमुखान्तरे सुविमले तद्राजलोहं पुनः ।
मूषायां परिपूर्य तत्र विधिवत् संस्थाप्य भस्त्रामुखात् ।
सङ्गाल्याष्टशतोष्णकक्ष्यरयतस्संगृह्य पश्चात् सुधीः ।
यन्त्रास्ये वरगर्भमध्यकुहरे संपूर्य संशोधयेत् ॥१०॥
एवं कृत्वा राजलोहं पश्चात् संग्राहयेद् यदि ।
शुद्धस्वर्णवदाभाति तल्लोहं सुदृढं मृदु ॥११॥
एतेनैव प्रकर्तव्यं विमानाकारमद्भुतम् ।
अत्यन्तसुन्दरं सर्वहर्षदं भवति ध्रुवम् ॥१२॥

प्राणक्षार—नवसादर या मूत्रक्षार* ४ भाग, कोमल आरण्यक चणक—कोमल गोखरू† ३२ भाग, अमल शशकन्दसत्त्व—लोधसत्त्व १८ भाग, शोधा हुआ नाग—सीसा २० भाग, अब्धि—समुद्र में प्रकट हुआ रेखामुख—समुद्रफेन या शङ्ख ? १६ भाग, पश्चात् माक्षिक—सोनामाखीधातु ६ भाग, पञ्चानन ? (लोहा ?) २० भाग, पारा १५ भाग, विमल तीनों क्षार सज्जीखार यवक्षार सुहागा समान सब २८ भाग, अभ्रक २० भाग, हंस—रूपाधातु ? १७ भाग, गरद—वत्सनाभ—वछनाग ८ भाग, पञ्चामृत ?—दूध दही मधु शर्करा घृत ? १६ भाग, उनको द्रावक यन्त्रकोश के गुप्तस्थान में भरकर पश्चात् यथाशास्त्र पाक हो जाने पर द्रावक को दो मुखरन्ध्रों—दो मुखछिद्रों से लेले। पश्चात् शुद्ध कुण्डमुख के अन्दर उस राजलोहे को मूषा बोतल में भरकर विधिवत् स्थापित कर भस्त्रामुख से ८०० दर्जे की उष्णता के वेग से सुबुद्धिमान् संगृहीत करके यन्त्र के मुख में आवृत करनेवाले गर्भमध्य छिद्रवाले में भरकर शोधे इस प्रकार करके राजलोहे को लेले वह लोहा शुद्ध स्वर्ण जैसा लगता है मृदु दृढ हो जाता है इसी राजलोहे से विमानाकार अद्भुत करना चाहिए यह अत्यन्त सुन्दर हर्षप्रद निश्चय होता है ॥८-१२॥

अथ पीठनिर्णयः—अथ पीठनिर्णय कहते हैं—

पीठं रुक्मविमानस्य कूर्माकारं प्रकल्पयेत् ।
वितस्तिसहस्रायामं गात्रमेकवितस्तिकम् ॥१३॥

---

* नृसार नरसार—प्राण, प्राणनामक क्षार या प्राणों का क्षार मूत्र "लोहद्रावकस्तथा" (रसतरङ्गिणी)।
† चणकद्रुम चणकसदृश पत्ते फल वाला ।

यथेष्टमथवा कुर्यात् सुदृढं सुमनोहरम् ।
पीठाधोभागदेशेष्टदिक्षु पश्चाद् यथाक्रमम् ॥१४॥
वितस्तिद्वादशायामकेन्द्रस्थानान् पृथक् पृथक् ।
गणितोक्तविधानेन कल्पयित्वा यथाविधि ॥१५॥
एकैककेन्द्रस्थानेथ चञ्चूपुटमुखान् दृढान् ।
कीलकान् स्थापयेत्सम्यग्दृढमावृत्तकीलकैः ॥१६॥
पश्चादयःपिण्डचक्राण्यष्टकेन्द्रेषु युग्मतः ।
संयोजयेद् यथैकस्मिन् प्रभवेदेकसंस्थितिः ॥१७॥

रुक्मविमान का पीठ कूर्माकार बनावे, सहस्र बालिश्त लम्बा चौडा १ बालिश्त मोटा अथवा यथेष्ट सुदृढ मनोहर बनावे। पश्चात् पीठ के अधोभाग देश में आठों दिशाओं में यथाक्रम १२ बालिश्त लम्बे केन्द्रस्थानों को पृथक् पृथक् गणितोक्त विधान से यथाविधि बनाकर एक एक केन्द्रस्थान में चञ्चूपुटमुखवाले कीलों को लगावे फिर घूमनेवाली या गोल कीलों से आठ केन्द्रों में दो दो करके लोहपिण्ड-चक्रों को—स्थूलमोटे चक्रों को लगावे जिससे एक में एक की संस्थिति हो ॥ १३–१७ ॥

अयश्चक्रनिर्णयः—लोहचक्रों का निर्णय कहते हैं—

अयश्चक्रपिण्डलक्षणमुक्तं लल्लेन—लोहचक्रपिण्ड का लक्षण लल्ल ने कहा है—

वितस्तिद्वादशायामं कुङ्कुष्टाष्टकभारकम् ।
वर्तुलाकारतः कुर्यात् पिष्टपेषणयन्त्रवत् ॥१८॥ इत्यादि ॥

१२ बालिश्त लम्बा चौडा ८ कंकुष्ट ? भारवाला गोलाकार चक्की के पाट की भांति करे ॥१८॥

पश्चाच्चक्राणि विधिवच्चञ्चूपुटमुखान्तरे ।
सम्यक् सन्धारयेद्भद्रमष्टदिक्षु पृथक् पृथक् ॥१९॥
एकैकायश्चक्रपिण्डमूलकेन्द्राद् यथाविधि ।
आविद्युत्कीलपर्यन्तं नालावरणतः क्रमात् ॥२०॥
सन्धारयेच्छृङ्खलतन्त्रयस्सर्वत्र कीलकैः ।
पूर्वोक्तायश्चक्रपिण्डस्थानपार्श्वे पृथक् पृथक् ॥२१॥

फिर चक्रों–अयःपिण्डचक्रों को विधिवत् चञ्चूपुटमुख–चूंच आकार के सम्पुटरूप में आठों-दिशाओं में पृथक् पृथक् संयुक्त करे। एक एक लोहचक्रपिण्ड के मूलकेन्द्र से यथाविधि विद्युत् की कील तक क्रमशः नालावरण से शृङ्खलातन्त्रियों–जंजीररूप तारों को कीलों से पूर्व कहे लोहचक्रपिण्डस्थान के पार्श्व में पृथक् पृथक् सङ्गत करे ॥१९–२१॥

बटिणिकास्तम्भनिर्णयः—बटिणिका–बटन या घुण्डी के स्तम्भ का निर्णय—

वितस्त्यैकायामयुक्तान् चतुर्वितस्तिरुन्नतान् ।
स्तम्भान् संस्थापयेत्तेषु कीलकान् तन्त्रिवाहकान् ॥२२॥
सन्धारयेद् दृढं पश्चाच्छक्तिनालावधिक्रमात् ।
अष्टाङ्गुलायामचक्राण्युभयोः पार्श्वयोः दृढम् ॥२३॥

सतन्त्रीणि यथाशास्त्रं मध्यभागे च योजयेत् ।
आविद्युन्नालमारभ्य चक्राण्यावृत्य च क्रमात् ॥२४॥
आहृत्य शृङ्खलाकारतन्त्रीस्स्तम्भान्तरे दृढम् ।
अन्तःकीलमुखे सम्यग्योजयेत्सरलं यथा ॥२५॥

एक बालिश्त लम्बाई से युक्त मोटे चार बालिश्त ऊंचे ऊपर लम्बे स्तम्भों को संस्थापित करे, उनमें तार लेजानेवाली कीलों को भी दृढ लगावे पश्चात् शक्तिनाल के अवधिक्रम से दोनों पार्श्वों में ८ अंगुल लम्बे चौडे चक्र तारसहित यथाशास्त्र मध्य में लगावे। विद्युत् की नाल से लेकर क्रम से चक्रों को घेरकर—चक्रों के ऊपर से लाकर शृङ्खलाकार—जंजीर जैसी तारों को स्तम्भ के अन्दर भीतरी कीलमुख में सम्यक् सरल युक्त करे ॥२०-२५॥

पश्चाच्चषकवत् तस्योपरि कीलसमन्वितम् ।
संस्थापयेद् बटनिकामन्तरावृत्तकुड्मलाम् ॥२६॥
तस्मिन्नङ्गुष्ठविक्षेपादन्तस्सञ्चलनं यथा ।
तथा भ्रामकचक्राणि कीलकैस्सह योजयेत् ॥२७॥
यथा बटणिकोपर्यङ्गुष्ठविक्षेपणं भवेत् ।
तत्क्षणात् स्तम्भान्तरस्थचक्रकीलान्यथाक्रमात् ।२।८॥
परिभ्रमन्ति वेगेन विद्युत्संयोजनात् स्वतः ।
पुनर्विद्युन्नालमुखाच्चक्रकीलान्यथाक्रमम् ॥२९॥
एतत्प्रेक्षणतस्सम्यग्भ्राम्यन्ते शक्तियोगतः ।
एतेन पञ्चसहस्रलिङ्कवेगः प्रजायते ॥३०॥

फिर पात्र (गिलास आदि) की भांति उस स्तम्भ के ऊपर कील से युक्त बटनिका-बटन या घुण्डी अन्दर घूमने वाले कुड्मल-आधे खिले फूल के समानाकार वाले पेंच (चाबी) से घिरी हुई को संस्थापित करे, उसमें अंगूठे के विक्षेप से-अंगूठे द्वारा दबाने से अन्दर सञ्चलन-गति जिससे हो जावे इस रीति घूमने वाले चक्रकीलों के साथ युक्त कर दे कि जैसे ही बटन या घुण्डी के ऊपर अंगूठे का दबाव हो तो तुरन्त स्तम्भके अन्दर स्थित चक्रों की कीलें-पेंच यथाक्रम से विद्युत्के संयोगसे स्वतः वेग से घूमने लगते हैं-घूमने लगें। फिर विद्युत् के नालमुख से कीलें यथाक्रम इस प्रेंखण-झूलाने साधन से सम्यक् शक्तियोग से घूमते हैं, इससे पांच सहस्र लिङ्क (डिग्री) का वेग उत्पन्न हो जाता है ॥ २६-३० ॥

अथ विमानोड्डीयनादिनिर्णयः—अब विमान के उडने आदि का निर्णय –

एतच्छक्त्याकर्षणेन पीठाधस्ताद् यथाक्रमम् ।
आकुञ्चितान्ययःपिण्डचक्राणि प्रभवन्ति हि ॥ ३१ ॥
तच्चक्रैस्ताडितः पीठ ऊर्ध्वं गच्छति खे क्रमात् ।
पीठोपरिस्थचक्रस्तम्भस्थकीलप्रचालनात् ॥ ३२ ॥
अत्यन्तवेगतस्स्तम्भभ्रमणं प्रभवेत् क्रमात् ।

तेनोर्ध्वंगमनं वेगात् स्तम्भानां भवति स्वतः ॥ ३३ ॥
आरोहणावरोहणक्रमात् सव्यापसव्यतः ।
शक्तिसंयोजनात् सम्यग्भ्राम्यन्त्येव मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥
चक्रताडनतोधस्तात् स्तम्भाकर्षणोपरि ।
उड्डीयोड्डीय वेगेन विमानं खपथे क्रमात् ॥ ३५ ॥
यात्यूर्ध्वं सरलात् सम्यगतिगम्भीरतस्स्वयम् ।
एतेनोर्ध्वं विमानस्य खपथारोहणं भवेत् ॥ ३६ ॥

इस वेगरूप शक्ति के आकर्षण से पीठ के नीचे स्थित लोहपिण्ड चक्र खींचे हुए हो जाते हैं उन चक्रों से ताडित पीठ के ऊपर आकाश में क्रम से चला जाता है, फिर पीठ के ऊपर स्थित चक्रस्तम्भस्थ कील प्रचालन से अत्यन्त वेग से स्तम्भ का भ्रमण होता है उससे वेग से स्तम्भों का स्वतः ऊर्ध्व गमन होता है। आरोहण - ऊपर जाने अवरोहण—नीचे आने के क्रम से दाएं बाएं से शक्ति को युक्त करने से पुनः पुनः सम्यक् घूमते हैं, चक्रताडन द्वारा नीचे से ऊपर स्तम्भ के आकर्षण से विमान वेग से उड कर आकाश मार्ग में क्रम से ऊपर सम्यक् सरलता और गम्भीरता से चला जाता है इससे विमान का आकाश मार्ग में आरोहण हो जावे-हो जाता है ॥ ३१-३६ ॥

अथ गमनोपयुक्तविद्युन्नालचक्राणि—अब गमन में उपयुक्त विद्युत् की नालों के चक्र कहते हैं —

पीठस्योपरि शास्त्रोक्तसंख्यारेखानुसारतः ।
विहायैकवितस्त्यन्तरायं नालद्वयान्तरे ॥ ३७ ॥
विद्युन्नालानि विधिवत् सचक्राणि यथाक्रमम् ।
सन्धारयेद् विशेषेण ओतप्रोतात्मना ततः ॥ ३८ ॥
एकैकविद्युन्नालस्य पार्श्वयोरुभयोरपि ।
वितस्तिद्वयमायामं वितस्त्येकोन्नतं तथा ॥ ३९ ॥
कल्पयित्वा दन्तचक्राण्यथ तेषां परस्परम् ।
सम्मेलयित्वा विधिवत् कीलैस्सम्भ्रामकैस्तथा ॥ ४० ॥
विद्युत्तन्त्रीस्समाहृत्य एतत्कीलमार्गतः ।
प्रतिचक्रोपरि यथा सम्यक् सन्धारयेत् क्रमात् ॥ ४१ ॥
प्रतिविद्युन्नालमूले विद्युत्सञ्चोदनाय हि ।
वितस्तित्रयमायामं वितस्तित्रयमुन्नतम् ॥ ४२ ॥
एकैकचक्रं सरलं स्थापयेत् तन्त्रिसंयुतम् ।
विहाय विंशन्नालानि मध्ये स्तम्भं नियोजयेत् ॥ ४३ ॥

शास्त्र में कही संख्यारेखा-विचारधारा के अनुसार पीठ के ऊपर दो नालों के अन्दर एक एक बालिश्त का अन्तराय भेद-दूरी छोड कर चक्रसहित विद्युन्नालें यथाक्रम विधिवत् लगावे, विशेषतः ओत-प्रोत रूप से फिर एक एक विद्युन्नाल के दोनों पार्श्वों में भी २ बालिश्त लम्बा २ बालिश्त ऊंचे दन्त-

चक्रों–दान्तों वाले चक्र बना कर उनका परस्पर सम्मेल करके–परस्पर एक दूसरे से दान्तों द्वारा फंसा कर घूमने वाली कीलों से विद्युत् के तारों को लेकर इन कीलों के मार्ग से प्रत्येक चक्र पर क्रम से ठीक ठीक युक्त करे। प्रत्येक विद्युन्नाल के मूल में विद्युत् को प्रेरित करने के लिए ३ बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त ऊंचा एक एक चक्र तारसहित सरल स्थापित करे, २० नालों को छोड कर मध्य में स्तम्भ नियुक्त करे ॥ ३७-४३ ॥

उक्तं हि नारायणेन—कहा ही है नारायण ने—

चतुर्वितस्त्यायामं च तावदेवोन्नतं तथा।
स्तम्भं कृत्वाथ तन्मध्ये वितस्तिद्वयमानतः ॥ ४४ ॥
आस्यवत्कल्पयेत् सम्यक् त्रिधा तस्मिन् यथाविधि।
विभज्य समभागेन पश्चात् स्थानत्रये क्रमात् ॥ ४५ ॥
कीलकानि यथाशास्त्रं तत्र तत्र नियोजयेत्।
चक्रषट्कसमायुक्तं काचकङ्कुभिरन्वितम् ॥ ४६ ॥
सनालकङ्कुकावृतं तन्त्रीद्वयसमन्वितम्।
विद्युच्छक्त्याकर्षणार्थं स्थापयेत् कीलकद्वयम् ॥ ४७ ॥
स्तम्भस्य प्रथमे भागे एवं सन्धार्य कीलके।
द्वितीयभागे तच्छक्तिप्रेषणार्थं यथाविधि ॥ ४८ ॥
चक्रपञ्चकसंयुक्तं काचावरणसंयुतम्।
नालद्वयेन संयुक्तं तन्त्रीद्वयसमन्वितम् ॥ ४९ ॥
शक्तिप्रवाहतन्त्र्योर्मूलप्रदेशे त्रिदण्डकम्।
सम्प्रेषितान्तश्चषकं वेगिनीतैलसंयुतम् ॥ ५० ॥
पञ्चास्यकीलकं सम्यक् स्थापयेत् सुदृढं यथा।

४ बालिश्त लम्बा ४ बालिश्त ही ऊंचा स्तम्भ पीठ के मध्य में बना कर २ बालिश्त मान से मुख की भांति तीन प्रकार की उसमें समान भाग का विभाग करके तीन स्थानों में कीलें यथाशास्त्र वहां नियुक्त करे ६ चक्रों से युक्त काचकंकुओं–काच के मुखों (दीपरक्षकों ?) से युक्त नालसहित चर्मावरण से घिरे हुए दो तारों से युक्त दो कीलें विद्युत् शक्ति के आकर्षणार्थ लगावे। स्तम्भ के प्रथम भाग में इस प्रकार दो कीलें लगा कर द्वितीय भाग में उस शक्ति के पहुंचाने प्रेरित करने के लिए यथाविधि पांच चक्रों से युक्त काचावरणसहित दो नालों के साथ दो तारों से युक्त शक्तिप्रवाहक दो तारों के मूलप्रदेश में तीन दण्डों वाले प्रेरित किए अन्दर चषक–पात्र वेगिनी तैल जिसमें हो पांच मुख वाले कील को सम्यक् दृढ स्थापित करे ॥ ४४-५० ॥

शक्तिप्रवाहसंघट्टनेन वेगाद् यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥
तत्रत्यचक्रभ्रमणं भवेद् वेगाद् यथाक्रमात्।
तथा सन्धारयेत् कीलकानि तृतीये यथाक्रमम् ॥ ५२ ॥

प्रथमास्यं समारभ्य तृतीयास्यान्तरावधि ।
अन्योन्यसंसर्गचक्रकीलकैस्सरलं यथा ॥ ५३ ॥
सन्धार्य पश्चात् स्तम्भास्यपुरोभागे दृढं यथा ।
बृहच्चक्रं च विधिवत् स्थापयेद् गुम्फ (गम्भ ?) कीलकैः ॥ ५४ ॥
एवं प्रतिस्तम्भमूले कृमात् सम्यक् पृथक् पृथक् ।
चक्राणि स्थापयेत् तेषामुपरिष्टात् समन्ततः ॥ ५५ ॥

शक्तिप्रवाह के मेल संघर्ष से यथाकृम वेग से वहां का चकृभ्रमणवेग से हो जावे ऐसे तृतीय भाग में दो कीलें लगावे, प्रथममुखको आरम्भकर तृतीय मुखके अन्दर तक अन्योऽन्य संसर्ग कीलों से सरल लगाकर फिर स्तम्भमुख के सामने के भाग में दृढ बडा चकृ विधिवत् गुम्फ-गांठ कीलों से स्थापित करे। इस प्रकार प्रति स्तम्भमूल में कृम से पृथक् पृथक् चकृ स्थापित करे उनके ऊपर सब ओर से—॥ ५१-५५ ॥

पट्टिकां योजयेत् सम्यक् चतुरङ्गुलविस्तृताम् ।
संसर्गचक्रकीलादाविद्युद्यन्त्रमुखावधि ॥ ५६ ॥
तन्त्रीद्वयं समाहृत्य विद्युदाकर्षणाय हि ।
शक्तिप्रवाहनालस्य मुखकीले नियोजयेत् ॥ ५७ ॥
तत्कीलभ्रमणाच्छक्तिस्तन्त्रीमार्गानुसारतः ।
संसर्गचकृकीलकमार्गद्वारा यथाकृमम् ॥ ५८ ॥
समागत्यातिवेगेन स्तम्भमूलस्य कीलकम् ।
प्रविश्य(च) तत्कीलद्वारा चक्राणि भ्रमन्ति हि ॥ ५९ ॥
बृहच्चकभ्रमणातो सन्धिचक्राण्यपि क्रमात् ।
परस्परं भ्रामयन्ति नालदण्डेषु वेगतः ॥ ६० ॥

चार अंगुल चौडी पट्टिका भली प्रकार युक्त करे, संसर्ग चकृकील से लेकर विद्युद्यन्त्र के मुख तक विद्युत् के आकर्षण के लिए दो तारों को लेकर शक्ति प्रवाह नाल के मुख कील में नियुक्त करे उस कील के भ्रमण से शक्ति तारमार्ग के अनुसार संसर्ग चकृकील के मार्ग द्वारा यथाकृम अतिवेग से आकर स्तम्भमूलस्थ कील को प्रविष्ट हो उस कील के द्वारा चकृ घूमते हैं, बडे चकृ भ्रमण से सन्धिचकृ भी परस्पर कृम से नालदण्डों में वेग से घूमते हैं ॥ ५६-६० ॥

पञ्चास्यकीलके सम्यक्शक्तिस्सम्प्रविशेत् क्रमात् ।
अन्तश्चषकसंविष्टवेगिनीतैलतः पुनः ॥ ६१ ॥
तच्छक्तिर्विस्तृता वेगात् प्रति नालद्वयान्तरात् ।
सर्वत्र व्याप्य दण्डस्थसर्वचक्राण्यथाक्रमम् ॥ ६२ ॥
भ्रामयत्यतिवेगेन शक्तिचालनचक्रवत् ।
एतेन पञ्चविंशत्सहस्रलिङ्कप्रमाणतः ॥ ६३ ॥

वेगस्संजायते तस्माद् विमानं घटिकान्तरे ।
पञ्चोत्तरशतक्रोशपर्यन्तं धावति दृढम् ॥ ६४ ॥
एवं कृत्वा विमानस्य गमनाभिमुखं क्रमात् ।
दिशाभिमुखीकर्तुं कीलकान्युच्यन्तेधुना ॥ ६५ ॥

पांच मुख वाली कील में सम्यक् शक्तिक्रम से प्रविष्ट हो जावे, भीतरी पात्र में रखे वेगिनीतैल से फिर वह शक्ति विस्तृत हो वेग से दो नालों में से प्रगति करती है बाहिर जाती है सर्वत्र दण्डस्थ सब चक्रों को क्रमशः वेग से शक्तिचालन की भांति घुमाती है इससे २५ सहस्र लिङ्क (डिग्री) के प्रमाण से वेग हो जाता है उससे विमान एक घडी के अन्दर १०५ कोश दौडता है इस प्रकार विमान का गमन लक्ष्य करके दिशा को अभिमुख करने के लिए अब कीलें कही जाती हैं ॥ ६१–६५ ॥

ईशान्यादिक्रमात्पीठस्याष्टदिक्षु यथाक्रमम् ।
वितस्तीनां पञ्चदशोन्नतमायामतस्तथा ॥ ६६ ॥
वितस्तिद्वयमानं च स्तम्भं कुर्याद् दृढं यथा ।
वितस्तिदशकादेकस्तम्भवत् संख्यया क्रमात् ॥ ६७ ॥
सङ्गुण्य पीठदेशेथ यावत्संख्या भविष्यति ।
तावत्संख्यानुसारेण स्तम्भान् पूर्वोक्तवद् दृढान् ॥ ६८ ॥
कल्पयित्वाथ संस्थाप्य पञ्चकण्टा (ण्ठो ?) ज्वलान्वितान् ।
अभ्रकेन कृतान् पश्चात् तेषामुपरि शास्त्रतः ॥ ६९ ॥
यानाङ्गसर्वस्थानानि गृहकुड्यादिकानपि ।
पूर्वोक्तरुच (रु ?) क व्योमयानवत् कारयेत् क्रमात् ॥ ७० ॥
गृहोपयुक्तसामग्रचश्चाभ्रकादेव कारयेत् ।
अन्यथा निष्फलमिति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७१ ॥

पीठ की ईशानी आदि आठ दिशाओं—दिशोपदिशाओं में यथाक्रम १५ बालिश्त ऊंचा लम्बा चौडा मोटा २ बालिश्त मान में दृढ स्तम्भ करे १० बालिश्त का एक स्तम्भ जैसा संख्या से गुणा कर दश दश क्रम कर निर्दिष्ट कर पीठ देश में जितनी संख्या होगी उतनी संख्यानुसार स्तम्भ बना कर संस्थापित कर पांच कण्ट—(विद्यु त् के) केन्द्र या काण्टे झाडफानूस ज्वाला—दीप्ति—प्रकाश से युक्त अभ्रक से बने फिर उनके ऊपर शास्त्रानुसार यानाङ्गों के सर्वस्थान घर कमरे भित्ति आदि भी पूर्वोक्त रुचक—रुक्म व्योमयान की भांति क्रमशः करावे, घर की उपयुक्त सामग्री भी अभ्रक से करावे अन्यथा निष्फल है ऐसा मनीषी कहते हैं ॥ ६६–७१ ॥

तदुक्तं क्रियासारे—वह कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

शारग्राव* पञ्चविंशत् तथैव क्ष्विङ्कासत्त्वं त्रिंशतिश्चाष्टविंशद् ।
गुञ्जाक्षारं टङ्कणं द्वादशांशं रौद्रीमूलं चाष्टभागं समग्रम् ॥ ७२ ॥

* क्षारग्राव होना ठीक हैं ।

चान्द्रीपुष्पक्षारमेकांशकं च शून्यं च पश्चात् पाकशुद्धं शतांशम् ।
सम्पूर्यैतान् कूर्ममूषामुखेथ पद्मकुण्डे स्थाप्य भस्त्रामुखेन ।। ७३ ।।
सङ्गाल्याष्टशतकक्ष्योष्णवेगात् पश्चाद् यन्त्रे पूरयेद् वेगतोथ ।। इत्यादि ।।

शारग्राव—क्षारग्राव—ग्रावक्षार-पत्थर का क्षार अर्थात् चूना २५ भाग, क्ष्विङ्कासत्त्व—कसीस ? ३० भाग, गुञ्जाक्षार २८ भाग, सुहागा १२ भाग, रौद्रीमूल · शङ्कर जटा ८ भाग, श्वेत कण्टकारी के फूलों का क्षार १ भाग पश्चात् पाक शुद्ध शून्य—आकाश—अभ्रक १०० भाग इन सब को लेकर कूर्ममूषा मुख तापयन्त्र में भर कर पद्माकार कुण्ड में रख कर भस्त्रामुख से ८०० दर्जे की उष्णता के वेग से गलाकर तुरन्त यन्त्र में डाल दे ।। इत्यादि ।।

एवं कृतेऽभ्रकश्शुद्धः सर्वकार्यक्षमो दृढः ।
अत्यन्तमृदुलश्चित्रवर्णैश्च सुविराजितः ।। ७४ ।।
हर्षप्रदश्च सर्वेषां प्रभवेन्नात्र संशयः ।
स्तम्भकुड्यगृहादीनि एतेनैव प्रकल्पयेत् ।। ७५ ।।
कल्पयित्वा व्योमयाने गृहाद्याश्शास्त्रतस्ततः ।
व्योमयानं प्रेरयितुं सर्वदिक्षु यथोचितम् ।। ७६ ।।
परिवर्तनावर्तनकीलकानि यथाक्रमम् ।
यानादिमध्यान्त्यभागेष्वष्टदिक्षु यथाक्रमम् ।। ७७ ।।
तत्तत्स्थानेषु विधिवत्स्थापयेत्सुदृढं यथा ।। ७८ ।।

इस प्रकार करने पर अभ्रक शुद्ध सर्व कार्य योग्य दृढ अत्यन्त नरम अद्भुत रंगों से युक्त सम्पन्न सब का हर्षप्रद हो जावेगा इसमें संशय नहीं । स्तम्भ, भित्ति, घर-कमरे आदि इसी से करने चाहिएं । विमान में घर आदि शास्त्र से रचकर फिर विमान को सब दिशाओं में यथोचित चलाने को घुमाने लौटाने वाली कीलों को यथाक्रम विमान के आदि मध्य अन्तिम भागों में आठ दिशाओं में यथाक्रम उन उन स्थानों में विधिवत् सुदृढ स्थापित करे ।। ७४-७८ ।।

परिवर्तनावर्तनकीलकस्वरूपमुक्तं लल्लेन—घुमाने-लौटानेवाली कीलों का स्वरूप लल्ल ने कहा है—

यानसम्प्रेषणार्थाय मार्गान्मार्गान्तरं प्रति ।
परिवर्तनावर्तनकीलकानि यथाक्रमम् ।। ७६ ।।
सन्धारयेदष्टदिक्षु विमानस्य दृढं यथा ।
पूर्वापरविभागेन कर्तव्यं कीलकद्वयम् ।। ८० ।।
उभयोर्मेलनं पश्चात् कुर्यात् सम्यग्दृढं यथा ।। ८१ ।।
व्योमयानं प्रेरयितुं भवेत् तेन यथोचितम् ।
सव्यापसव्यतस्सम्यग्विमानं वेगतस्स्वयम् ।। ८२ ।।
तत्कीलकभ्रमणतो यस्माद् धावत्यहर्निशम् ।
तस्मात् परिवर्तनावर्तनकीलमितीरितम् ।। ८३ ।।

परिवर्तनावर्तनार्थं पश्चात् तस्य यथाविधि ।
पीठमूले चतुर्दिक्ष्वर्धचन्द्राकारतः क्रमात् ॥ ८४ ॥
वितस्तिद्वयमायामं वितस्तिद्वयमुन्नतम् ।
नालं कृत्वाथ विधिवत् तन्मध्ये स्थापयेत् क्रमात् ॥८५॥
चतुरङ्गुलायामलोहशलाकान् मृदुलान् ततः ।
नालान्तरस्योभयपार्श्वयोस्संयोजयेत् ततः ॥ ८६ ॥

एक मार्ग से दूसरे मार्ग के प्रति विमान को प्रेरित करने के लिये परिवर्तन आवर्तन कीलें अर्थात् घुमाने लौटाने की साधनभूत कीलों को यथाक्रम विमान की आठों दिशाओं में दृढरूप में युक्त करे। पूर्व पश्चिम के विमान से दो कीलों को लगाना चाहिए, फिर दोनों का मेल करे उससे विमान प्रेरित हो जावेगा—चलाने योग्य हो जावेगा। दाएं बाएं विमान वेग से चले-चल पडेगा। उन कीलों के भ्रमण से जिससे दिन रात दौडता है अतः परिवर्तन आवर्तन कील कहा है। परिवर्तन आवर्तन के लिये फिर यथाविधि उसके पीठमूल में चारों दिशाओं में क्रमशः अर्धचन्द्राकार २ बालिश्त लम्बा २ बालिश्त ऊंचा विधिवत् नाल बनाकर उसके मध्य में क्रम से स्थापित करे, ४ अङ्गुल मृदुल-कोमल लम्बी लोहशलाकाओं को नालों के अन्दर वाले दोनों पार्श्वों में लगावे ॥ ७९—८६ ॥

वितस्त्यायामतस्तद्वद्वितस्त्युन्नतमेव च ।
कृत्वा सरलचक्राणि तेषु सन्धारयेत् क्रमात् ॥ ८७ ॥
मृदुकङ्कुरतन्त्याथ तेषामुपरि शास्त्रतः ।
संवेष्टयेदासमन्तात् सरलं च दृढं यथा ॥ ८८ ॥
एवं क्रमेण विधिवच्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।
अर्धचन्द्राकारनालान् पीठस्य स्थापयेद् दृढम् ॥८९॥
ततो नालस्थचक्राणां भ्रमणायातिवेगतः ।
आदिमध्यावसानेषु नालानां सप्रमाणतः ॥ ९० ॥
बृहच्चक्राणि विधिवत्स्थापयेत् सुदृढं यथा ।
नालाग्रस्थबृहच्चक्रभ्रमणाद् वेगतः क्रमात् ॥ ९१ ॥
नालान्तर्गतचक्राणि भ्रामयन्ति परस्परम् ।
तद्वेगेनाथ तत्कीलशङ्कवश्च यथाक्रमम् ॥ ९२ ॥
पीठे मध्ये तथा चान्त्ये पन्थानाभिमुखं यथा ।
तथावृत्य स्वयं पश्चाद् यानमावर्तयिष्यति ॥ ९३ ॥
तस्मात् तत्पथि वेगेन विमानो धावति स्वयम् ।
तस्मादेतत्कीलकानि स्थापयेदिति वर्णितम् ॥ ९४ ॥

बालिश्तभर लम्बे बालिश्तभर ऊंचे सरलचक्र बनाकर उन में क्रम से कोमल काचकङ्कुवाले तार से संयुक्त करे उन चक्रों के ऊपर सब ओर सरल दृढरूप में लपेटे इस प्रकार क्रम से विधिवत् यथाक्रम पीठ की चारों दिशाओं में अर्धचन्द्राकार नालों को दृढ स्थापित करे। फिर नालस्थ चक्रों के

भ्रमण के लिये अतिवेग से नालों के आदि मध्य अन्त में प्रमाण से बड़े चक्र विधिवत् सुदृढ स्थापित करे। नाल के अग्र भाग में स्थित बड़े चक्र के भ्रमण से वेग से नाल के अन्दर वाले चक्र परस्पर एक दूसरे को घूमाते हैं, उस वेग से वे कीलशङ्कु—कील कांटे यथाक्रम पीठ में मध्य में अन्त में मार्गों के सम्मुख घूमते हैं उनके साथ घूम कर स्वयं विमानयान घूम जायगा अतः मार्ग में वेग से विमान स्वयं दौडता है अतः कीलों को स्थापित करे यह वर्णित किया है ॥ ८७—९४ ॥

अथ घुटिकापञ्जरनिर्णयः—अब घुटिका पञ्जर का निर्णय करते हैं—

विज्ञप्ति—यहां से अगले विषय त्रिपुरविमान से पूर्व का बहुत सा अन्य भाग मध्य में होना चाहिए (स्वामी ब्रह्ममुनि)

हस्तलेख कापी संख्या २१—

(यह हस्तलेख कापी संख्या २३ है परन्तु यह भाग (मैटर) हस्तकापीसंख्या २१ से पूर्व का है २३, फिर २२ फिर २१ होना चाहिए। २० के पश्चात् २१ जो हस्तलेख रजिस्टर में है वह वस्तुतः २३ संख्या है उसके मध्य में बहुत भाग (मैटर) शेष है वह कहां है ? कुछ पता नहीं)

त्रिपुरोथ ॥ अ० २ सू० १ ॥ १

बो० वृ०

शकुनाद्यसिंहिकान्तविमानानि यथाविधि ।
उक्त्वेदानीं त्रिपुरविमानस्सम्यक् प्रचक्षते ॥१॥
अस्य त्रिपुरविमानस्यावरणानि त्रयः कमात् ।
एकैकावरणस्यात्र पुरमित्यभिधीयते ॥२॥
पुरत्रयेण संयुक्तं विमानं त्रिपुरं विदुः ।
भास्करांशुसमुद्भूतशक्तया संचोदितं भवेत् ॥३॥

शकुन विमान को आदि बना सिंहिक विमान के अन्त तक † यथाविधि कहकर अब त्रिपुर विमान कहते हैं, इस त्रिपुर विमान के क्रम से तीन आवरण हैं एक एक आवरण का नाम पुर कहा जाता है, तीन पुरों से संयुक्त होने से विमान को त्रिपुर जानने हैं, सूर्यकिरणों से प्रकट हुई शक्ति से प्रेरित होता है चलता है ॥३॥

नारायणोपि—नारायण आचार्य भी कहते हैं—

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु स्वाङ्गभेदात् स्वभावतः ।
यस्समर्थो भवेद् गन्तुं तमाहुस्त्रिपुरं बुधाः ॥४॥

पृथिवी जलों में अन्तरिक्षों में अपने अङ्गों के भेद से स्वभावततः जो जाने को—चलने को समर्थ हो उसे ज्ञानी जन त्रिपुर कहते हैं ॥४॥

भागत्रयं भवेदस्य. त्रिपुरस्य यथाक्रमम् ।
तेषु प्रथमभागस्य सञ्चारः पृथिवीतले ॥५॥
द्वितीयभागसञ्चारो जलस्यान्तर्बहिः क्रमात् ।
तृतीयभागसञ्चारस्त्वन्तरिक्षे भवेत् स्वतः ॥६॥

---

† सिंहिक पर्यन्त २० विमान होते हैं यहां तक का वर्णन कहां है ? गुम है ?।

एकधा कीलकैस्सम्यग्भागत्रयमतः क्रमात् ।
एकीकृत्य यथाशास्त्रं चोदयेद् यदि खे स्वतः ॥७॥
एकस्वरूपतस्सम्यग्विमानस्त्रिपुराभिधः ।
साङ्केतकानुसारेण वेगात् सञ्चरति ध्रुवम् ॥८॥
पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु गमनार्थं यथाविधि ।
त्रिधा विभज्यते व्योमयानशास्त्रविधानतः ॥९॥
तेष्वादिमविभागस्य रचनाविधिरुच्यते ।
त्रिणेत्रेणैव लोहेन त्रिपुरं कारयेत् सुधीः ॥१०॥
अन्यथा निष्फलं यातीत्याहुर्लोहविदां वराः ।
तस्मादादौ त्रिणेत्राख्यलोहं सम्पादयेन्नरः ॥११॥

त्रिपुर विमान के यथाक्रम तीन भाग होते हैं उनमें प्रथम भाग का सञ्चार पृथिवी-तल पर, दूसरे भाग का गमन जल के अन्दर बाहिर क्रम से, तीसरे भाग का सञ्चार तो आकाश में स्वतः होता है। एक साथ कीलों से सम्यक् तीनों भागों को यथाशास्त्र एक करके—मिलाकर यदि आकाश में प्रेरित किया जावे तो एक स्वरूप हुआ त्रिपुर--विमान सङ्केत करनेवाले पुर्जे से वेग से निश्चित चलता है। पृथिवी पर जलों में आकाश में जाने के लिये शास्त्र से यथाविधि तीन प्रकार से विभक्त हो जाता है। उनमें प्रथम विमान की रचनाविधि कही जाती है कि त्रिणेत्र लोहे से ही बुद्धिमान् जन त्रिपुर विमान करावे, नहीं तो निष्फलता को प्राप्त हो जाता है ऐसा उत्तम लोहवेत्ता जन कहते हैं अतः आदि में त्रिणेत्रनामक लोहे को तैयार करे ॥५—११॥

त्रिणेत्रलोहमुक्तं शाकटायनेन—त्रिणेत्र लोहा कहा है शाकटायन ने—

दश रोचिष्मतीलोहः कान्तमित्रोष्ट एव च ।
षोडशांशो वज्रमुखश्चेति भागविनिर्णयः ॥१२॥
एतद्भागानुसारेण लोहत्रयमतः परम् ।
मूषामुखे विनिक्षिप्य तस्मिन् पश्चाद् यथाक्रमम् ॥१३॥
टङ्कणं पञ्च (च) तद्वत् त्रैणिकं सप्त एव च ।
एकादश श्रपणिको पञ्च माण्डलिकस्तथा ॥१४॥
रुचकः पारदश्चैव त्रीणि त्रीणि पृथक् पृथक् ।
सम्यक् संयोज्य विधिवत् कुण्डे पद्ममुखे दृढम् ॥१५॥
एकत्रिंशदुत्तरषट्शतकक्ष्योष्णवेगतः ।
त्रिमुखीभस्त्रिकात् सम्यग् गालयेदतिवेगतः ॥१६॥

१० भाग रोचिष्मतीलोहा—कान्त लोहा ?, ८ भाग कान्तमित्र लोहा—मुण्ड लोहा ?, १६ भाग वज्रमुख लोहा—तीक्ष्ण लोहा ? इस प्रकार भागानुसार तीनों लोहे मूषा बोतल के मुख में डालकर फिर उसमें सुहागा ५ भाग, त्रैणिक—त्र्यैणिक त्र्येणी शल्लकी के कांटों का क्षार ? या त्रिण यवतृण का क्षार यवक्षार ७ भाग, श्रपणिक ? ११ भाग, माण्डलिक--मण्डल--चक्रक

सामुद्रिक नल प्रसिद्ध उसका क्षार या चूर्ण ? ५ भाग, रुचक-सज्जिक्षार ३ भाग, पारा ३ भाग। इन्हें भली प्रकार मिलाकर पद्ममुख कुण्ड में ६३१ दर्जे की उष्णता वेग से त्रिमुखी भस्त्रिका से वेग से गलावे ॥१२-१६॥

तद्गलितरसं पश्चाद् यन्त्रास्ये पूरयेच्छनैः ।
समीकृतं चेन्मृदुलं केकापिच्छसमप्रभम् ॥१७॥
अदाह्यमच्छेद्यं (अत्रोट्यं) च भारविवर्जितम् ।
जलाग्निवातातपाद्यैरभेद्यं नाशवर्जितम् ॥१८॥
शुद्धं सूक्ष्मस्वरूपं च भवेल्लोहं त्रिणेत्रकम् ॥१९॥ इत्यादि

इस गलाए हुए लोहरस को यन्त्रमुख में धीरे से भर दे बराबर कर देने पर मृदु मोरपुच्छ के समान आभा नीलाभ तथा अताप्य अच्छेद्य अत्रोत्य भाररहित हो, जल अग्नि वायु धूप आदि से विकृत न होनेवाला नाशरहित शुद्ध सूक्ष्मस्वरूप त्रिणेत्र लोहा हो जावे ॥१७-१९॥

यथेष्टं कारयेत् पीठं त्रिणेत्रेण यथाविधि ।
निदर्शनार्थं पीठप्रमाणमत्र प्रचक्षते ॥२०॥
वितस्तिशतमायामं वितस्तित्रयगात्रकम् ।
वर्तुलं कारयेत् पीठं चतुरस्रमथापि वा ॥२१॥
पीठस्य पश्चिमे भागे वितस्तीनां तु विंशतिः ।
विहाय पश्चात् पीठे वितस्तिदशकान्तरात् ॥२२॥
कुर्यादशीतिसंख्याकान् केन्द्ररेखान् यथाक्रमम् ।
चक्रद्रौणिकसन्धानायाथ तत्तत्प्रमाणतः ॥२३॥
वितस्त्यशीतिदीर्घं च वितस्तित्रयविस्तृतम् ।
वितस्तिपञ्चकौन्नत्यमाकारे जलद्रोणिवत् ॥२४॥
एवं क्रमेण कर्तव्यं जलद्रोणिर्यथा तथा ।
पश्चात् सन्धारयेद् द्रो(ौ?)णीन् केन्द्ररेखासु शास्त्रतः ॥२५॥

त्रिणेत्र लोहे से यथेष्ट पीठ बनावे, यहां निदर्शनार्थ पीठप्रमाण कहते हैं। १०० बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त मोटाई में गोल या चौकोर पीठ बनावे। पीठ के पिछले भाग में २० बालिश्त छोडकर १० बालिश्त के अन्तर पर पीठ में ८० संख्या में केन्द्ररेखाएं यथाक्रम चक्रद्रौणिक चक्ररूप हण्डे पात्र--घूमने वाले पात्र जोडने के लिये प्रमाण से करे, ८० बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त चौडा ५ बालिश्त ऊंचा आकार में जलद्रोणि की भांति क्रम से करे जलद्रोणि जैसे द्रोणियों को केन्द्र रेखाओं में लगावे ॥२०-२५॥

द्रोणीनामुपरि भागे वितस्तित्रयविस्तृतम् ।
छिद्रं कुर्यादासमन्तात् सर्वत्र विधिवत् क्रमात् ॥२३॥
स्वान्तर्गतानि चक्राण्यूर्ध्वमाकृष्यातिवेगतः ।
चक्राण्यदृश्यानि यथा तथावरणतः क्रमात् ॥२७॥

चक्राधोभागमाक्रम्य स्वयं स्थित्वा यथाक्रमम् ।
पुनस्स्वस्थानमासाद्य भूमौ चक्रप्रसारणम् ॥२८॥
यथा भवेत् तथा कीलकानि तेषु प्रकल्पयेत् ।
चक्राणां कल्पयेत् पश्चादीषादण्डान् यथाविधि ॥२९॥
विद्युदाकुञ्चनार्थाय तेष्वाकुञ्चनकीलकान् ।
प्रतिदण्डे यथाशास्त्रं मध्यकेन्द्रे नियोजयेत् ॥३०॥
सार्धद्वयवितस्त्युन्नत वितस्त्यैकगात्रकम् ।
ईषादण्डप्रमाणं स्याच्चक्रमाणं (नं?) प्रकीर्त्यते ॥३१॥
वितस्तित्रयमायामं गात्रमेकवितस्तिकम् ।
षडरं वाथ सप्तारं पञ्चारं वा यथोचितम् ॥३२॥
प्रकल्प्य नेम्यां सन्धार्य मुषीकावरणं तथा ।
चक्रान्त्यभागे चतुरङ्गुलमुत्सृज्य शास्त्रतः ॥३३॥

द्रोणियों के ऊपरवाले भाग में ३ बालिश्त घेरे का छिद्र सर्वत्र विधि से करे, अपने अन्तर्गत चक्रों को अति वेग से ऊपर खींचकर अदृश्य चक्रों को जैसे तैसे आवरण से क्रमशः चक्रों के नीचले भाग को आक्रमित कर स्वयं यथाक्रम स्थित होकर पुनः अपने स्थान को प्राप्त हो भूमि में चक्रप्रमाण करना जैसे हो कीलों को उनमें लगावे । पश्चात् चक्रों के ईषादण्ड—बम—चूल दण्डों को यथाविधि विद्युत् के आकर्षणार्थ उनमें आकर्षण कीलें प्रतिदण्ड में यथाशास्त्र मध्य केन्द्र में लगावे अढाई बालिश्त मोटा ईषादण्ड का माप होना चाहिए। चक्र का माप कहा जाता है १ बालिश्त मोटा ६ अरेवाला या ७ अरेवाला पांच अरेवाला या यथोचित बनाकर नेमि में लगाकर मुषीका ? का आवरण तथा चक्र के अन्तिम भाग में ४ अंगुल छोड़कर शास्त्र से—॥२६-३३॥

रन्ध्रमन्तः प्रकर्तव्यं काचावरणतः क्रमात् ।
एवं सर्वत्र चक्राणां कारयेद् वर्तुलं यथा ॥३४॥
चक्रद्रोण्यन्तरे चक्राण्येतानि द्वादश क्रमात् ।
सन्धारयेद् यथेष्टं वा षट् चतुश्चाष्ट एव च ॥३५॥
सोमकान्ताख्यलोहस्य तन्त्रीश्शक्तचपक्रर्षणे ।
चक्रान्तस्थितरन्ध्रेषु सन्धारयेत् पृथक् पृथक् ॥३६॥
एकैकचक्रमध्येथ विद्युदाघातकीलकान् ।
संयोजयेत् ततस्तेषु छिद्रप्रसारणकीलकान् ॥३७॥
सन्धाय तच्चालनार्थं चक्रकीलमतः परम् ।
स्थापयेत् तस्योर्ध्वभागे यथा स्वाभिमुखं भवेत् ॥३८॥
साङ्केतकानुसारेण क्रमाच्चक्राणि चालयेत् ।

सर्वेषां चक्रद्रोणीनामुपरिष्ठान्तरे क्रमात् ।।३६।।
सन्धारयेत् सोमकान्ततन्त्रीद्वयमतः परम् ।
पूर्वपश्चिमदेशेथ चक्राणां सन्धिकीलके ।।४०।।

काचावरण से इस प्रकार सब चक्रों का अन्दर गोल छिद्र करना चाहिए । चक्र-द्रोणियों के अन्दर ये १२ चक्र क्रम से लगावे या यथेष्ट ६, ४, या ८, सोमकान्त लोह ?--ताम्बा ? की तारों को शक्ति के खींचने में चक्रों के अन्त में स्थित छिद्रों में पृथक् पृथक् लगादे एक एक चक्र के मध्य विद्युत् को ठोकर देने वाली प्रेरित करने वाली कीलों को लगावे फिर उनमें दिशाप्रसारण कीलों को लगाकर उनके चलाने को चक्रकील उसके ऊर्ध्व भाग में अपने सामने स्थापित करे संकेतप्रेरक साधन के अनुसार चक्रों को चलाने सब चक्रद्रोणियों के ऊपर अन्दर सोमकान्त लोह--ताम्बा ? की दो तार पूर्वपश्चिम स्थानों में और चक्रों के सन्धिकीलों में लगावे ।।३४-४०।।

आसन्धिकीलमारभ्य तन्त्र्यन्तं सर्वतः क्रमात् ।
विद्युच्छक्तयाकर्षणार्थं शलाकान् सन्नियोजयेत् ।।४१।।
सर्वचक्रद्रोण्यूर्ध्वभागेष्वपि (च) यथाक्रमम् ।
तन्त्र्यन्तर्गतशक्तिं तच्छलाकैरपकृष्य च ।।४२।।
चोदयेत् सर्वचक्राणामुपरिष्टाद् यथाविधि ।
चक्राधोभागदेशेथ चक्रान्तर्गतं तन्त्रिभिः ।।४३।।
चोदयेद् वेगतश्शक्तिं तत्तत्कीलकचालनात् ।
पर्वतारोहणे तिर्यग्गमनादौ विशेषतः ।।६४।।
चक्रोर्ध्वाधःप्रदेशस्थशक्तिवेगप्रचोदनात् ।
विमानो याति वेगेन शक्तयाकुञ्चनतः क्रमात् ।।४५।।

सन्धिकील से लेकर तार के अन्त तक सब ओर क्रम से विद्युत् शक्ति के आकर्षणार्थ शलाकाओं को लगावे सब द्रोणीचक्रों के ऊपर भागों में भी यथाक्रम तारों के अन्तर्गत शक्ति को उसकी शलाकाओं से खींच कर सब चक्रों के ऊपर यथाविधि प्रेरित करे । चक्रों के नीचले भाग में चक्रों के अन्तर्गत तारों से वेग से शक्ति को कील चला कर प्रेरित करे विशेषतः पर्वत पर चढने तिरछे चलने आदि में चक्रों के ऊपर नीचे देश में स्थित शक्ति के वेग की प्रेरणा से विमान वेग से शक्ति के खींचने से क्रमशः जाता है गति करता है ।। ४१-४५ ।।

चक्रोर्ध्वशक्त्याकर्षणेनाधश्शक्तिप्रसारणात् ।
यथा यथा प्रगन्तव्यं गच्छत्येव तथा स्वतः ।। ४६ ।।
तिर्यञ्चनादौ चक्राणां पुरस्ताच्चक्रकीलकान् ।
सन्धारयेद् यथाशास्त्रं सुदृढं सरलं यथा ।। ४७ ।।
वेगप्रचोदने सूक्ष्मकीलकद्वयमप्यथ ।
सङ्केतकीलचक्रस्योभयपार्श्वे दृढं यथा ।। ४८ ।।

सन्धारयेत् तेन शक्तिर्यावद्वेगमपेक्षितम् ।
तावत्प्रमाणवेगेन विमानो गन्तुमर्हति ॥ ४९ ॥
तत्कीलकशलाकस्थचक्रपट्टिकयोः क्रमात् ।
अनुलोमविलोमाभ्यां शक्तिमार्गमुखान्तरे ॥ ५० ॥

चक्रों की ऊपरि शक्ति के आकर्षण से नीचे वाली शक्ति के चालू करने से जैसे जैसे स्वतः गन्तव्य पर जाता ही है, चक्रों की तिरच्छी आदि गति में सामने की चक्रकीलों को सरल सुदृढ यथाशास्त्र युक्त करे, वेग से प्रेरित करने में दोनों सूक्ष्म कीलों को भी सङ्केत कील वाले चक्र के दोनों पार्श्वों में लगावे इससे जितने वेग की शक्ति आवश्यक होगी उतने प्रमाण से विमान चल सकता है उन कीलों की शलाकाओं में स्थित दो चक्रपट्टिकाओं में क्रम से अनुलोम विलोम द्वारा शक्तिमार्ग के मुख के अन्दर—॥ ४९-५० ॥

तत्तत्कालानुसारेण कीलकद्वयचालनात् ।
न्यूनाधिक्यस्थितिश्शक्तेर्यथाकामं भवेत् क्रमात् ॥ ५१ ॥
तथैव तिर्यग्गमनादौ विमानस्य शास्त्रतः ।
शक्तिप्रसारणमुखबन्धनकीलकं ततः ॥ ५२ ॥
सन्धारयेत् तेन शक्तिस्तिर्यग्गमनमेधते ।
विमानस्य गतिस्तेन तिर्यग्भवति हि ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
तत्कीलकस्यानुलोमभ्रामणात् पूर्ववत्स्वतः ।
विद्युत्प्रसारणमुखबन्धनस्यापकर्षणात् ॥ ५४ ॥
भवेत् पश्चाद् यथापूर्वं सरलाद् गमनं यथा ।
विद्युदाकर्षणार्थाय शक्तिस्थानान्तरात् तथा ॥ ५५ ॥

उस उस कालानुसार दो कीलों के चलाने से शक्ति की न्यून या अधिक स्थिति जैसी अभीष्ट हो वैसी क्रम से हो जावे, ऐसे ही विमान की तिरछी गति आदि में शास्त्र से शक्ति के प्रसारण—छोडने और मुख बान्धने की कील को लगावे इससे शक्ति तिरछी गति को प्राप्त होती है निश्चय विमान की तिर्यक्—तिरछी गति हो जाती है उस कील के अनुलोम प्रमाण से पूर्व की भांति स्वतः विद्युत् के चालू करने मुख बान्धने के साधन के खींचने से यथापूर्व सरल गमन होवे, विद्युत् आकर्षणार्थ शक्ति-स्थानों में से—॥ ५१-५५ ॥

सन्धारयेद् यथाशास्त्रं नालमेकं सचक्रकम् ।
तन्त्रीद्वयसमाविष्टं पीठमूलान्तरे क्रमात् ॥ ५६ ॥
संस्थापयेत् पञ्चमुखचक्रकीलमुखान्तरात् ।
तत्कीलमध्यस्थतन्त्रीद्वयमतः परम् (तथा) ॥ ५७ ॥
सम्मेलयेच्चक्रोर्ध्वाधरस्स्थतन्त्र्योर्यथाविधि ।
यथा प्रमाणतश्शक्तिमेतत्तन्त्रीमुखान्तरात् ॥ ५८ ॥

समाकृष्याथ विधिवच्चक्रोर्ध्वाधःप्रदेशके ।
सञ्चोदयेद् यथाकामं काचकुप्पिकमध्यतः ॥ ५६ ॥
तेन वेगात् प्रचलनं चक्राणां प्रभवेत् क्रमात् ।
पश्चाद् विमानगमनं भवेत् सांकेततस्स्वयम् ॥ ६० ॥

यथाशास्त्र चक्रसहित एक पीठ मूल के अन्दर नाल लगावे जो कि दो तारों से युक्त हो, पांच-मुख चक्रों के कीलमुखों के अन्दर से उन कीलों के मध्यस्थित दो तार संस्थापित करे चक्र के ऊपर नीचे स्थित दो तारों को यथाविधि मिलावे यथा प्रमाण शक्ति इन तारों के मुख से खींच कर विधिवत् चक्रों के ऊपर नीचे प्रदेश में यथेष्ट प्रेरित करे काचकुप्पी में से इससे वेग से चक्रों का चलना क्रमशः हो जावे पश्चात् सङ्केत साधन से स्वयं विमान का चलना हो जावे ॥ ५६–६० ॥

पश्चादावरणं कुर्याच्चक्रद्रोण्युपरिक्रमात् ।
पीठावृत्तप्रदेशस्थद्रोणीरेखा द्वयान्तरे ॥ ६१ ॥
एकैकस्तम्भवत् सर्वद्रोणीसन्धिषु शास्त्रतः ।
स्तम्भप्रतिष्ठां कृत्वाथ तेषामुपर्यथाक्रमम् ॥ ६२ ॥
शोधिताभ्रकसामग्रीसहायेन दृढं यथा ।
कुर्यादावरणं शिल्पशास्त्रमार्गानुसारतः ॥ ६३ ॥

पश्चात् चक्र द्रोणी के ऊपर क्रम से आवरण करे, पीठ के आवृत्त प्रदेश में स्थित दो द्रोणियों के रेखामध्य एक एक स्तम्भ की भांति सब द्रोणी सन्धियों में शास्त्रानुसार स्तम्भप्रतिष्ठा करके अनन्तर उनके ऊपर यथाक्रम शोधित अभ्रक सामग्री की सहायता से शिल्पशास्त्रमार्गानुसार दृढ आवरण करे ॥ ६१–६३ ॥

शुद्धाम्बरात्तद्धि ॥ अ० २, सू० २ ॥ १

बो० वृ०

विमानरचना शुद्धव्योमेनैव प्रकल्पयेत् ।
अन्यथा निष्फलं यातीत्युक्तं सूत्रे यथाविधि ॥ ६४ ॥
प्रसिद्धिद्योतनार्थाय हिकारः परिकीर्तितः ।
तस्माद् यानोम्बरेणैव कर्तव्यमिति निर्णितम् ॥ ६५ ॥

विमान की रचना शुद्ध अभ्रक से ही करनी चाहिये अन्यथा निष्फलता को प्राप्त होता है ऐसा सूत्र में कहा है प्रसिद्धि द्योतनार्थ हि शब्द कहा गया है अतः विमान अभ्रक से ही करना चाहिये यह निर्णय किया है ॥ ६४–६५ ॥

अभ्रकलक्षणमुक्तं धातुसर्वस्वे—अभ्रक लक्षण कहा है धातुसर्वस्व में—

चत्वार्यभ्रकजातिस्स्याद् ब्रह्मक्षत्रादिभेदतः ॥ ६६ ॥
श्वेताभ्रको ब्रह्मजातिः क्षत्रियो रक्तवर्णकः ।
पीताभ्रको वैश्यजातिः कृष्णश्शूद्राभ्रको भवेत् ॥ ६७ ॥

ब्रह्माभ्रकप्रभेदास्तु भवेत् षोडशधा क्रमात् ।
रक्ताभ्रको द्वादशप्रभेदेन सुविराजितः ।। ६८ ।।
वैश्यजातिस्सप्तधा स्याच्छूद्रः पञ्चदश क्रमात् ।
आहृत्य पञ्चाशद् भेदांश्शून्यस्याहुर्मनीषिणः ।। ६९ ।।

ब्राह्मण क्षत्रिय आदि भेद से अभ्रक की चार जाति हैं । श्वेत अभ्रक ब्राह्मण, रक्त अभ्रक क्षत्रिय, पीत अभ्रक वैश्य और कृष्ण अभ्रक शूद्र है। ब्राह्मण अभ्रक के १६ भेद हैं क्षत्रिय अभ्रक के १२ भेद वैश्य अभ्रक के ७ भेद और शूद्र अभ्रक १५ भेद का है। इस प्रकार मिलाकर ५० भेद अभ्रक के मनीषी जनों ने कहे हैं ।। ६६--६९ ।।

उक्तं हि शौनकीये—शौनकीय सूत्र में कहा ही है—

अथाम्बरस्वरूपं व्याख्यास्यामोऽस्य चत्वारो वर्णा ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रभेदात् । तेषां प्रभेदाः पञ्चाशत् तत्र ब्रह्मजातिष्षोडश क्षत्रियजातिर्द्वादश वैश्यजातिस्सप्त शूद्रजातिः पञ्चदशाहृत्य पञ्चाशत् तेषां नामान्यनुक्रमिष्यामः । ब्रह्माम्बरस्य रव्यम्बरभ्राजकरोचिष्मकपुण्डरीकविरञ्चिकवज्रगर्भकोशाम्बरसौवर्चलसोमकामृतनेत्रशैत्यमुखकुरन्दरुद्रास्यपञ्चोदररुक्मगर्भाश्चेति षोडश नामानि भवन्ति । अथ शुण्डीरकशाम्बररेखास्यौदुम्बरभद्रकपञ्चास्यांशुमुखरक्तनेत्रमणिगर्भकरोहिणकसोमांशककौर्मिकश्चेति द्वादश रक्ताभ्रकनामानि भवन्ति । वैश्याभ्रकस्य कृष्णमुखश्यामरेखगरलकोशपञ्चधाराम्बरीषकमणिगर्भक्रौञ्चास्य इति सप्त नामधेयानि भवन्तीति । अथ शूद्रस्य गोमुखकन्दुरकशौण्डिकमुग्धास्यविषगर्भमण्डूकतैलगर्भरेखास्यपार्वणिकराकांशुकप्राणदद्रौणिकरक्तबन्धकरसग्राहकव्रणाहारिकश्चेति पञ्चदशनामधेयानि भवन्तीति ।। ७० ।।

अब अभ्रक के स्वरूप का आख्यान करेंगे। इसके चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भेद से उनके ५० प्रकार होते हैं उनमें ब्राह्मण १६ क्षत्रिय १२ वैश्य ७ और शूद्र १५ हैं मिला कर ५० हैं, उनके नामों को कहेंगे। ब्राह्मण अभ्रक के रवि, अम्बर, भ्राजक, रोचिष्मक, पुण्डरीक, विरञ्चिक, वज्रगर्भ, कोशाम्बर, सौवर्चल, सोमक, अमृतनेत्र, शैत्यमुख, कुरन्द, रुद्रास्य, पञ्चोदर, रुक्मगर्भ ये १६ नाम होते हैं। और शुण्डीरक, शम्बर, रेखास्य, औदुम्बर, भद्रक, पञ्चास्य, अंशुमुख, रक्तनेत्र, मणिगर्भ, रोहणिक, सोमांशक, कौर्मिक ये रक्ताभ्रक—क्षत्रिय अभ्रक के नाम हैं। वैश्य अभ्रक के कृष्णमुख, श्यामरेख, गरलकोश, पञ्चधार, अम्बरीषक, मणिगर्भ, क्रौञ्चास्य ये ७ नाम होते हैं। और शूद्र अभ्रक के गोमुख, कन्दुरक, शौण्डिक, मुग्धास्य, विषगर्भ, मण्डूक, तैलगर्भ, रेखास्य, पार्वणिक, राकांशुक, प्राणद, द्रौणिक, रक्तबन्धक, रसग्राहक, व्रणहारिक ये १५ नाम होते हैं ।। ७० ।।

पुण्डरीको रोहणिकः पञ्चधारश्च द्रौणिकः ।
चातुर्वर्ण्यक्रमात् तेषु व्योमयानक्रियार्हकाः ।। ७१ ।।
चत्वार्येते विशेषेण यानसामग्र्यकर्मणि ।
शास्त्रज्ञैः बहुधा प्रोक्तास्सम्यक् श्रेष्ठतमा इति ।।७२ ।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यानमेतैः प्रकल्पयेत् ।
पूर्वोक्ताभ्रकमादाय यानसामग्रचकर्मणि ॥ ७३ ॥
आदौ संशोधयेत् सप्तदिनं शास्त्रविधानतः ।

अभ्रक के चारों वर्णों में क्रमसे पुण्डरीक, रोहणिक, पञ्चधार, द्रौणिक ये चार अभ्रक विमान-क्रिया के योग्य हैं, ये चारों विशेषरूप से विमानसामग्री के कार्य में शास्त्रज्ञों ने बहुधा श्रेष्ठ कहे हैं। अतः सर्व प्रयत्न से इनसे ही विमान कार्य करे, पूर्वोक्त अभ्रक लेकर यानसामग्री कर्म में प्रथम ७ दिन तक शोधन करे ॥७१-७३ ॥

शोधनाक्रममुक्तं संस्काररत्नाकरे—शोधनाक्रम संस्काररत्नाकर में कहा है—

स्कन्धारको शारणिकश्च पिञ्जुलो वराटिका टङ्कणकाकजङ्घिका शैवालिनो रौद्रिकक्षारसारदौवारिकोशम्बररञ्जकं च । एतान् समाहृत्य पृथक् पृथक् क्रमात् सम्पूरयेद् द्रावणयन्त्रकास्ये ॥ ७४ ॥
पृथक् पृथग्द्रावकमाहरेच्छनैः पश्चाद् घटे काचमये प्रपूरयेत् ॥ ७५ ॥
॥ इत्यादि ॥

स्कन्धारक—स्कन्धा-र—शालपर्णी में रहनेवाला क्षार या स्कन्ध-अरक=अरकस्कन्ध=पित्तपापड़े का स्कन्ध लकडी ? शारणिक—शरणा—जयन्ती (जैंत) का क्षार या प्रसारणी गन्धप्रसारणी का तैल?, पिञ्जुली—पिञ्जर=हरिताल ?, कौडी, सुहागा, काकजङ्घा—गुञ्जा ?, शैवालिनी—काई ?, रौद्रिक—रुद्रजटा, क्षार, सार—यवक्षार, दौवारिक ?, शम्बर—लोध, रञ्जक—कबीला । इनको पृथक् पृथक् लेकर द्रावक यन्त्र मुख में डाल दे पृथक् पृथक् द्रावक धीरे धीरे ले ले काच के घड़े में भर दे ॥७४-७५॥

एतेष्वेकैकजातीयद्रावकेण यथाविधि ।
अम्बरं शोधयेत् तस्मात् तद्विधिः परिचक्षते ॥ ७६ ॥
चूर्णयित्वाऽभ्रकं सम्यक् स्कन्धारद्रावके न्यसेत् ।
पाचनायन्त्रकोशेथ पूरयेत् तद्रसं पुनः ॥ ७७ ॥
त्रिदिनं पाचयेदग्नौ विद्युता त्रिदिनं पचेत् ।
समाहृत्याथ विधिवत् कांस्यपात्रे पुनर्न्यसेत् ॥ ७८ ॥
तस्मिन् शारणिकद्रावं सम्मेल्याथ दिनत्रयम् ।
आतपे विन्यसेत् पश्चात् पिञ्जुलीद्रावकं तथा ॥ ७९ ॥
सम्पूर्य भूपुटे पञ्च दिनानि स्थापयेत् ततः ।
समुद्धृत्य पुनः कांस्यपात्रे संस्थाप्य शास्त्रतः ॥ ८० ॥

इन में एक एक जातीय द्रावक से यथाविधि अभ्रक को शोधे अतः उसकी विधि कहते हैं। अभ्रक को भली प्रकार बारीक पीस कर भली प्रकार स्कन्धार द्रावक—शालपर्णी के या पित्तपापड़े के द्राव में डाल दे, पाचनायन्त्रकोश में फिर उस रस को भर दे अग्नि में तीन दिन तक पकावे विद्युत् से तीन दिन पकावे विधिवत् कांसे पात्र में फिर छोड दे उस में शारणिक द्राव-जयन्ती का द्राव

मिला कर तीन दिन तक धूप में रखे पश्चात् पिञ्जुली द्रावक भर कर भूपुट में—भूमि में छिपावे ५ दिन स्थापित करे फिर निकाल कर कांसे के पात्र में शास्त्रानुसार स्थापित करके—॥७६-८०॥

वराटिकाद्रावकं च पूरयित्वा यथाविधि ।
पाचयेद् भूधरे यन्त्रे दिनमेकमतः परम् ॥ ८१ ॥
समुद्धृत्य पुनः कांस्यपात्रे निक्षिप्य सर्षपैः ।
सम्मेल्य टङ्कणद्रावकं तस्मिन् सम्प्रपूरयेत् ॥ ८२ ॥
पश्चादर्जुनवृक्षस्य काष्ठान् सन्दाह्य यत्नतः ।
खदिराङ्गारमध्ये (तु) स्थापयेत् त्रिदिनं ततः ॥ ८३ ॥
पूर्ववत् पुनरादाय कांस्यपात्रमतः परम् ।
सम्पूरयेद् द्रावककाकजङ्घिकायाः प्रमाणतः ॥ ८४ ॥
चतुर्दश्यां तथा पौर्णमास्यां चैव यथाक्रमम् ।
राकामध्ये न्यसेद् रात्रिद्वयं पश्चात् समाहरेत् ॥ ८५ ॥

कौडी का द्राव भर कर यथाविधि १ दिन तक भूधर—भूमि के खड्डे यन्त्र में पकावे, पुनः कांसे के पात्र में डाल कर सरसों से मिला कर सुहागाद्रावक उसमें डाल दे पश्चात् अर्जुन वृक्ष के काष्ठों को जला कर यत्न से खैर के अङ्गारों के मध्य में ३ दिन स्थापित करे पुनः कांस्यपात्र को लेकर काकजङ्घिका के द्रावक से भर कर चतुर्दशी में या पौर्णमासी में यथाक्रम राका-पौर्णमासी और प्रतिपदा दो रात्रि तक रखे पश्चात् ले ले ॥ ८१—८५ ॥

पुनस्तत्पात्रमानीय संग्राह्याभ्रकमुत्तमम् ।
सम्यक् संक्षालयेदुष्णवारिणा तदनन्तरम् ॥ ८६ ॥
कांस्यपात्रे पुनः क्षिप्त्वा नीवारं मेलयेत् क्रमात् ।
पश्चाच्छैवालिनीद्रावकं तस्मिन् पूरयेत् ततः ॥ ८७ ॥
संन्यसेन्मृत्स्निकामध्ये दिनषट्कमतः परम् ।
संगृह्य पूर्ववत् सम्यक् प्रक्षाल्य तदनन्तरम् ॥ ८८ ॥
कांस्यपात्रे विनिक्षिप्य रौद्रिकद्रावकं क्रमात् ।
सम्पूर्य विधिवत् कुण्डे शुष्कगोमयपिण्डकैः ॥ ८९ ॥
पुटं दद्याद् वितस्तीनां चतुष्षष्टिप्रमाणतः ।
ततोभ्रकं समाहृत्य तिलतैले विनिक्षिपेत् ॥ ९० ॥

फिर उस पात्र को लाकर उत्तम अभ्रक निकाल कर अनन्तर भली प्रकार गरम जल से प्रक्षाल ले—धो ले पुनः कांसे के पात्र में डाल कर नीवार—नीवार नाम का धान ?, मिलावे पश्चात् शैवालिनीद्राव उस में भर दे फिर छः दिन सौराष्ट्र मृत्तिका या प्रशस्त मृत्तिका में डाले फिर पूर्व की भांति लेकर धो कर कांसे के पात्र में डाल कर क्रम से रौद्रिक द्राव में बड़े कुण्ड में विधिवत् भर कर सूखे गोमय उपलों से ६४ बालिश्त का पुट देवे । फिर अभ्रक को लेकर तिलों के तैल में डाल दे ॥८५-९०॥

न्यसेत् सार्धदिनं तस्मिन् पश्चात् संगृह्य चातपे ।
उदयास्तपर्यन्तं सन्ताप्याथ यथाविधि ॥९१॥
प्रक्षाल्य कांस्यपात्रेथ प्रक्षिपेच्छुद्धमभ्रकम् ।
क्षारसारद्रावकं च धत्तूरीबीजमिश्रितम् ॥९२॥
सम्पूर्य कुण्डलीपत्रराशिमध्ये यथाविधि ।
विनिक्षिप्य पचेत् पश्चात् पुनस्संगृह्य शास्त्रतः ॥९३॥
पूर्वपात्रे विनिक्षिप्य न्यसेद् दौवारिकद्रवम् ।
तुषाराङ्गारतस्सम्यक् पाचयित्वा दिनं ततः ॥९४॥
यदभ्रकं समाहृत्य कांस्यपात्रे निधाय हि ।
शम्बरद्रावकं तस्मिन् सम्पूर्य त्रिदिनं ततः ॥९५॥

डेढ दिन उसमें पडा रहने दे पश्चात् लेकर धूप में उदय से अस्तपर्यन्त यथाविधि तपाकर धोकर कांसे के पात्र में शुद्ध अभ्रक को डालदे धतूरे के बीज से मिश्रित क्षारसार द्रावक को कुण्डलीपत्र गिलो के पत्तों के ढेर में दबाकर डालकर पकावे फिर लेकर पूर्वपात्र में डालकर दौवारिक द्रव ? डालदे, तुषोंवाले अङ्गारों से दिनभर पकाकर उस अभ्रक को लेकर कांसे के पात्र में रखकर शम्बरद्रावक को उसमें भरकर तीन दिन ९०—९५॥

चतुरेकांशकर्पूरमभ्रके सन्निवेशयेत् ।
पश्चान्मन्थानयन्त्रस्य क्षिप्त्वा कोशमुखान्तरे ॥९६॥
मथनं कारयेदेकदिनं सम्यग्यथाविधि ।
तदभ्रकं समाहृत्य पाचयित्वोष्णवारिणा ॥९७॥
सिंहास्यवज्रमूषायां पूरयित्वा तथैव हि ।
विन्यसेद् रञ्जकद्रावं टङ्कणं त्रिपलं तथा ॥९८॥
पलत्रयं शिलाक्षारं पलमेकं तु सूरणम् ।
कंगोटकं पञ्चपलं वृषलं पलसप्तकम् ॥९९॥
कूर्मटङ्कणकं चाष्टपलं रौहिणकं दश ।
शम्बरं विंशतिपलं मुचुकुन्दं पलत्रयम् ॥१००॥

चतुर्थ अभ्रक में कांशकपूर डालदे पश्चात् मन्थान यन्त्र के कोशमुख में डालकर एक दिन भली प्रकार मन्थन करे, उस अभ्रक को लेकर गरम जल से पकाकर सिंहास्य वज्रमूषा में भरकर रञ्जक-द्रावक भरे सुहागा ३ पल (१२ तोला) शिला क्षार—चूना ३ पल (१२ तोला) सूरण—शूरणकन्द १ पल (४ तोला), कङ्गोटक ?–शीतल चीनी ? ५ पल (२० तोला), वृषल–गृञ्जन—गाजर शलजम ७ पल कूर्म ? टङ्कण सुहागा ८ पल रौहिणक–लाल चन्दन १० पल शम्बर २० पल, मुचुकुन्द–मुचुकुन्दनामक फूल का वृक्ष है उसके फूल मूल ३ पल—॥ ९६–१०० ॥

एतान् संशोध्य विधिवत् तस्मिन् सम्पूर्य मानतः ।
कुण्डे सिंहमुखे स्थाप्य इङ्गालान् परिपूर्याथ ॥ १०१ ॥
पञ्चास्यकूर्मभस्त्रेण गालयेदतिवेगतः ।
यथाष्टशतकक्ष्योष्णवेगस्स्याद् गालने तथा ॥ १०२ ॥
सम्यक् सङ्गाल्य विधिवद् यन्त्रास्ये तद्रसं न्यसेत् ।
एवंकृतेत्यन्तशुद्धं वैदूर्यसमवर्चसम् ॥ १०३ ॥
अत्यन्तलघुमच्छेद्यमदाह्यं नाशवर्जितम् ।
भवेच्छुद्धाभ्रकं तेन विमानं कारयेद् दृढम् ॥ १०४ ॥ इत्यादि ॥

—इनको विधिवत् शोधकर उसमें माप से भर कर सिंहमुख कुण्ड में रखकर अंगारों को भरकर पांच मुखवाली कूर्मभस्त्रा से अतिवेग से गलावे जिससे गलाने में ८०० दर्जे की उष्णता का वेग हो भली प्रकार गलाकर यन्त्र के मुख में उस रस-पिंघले द्रव को रख दे । ऐसा करने पर अत्यन्त शुद्ध वैदूर्यमणि के समान तेजवाला अत्यन्त हल्का अच्छेद्य अदाह्य नाशरहित हो शुद्ध अभ्रक है उस से विमान करावे ॥ १०१—१०४ ॥

एवमभ्रकसंशुद्धिक्रममुक्त्वा यथाविधि ।
इदानीं यानसामग्र्यस्सङ्ग्रहेण प्रचक्षते ॥ १०५ ॥
वितस्तिद्वयगात्रांश्च वितस्तित्रयमुन्नतान् ।
नानाचित्रसमायुक्तान् नानावर्णैर्विराजितान् ॥ १०६ ॥
दृढानशीतिसंख्याकान् स्तम्भानादौ प्रकल्पयेत् ।
एकैकस्तम्भमादाय पूर्वोक्तद्रौणिसन्धिषु ॥ १०७ ॥
सर्वत्र स्थापयेत् पश्चात् कीलकैस्सुदृढं यथा ।
द्रोणीप्रमाणमौन्नत्यान्वितस्तिदशविस्तृतान् ॥१०८॥
पट्टिकान् कल्पयित्वाथ स्तम्भानामुपरि क्रमात् ।
समाच्छाद्याथ सर्वत्रावृत्तशंकुभिरेव हि ॥ १०९ ॥
बध्नीयात् सुदृढं सम्यग् द्विमुखीकीलकैस्तथा ।
बध्नीयात्तदावरणपट्टिकांश्च यथाविधि ॥ ११० ॥

इस प्रकार अभ्रक से शुद्धिक्रम को यथाविधि कह कर इस समय यानसामग्री संक्षेप से कहते हैं, २ बालिश्त मोटे ३ बालिश्त ऊंचे भिन्न भिन्न चित्रों से युक्त नाना रंगों से विराजित दृढ ८० संख्या स्तम्भ आदि में बनाने चाहिएं, एक एक स्तम्भ को लेकर पूर्व कही द्रोणिसन्धियों में सब जगह स्थापित कर दे, पश्चात् कीलों से सुदृढ बना दे । द्रोणि का प्रमाण १० बालिश्त लम्बी पट्टिकाएं बना कर स्तम्भों के ऊपर ढक कर सर्वत्र घूमनेवाले शंकुओं से बान्ध दे तथा मुख वाली कीलों से भी बान्धे उन आवरण पट्टिकाओं को भी यथाविधि बान्धे ॥ १०५-११० ॥

यन्त्रुपवेशनार्थं सामग्रीसंस्थापनाय च ।
यथा सङ्कल्पितं कर्त्रा तथैव विधिवत् क्रमात् । १११ ॥

कुर्याच्चित्रविचित्राणि गृहाण्यस्मिन् दृढानि हि ।
यथा दृश्यं परेषां स्यात् तथावरणकीलकैः ।। ११२ ।।
कवाटान् स्थापयेत् तद्वद् वातायनमुखानपि ।
सर्वत्र गृहमध्येष्टदिक्षु शास्त्रानुसारतः ।। ११३ ।।
कीलसञ्चालनेनाशु गृहसम्भ्रमणं यथा ।
भवेत् तथावृत्तचक्रकीलकान् स्थापयेत् क्रमात् ।। ११४ ।।
प्रसारणतिरोधानं चक्राणां प्रभवेद् यथा ।
तथा कीलसन्धानं कृत्वा पश्चाद् यथाक्रमम् ।। ११५ ।।

चालक यात्रियों के बैठने के अर्थ और सामग्री रखने के लिए, जैसे कर्ता ने सङ्कल्पित किया वैसे ही विधिवत् क्रम से चित्र विचित्र घर इसमें स्थिर करे, जैसे दूसरों का दृश्य सामने आ जावे ऐसे आवरण कीलों से किवाड लगावे खिडकियों के मुख भी सर्वत्र घर के मध्य आठ दिशाओं में शास्त्रानुसार कील चलाने से शीघ्र घर का भ्रमण जिससे हो जावे वैसे घूमने वाले चक्रों की कीलें लगावे प्रसारण–खोलने और तिरोधान–बन्द होना चक्रों का हो जावे ऐसे कील को सन्धान करके यथाक्रम-।।१११-११५।।

चक्राणि स्थापयेद् द्रोणीद्वयमध्यस्थसन्धिषु ।
सम्पूरणाकर्षणार्थं तथा सञ्चोदनाय हि ।। ११६ ।।
वाताकर्षणनालानि सचक्राणि तथैव हि ।
भस्त्रिकामुखयुक्तानि विस्तृतास्यान्यथाक्रमम् ।। ११७ ।।
विंशद्विहाय सन्धिद्वयकेन्द्राण्यथाविधि ।
संस्थापयेत् ततस्तन्मुखपुरोभागतो मृदु ।। ११८ ।।
पुरोवाताघातचक्राण्यपि सर्वत्र कीलकैः ।
अधःप्रसारणे वायुं तद्वदूर्ध्वप्रचोदने ।। ११९ ।।
द्विमुखीनालचक्राणि यानावृत्तप्रदेशके ।
त्रिंशद्वितस्त्यन्तरायं कृत्वा शास्त्रप्रमाणतः ।। १२० ।।

दो द्रोणियों की मध्यस्थ सन्धियों में सम्पूरण और आकर्षण के अर्थ तथा प्रेरणा देने के लिए चक्रसहित वाताकर्षण नाल भस्त्रामुख दो सन्धियों के केन्द्र २० विस्तार में छोड कर उनके मुख के सामने भाग संस्थापित करे। सामने के वायु को आघात देने वाले चक्रों सर्वत्र कीलों से वायु को नीचे लाने ऊपर प्रेरित करने में दो मुख वाले नाल चक्रों को विमान के घिरे या घूमने वाले प्रदेश में ३० बालिश्त अन्तर छोड कर शास्त्र प्रमाण से—।। ११६–१२० ।।

सर्वत्र स्थापयेत् पश्चाद् यानाधोभागदेशके ।
वेणीतन्त्रीसमायुक्तानयःपिण्डान् यथाक्रमम् ।। १२१ ।।
विमानाकाशगमनकाले संयोजितुं क्रमात् ।
अष्टदिक्षु तथा मध्ये कीलकान् नव कल्पयेत् ।। १२२ ।।

वितस्तिसप्तकौन्नत्यं प्रथमावरणं दृढम् ।
कल्पयित्वाथ विधिवद् यावदावरणं भवेत् ॥ १२३ ॥
तावत्सर्वत्र सुदृढान् नलिकाकीलान् (?) वरान् ।
ग्रहणार्थं मध्ययानपीठस्य सुदृढं यथा ॥ १२४ ॥
कृत्वा वितस्तिदशकान्तरं सर्वत्र शास्त्रतः ।
विंशद्वितस्त्यन्तरायामं मध्यदेशे तथैव हि ॥ १२५ ॥

सर्वत्र विमान के नीचले भाग वाले देश में स्थापित करे, वेणी तन्त्री—वेणी के आकार के तारों या चिन्तासूचक तोरों को लोहपिण्डों को यथाक्रम विमान के आकाश गमन काल में जोडने को क्रम से ८ दिशाओं में तथा मध्य में उत्तम ६ कीलों को मध्य यान पीठ के ग्रहणार्थ शास्त्रानुसार १० बालिश्त का अन्तर करके मध्य देश में २० वितस्ति अन्तर पर लम्बा—॥ १२१-१२५ ॥

स्थापयेत् सुदृढं पश्चात् कीलकानां मुखान्तरे ।
सचक्रतन्त्रीर्विधिवद् योजयेत् सुदृढं यथा ॥ १२६ ॥
प्रतिकीलमुखे तन्त्र्यां चञ्चूपुटद्वयं यथा ।
न्यग्भावेनोर्ध्वमुखतः विस्तृतं स्याद् यथा तथा ॥ १२७ ॥
सम्मे(म्मि?)लीकरणं पूर्वापरभागद्वयोः क्रमात् ।
यथा भवेत् तथा तन्त्रीकीलकान् परिकल्पयेत् ॥ १२८ ॥
न्यग्गुलीकरणं चैव तद्वद्विकसनं यथा ।
छत्रीवत् प्रभवेच्चक्रकीलकान् कल्पयेत्तथा ॥ १२९ ॥
न्यग्गुलीकरणे तेषामुपरिष्टात् समन्ततः ।
प्रभवेत् पटावरणं यथा चोर्ध्वमुखान्तरात् ॥ १३० ॥

—सुदृढ स्थापित करे । पश्चात् कीलों के मुख के अन्दर विधिवत् चक्रसहित दो तारों को सुदृढ जोडे, प्रत्येक कील के मुख में तार में दो चञ्चुपुट जैसे ऐसे हो अलग होने से—पुट खुलने से ऊर्ध्व-मुख से विस्तृत हो जावे मिलाना पूर्व पिछले दोनों भागों का क्रम से जिससे वैसे तारों की कीलों को लगावे । संकुचित करना बन्द करना और उसी भांति विकसित करना खोलना छत्री की भांति हो ऐसे चक्रों की कीलों को बनावे, सङ्कोच करने बन्द करने में उनका ऊपर पटावरण समान हो जिससे ऊर्ध्वमुख अन्दर से युक्त करे ॥ १२६-१३० ॥

तथा पटं चोर्ध्वमुखे योजयेत् कीलकैस्सह ।
तिरोधानं पटस्याथ यथा स्याद् गृहविस्तृते ॥ १३१ ॥
प्रथमावरणमेवं कृत्वा पश्चाद् यथाविधि ।
द्वितीयावरणं कुर्यात् त्रिणेत्रेण मनोहरम् ॥ १३२ ॥

तथा पट को ऊपर के मुख में कीलों से लगावे, पट का हटा देना घर के विस्तार के निमित्त है । इस प्रकार प्रथमावरण बना कर पश्चात् यथाविधि दूसरा सुन्दर आवरण त्रिणेत्र लोहे से करे ॥ १३१-१३२ ॥

तदुपरि चान्यत् ॥ अ० २, सू० ३ ॥ १

बो० वृ०

प्रथमावरणस्यैवमुक्त्वाथ रचनाविधिम् ।
द्वितीयावरणरचनाविधिरस्मिन् प्रकीर्त्यते ॥ १३३ ॥
प्रथमावरणस्योपर्यथाशास्त्रं यथाक्रमम् ।
अन्यदावरणं कुर्यादिति सूत्रविनिर्णयः ॥ १३४ ॥
प्रथमावरणात् किञ्चिद्ध्रस्वमावरणं यथा ।
तथा द्वितीयावरणं कर्तव्यमिति वर्णितम् ॥ १३५ ॥
वितस्तिशतकायामं यदि स्यात् प्रथमाङ्गणम् ।
वितस्त्यशीत्यायामं स्याद् द्वितीयावरणं तथा ॥ १३६ ॥
वितस्त्यशीत्यायामं च वितस्तित्रयगात्रकम् ।
द्वितीयावरणपीठं त्रिणेत्रेणैव कल्पयेत् ॥ १३७ ॥

प्रथम आवरण की इस प्रकार रचनाविधि कह कर द्वितीय आवरण की रचनाविधि इसमें कही जाती है। प्रथम आवरण के ऊपर यथाशास्त्र यथाक्रम अन्य आवरण करे यह सूत्र का निर्णय है। प्रथम आवरण से कुछ छोटा आवरण वैसा दूसरा आवरण करना चाहिए यह कहा है, प्रथम अङ्गण-आवरण यदि १०० वालिश्त लम्बा हो तो दूसरा आवरण ८० बालिश्त लम्बा ३ बालिश्त मोटा दूसरे आवरण का पीठ त्रिणेत्र लोहे से बनावे ॥ १३३-१३७ ॥

पीठस्याधः प्रदेशेथ प्रथमावरणोपरि ।
संयोजनार्थं विधिवत् कीलकानि दृढं यथा ॥ १३८ ॥
प्रथमावरणे यावत्संख्या स्यात् तावदेव हि ।
सन्धारयेद् यथाकामं सर्वत्राधोमुखान्यथ ॥ १३९ ॥
कीलकद्वयसंयोजनार्थं शास्त्रानुसारतः ।
कीलीग्रहणयोग्यानि हस्तचक्राण्यपि क्रमात् ॥ १४० ॥
कीलपंक्त्यनुसारेणोभयत्र च यथाक्रमम् ।
कीलकानि स्थापयित्वा तेषामन्तरतस्ततः ॥ १४१ ॥
सचक्रनालान् सर्वत्र सतन्त्रीन् योजयेद् दृढम् ।
विद्युत्स्थानमुखात् तेषु विद्युत्संयोजनं यथा ॥ १४२ ॥
भवेत् तथा बृहच्चक्रकीलकं सरलं दृढम् ।
विद्युत्पात्रमुखे सार्धवितस्त्यन्तरतः क्रमात् ॥ १४३ ॥
स्थापयित्वा तदारभ्य नालचक्रोपरि क्रमात् ।
सुसूक्ष्मां मृदुलां शुद्धां कनिष्ठाङ्गुलमानतः ॥ १४४ ॥

पीठ के नीचले प्रदेश में और प्रथम आवरण के ऊपर लगाने को कीलें दृढ प्रथम आवरण में

जितनी संख्या हो उतने ही लगावे यथेष्ट सर्वत्र नीचे मुख वाली दो कीलों के लगाने को शास्त्रानुसार कीली से ग्रहण करने योग्य हस्तचक्र—मण्डूकहस्त चक्र ? भी क्रम से कील पंक्ति के अनुसार दोनों ओर यथाक्रम कीलें स्थापित करके उनके अन्दर से चक्रसहित तारों को लगावे, विद्युत् स्थान मुख से उनमें विद्युत् का संयोग जिससे हो जावे ऐसे सरल बडे चक्र की कील विद्यु त् पात्र के मुख में डेढ बालिश्त अन्दर से या अन्तर से ? स्थापित करके उससे आरम्भ कर नालचक्र के ऊपर क्रम से सुसूक्ष्म मृदु शुद्ध कनिष्ठा अंगुली के समान—॥ १३८–१४४ ॥

पट्टिकां योजयेत् कीलकान्तं सम्यग्यथाविधि ।
पश्चात् कीलकपंक्तीनां मुखसन्धिषु शास्त्रतः ॥ १४५ ॥
व्यत्यस्तहस्तवद् वेगादूर्ध्वमागत्य सर्वतः ।
पूर्वोत्तरावरणकीलकमाहृत्य पंक्तितः ॥ १४६ ॥
अन्योन्यं योजयित्वाथ बध्नीयात् सुदृढं यथा ।
*ततोर्ध्वमुखसर्पास्यकीलकानि, पृथक् पृथक् ॥ १४७ ॥
संस्थापयेत् ततस्सर्वकीलकभ्रमणाय हि ।
पूर्वोक्तविद्युत्पात्रस्य पुरोभागस्थकीलकात् ॥ १४८ ॥
तदन्तर्गतबृहच्चक्रभ्रमणं भवेद् यथा ।
तथा प्रसारयेद् विद्युच्छक्ति तदुपरि क्रमात् ॥ १४९ ॥
शक्तिवेगानुसारेण तच्चक्रभ्रमणं भवेत् ।
एतच्चक्रस्य भ्रमणं दशवारं यथा भवेत् ॥ १५० ॥
तत्पुरोभागस्थचक्रभ्रमणं वेगतो भवेत् ।
तेन नालस्थचक्राणि सर्वाण्यपि यथाक्रमम् ॥ १५१ ॥
भ्रामयन्ति वेगेन कीलपंक्तिमुखावधि ।

—पट्टिका लगावे कील के अन्त में यथाविधि, पश्चात् कीलपंक्तियों के मुख सन्धिस्थानों में शास्त्र से उलटे हाथ वाले वेग से ऊपर सर्वतः आकर पूर्वोत्तर के आवरण की कीली को लेकर पंक्ति से एक दूसरे में मिला कर सुदृढ बान्ध दे फिर ऊर्ध्वमुख सर्पास्य कीलें पृथक् पृथक् संस्थापित करे फिर सब कीलों के भ्रमण के लिए पूर्वोक्त विद्यु त्पात्र के सम्मुख भाग में वर्तमान कील से उसके अन्दर के बड़े चक्र का भ्रमण जिससे हो जावे वैसे उसके ऊपर विद्यु त् शक्ति को प्रसारित करे शक्ति के वेगानुसार वह चक्रभ्रमण हो जावे। इस चक्र का भ्रमण दश वार जिससे हो जावे। उसके सामने वाले चक्र का भ्रमण वेग से हो इससे नालस्थ सब चक्र भी कीली पंक्ति के मुख तक वेग से घूमते हैं ॥ १४५–१५१ ॥

पश्चादूर्ध्वमुखतस्सर्पास्यकीलकमार्गतः ॥ १५२ ॥
तच्छक्ति चोदयेद् वेगात् तेन कीलकान्तरात् स्वयम् ।
तत्कीलहस्तस्सर्वत्र अनुलोमविलोमतः ॥ १५३ ॥
ऊर्ध्वमागत्य वेगेनावरणद्वयकीलकान् ।

* तत ऊर्ध्वं० एकादेशसन्धिरार्षः ।

समाहृत्याथ सम्मेल्य बध्नाति सुदृढं यथा ॥ १५४ ॥
पूर्वोत्तरावरणयोः सन्धिसम्मेलनं यथा ।
विद्युदाकर्षणेनाशु प्रभवेत् सर्वतः क्रमात् ॥ १५५ ॥
तथा पञ्चास्यमायूरकीलकानि नियोजयेत् ।
सन्धिसम्मेलनं तेन प्रभवेन्नात्र संशयः ॥ १५६ ॥
तत्पृथक्करणार्थाय पुनः कालानुसारतः ।
सर्वत्र शक्त्यपकर्षणकीलानपि पूर्ववत् ॥ १५७ ॥
शक्तिप्रचोदनयन्त्रेष्वेव संस्थापयेत् क्रमात् ।

पश्चात् ऊर्ध्वमुख से सर्पास्य कील मार्ग से उस शक्ति को वेग से प्रेरित करे उससे स्वयं कील के अन्दर से वह कील हाथ सर्वत्र अनुलोम विलोम से ऊपर आकर वेग से दो आवरणों की कीलों को पकड़ कर मिला कर सुदृढ बान्धता है जिससे पूर्व और उत्तर आवरण में सन्धि का सम्मेलन—मेल संयोग विद्युत् के आकर्षण से शीघ्र सब ओर क्रम से हो जावे वैसे पञ्चास्य—पञ्चमुख वाली मायूर कीली मोर के आकार के पेंच को लगावे, उससे सन्धि सम्मेलन हो जावे इसमें संशय नहीं। फिर कालानुसार अलग करने के लिए सर्वत्र शक्त्याकर्षण—शक्ति को खींचने वाली कीलों को भी पूर्व की भांति शक्तिप्रेरक यन्त्रों में ही क्रम से संस्थापित कर दे ॥ १५२–१५७ ॥

१५८ का पूर्वार्द्ध विषय अधूरा रहा, अतः कुछ श्लोक मध्य में अन्य होकर पश्चात् हस्तलेख कापी संख्या २२ पश्चात् २१ वस्तुतः कापी २३ का भाग (मैटर) होना चाहिये ।

कापी संख्या २२—

(यह हस्तलेख कापीसंख्या २२ है त्रिपुरविमान का शेष प्रतीत होता है जो हस्तलेख कापी २३ वस्तुतः कापी २१) के पीछे जाना चाहिए—

जलान्तर्गमने पूर्वावरणस्य यथाविधि ।।१।।
सर्वचक्रोपसंहारं कृत्वा पश्चाद् यथाक्रमम् ।
चक्रद्रोण्यावरणं प्रकुर्याद् यानादधः क्रमात् ।।२।।
जलनिर्बन्धनार्थाय आमूलाग्रं यथाविधि ।
कुर्यादावरणं क्षीरीपटतस्सुदृढं यथा ।।३।।
वितस्त्यायामतस्तद्वद् वितस्त्यर्धघनं तथा ।
मण्डूकहस्तवत् कुर्याच्चक्राणि सुदृढान्यथा ।।४।।
चतुरङ्गुलगात्रांश्च द्वादशाङ्गुलमुन्नतान् ।
लोहदण्डान् कल्पयित्वा तेषामग्रे यथाविधि ।।५।।
मण्डूकहस्तचक्राणि योजयेत् कीलकैस्सह ।

(त्रिपुर विमान के) जल के अन्दर जाने के निमित्त पूर्व आवरण—पृथिवी पर चलने वाले आवरण के सब चक्रों का उससंहार—संकोच करके उनके गतिक्रम को रोककर पश्चात् यथाक्रम विमान के नीचे चक्रद्रोणी चक्रों के आधारस्थान का आवरण करे जल के बान्धने के लिये आगे पीछे तक यथाविधि क्षीरीवृक्षों के दूध का गोन्द से बने पट से सुदृढं आवरण करे। १ बालिश्त लम्बे चौडे आधे बालिश्त मोटे चक्र मेण्डक के हाथ के समान बनावे, ३ अंगुल ऊंचे लम्बे लोहदण्डों को बनाकर उनके आगे यथाविधि मण्डूकहस्तचक्रों को कीलों से युक्त करे—।।१-५।।

सर्वत्र चक्रद्रोणीनां पार्श्वयोरुभयोरपि ।।६।।
द्रोण्यन्तर्गतचक्राणां सन्धिस्थानसमानतः ।
संस्थापयेल्लोहदण्डान् सचक्रांश्च यथाविधि ।।७।।
सुदृढान् सरलान् चक्रकीलकान्तर्गतान्यथ ।
तथा दण्डद्वयं चक्रसंयुतं कीलकैस्सह ।।८।।
आहृत्य पूर्वोक्तचक्रदण्डसन्धिमुखान्तरात् ।
विमानपुरतस्तद्वत्पार्श्वयोरुभयोरपि ।।९।।

सलिलोत्क्षेपणार्थाय स्थापयेत् कीलकैर्दृढम् ।
शक्तिसञ्चोदनादादिकीलकभ्रमणं भवेत् ॥१०॥

—सर्वत्र चक्रद्रोणियों के दोनों पार्श्वों में भी। द्रोणियों के भीतरी चक्रों के सन्धिस्थान की सहायता से सरल चक्रकीलों के अन्तर्गत चक्रसहित लोहदण्डों को संस्थापित करे। चक्र-संयुक्त कीलों से दो दण्डों को पूर्वोक्त चक्रदण्डसन्धिमुख के अन्दर से निकालकर विमान के सामने से दोनों पार्श्वों से जल के हटाने के लिये कीलों से दृढ लगावे, इस प्रकार शक्तिप्रेरणा से आदि कीलों—पेचों का भ्रमण होगा ॥९—१०॥

तच्चक्रवेगात्सर्वेषां चाक्राणां भ्रमणं भवेत् ।
जलस्योत्क्षेपणं तेन आसमन्ताद् यथाक्रमम् ॥११॥
प्रभवेदतिवेगेन तस्माद् यानः प्रधावति ।
एवं क्रमेण विधिवदूर्ध्वावरणपार्श्वयोः ॥१२॥
सन्धारयेन्नलाघातचक्राणि सुदृढान्यथ ।
ऊर्ध्ववाताकर्षणार्थं क्षीरीपटविनिर्मितान् ॥१३॥
षडङ्गुलायामवातनालान् द्रावकशोधितान् ।
पूर्वोक्तप्रथमावरणस्थसर्वगृहान्तरात् ॥१४॥
ऊर्ध्वावरणोर्ध्वमुखपर्यन्तं सरलं यथा ।
सन्धाररयेद् दृढं पश्चात् तन्मुखेषु यथाविधि ॥१५॥

उस चक्रवेग से सब चक्रों का भ्रमण हो जावे उससे जल का उत्क्षेपण ऊपर हटाना सब ओर से यथाक्रम वेग से होकर विमानयान दौडता है, इस प्रकार क्रम से विधिवत् ऊपर के आवरण के दोनों पार्श्वों में नाल को आघात पहुंचाने वाले सुदृढ चक्र ऊपर के वायु को खींचने के लिये लगावे क्षीरीपट से बने द्रावक शोधित ६ अंगुल लम्बे चौडे वात-नालों को पूर्वोक्त प्रथम आवरणस्थ सब घरों—कमरों (चक्र कोणों) के अन्दर से ऊपर के आवरण के ऊपर वाले मुख तक सरल लगावे, पश्चात् उन मुखों में यथाविधि—॥११-१५॥

प्रदक्षिणावर्तलोहमुखानि स्थापयेत् ततः ।
वातपूरणकीलानि तत्तत्पार्श्वे नियोजयेत् ॥१६॥
ऊर्ध्ववाताकर्षणार्थं सीत्कारीकीलकान्यपि ।
सन्धारयेद् विशेषेण सर्वत्र सुदृढं यथा ॥१७॥
नालपूरितवायुश्च सीत्कार्याकर्षणोद्भवः ।
द्वितीयावरणमारभ्य प्रथमावरणावधि ॥१८॥
यथा प्रसरणं वेगात्प्रभवेत्सर्वतोमुखम् ।
तथा संयोजयेच्चक्रकीलकानि यथाक्रमम् ॥१९॥

शक्तिसञ्चोदनात्तत्कीलकचक्रस्य भ्रामणम् ।
तेन वातद्वयं सम्यक् क्रमादावरणद्वये ॥२०॥
सम्पूर्यत्यतिवेगेन यन्तॄणां तेन भूरिशः ।
सुखावहं भवेत् तस्मिन् सर्वेषां युगपत् क्रमात् ॥२१॥

घूमने वाले लोहमुख स्थापित करे फिर वातपूरककीलों को उनके पार्श्वों में लगावे, ऊपर की वायु के खींचने को सीत्कारी सीत्—वायुचूषण करने वाली कीलों को भी सर्वत्र विशेषरूप से लगावे, सीत्कारी के आकर्षण—से प्रकट हुआ वायु नाल में भरा हुआ द्वितीय आवरण से लेकर प्रथम आवरण की अवधि तक होता है, उसका जैसे सर्वतोमुख वेगसे प्रसार हो वैसा यथाक्रम कील युक्त करे। शक्ति के प्रेरण से उस कीलचक्र का घूमना होता है, इससे वायुएं क्रम से दोनों आवरणों में अतिवेग से भर जाती हैं इससे उसमें सब चालक और यात्रियों को एक साथ बहुत सुखद होवे—होता है ॥१६-२१॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वातनालान्नियोजयेत् ।
वातनालावरणद्वयमध्ये यथाविधि ॥२२॥
संस्थाप्य पश्चादावरणोर्ध्वपार्श्वे समं यथा ।
दक्षिणोत्तरभागेषु चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥२३॥
विकासनोपसंहारकीलकान् चक्रसंयुतान् ।
सुदृढान् सरलांश्चैव स्थापयेच्छक्तिवत्क्रमात् ॥२४॥
पूर्वोत्तरावरणयोस्सन्धिस्थाने यथाविधि ।
एकैकावरणस्याथ पृथक्करणहेतुकान् ॥२५॥
जटातन्त्रीसमायुक्तचक्रकीलकान् पृथक् पृथक् ।
सर्वत्र स्थापयेत् सम्यग्वितस्तिदशकान्तरे ॥२६॥

अतः सर्वप्रयत्न से वातनालों को लगावे, दोनों वातनालावरणों के मध्य में यथाविधि संस्थापित करके पश्चात् आवरण के ऊपर पार्श्व में भी समान दक्षिण उत्तर भागों में चारों दिशाओं में यथाक्रम विकासन—फैलाने उपसंहार-संकोच करने वाली कीलों को चक्रसहित दृढ सरल शक्ति की भांति स्थापित करे पूर्वोत्तर आवरण के सन्धिस्थान भी यथाविधि एक एक आवरण के पृथक् करने के हेतुरूप जटा तारों—जटारूप में परस्पर ऐंठा पाए हुए तारों से युक्त चक्रकीलों को पृथक् पृथक् सर्वत्र १० बालिश्त के अन्दर स्थापित करे ॥२२—२६॥

शक्तिसञ्चोदनात् कीलचक्राणां भ्रमणं यथा ।
तथा तन्त्रिं समाहृत्य शक्तिस्थानाद् यथाक्रमम् ॥२७॥
चक्रकीलकमूलान्तं सम्यक् सञ्चोदयेद् दृढम् ।
तेन विद्युत्प्रसरणं कुर्यादुक्तप्रमाणतः ॥२८॥
तच्छक्तिचोदनात्कीलचक्राणां भ्रमणं भवेत् ।
तस्मादावरणभेदः पृथक् पृथग् यथाक्रमम् ॥२९॥

युगपत्प्रभवेत्सम्यक् पृथिव्याकाशमार्गतः ।
यथेष्टं वेगतश्चावरणौ यन्तुं भवेत् स्वतः ॥३०॥

शक्ति की प्रेरणा से कीलचक्रों का भ्रमण जैसे हो वैसे शक्तिस्थान से—मीटर तार को लेकर यथाक्रम चक्र की कील के मूलतक भली प्रकार प्रेरित करे उससे उक्त प्रमाण से विद्युत् का फैलाव करे, उस शक्तिप्रेरण से कीलचक्रों का भ्रमण होवे। इससे पृथक् पृथक् पृथिवी और आकाश के मार्ग सम्बन्धी आवरणों का भेद एक साथ हो जावे फिर यथेष्ट दोनों आवरणों में वेग से जाना हो सके ॥२६–३०॥

पश्चाद् द्वितीयावरणोपरि शास्त्रप्रमाणतः ।
यन्त्रुपवेशनार्थाय वस्तुप्रक्षेपणाय च ॥३१॥
गृहाणि कल्पयेच्चित्रविचित्राणि यथाक्रमम् ।
वातायनकवाटाद्याः पूर्वावरणवत्क्रमात् ॥३२॥
यथादृश्यं भवेद् बाह्ये कर्तव्यास्तत्र(च)तथा ।
पश्चादावरणकुड्यानां समन्ताद् यथाक्रमम् ॥३३॥
सर्वत्र कारयेत् पीठावरणाग्रे दृढं यथा ।
वितस्तिसप्तकौन्नत्यं गात्रे त्वर्धवितस्तिकम् ॥३४॥
सर्वत्र कुड्यप्रमाणमेवं शास्त्रे निरूपितम् ।
तृतीयावरणाद् विद्युत्संग्रहार्थं यथाविधि ॥३५॥
विद्युत्पूरकपात्रेण संयुतं तन्त्रिपूर्वकम् ।
पश्चाद्भागगृहे स्तम्भद्वयं स्थापयेत्सुदृढम् ॥३६॥

पश्चात् दूसरे आवरण के ऊपर शास्त्रप्रामाण से चालक और यात्रियों के बैठने के लिये चित्रविचित्र कमरे बनावे खिडकी किवाड आदि पूर्व आवरण की भांति ऐसे करने चाहिएं जिससे बाहिर का दिखलाई पड जावे फिर सब ओर आवरण भित्तियों का भी पीठ के अग्र में दृढ ७ बालिश्त मोटा सर्वत्र भित्ती का प्रमाण ऐसा शास्त्र में निरूपित किया है। तीसरे आवरण से विद्युत् के संग्रहार्थ विद्युत्पूरक पात्र से संयुक्त तारसहित पिछले भाग में कमरे में दो स्तम्भ दृढरूप से लगादे—॥३१–३६॥

ध्वजस्तम्भं पुरोभागे स्थापयेत् सुदृढं यथा ।
घण्टाद्वयं च तन्मूले कांस्यलोहविनिर्मितम् ॥५८॥
यन्तॄणां कालसङ्केतनिर्णयार्थं यथाविधि ।
कर्तुं घण्टारवं तत्र स्थापयेत् सरलं दृढम् ॥३८॥
वेणीतन्त्रिं समादाय गृहकुड्योपरि क्रमात् ।
सर्वत्र योजयेत् पश्चात् सकीलकं सरलं यथा ॥३९॥
अत्यन्तानर्थकार्याणि यदा यत्र भवेत्† तदा ।

† भवेत्=वचनव्यत्ययः ।

हस्तात् संगृह्य तत्रत्यवेणीतन्त्रि प्रकर्षयेत् ।।४०।।

विमान के सामने वाले भाग में ध्वजस्तम्भ सुदृढ स्थापित करे, उस स्तम्भ के मूल में दो घण्टे भी कांसे लोहे के बने हुए चालक और यात्रियों के कालसङ्केत के अर्थ घण्टानाद करने को वहां सरल स्थापित करे, वेणीतन्त्री—चिन्ता सूचिका* डोरी जैसी तार कीलसहित को लेकर घर—कमरे की भित्ति के ऊपर क्रम से सब सरल जगह लगावे। अत्यन्त अनर्थकार्य जब जहां हो वेणीतन्त्रि को खींच ले—।। ३७—४० ।।

तेन विज्ञायते कृत्यं शीघ्रं यानाधिकारिणा ।
ततो यानाधिकारी तु वेगादागत्य तद् गृहम् ।। ४१ ।।
विचार्य तत्रत्यानर्थकारणं न्यायतस्स्वयम् ।
समाधानं करोत्यस्माद् वेणीतन्त्रि नियोजयेत् ।।४२।।
भाषाकर्षणयन्त्राणि भावाकर्षणकान्यपि ।
दिक्प्रदर्शकयन्त्राणि कालप्रमाकान्यपि ।। ४३ ।।
शीतोष्णप्रमापकयन्त्राण्यपि विशेषतः ।
सतन्त्रीकीलकैस्सम्यक् पूर्वपश्चिमयोः क्रमात् ।। ४४ ।।
संस्थापयेत् ततोऽत्यन्तवातवर्षातपादिभिः ।
अत्यन्तोपद्रवं व्योमयानस्य प्रभवेद् यदि ।। ४५ ।।
तन्निवारयितुं यन्त्रत्रयं पश्चाद् यथाविधि ।

इस से यानाधिकारी द्वारा जान लिया जाता है, तब वह यानाधिकारी शीघ्र उस कमरे में आकर और अनर्थकारण का युक्ति से विचार कर समाधान करता है अतः वेणीतन्त्री लगानी चाहिए। भाषण को खींचने वाले यन्त्र, भाव को खींचने वाले यन्त्र, दिशाप्रदर्शक यन्त्र, कालमापक यन्त्र, शीत और उष्णता को मापने वाले यन्त्र भी विशेषतः तारों और कीलों के साथ आगे पीछे लगावे—संस्थापित करे। फिर अत्यन्त वात वर्षा आतप—धूप आदि से विमान का अत्यन्त बिगाड हो तो उसके निवारणार्थ तीन यन्त्र पीछे यथाविधि—।।४१—४५।।

पूर्वपश्चिमयोश्चैव तथा शिखरपार्श्वयोः ।। ४६ ।।
संस्थापयेत् क्रमात् सम्यक् पृथक् पृथग्यथाक्रमम् ।
श्लोकस्थादिपदात् सम्यग्घिमसंहारकादयः ।। ४७ ।।
प्रोक्तास्स्युः पालनार्थाय विमानस्य यथाक्रमम् ।
उक्तं हि यन्त्रसर्वस्वे यन्त्रत्रयं यथाविधि ।। ४८ ।।
सर्वेषां सुखबोधाय तान्येवात्र प्रचक्षते ।
आस्यवातनिरसनयन्त्रं तद्वन्मनोहरम् ।। ४९ ।।

---

* "वेणृ चिन्तायाम्" (भ्वादि०)

सूर्यातपोपसंहारयन्त्रं चैव ततः परम् ।
अति वर्षोपसंहारयन्त्रं चेति त्रिधा स्मृतम् ॥५०॥

आगे पीछे तथा शिखर और दोनों पार्श्वों में क्रमशः पृथक् पृथक् संस्थापित करे। "वातवर्षातपादि" (४५) श्लोक में आदिपद से हिमसंहारक शीतनाशक आदि ये सब विमान के रक्षार्थ यथाक्रम कहे गये हैं। तीनों यन्त्र यन्त्रसर्वस्व में यथाविधि कहे हैं। सबके सुगम ज्ञान के लिये वे यहां कहते हैं जोकि त्र्यास्यवातनिरसनयन्त्र—तीन मुखवाला वायुनिकालने का यन्त्र, दूसरा सूर्यातपोपसंहार यन्त्र—सूर्य की घूप को रोकने वाला यन्त्र, तीसरा अतिवर्षोपसंहार यन्त्र—अति वर्षा का प्रतिकार करने वाला यन्त्र, यह तीन प्रकार के कहे हैं ॥४६-५०॥

प्रोक्तं शास्त्रे यथा तेषामाकाररचनादयः ।
तथा संगृह्य विधिवत् संग्रहेणात्र वर्ण्यते ॥५१॥
आदौ त्र्यास्यवातनिरसनयन्त्रं यथाविधि ।
प्रोच्यते शास्त्रतस्सम्यक् संग्रहेण यथामति ।
वारुणेनैव लोहेन तद्यन्त्रं परिकल्पयेत् ॥५१॥
इति यन्त्रविदां वादः यन्त्रशास्त्रे निरूपितः ।

शास्त्र में उनके आकार रचना आदि जैसे कहे हैं वैसे एकत्र कर संक्षेप से यहां वर्णित करते हैं। प्रथम त्र्यास्यवातनिरसनयन्त्र—तीन मुख वाला वायु निकालने वाला यन्त्र यथाविधि शास्त्र से यथामति संक्षेप से कहा जाता है कि वारुण लोहे से उस यन्त्र को बनावे। यह यन्त्रवेत्ताओं का वाद—वक्तव्य विषय यन्त्रशास्त्र में निरूपित किया है ॥५१-५२॥

वारिपङ्कविषारिटङ्कणजालिकाभ्रविशोदरान् ।
वारिपञ्चकक्षारसप्तकक्षोणमञ्जुलगोधरान् ॥५३॥
वारुणास्यकपार्वणारुणकाकतुण्डकभूधरान् ।
वारुणाभ्रकक्षारसूरणकुण्डलीमुखलोधरान् ॥५४॥
वारिकुड्मलशारिकारसपञ्चवाणसहोदरान् ।
वार्धिपञ्चकमाक्षिकाष्टकवातकङ्कणिकोदरान् ॥५५॥
वालुकाञ्जनकुक्कुटाण्डककार्मुखीमललोद्धृकान् ।
वीरुधारससिंहिकामुखकूर्मजङ्घमसूरिकान् ॥५६॥
शुद्धानेतान् समाहृत्य मूषायां परिपूर्याथ ।
स्थापयित्वा पद्ममुखकुण्डे सम्यग् यथाविधि ॥५७॥
पञ्चास्यभस्त्रिकात् सप्तशतकक्ष्योष्णवेगतः ।
गालयित्वाथ यन्त्रास्ये तद्रसं पूरयेच्छनैः ॥५८॥
ऋज्वीकरणयन्त्रस्थकीलकैस्तद्रसं क्रमात् ।
समीकृतं चेन्मृदुलं धूम्रवर्णं तथैव हि ॥५९॥

अत्यन्तलघुवातातपाद्यैरच्छेद्यमेव च ।
प्रभवेद् वारुणं लोहं सुदृढं सुमनोहरम् ॥६०॥
त्र्यास्यवातनिरसनयन्त्रं तेन प्रकल्पयेत् ।
आदौ कुर्याल्लोहशुद्धिं पश्चादाकारकल्पनाम् ॥६१॥

वारिपङ्क‡—सुगन्धवाला का मूल ? विषारि—करञ्जुवा, सुहागा, जालिका—लोहा, अम्र—अम्लवेतस, विषोदर—विषतिन्दु—कुचला ?, वारिपञ्चकक्षार–अभ्रकक्षार या समुद्र लवण ? या जलक्षार, सामुद्रिक लवण ५ भाग, सप्तकक्षोण—सप्तशोण—७ भाग सिन्दूर, मजीठ, गोधर—मनःशिला ? वारुणास्यक—वरना वृक्ष के मूल का सत्त्व ?, पार्वण अरुण—अर्क ?, काकतुण्ड—काला अगर, भूधर—पर्वत ?, वारुणाभ्रक श्वेताभ्रक, क्षार—सञ्जीक्षार, कुण्डलीमुख –गुडूचीसत्त्व या कौञ्चमूल ?, लोधर—लोध, वारिकुड्मल—सुगन्ध वाला फूल, शारिकारस—शालिचावल का रस या अनन्तमूल का रस ? पञ्च, बाणसहोदर ? वार्द्धिपञ्चक—सीसा ५ भाग, स्वर्णमाक्षिक ८ भाग, वातक—पटशण या मूर्वालता, किणि-कोदर-कंगुनी मालकंगनी ? वालुका–रेता, अञ्जन–सुरमा या रसौंत, कुकुटाण्डक-शल्मली बीज या मुर्गी के अण्डे ?, कामुखीमल-कामुकीमल —खदिरमल—कत्था, लोध, वीरुधा रस ? सिंहिकामुख—कटेली सत्त्व या मूल, कूर्मजङ्घ—कोई ओषधि ?, मसूरिक ? इन सब शुद्ध वस्तुओं को मूषा मृत्तिकादि से बनी विशिष्ट बोतल में भरकर पद्ममुखकुण्ड में यथाविधि रखकर पांचमुखवाली भस्त्रा से ७०० दर्जे की उष्णता वेग से गलाकर यन्त्रमुख में उस द्रवरस को धीरे से भरकर ऋजुकरणयन्त्र में स्थित कीलों से उस रस को क्रम से बराबर किया हुआ मृदुल धूम्ररंगवाला, अत्यन्त हलका वायु धूप आदि से अच्छेद्य हो जावे यह वारुण लोहा अच्छा दृढ सुन्दर है त्र्यास्यवातनिरसनयन्त्र इससे बनाना चाहिए, प्रथम लोहशुद्धि करे पश्चात् आकाररचना करे ॥५३–६१॥

शुद्धिक्रममुक्तं क्रियासारे—शुद्धिक्रम क्रियासार में कहा है—

शुण्डीरद्रावकात् सम्यक् पाचनायन्त्रतः क्रमात् ।
पाचयेत् त्रिदिनं पश्चात् कुट्टिणीयन्त्रतः पुनः ॥६२॥
पटवत्कारयेत् सम्यक् पट्टिकां सुदृढं यथा ।
वातारिकन्दनिर्यासं कृत्वा पश्चाद् यथाविधि ॥६३॥
तत्पट्टिकोपर्यङ्गुलप्रमाणेन समग्रतः ।
विलेप्य तापनायन्त्रे तापयेत् त्र्यामांमात्रकम् ॥६४॥
पश्चात् संगृह्य विधिवन्मृत्सारं वागुरं तथा ।
जिन्मिश्रितफणिक्षीरं समभागं यथाक्रमम् ॥६५॥
भाण्डे निक्षिप्य विधिवत्पाचनायन्त्रतः क्रमात् ।
पाचयेद्दिनमेकं पश्चात् संग्राहयेच्छनैः ॥६६॥

---

‡ वरपिङ्क
† त्रिया–त्र्या छान्दस इकारलोपः 'यन्त्राण्यथाक्रमम्' की भाँति ।

शुण्डीरद्रावक—हस्ती शुण्डी वृक्ष के रस से पकाने के यन्त्र से ३ दिन पकावे पश्चात् कुट्टिणी यन्त्र से पट–वस्त्र की भांति सम्यक् सुदृढ पट्टिका बनावे, वातारिकन्द के निर्यास—सूरणकन्द के ? गान्द चेप से बनाकर पश्चात् यथाविधि उस पट्टिका के ऊपर १ अंगुल लेप करके तापयन्त्र में तीन प्रहर तपावे पश्चात् विधिवत् लेकर मृत्क्षार––सौराष्ट्र मृत्तिका या रहक्षार ?, वागुर—वागुरा—क्रमरक, जिन्मिश्रित ? फणिक्षीर अफीम या फणि ओषधि का दूध समान भाग यथाक्रम पात्र में डालकर विधिवत् पाचनायन्त्र से १ दिन तक पकावे फिर लेले—॥६२–६६॥

निर्यासं प्रभवेल्लाक्षारसवद्रक्तवर्णतः ।
तन्निर्यासेनाथ सम्यक् पट्टिकां लेपयेत् क्रमात् ॥६७॥
पुनश्च तापनायन्त्रे तापयेद् याममात्रकम् ।
पुनः संगृह्य तल्लोहमातपे शोषयेद्दिनम् ॥६८॥
ततः कण्टकहेरण्डधवलोदरचारकान् ।
तिलांश्च समभागेन मेलयित्वा यथाविधि ॥६९॥
तैलाहरणयन्त्रेण तैलमाहृत्य तत्परम् ।
तत्पट्टिकां लेपयित्वा दद्यात् सूर्यपुटे क्रमात् ॥७०॥

निर्यास लाक्षारस की भांति लाल रंग वाला हो जावे, उस निर्यास से पट्टिका को लेप दे पुनः तापनायन्त्र में १ प्रहरभर तपावे फिर उस लोहे को धूप में दिनभर सुखावे। गोखरू, हेरण्ड ? धवलोदर—धव या धव और लोदर—लोधर—लोध्र—लोध, चारक––पियाल, तैल निकालने के यन्त्र से तैल निकाल कर उस पट्टिका पर लेप करके सूर्यपुट में दे दे–धूप में रखदे–॥६७–७०॥

दिनत्रयमतस्सम्यगङ्गारे तापयेद् दिनम् ।
पश्चात् कङ्कोलनिर्यासमेकाङ्गुलप्रमाणतः ॥७१॥
लेपयित्वा मणीन् सम्यक् शुद्धान् वातकुठारकान् ।
अङ्गुष्ठमात्रान् तस्मिन्नासमन्ताद् योजयेत् क्रमात् ॥७२॥
तत्समादाय विधिवत् खदिराङ्गारकुण्डके ।
न्यसेद् यामत्रयं तेन वज्रवत् प्रभवेत् स्वयम् ॥७३॥
एतल्लोहेन कवचं यानमानानुसारतः ।
कृत्वा मूले तथा मध्ये चान्ते चैव यथाक्रमम् ॥७४॥
प्रसारणतिरोधानकीलकानि न्यसेत् ततः ।
अन्तःप्रावरणे नालतन्त्रीमूलाद् यथाविधि ॥७५॥

तीन दिन तक। फिर अंगार में दिन भर तपावे, कंकोल—शीतलचीनी के गोन्द का लेप एक अंगुल मोटा करके सम्यक् शुद्ध अंगुष्ठ परिमाणवाली वातकुठारक मणियों को उसमें सब ओर क्रम से लगावे फिर उसे लेकर विधिवत् खैर अंगारों के कुण्ड में तीन प्रहर तक रख दे उससे वज्र जैसा हो जावे, इस लोहे से यान के मापानुसार कवच बनाकर मूल में मध्य में और अन्त में यथाक्रम

खोलने और बन्द करने की कीलों को लगावे फिर यथाविधि अन्दर वाले आवरण (परदे) में—नालतारों के मूल से—॥७१-७५॥

यथाशक्ति प्रसरणं भवेत् सम्यक् तथा क्रमात् ।
विद्युद्यन्त्रं समारभ्य अन्तःप्रावरणावधि ॥७६॥
तन्त्रीमेकां समाहृत्य नालकीलान्तरे क्रमात् ।
संयोजयेत् तेन विद्युद् व्याप्य सर्वत्र वेगतः ॥७७॥
पट्टिकोपरि विन्यस्तमणिगर्भान्तरे क्रमात् ।
स्वयं प्रविश्य तच्छक्त्या मिलिता सती वेगतः ॥७८॥
पट्टिकोपरि सर्वत्र व्याप्य सच(ञ्च?)लतां व्रजेत् ।
महाप्रलयकालीनवायुवद् वेगतः क्रमात् ॥७९॥
प्रचण्डमारुतस्सम्यग्विमानोपरि वीजति ।
तदा तद्वायुवेगस्तम्भनं कृत्वा समग्रतः ॥८०॥
त्रिधा विभज्य तद्वायुं प्रेषयेदूर्ध्वतोम्बरे ।

यथाशक्ति क्रमशः प्रसार हो जावे । विद्युद्यन्त्र से लेकर भीतरी आवरण तक एक तार को लेकर नालकील के अन्दर क्रम से जोडे उससे सर्वत्र विद्युत् वेग से व्याप्त होकर पट्टिका के ऊपर लगी मणियों के अन्दर गर्भ में स्वयं प्रविष्ट होकर उस शक्ति से मिली हुई वेग से पट्टिका के ऊपर सर्वत्र व्याप्त होकर गति को प्राप्त हो जावे । पुनः महाप्रलयकालीन वायु की भांति वेग से प्रचण्ड वायु खूब विमान के ऊपर घूमती है तब उस वायु के वेग का समग्र स्तम्भन करके तीन प्रकार से विभक्त कर उस वायु को ऊपर आकाश में फेंक दे ॥ ७६-८० ॥

एतद्वातप्रेषणार्थं यानस्योपरि शास्त्रतः ॥ ८१ ॥
सचक्रकीलकैस्सम्यक् सीत्कारी भस्त्रिकादिवत् ।
सर्पास्यकीलतृतीयं कल्पयित्वा यथाविधि ॥ ८२ ॥
संस्थापयेत् सुसरलं दृढं चावृत्तशङ्कुभिः ॥
वायुस्स्वभावा*नुसारादूर्ध्वं गच्छेद् यथाक्रमम् ॥ ८३ ॥
तदा सम्भ्रामयेत् सर्पास्यकीलकत्रयं क्रमात् ।
पश्चाद् वेगेन तद्वायुं पूर्वोक्तास्यत्रयं ततः ॥ ८४ ॥
सर्पवद् वायुमाकृष्य तत्तद्भागानुसारतः ।
स्वमुखेनैव वेगेनोर्ध्वं खे प्रेषयति स्वतः ॥ ८५ ॥
एतेन वायुर्निश्शेषं लयं याति खमण्डले ।
तस्मादपायं वातेन यानस्य न भवेद् ध्रुवम् ॥ ८६ ॥

* स्वभागानु (हस्तलिखितपाठः) ।

इस वायु को फेंकने के लिए शास्त्रानुसार यान के ऊपर चक्रसहित कीलों से सीत्कारी भस्त्रिका की भांति सर्पमुखवाली तीन कीलों—पेंचों को यथाविधि बनाकर सरल दृढ गोल या घूमनेवाले शंकुओं से संस्थापित कर दे, वायु स्वभावानुसार यथाक्रम ऊपर चला जावेगा तब तीनों सर्पमुखी कीलों—पेंचों को घुमावे पश्चात् पूर्वोक्त तीनों सर्पमुख सर्प की भांति वायु को खींच कर उस उस के भागानुसार स्वमुख से ही वेग से ऊपर आकाश में फेंक देता है इससे वायु सर्वथा आकाशमण्डल में लय को प्राप्त हो जाता है अतः वायुद्वारा विमान का नाश या विगाड निश्चित न हो ॥ ८१–८६ ॥

तस्माद् यानस्य वातापायविनाशो भविष्यति ।
अनायासाद् याति पश्चाद् विमानस्सरलं यथा ॥ ८७ ॥
अतो विमानावरणत्रयेप्येवं प्रकल्पयेत् ।
वातोपसंहारयन्त्रमेवमुक्त्वा यथाविधि ॥ ८८ ॥
अथ वर्षोपसंहारयन्त्रमद्य प्रचक्षते ।
वर्षोपसंहारयन्त्रं क्रौञ्चकेनैव प्रकल्पयेत् ॥ ८९ ॥

अतः विमान यान वातसम्बन्धी उपद्रव का अनायास विनाश हो जावेगा, पश्चात विमान सरलता से गति करता है चलता है उडता है। अतः विमान के तीनों आवरणों में ऐसा करे। इस प्रकार यथाविधि वातोपसंहार यन्त्र कह कर अब वर्षोपसंहार यन्त्र कहते हैं, वर्षोपसंहार यन्त्र क्रौञ्चक-लोह से बनावे ॥ ८७–८९ ॥

उक्तं हि क्रियासारे—कहा ही है क्रियासार ग्रन्थ में—

यद्द्रवप्राणनशक्तीर्जलस्यापहरेत्स्वतः ।
तत् क्रौञ्चिकलोहमिति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ९० ॥
वर्षोपसंहारयन्त्रमतस्तेनैव कल्पयेत् । इत्यादि ॥

जिससे कि जल की द्रव (पतलेपन) प्राणन (गीला करना) शक्तियों को नष्ट करदे, उसे क्रौञ्चिक लोह मनीषी कहते हैं वर्षोपसंहार यन्त्र अतः इससे बनावे ॥ ९० ॥

यथोक्तं यन्त्रसर्वस्वे क्रौञ्चलोहविनिर्णयः ॥ ९१ ॥
तथैवात्र प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चिकस्य यथाविधि ।
ज्योतिर्मुखं त्र्यम्बकं च हंसतुण्डं सुधारकम् ॥ ९२ ॥
वसुरुद्रार्काब्धिभागान् तथैव च पुनः क्रमात् ।
टङ्कणं सैकतं चूर्णमौर्वारं रुरुकं तथा ॥ ९३ ॥
पटोलकं वार्ध्युषिकं चैते सप्त यथाक्रमम् ।
वसुवेदार्काग्निबाणतारशैलविभागतः ॥ ९४ ॥
संयोज्य मूषास्यमध्ये स्थापयेत् पद्मकुण्डके ।
द्वादशोत्तरपञ्चशतकक्ष्योष्णप्रमाणतः ॥ ९५ ॥

जैसा कि यन्त्रसर्वस्व में क्रौञ्चिक लोह निर्णय है वैसे ही यहां मैं यथाविधि क्रौञ्चिक का कथन करूंगा। ज्योतिर्मुख–चित्रक वृक्ष का मूल ८ भाग, त्र्यम्बक–ताम्बा ११ भाग, हंसतुण्ड–हंसराजमूल ?

१२ भाग, सुधारक–सुधार कपूर ७ भाग, पुनः सुहागा ८ भाग, सैकत–श्वेतकण्टकारी का सत्त्व या रस या रेत ? ४ भाग, चूना १२ भाग, कक्कडी खरबूजा के बीज या तैल ३ भाग, रुरुक–हरिणशृङ्ग या रुरुक कोई ओषधि या पारा ५ भाग, पटोल–परवल ५ या २७ भाग, वाध्युषिक–समुद्रफेन या द्रोणीलवण १ भाग ? ये सात पदार्थ मिला कर मूषामुख कृत्रिम बोतल में रख दे पद्मकुण्ड में ५१२ दर्जे की उष्णता प्रमाण से—॥ ९१--९५ ॥

गालयित्वातिवेगेन त्रिमुखीभस्त्रिकामुखात् ।
समीकरणयन्त्रास्ये तद्रसं पूरयेच्छनैः ॥ ९६ ॥
एवं कृतेत्यन्तमृदु मधुवर्णं दृढं रुचम् ।
वर्षविच्छेदनकरं वर्षवातातपाग्निभिः ॥ ९७ ॥
अभेद्यमुष्णगर्भं च विषनाशकरं शिवम् ।
जलद्रवप्राणनाख्यशक्त्याकर्षणदीक्षितम् ॥ ९८ ॥
प्रभवेत् कौञ्चिकं लोहं सर्वजन्तुविषापहम् ।
एतल्लोहेन कर्तव्यं यन्त्रं वर्षोपसंहारकम् ॥ ९९ ॥
तुलसीरुक्मपुङ्खाग्नित्रिजटापञ्चकण्टकी ।
एतेषां बीजतैलेन लोहं सन्ताप्य शास्त्रतः ॥ १०० ॥

त्रिमुखी भस्त्रामुख से वेग से गला कर समानीकरण यन्त्र के मुख में उस पिंघले रस को धीरे से भर दे ऐसा करने पर अत्यन्त मृदु मधुरंगवाला दृढ चमकदार वर्षा का विच्छेद करने वाला वर्षा वायु धूप से भेदन न करने योग्य उष्णस्वभाव विषनाशक कल्याणकर जल का द्रव(पतलापन) प्राणन (गीलापन) नामक शक्तियों के आकर्षण की शक्ति से युक्त कौञ्चिक लोहा सब जन्तुओं के विष का नाशक है। इस लोहे से वर्षोपसंहारक यन्त्र बनाना चाहिये। तुलसी, रुक्म, धतूरा, नागकेसर ?, शरपुंखा, चित्रक, त्रिजटा—बिल्व, पञ्चकण्टकी–? के बीजों के तैल से लोहे को गरम करके—॥ ९६--१०० ॥

पश्चाद् यन्त्रं यथाशास्त्रं कल्पयेन्नान्यथा भवेत् ।
तल्लोहं कुट्टिणीयन्त्रात् पट्टिकां कारयेत् ततः ॥ १०१ ॥
वितस्तिद्वयमायामं षड्वितस्त्युन्नतं तथा ।
एकैकस्मिन्नेकनालं यथा संयोजितुं भवेत् ॥ १०२ ॥
कल्पयेत् सुदृढान् नालान् यावद्यानोन्नतं तथा ।
विमानावरणस्याग्रे नालसंयोजनाय हि ॥ १०३ ॥
वितस्तित्रयमायामनालान् पश्चाद् यथाक्रमम् ।
सन्धारयेदासमन्तात् सकीलान् सुदृढं यथा ॥ १०४ ॥
तथैव यानोर्ध्वभागेप्येवमेव नियोजयेत् ।
चणनिर्यासमादाय नालानामुपरि क्रमात् ॥ १०५ ॥

पश्चात् यथाशास्त्र यन्त्र (वर्षोपसंहार यन्त्र) बनावे तो ठीक होगा। उस लोहे को कुट्टिणी यन्त्र से पट्टिका के रूप में बना दे। २ बालिश्त लम्बा ६ बालिश्त ऊंचा एक एक में एक नाल जैसे संयुक्त

कर सके ऐसे सुदृढ नालों को बनावे जितना ऊंचा विमान हो, विमान के आवरण के आगे नाल लगाने के लिए तीन बालिश्त लम्बे नाल यथाक्रम लगावे यान के पीछे यथाक्रम कील के साथ लगावे वैसे ही विमान के ऊपर भी लगावे चणनिर्यास—चने का गोंद ? नाल के ऊपर क्रम से—।। १०१--१०५ ।।

एकाङ्गुलप्रमाणेन सम्यक् संलेपयेत् ततः ।
वज्रगर्भद्रावकेण(न?) पुनस्तदुपरि क्रमात् ।। १०६ ।।
त्रिवारं लेपयेत् तेन वज्रवत् सुदृढं भवेत् ।
तन्नालोपरि सर्वत्र द्वादशाङ्गुलमन्तरम् ।। १०७ ।।
पृथक् पृथक् कल्पयित्वा सिञ्जीरवज्रमिश्रितम् ।
विन्यस्य यामार्धकालं पावकेन प्रतापयेत् ।। १०८ ।।
द्रवप्राणनशक्त्याकर्षणदक्षान् जलस्य हि ।
अङ्गुष्ठमात्रान् पञ्चास्यमणीन् व्याघ्रवंशकरीन् ।।१०९।।
पूर्वोक्तसिञ्जीरवज्रोपरि सन्धारयेद् दृढम् ।
पश्चान्नालान् समाहृत्य व्योमयानोपरिक्रमात् ।। ११० ।।
ऊर्ध्वाधोभागनालस्थमुखरन्ध्रेषु कीलकैः ।
अष्टदिक्षु क्रमात् सम्यग्योजयेत् सुदृढं यथा ।। १११ ।।

—एक अंगुल प्रमाण से सम्यक् लेप करे, फिर वज्रगर्भद्रावक—वज्रद्रुम स्नुही (थूहर) द्राव दूध से या उसके बीज रस या वज्रबीजक—लताकरञ्ज क्षार रस से ३ बार लेप करे वज्र जैसा दृढ हो जावे। उस नाल के ऊपर १२ अंगुल के अन्तर पर पृथक् पृथक् बना कर सिञ्जीरवज्र ? से मिश्रित रख कर आधे प्रहर अग्नि से तपावे, जल का द्रव प्राणनशक्ति के आकर्षण में समर्थ अंगूठे के परिमाण में व्याघ्रवंशकरी पञ्चास्य मणियों—सिंह से उत्पन्न मणियों—गन्धमार्जार के अण्डकोष ? को सिञ्जीर वज्र के ऊपर लगा दे फिर नालों को लेकर विमान के ऊपर क्रम से ऊपर नीचे की नालों के मुखछिद्रों में आठ दिशाओं में कीलों से सम्यक् दृढ लगा दे ।। १०६--१११ ।।

प्रसारणोपसंहारकीलकान् चक्रसंयुतान् ।
एकैकनालमूलप्रदेशे संस्थापयेत् क्रमात् ।। ११२ ।।
विद्युद्यन्त्रं समारभ्य याननालान्तरावधि ।
काचनालान्तरादेकतन्त्रीमाहृत्य शास्त्रतः ।। ११३ ।।
संयोजयेत् सर्वनालान्तरे सम्यग्यथाक्रमम् ।
पश्चान्नालेष्वष्टदिक्षु तन्त्र्या विद्युद् यथाविधि ।। ११४ ।।
शनैस्संप्रेषयेद् वेगात् तेन शब्दः प्रजायते ।
मणिशक्तिस्ततो वेगात् समागत्य यथाक्रमम् ।। ११५ ।।

प्रसारण और उपसंहार करने वाली चक्रसहित कीलों को एक एक नाल के मुखस्थान में क्रम से संस्थापित कर दे, विद्युद्यन्त्र से लेकर विमान की नाल के अन्दर तक काचनाल के भीतर से एक तार को शास्त्रानुसार सब नालों के अन्दर सम्यक् यथाक्रम पश्चात् नालों में आठ दिशाओं में तार से

विद्युत् यथाविधि धीरे से वेग से प्रविष्ट हो जावे उससे शब्द उत्पन्न होता है। मणिशक्ति वेग से यथाक्रम आकर—॥ ११२–११५ ॥

विद्युच्छक्तिं समाहृत्य नालानामुपरि क्रमात् ।
आसमन्ताद् व्यापयित्वा स्वस्मिन् सन्धारयेत् ततः ॥११६॥
शक्तिद्वयं मिलित्वाथ सर्वत्र मणिषु: क्रमात् ।
प्रविश्य वेगात् प्राणनद्रवशक्तीर्विशेषतः ॥ ११७ ॥
द्वेधा विभज्योर्ध्वमुखं स्वतो भूत्वा यथाक्रमम् ।
विमानोपरि सर्वत्र व्याप्यतेथ स्वशक्तितः ॥ ११८ ॥
तत्रत्यवातावरणमाक्रम्य स्वेन तेजसा ।
वायुमण्डलमध्यस्थद्रवप्राणनयोः क्रमात् ॥ ११९ ॥
द्वेधा विभज्यते शक्तिं तेन वायुर्लघुत्वताम् ।
प्राप्य मेघजलासारस्थितशक्तिद्वयं क्रमात् ॥ १२० ॥

—विद्युत् शक्ति को लेकर क्रम से नालों के ऊपर सब ओर व्याप्त होकर अपने अन्दर धारण कर ले फिर दोनों शक्तियां—मणिशक्ति और विद्युत् शक्ति मिल कर सर्वत्र मणियों में प्रविष्ट होकर वेग से प्राणन द्रव शक्तियों को विशेषतः दो भागों में करके स्वतः ऊर्ध्वमुख होकर यथाक्रम विमान के ऊपर सर्वत्र स्वशक्ति से व्याप जाती हैं वहां के वातावरण—वायु के घेरे को या वायुमण्डल पर अपने तेज से आक्रमण कर उस वायुमण्डल के मध्य में स्थित क्रम से द्रव—पतलापन और प्राणन–गीलापन रूप में स्थित शक्ति को दो रूपों में विभक्त कर देती है उससे वायु हल्केपन को प्राप्त हो मेघजलप्रपात की दोनों शक्तियों—द्रव और प्राणन शक्तियों को क्रम से—॥ ११६–१२० ॥

वेगेनाकर्षितुं शक्तो न भवेद् बलहीनतः ।
वर्षमेघपुरोवातव्याप्तिर्यानोपरि क्रमात् ॥ १२१ ॥
पतत्यब्*दातिवेगेन तदा तत्रत्य वायुना ।
संसर्गः प्रभवेत् पश्चात् परस्परविरोधतः ॥ १२२ ॥
तस्य द्रवप्राणनाख्यशक्तिद्वयमतः परम् ।
द्विधा विभज्यते तस्माद् वर्षं संशाम्यति क्रमात् ॥१२३॥
तेन यानस्य विच्छित्तिर्न भवेत् तु कदाचन ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यन्त्रं वर्षोपहारकम् ॥ १२४ ॥
विमानोपरि संयोज्यमिति शास्त्रनिर्णयः ।
यन्ता सम्यग्विदित्वैतद्रहस्यं यानमुत्सृजेत् ॥ १२५ ॥
अन्यथा निष्फलं याति विमानश्च विनश्यति ।
वर्षोपसंहारयन्त्रमेवमुक्त्वा यथाविधि ॥ १२६ ॥

* छान्दसः पाठः पतति यदा ।

सूर्यातपोपसंहारयन्त्रमद्य प्रचक्षते ।
सूर्यातपोपसंहारयन्त्रं शास्त्रविधानतः ॥ १२७ ॥
आतपाशनलोहेन कर्तव्यमिति निर्णितम् ।

वेग से खींचने—लेने को समर्थ न हो सके बलहीन होने से। अतः बरसने वाले मेघ का पुरोवात—पुर्वा हवा की व्याप्ति विमान के ऊपर कूम से अतिवेग से जब गिरती है तब वहां की विमान सम्बन्धी अनुकूल बनाई वायु के साथ संसर्ग-संघष टक्कर हो जावे पश्चात् परस्पर विरोध से फिर उस पूर्व वायु में जल की द्रवशक्ति-पतलापन की शक्ति और प्राणन शक्ति-गीलेपन की शक्ति दोनों पृथक् पृथक् हो जाती हैं तब वर्षा शान्त हो जाती है इससे कभी भी विमान की क्षति न होगी, अतः सर्वप्रयत्न से वर्षोपसंहार यन्त्र विमान के ऊपर लगाना चाहिये यह निश्चय है। विमान का चालक इस रहस्य को भली प्रकार जान कर विमान को चलावे अन्यथा निष्फलता को प्राप्त होता है और विमान विनष्ट हो जाता है। वर्षोपसंहार यन्त्र इस प्रकार यथाविधि कह कर सूर्यातपोपसंहार को अब कहते हैं, सूर्यातपो-पसंहार यन्त्र शास्त्रविधान से आतपाशन लोहे से करना चाहिए यह निर्णय है॥ १२१-१२७॥

तदुक्तं क्रियासारे—यह क्रियासार ग्रन्थ या प्रकरण में कहा है—

आतपाशनलोहेन सूर्यातपनिवारणम् ॥ १२८ ॥
तस्मादातपसंहारयन्त्रं तेनैव कल्पयेत् ॥ इति
एतल्लोहस्वरूपं तु लोहतन्त्रे निरूपितम् ॥ १२९ ॥
तत्संगृह्यात्र विधिवत् संग्रहेण निरूप्यते ।
औवरिकं कौशिकगारुडं च सौभद्रकं चान्द्रिकं सर्पनेत्रम् ।
शृङ्गाटकं सौम्यकं चित्रलोहं विश्वोदरं पञ्चमुखं विरिञ्चिम् ॥१३०॥
एतद्द्वादशलोहानि समभागान् यथाविधि ।
संगृह्य पद्ममूषायां विनिक्षिप्य पुनः क्रमात् ॥ १३१ ॥
टङ्कणं सप्तभागं च पञ्चमांशं तु चौलिकम् ।
वराटिकाक्षारषट्कं कुञ्जरं द्वादशांशकम् ॥ १३२ ॥
नवांशं सैकतं शुद्धं कर्पूरं च चतुर्गुणम् ।
षोडशांशं तु त्रुटिलं दशांशं पौष्णिकं क्रमात् ॥ १३३ ॥

आतपाशन लोहे से सूर्य के आतप—धूप का निवारण होता है अतः उससे ही आतपसंहार यन्त्र बनावे। इस लोहे का स्वरूप कहा है लोहतन्त्र में, उसे लेकर विधिवत् संग्रह से कहा जाता है। और्वारिक, कौशिक, गारुड, सौभद्र, चान्द्रिक, सर्पनेत्र, शृङ्गाटक, सौम्यक, चित्रलोह, विश्वोदर, पञ्चमुख, विरिञ्चि। ये १२ लोहे समान भाग लेकर यथाविधि पद्ममूषा यन्त्र में डाल कर पुनः सुहागा ७ भाग, चौलिक–चौरिक–चोरपुष्पी या चोलकी–नारङ्गी ५ भाग, वराटिका क्षार–कौडी क्षार ६ भाग, कुञ्जर–पीपल कण्टक चाप ? १२ भाग, शुद्ध सैकत—रेत या खाण्ड ? ९ भाग, कपूर ४ भाग, त्रुटिल—छोटी इलायची या खस तृण ? १६ भाग, पौष्णिक—पूषा—पाठा ? १० भाग॥ १२८-१३३॥

एतान्यष्टपदार्थानि मूषायां पूरयेत् ततः ।
तन्मूषां नलिकाकुण्डे स्थापयित्वा यथाविधि ॥ १३४ ॥
पञ्चविंशोत्तरसप्तशतकक्ष्योष्णवेगतः ।
मूषकास्यभस्त्रिकात् सम्यग्ध्मनेदतिवेगतः ॥ १३५ ॥
समीकरणयन्त्रेथ तद्रसं पूरयेत् क्रमात् ।
एवं कृतेत्यन्तशुद्धं पिङ्गलं भारवर्जितम् ॥ १३६ ॥
अदाह्यमच्छेद्यकं च अत्यन्तमृदुलं दृढम् ।
आतपाशनलोहं स्यात् सर्वोष्णपरिहारकम् ॥ १३७ ॥ इत्यादि ॥
सूर्यातपोपसंहारयन्त्रं शास्त्रविधानतः ।
आतपाशनलोहेनैव कर्तव्यं न चान्यथा ॥ १३८ ॥

ये आठ पदार्थ मूषा—कृत्रिम वोतल में भर दे उस मूषा को नलिकाकुण्ड में यथाविधि रखकर ७२५ दर्जे की उष्णता वेग से मूषकमुख भस्त्रिका से वेग से भली प्रकार धोंके उस पिंघले रस को समान करने वाले यन्त्र में भर दे ऐसा करने पर अत्यन्त शुद्ध पीले रंग का भाररहित अताप्य अच्छेद्य अत्यन्त मृदु दृढ आतपाशन लोहा हो जावे समस्त उष्णता का नाशक सूर्यातपोपसंहार यन्त्र शास्त्रविधान से आतपाशन लोहे से ही करना चाहिए अन्यथा नहीं ॥ १३४--१३८ ॥

तदुक्तं यन्त्रसर्वस्वे—वह कहा है यन्त्रसर्वस्व में—

आतपाशनलोहशुद्धिं कृत्वा यथाविधि ।
पश्चाद् यन्त्रं प्रकर्तव्यमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥ १३९ ॥

आतपाशन लोह की यथाविधि शुद्धि करके पश्चात् यन्त्र बनाना चाहिए अन्यथा निष्फल हो जावे ॥ १३९ ॥

शुद्धिक्रममुक्तं क्रियासारे—शुद्धिक्रम कहा है क्रियासार ग्रन्थ में—

अश्वत्थचूलकदलीक्षीरिणी वाडवा तथा ।
त्रिमुखी त्रिजटा गुञ्जा शेरिणी च पटोलिका ॥ १४० ॥
एतेषां त्वचमानीय चूर्णीकृत्य ततः परम् ।
भाण्डे सम्पूर्य विधिवत् तद्दशांशं जलं न्यसेत् ॥ १४१ ॥
पाचयेत् पाचनायन्त्रे दशैकं क्वाथमाहरेत् ।
पश्चाद् विडारलवणं सैन्धवं चोषरं तथा ॥ १४२ ॥
बुडिलक्षारकं माचीपत्रक्षारमतः परम् ।
शुद्धप्राणक्षारपञ्चकं सामुद्रं च शास्त्रतः ॥ १४३ ॥

पीपल, आम, केला, क्षीरणी—खिरनी, वाडवा—अश्वगन्ध ? या वाणह्वा ? मुञ्जतृण या नीलकमल, त्रिमुखी ? त्रिजटा—विल्व, गुञ्जा—रत्ति चोंटली, शेरिणी ?, पटोलिका—परवल । इन वृक्षों की छाल लाकर चूर्ण करके पात्र में भर कर विधिवत् उनसे दशगुणा जल डाल दे पाचन यन्त्र में पकावे

पक कर क्वाथ दशवां भाग रह जाने पर उसमें विडार लवण—विडलवण, सैंधालवण, उषर—रह मृत्तिका लवल शोरा, बुडिल क्षार ?, माचीपत्र क्षार—काकमाची—मकोय का क्षार, शुद्ध पांच प्राण क्षार—मनुष्य गौ घोडा गधा बकरी के मूत्रों का क्षार या नौसादर टङ्कण सज्जीक्षार यवक्षार पलाशक्षार, समुद्र लवण—॥ १४०--१४३ ॥

एतान्येकादशक्षाराण्याहृत्य समभागतः ।
द्रवाकर्षणयन्त्रास्ये सन्निवेश्य यथाक्रमम् ॥ १४४ ॥
पाकं कृत्वाथ विधिवदाहरेद् द्रावकं ततः ।
पूर्वोक्तक्वाथमादाय तदर्धंद्रावकं तथा ॥ १४५ ॥
सम्मेल्य विधिवत् पाचनयन्त्रास्ये नियोजयेत् ।
आतपाशनलोहं च तस्मिन्निक्षिप्य शास्त्रतः ॥ १४६ ॥
पाचयित्वा पञ्चदिनं पश्चात् संगृह्य वारिणा ।
क्षालयित्वाथ मधुना लेपं कुर्यात् समग्रतः ॥ १४७ ॥
चण्डातपे त्र्यहमात्रं शोषयित्वा यथाविधि ।
पश्चात् प्रक्षाल्य विधिवत् तेन यन्त्रं प्रकल्पयेत् ॥ १४८ ॥

इन ११ क्षारों को समान भाग में लेकर द्रव खींचने वाले यन्त्र में यथाक्रम रख कर पका कर विधिवत् द्रावक ले ले पूर्व कहा क्वाथ लेकर उसका आधा द्रावक उसमें मिला कर पाचन यन्त्र के मुख में डाल दे और आतपाशन लोहा भी उसमें शास्त्रानुसार डाल कर पांच दिन पका कर लेकर जल से धोकर सब पर मधु से लेप कर दे प्रचण्ड धूप में तीन दिन सुखा कर यथाविधि पश्चात् जल में निकाल कर उससे विधिवत् यन्त्र बनावे ॥ १४४--१४८ ॥

(यहां से आगे हस्तलेख २१ कापी का भाग (मैटर) सङ्गत होता है जो वस्तुतः कापी संख्या २३ है सो आगे देते हैं)

वस्तुतः कापी संख्या २३—

(यह हस्तलेख कापी संख्या २१ है)

शुद्धातपाशनं लोहं संगृह्य विधिवत् ततः ।
पट्टिकां कारयित्वाऽथ कुट्टिणीयन्त्रतः क्रमात् ।। ३०२ ।।‡
वितस्तिद्वयमायामं वितस्तिद्वयविस्तृतम् ।
अङ्गुलत्रयगात्रं च चतुरश्रमथापि वा ।। ३०३ ।।
वर्तुलं कारयेत् पीठं तस्योपरि यथाक्रमम् ।
वितस्त्येकायाममात्रं वितस्तिपञ्चकोन्नतम् ।। ३०४ ।।
नालत्रयं स्थापितव्यं धमनीदण्डवत् क्रमात् ।
त्रिभुजाकारवत् पश्चात् तस्याधस्सुदृढं यथा ।। ३०५ ।।
विस्तृतास्यं काचमयं स्थापयेत् कुट्टिकात्रयम् ।
एकैकनालान्तरे चैककं च सुदृढं यथा ।। ३०६ ।।

शुद्धातपाशन नाम के लोहे को लेकर उससे विधिवत् पट्टिका बना कर पुनः कुट्टिणी यन्त्र* से २ बालिश्त लम्बा २ बालिश्त चौडा ३ अङ्गुल मोटा चौरस या गोल पीठ करावे उसके ऊपर यथाक्रम १ बालिश्त लम्बे ५ बालिश्त ऊंचे तीन नाल धमनीदण्ड जैसे स्थापित करने चाहिएं। त्रिभुजाकारवाला उनके नीचे सुदृढ खुले मुखवाले काचमय तीन कुट्टिकाएं—मुसलिएं एक एक नाल के अन्दर एक एक सुदृढ लगा दें ।। ३०२–३०६ ।।

तेषु सम्पूरयेत् सोमद्रावकं प्रस्थमात्रकम् ।
एकविंशोत्तरशतसंख्याकान् द्रवशोधितान् ।। ३०७ ।।
ग्रीष्मोपसंहारमणीनेकैकं तेषु योजयेत् ।
पश्चाद् वितस्तिदशकायामं वर्तुलतः क्रमात् ।। ३०८ ।।
छत्रवत् कल्पयेत् पूर्वोक्तलोहेनैव शास्त्रतः ।
त्रिदण्डनालोपरिष्टाद् यथा सन्धारितुं भवेत् ।। ३०९ ।।

---

‡ यह संख्या ३०७ से आरम्भ होनीं चाहिए क्योंकि कापी २१ के १५८ श्लोक कापी २२ के १४८ श्लोक सब ३०६ हुए।

* कुट्टिणी शक्तियन्त्र कापी ९ में।

तथा प्रदक्षिणावर्तकीलकान् सुदृढान् क्रमात् ।
सम्यक् प्रकल्पयेत् त्रीणि छत्र्यां(त्रं?)सम्यग्दृढं यथा ॥ ३१० ॥
प्रदक्षिणावर्तकीलकोपर्यपि यथाक्रमम् ।
वितस्त्यर्धप्रमाणेन कल्पयेत् तस्य शास्त्रतः ॥ ३११ ॥

उन नालों में एक सेर सोमद्रावक—चन्द्रद्रावकमणि या श्वेत खदिररस (कत्थारस) ? १२१ ग्रीष्मोपसंहारक मणियां तैल से शोधी हुई एक एक उन में लगावे, पश्चात् १० बालिश्त लम्बा गोलाकार छत्री की भांति बनावे पूर्वोक्त लोहे से ही शास्त्रानुसार जिससे कि त्रिदण्ड नाल के ऊपर जैसे ढका जावे—छा दिया जावे तथा घूमने वाली सुदृढ तीन कीलों को क्रम से घूमने वाली कीलों के ऊपर आधा बालिश्त प्रमाण से छत्री में सुदृढ लगावे ॥ ३०७–३११ ॥

तस्योपरि यथाकामं वितस्तित्रयगात्रकम् ।
कुर्यात् त्रिकलशान् स्थाल्याकारानथ यथाविधि ॥ ३१२ ॥
सन्धारयित्वा तन्मध्ये वर्तुलान् चालपट्टिकान् ।
संस्थापयेत् तदुपरि शुद्धं शीतप्रसारणम् ॥ ३१३ ॥
पञ्चाशीत्युत्तरशतसंख्याकं यन्मणित्रयम् ।
संस्थाप्य विधिवत् पश्चात् तेषामुपर्यथाक्रमम् ॥ ३१४ ॥
वृष्णिकाभ्रकचक्राणि कीलकैस्सह योजयेत् ।
चन्द्रिकातूलिकात् तेषां कुर्यादावरणं क्रमात् ॥ ३१५ ॥

उस पर यथेष्ट ३ बालिश्त गात्र–लम्बे चौड़े तीन कलश पतीली के आकारवाले लगा कर उनके मध्य में गोल चलने वाली पट्टिकाओं को संस्थापित करे उन के ऊपर शुद्ध शीत प्रसार करनेवाली १८५ संख्या में तीन मणियों को विधिवत् स्थापित करके उनके ऊपर यथाक्रम कृष्ण अभ्रक के चक्रों को कीलों से युक्त करे उनका चन्द्रिका–तूल–श्वेतकण्टकारी के घास से या शाल्मलि कपास से या चन्द्राकार–चन्दी की हुई रूई की तह से आवरण करे ॥ ३१२–३१५ ॥

तस्योपरिष्टान्मञ्जूषद्रवपात्रं नियोजयेत् ।
आतपोष्णोपसंहारमणिं तस्मिन्नियोजयेत् ॥ ३१६ ॥
तथैवोष्मापहारकाभ्रकचक्राण्यथाविधि ।
प्रदक्षिणावर्तदन्तयुक्तान्यतिदृढान्यथ ॥ ३१७ ॥
भ्रामणीदण्डकीलकसंयुक्तानि पुरोभुवि ।
संस्थाप्य वेगात् तत्कीलभ्रमणार्थं पुनः क्रमात् ॥ ३१८ ॥
त्रिचक्रकीलकं तस्मिन् योजयेत् सरलं यथा ।
तच्चालनाद् भवेच्छत्रभ्रमणं वेगतः क्रमात् ॥ ३१९ ॥
तेनातपोष्णभ्रमणं भवेच्छत्रानुसारतः ।
पश्चादुष्णापहारकाभ्रकचक्राण्यथाक्रमम् ॥ ३२० ॥

उसके ऊपर मञ्जूषद्रव—मजीठ रस ? का पात्र रखे उसमें आतपोष्णोपसंहार मणि डाले या लगावे रखे, इसी प्रकार ऊष्मता को हटाने वाले अभ्रकचक्रों को यथाविधि घूमने वाले दान्तेयुक्त सामने भूमि पर भ्रामणी—घुमाने वाले दण्डकीलों से संयुक्त को संस्थापित करके पुनः कील भ्रमणार्थ त्रिचक्रकील को उसमें सरलता से नियुक्त करे उसके चलाने से छत्रभ्रमण वेग से होता है उससे छत्रानुसार आतपोष्णभ्रमण होवे पश्चात् उष्णतापहारक अभ्रकचक्र यथाक्रम—।। ३१६–३२० ।।

संग्राहयेदातपोष्णशक्ति वेगात् स्वशक्तितः ।
आतपोष्णोपसंहारमणेः पश्चात् स्वतेजसा ।। ३२१ ।।
तच्छक्तिमपहृत्य स्वमुखतः पिबति क्रमात् ।
मञ्जूषद्रावकं पश्चात्तच्छक्तिवेगतः पुनः ।। ३२२ ।।
समाहृत्यातिशीतस्वभावं तस्याः प्रयच्छति ।
शैत्यत्वं प्राप्य तच्छक्तिः पश्चाद् वेगात्स्वभावतः ।।३२३।।
वायुमण्डलमासाद्य तत्रैव लयमेधते ।
तस्माद् यानस्यातपोष्णनिवृत्तिः प्रभवेत् क्रमात् ।। ३२४ ।।
तेनात्यन्तसुखं यानयन्तॄणां प्रभवेत् ततः ।
स्थापयेदातपोष्णोपहारयन्त्रं यथाविधि ।। ३२५ ।।

अपनी शक्ति से आतपोष्णशक्ति को वेग से ले ले—ले लेगा पश्चात् आतपोष्णसंहारमणि स्वतेज से उस शक्ति को लेकर अपने मुख से पीती है पश्चात मञ्जूषद्रावक उस शक्ति को वेग से एकत्र कर उसके लिए अतिशीत स्वभाव को देता है वह शक्ति शीतता को प्राप्त कर वेग से स्वभावतः वायुमण्डल को प्राप्त होकर वहां ही लय को प्राप्त हो जाता है अतः यान की आतपोष्णता की निवृत्ति हो जाती है इस विमान के नायक—यात्रियों को सुख होता है अतः आतपोष्णोपसंहार यन्त्र स्थापित करे ।। ३२१–३२५ ।।

अन्यथा यन्तॄणां कष्टं भवत्येव न संशयः ।
एवमुक्त्वातपोष्णोपहारयन्त्रं यथाविधि ।। ३२६ ।।
यानतृतीयावरणरचनाविधिरुच्यते ।
प्रथमावरणे पूर्वं द्वितीयावरणस्य हि ।। ३२७ ।।
स्थापनार्थं यथासन्धानकीलानि यथाविधि ।
स्थापितानि तथैवास्मिन् द्वितीयावरणेपि च ।। ३२८ ।।
तृतीयावरणस्थापनार्थं चैव यथाक्रमम् ।
सन्धारयेत्कीलकानि सर्वतस्सुदृढान्यथा ।। ३२९ ।।
तृतीयावरणपीठाधः प्रदेशेप्यथाक्रमम् ।
ऊर्ध्वाधोभागकीलानां यथा संयोजनं भवेत् ।। ३३० ।।

अन्यथा नायक यात्रियों को कष्ट होता ही है इसमें संशय नहीं । इस प्रकार आतपोष्णोपसंहार यन्त्र यथाविधि कहकर विमान के तृतीय आवरण की रचनाविधि कही जाती है । प्रथम आवरण के ऊपर

द्वितीय आवरण के स्थापनार्थ जोड के अनुसार कीलें स्थापित की हैं वैसे ही द्वितीय आवरण में भी तृतीय आवरण की स्थापना के अर्थ यथाक्रम सुदृढ कीलें लगावे। तृतीय आवरण के पीठ के नीचे प्रदेश में भी यथाक्रम ऊपर नीचे के भागों की कीलों का संयोजन हो जावे ॥ ३२६–३३० ॥

कीलकानि तथा सम्यक् सुदृढं कल्पयेत् क्रमात् ।
द्वितीयावरणात्पञ्चवितस्त्यूनं यथा दृढम् ॥ ३३१ ॥
चतुरस्रं वर्तुलं वा तृतीयावरणस्य च ।
पीठं कृत्वा तदुपरि द्वितीयावरणे यथा ॥ ३३२ ॥
तथैवात्रापि कर्तव्यं गृहकुड्यादयः क्रमात् ।
तृतीयावरणस्येशान्यदिग्भागे यथाविधि ॥ ३३३ ॥
विद्युद्यन्त्रस्थापनार्थं चतुरस्रं सकीलकम् ।
सोमाङ्कलोहेन क्रमात् कुर्यादावरणं दृढम् ॥ ३३४ ॥
तस्मिन् संस्थापयेद् विद्युद्यन्त्रं शास्त्रोक्तवर्त्मना ।

उस प्रकार कीलें सुदृढ सम्यक् क्रम से लगावे, तृतीय आवरण का पीठ चौकोर या गोल करके उसके ऊपर जैसे द्वितीय आवरण पर करने की भांति यहां भी करना चाहिये क्रम से कमरे भित्ति आदि तृतीय आवरण के ईशानी दिशा भाग में यथाविधि विद्युद्यन्त्र स्थापनार्थ चौकोर कीलसहित आवरण सोमाङ्क लोहे से करे, उसमें शास्त्रोक्त विधि से विद्युद्यन्त्र स्थापित करे ॥ ३३१–३३४ ॥

सोमाङ्कलोहमुक्तं लोहतन्त्रे—सोमाङ्क लोहा कहा है लोहतन्त्र में—

नागं पञ्चास्यकं चैव सप्तमं रविमेव च ।
नवमं चुम्बुकं तद्वन्नलिकात्वक् शराणिकम् ॥ ३३५ ॥
टङ्कणं च समालोड्य समभागान् यथाक्रमम् ।
सर्पास्यमूषामध्येथ पूरयित्वा यथाविधि ॥ ३३६ ॥
नागकुण्डान्तरे स्थाप्य इङ्गलान् परिपूर्य च ।
त्रिपञ्चाशदुत्तरत्रिशतकक्ष्योष्णमानतः ॥ ३३७ ॥
सम्यग्ध्मनेच्छशमुखभस्त्राद् वेगेन शास्त्रतः ।
समीकरणयन्त्रेथ तद्रसं परिपूरयेत् ॥ ३३८ ॥
पश्चादत्यन्तमृदुलं विद्युद्गर्भं दृढं लघु ।
सोमाङ्कलोहं भवति अविनाशं मनोहरम् ॥ ३३९ ॥ इत्यादि ॥

सीसा, पञ्चास्य—लोह विशेष ? रवि—ताम्बा प्रत्येक ७ भाग, चुम्बुक ९ भाग, नलिकात्वक्–नली की छाल, शराणिक—शरणा—प्रसारिणी का क्षार या शराटिक—खदिरपर्णी—दुर्गन्ध खैर या कत्था, सुहागा इनके समान भागों को मिला कर सर्पास्य-सर्पमुख कृत्रिमबोतल के अन्दर यथाविधि भरकर नाग-कुण्ड के अन्दर रख कर अंगारे भर कर ३५३ दर्जे की उष्णता से शशमुख भस्त्रा से वेग से धोंके उस पिघले रस को समीकरण यन्त्र में भर दे फिर वह अत्यन्त मृदु विद्युत् को गर्भ में लिए हुए स्थिर रहने वाला मनोहर सोमाङ्क लोहा हो जाता है ॥ ३३५–३३९॥

तल्लोहं कुट्टिणीयन्त्रात् पट्टिकां कारयेत् ततः ।
वितस्तित्रयमायामं वितस्त्यष्टकमुन्नतम् ॥ ३४० ॥
दोलाकारेणैकपात्रं कृत्वा तस्य मुखोपरि ।
आच्छाद्य पट्टिकामेकां बध्नीयात् कीलकैर्दृढम् ॥ ३४१ ॥
सार्धवितस्तिप्रमाणायामं छिद्रद्वयं क्रमात् ।
पूर्वोत्तरविभागाभ्यां कृत्वा तस्मिन् यथाविधि ॥ ३४२ ॥
स्थापयेद् विद्युदागारे कीलकैस्सुदृढं यथा ।
तद्रन्ध्राधःप्रदेशेथ दोलामध्ये यथाक्रमम् ॥ ३४३ ॥
पीठद्वयं कीलयुक्तं स्थापयेत् तावदेव हि ।
वितस्तिद्वयमायामं चतुर्वितस्तिरुन्नतम् ॥ ३४४ ॥
पिञ्जुलीपात्रं कुर्यात् पात्रद्वयमतः परम् ।
षडङ्गुलायामयुक्तान् वितस्त्येकोन्नतान् तथा ॥ ३४५ ॥
कृत्वाष्टचषकान् पश्चात् पात्रयोरुभयोरपि ।
चतुर्दिक्षु यथाशास्त्रं स्थापयेत् सुदृढं क्रमात् ॥ ३४६ ॥

उस लोहे को कुट्टिणी यन्त्र से पट्टिका बना दे, ३ बालिश्त लम्बा चौडा ८ बालिश्त ऊंचा दोलाकार यन्त्र करके उसके मुख पर पट्टिका ढक कर कीलों से दृढ बान्ध दे, उसमें डेढ बालिश्त लम्बे दो छिद्र पूर्व उत्तर भागों में करके कीलों से दृढ विद्युदागार—बिजली घर में रख दे, उन छिद्रों के नीचे प्रदेश में दोलामध्य यथाक्रम पीठ कीलयुक्त स्थापित करे उतने ही २ बालिश्त लम्बे चौडे ४ ऊंचे पिंजुली-पात्र—बत्तीपात्र—दीपक की भांति दो पात्र करे पुनः ६ अंगुल लम्बे १ बालिश्त ऊंचे ८ पात्रों (गिलास जैसों) को दोनों पात्रों पर चारों दिशाओं में शास्त्रानुसार दृढ स्थापित करदे—॥३४०-३४६॥

एकैकपात्रे चषकचतुष्टयमितीरितम् ।
एतच्चषकमध्ये तु अन्योन्यस्पर्शनं यथा ॥ ३४७ ॥
बृहच्चषकमेकैकं स्थापयेत् पात्रयोः क्रमात् ।
पात्रद्वयमुखे पश्चात् पञ्चछिद्रसमन्वितम् ॥ ३४८ ॥
एकैकपट्टिकां सम्यक् कीलैस्सन्धारयेद् दृढम् ।
एतत्पत्रद्वयं दोलामुखरन्ध्रद्वये क्रमात् ॥ ३४९ ॥
प्रवेश्य तत्रत्यपीठमध्यदेशे न्यसेद् दृढम् ।
पञ्चाङ्गुलायामयुतान् तथैवाष्टाङ्गुलोन्नतान् ॥ ३५० ॥
इक्षुयन्त्रादिवन्मन्थून् सदन्तानष्ट कारयेत् ।
एकैकपात्रान्तरस्थचषकेषु यथाक्रमम् ॥ ३५१ ॥
चतुर्दिक्षु यथाशास्त्रं चतुर्मन्थून् नियोजयेत् ।
तथैव मध्यमन्थानद्वयं ताभ्यां घनं यथा ॥ ३५२ ॥
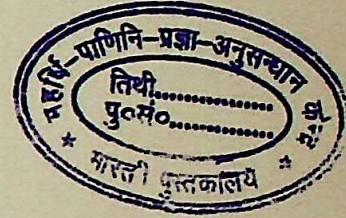
कृत्वा तन्मन्थुमध्येथ स्थापयेन्मध्यरन्ध्रतः ।
यथान्योन्यस्पर्शनं स्यात्तथा सन्धारयेद् दृढम् ।। ३५३ ।।

एक एक पात्र पर चार चषक (गिलास पात्र) हों ऐसा कहा है । इन चषकों के मध्य में अन्योऽन्य स्पर्श हो । दो पात्रों पर एक एक बडा चषक रखे पश्चात् दो पात्रों के मुख पर पांच छिद्रों से युक्त एक एक पट्टिका सम्यक् कीलों से जोड दे । दोनों पात्र दोलामुख के दोनों छिद्रों में प्रविष्ट कर–घुसा कर वहां के पीठ के मध्य देश में दृढ रख दे । पांच अंगुल लम्बाई से युक्त तथा आठ अंगुल से ऊंचे इक्षु यन्त्र (ईख पीडने के कोल्हू) आदि के समान दान्तोंसहित आठ मन्थु—मथन साधनों को करावे, एक एक पात्र अन्दर से चषकों में यथाक्रम चारों दिशाओं में शास्त्रानुसार ४ मन्थु लगावे वैसे दो मध्य मन्थान लगावे उन दोनों से घन–मथित वस्तु करके उसे मन्थु के मध्य में मध्य छिद्र से स्थापित कर दे जिससे अन्योऽन्य स्पर्श इनका हो जावे ।। ३४७–३५३ ।।

पात्रद्वयमुखछिद्रद्वारेणैव प्रवेशयेत् ।
मध्यस्थमन्थुदण्डस्योपरिभागे यथाविधि ।। ३५४ ।।
सर्वमन्थुसमाशो यथा स्यात् तद्वदेव हि ।
सन्धारयेच्चक्रावर्तकीलकं सुदृढं यथा ।। ३५५ ।।
मध्यमन्थुभ्रामणेन सर्वमन्थुभ्रमो यथा ।
भवेत् तथा प्रकर्तव्यं तेषां कीलकतः क्रमात् ।। ३५६ ।।
अथ यन्त्रमुखाद् विद्युच्छक्ति सूर्यांशुभिः क्रमात् ।। ३५७ ।।
समाहर्तुं विशेषेण उपायः परिकीर्त्यते ।
पूर्वोक्तदोलामध्यस्थपात्रयोरुपरि क्रमात् ।। ३५८ ।।
द्विनवत्युत्तरशतसंख्याकेनैव हि क्रमात् ।
किरणाकर्षणादर्शादष्टनालान् प्रकल्पयेत् ।। ३५९ ।।
पश्चादेकैकपात्रोपर्यथ नालैः प्रकल्पितान् ।
स्तम्भान् संस्थापयेत् सम्यक् चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।। ३६० ।।

दोनों पात्रों के मुख वाले छिद्रों से प्रविष्ट करे, मध्यस्थ मन्थुदण्ड के ऊपर भाग में यथाविधि सर्वमन्थु समावेश जैसे हो वैसे ही चक्र को घुमाने वाली कील को दृढ लगावे, मध्य के मन्थु के घुमाने से सारे मन्थुओं का घूमना जिससे हो जावे उनकी कीलों से वैसे करना चाहिए । यन्त्रमुख से विद्युत् शक्ति को सूर्यकिरणों से ले लेने को विशेष रूप से उपाय कहा जाता है । पूर्वोक्त दोलामध्यस्थ पात्रों के ऊपर १९२ संख्याक्रम से ही किरणाकर्षण आदर्श से ८ नालों को बनावे, पश्चात् एक एक पात्र के ऊपर नालों से सम्बद्ध किये स्तम्भों को चारों दिशाओं में स्थापित करे ।। ३५४–३६० ।।

तेषामुपरि पञ्चास्यकर्णिकान् स्थापयेत् क्रमात् ।
रुक्मपुङ्खाशरणं तेषु पूरयित्वा ततः परम् ।। ३६१ ।।
विद्युदाकर्षकमणीन् तेषु सन्धारयेद् दृढम् ।।
पूर्वोक्तांशुपदर्पणावरणं चोपरिक्रमात् ।। ३६२ ।।

कृत्वा तदूर्ध्वे पञ्चशिखराकारगोपुरम् ।
कुर्यादेकैकशिखरमुखे चञ्चूपुटाकृतिम् ॥ ३६३ ॥
कल्पयित्वा ततस्तस्मिन् सिञ्जीरकमणीनथ ।
स्थापयेदंशुवाहकमणीनपि यथाविधि ॥ ३६४ ॥
अंशुमित्रमणिं मध्यशिखाग्रे दृढं यथा ।
चतुर्मणीनामुपरि गोभिलोक्तविधानतः ॥ ३६५ ॥

उन स्तम्भों के ऊपर पञ्चमुखी कर्णफूल—? उनमें रुक्मपुङ्खाशण—सुनहरे शर का शण भरकर विद्युदाकर्षण मणियों को उनमें लगा दे, पूर्व कहे अंशुप दर्पण आवरण को ऊपर करके उसके ऊपर पांच शिखर आकार वाला गोपुर—गवाक्ष झरोखा करे, एक एक शिखरमुख पर चञ्चूपुट—चूंच की आकृति जैसा बनाकर उसमें सिञ्जीरक ? मणियों को स्थापित करे अंशुवाहक मणियों को भी लगावे, बीच के शिखराग्र में चारों मणियों के ऊपर अंशुमित्रमणि—सूर्यकान्त मणि ? को गोभिल के विधान से लगावे ॥ ३६१–३६५ ॥

षडङ्गुलायामयुक्तं वितस्तित्रयमुन्नतम् ।
किरणाकर्षणादर्शात् कृतं नालचतुष्टयम् ॥ ३६६ ॥
स्थापयित्वा तदुपरि द्रावकैश्शोधितान्यथ ।
चतुर्वितस्त्यायामयुतमुखपात्राण्यथाविधि ॥ ३६७ ॥
सन्धारयेच्छङ्कुकीलैरच्छिद्राणि दृढान् यथा ।
तेषु सम्पूरयेद् रुद्रजटावालं प्रमाणतः ॥ ३६८ ॥
भ्रामणीघुटिकान्तेषु विन्यसेन्मध्यकेन्द्रके ।
किरणाकर्षणं वेगाद् भ्रामणीघुटिकास्ततः ॥ ३६९ ॥
कृत्वा तन्नालमार्गेण अन्तः प्रेषयति क्रमात् ।
शिखराग्रस्थमणयः तच्छक्तिं पिबति* क्रमात् ॥३७०॥

६ अंगुल लम्बाई से युक्त ३ बालिश्त ऊंचा किरणाकर्षण दर्पण से किए हुए ४ नालें स्थापित करके उनके ऊपर द्रावकों से शुद्ध किए हुए छिद्ररहित ४ बालिश्त लम्बाई से युक्त मुखपात्रों को यथाविधि शंकुकीलों से स्थिर करदे। उन पात्रोंमें रुद्रजटावाल–शंकरजटा–बालछड़ के बाल प्रमाण से भरदे, अन्त स्थानों में भ्रामणी घुटिका मध्यकेन्द्र में लगावे। किरणाकर्षण वेग से भ्रामणी घुटिका करके उनके नालभाग से अन्दर प्रेरित करता है शिखराग्रस्थित मणियां उस शक्ति को पीती हैं ॥३६६—३७०॥

तदन्तःस्थितसिञ्जीरमणिश्चापि तथैव हि ।
अंशुमित्रमणिश्चैव तच्छक्तिमपकर्षति ॥३७१॥
तच्छक्तिमंशुपादर्शावरणं परिगृह्य च ।
विद्युदाकर्षकमणिसन्धौ नियोजयेत् ॥३७२॥
पश्चादन्तस्थितकर्णिकास्तां सम्यक् समाहरेत् ।
तदधस्स्थितदण्डेषु मध्यदण्डाग्रतः क्रमात् ॥३७३॥

* वचनव्यत्ययेन पिबन्ति स्थाने पिबति ।
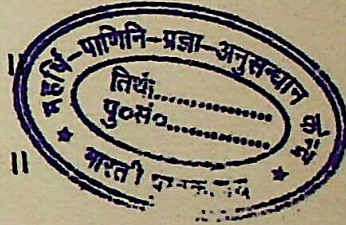
शक्तिं सम्प्रेषयेत् सम्यग्वेगेन स्वीयतेजसा ।
मध्यदण्डभ्रामणेन मन्थूनां भ्रमणं भवेत् ॥३७४॥
भ्रमणाद् द्रावके शक्तिः प्रविश्याथ यथाक्रमम् ।
तत्रत्यमणिभिस्सम्यगाकृष्टा व्रजति क्षणात् ॥३७५॥

उनके अन्दर स्थित सिञ्जीरमणि ? भी वैसे ही अंशुमित्रमणि भी उस शक्ति को खींचती है, उस शक्ति को अंशुपादर्श के आवरण को लेकर विद्युदाकर्षणमणि सन्धि में नियुक्त करदे, पश्चात् अन्दर स्थित कर्णिकाओं–छल्लों या फूलदार पेचों को ? उस शक्ति को सम्यक् लेले उनके नीचे वाले दण्डों में मध्य दण्डाग्र से शक्ति को वेग से स्वीयतेज से प्रेरित करदे, मध्य दण्ड के घुमाने से मन्थुओं—मन्थन साधनों का भ्रमण होता है भ्रमण से द्रावक शक्ति प्रविष्ट होकर यथाक्रम वहां की मणियों से तुरन्त खींची हुई गति करती है ॥३७१—३७५॥

तद्वेगान्मणयस्सम्यग्भ्रामयन्त्यतिवेगतः ।
तद्वेगाच्छक्ते†रुत्पत्तिरत्यन्तं प्रभवेत् क्रमात् ॥३७६॥
एकछोटिकावच्छिन्नकाले शक्तिः स्वभावतः ।
अशीत्युत्तरसहस्रलिङ्कमात्रं भवेत्स्वतः ॥३७७॥
दोलामुखस्थगणपयन्त्रेणाथ यथाविधि ।
समाकृष्याथ तच्छक्तिं स्थापयेन्मध्यकेन्द्रके ॥३७८॥

उसके वेग से मणियां अतिवेग से घूमती हैं उनके वेग से शक्ति की अत्यन्त उत्पत्ति हो जाती है, एक चुटकी बजाने मात्र काल में स्वभावतः शक्ति १०८० लिङ्क (डिग्री) मात्रा में स्वतः हो जावे दोलामुखस्थित गणपयन्त्र से यथाविधि उस शक्ति को खींचकर मध्य केन्द्र में स्थापित करदे ॥३७६-३७८॥

अथ गणपयन्त्रस्वरूपमाह स एव—अब गणप यन्त्र के स्वरूप को उसने ही कहा है—

वितस्त्यैकायामयुक्तं वितस्तित्रयमुन्नतम् ।
कुर्याद् विघ्नेश्वराकारयन्त्रमेकं यथाविधि ॥३७९॥
तदुत्तमाङ्गाच्छुण्डीराकारवद् वक्रतः क्रमात् ।
काचावरणसंयुक्तमन्तस्तन्त्रिसमायुतम् ॥३८०॥
नालमेकं प्रकल्प्याथ दोलामुखस्थकीलके ।
सन्धार्यागणपकण्ठनाभ्यन्तं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥३८१॥

१ बालिश्त लम्बाई युक्त ३ बालिश्त ऊंचा विघ्नेश्वराकार वाला—गणपति आकार वाला एक यन्त्र यथाविधि, उसका ऊपर का आकार शुण्डीराकार वाला—हाथी शूण्डाकार वाला क्रमशः वक्र बनावे, काच के आवरण से युक्त अन्दर—तारोंसहित एक नाल बनाकर दोलामुख में स्थित कील में लगाकर गणपयन्त्र के कण्ठ नाभि तक दोनों पार्श्वों में लगावे ॥३७९—३८१॥

अङ्गुलत्रयविस्तारं दन्तचक्राणि योजयेत् ।
तथैव तत्कण्ठदेशे बृहच्चक्रं च स्थापयेत् ॥३८२॥

† शक्तिरुत्पत्तिः ? (हस्तलेखपाठः) ।

करमध्यादागतायाः शक्तेश्चलनवेगतः ।
बृहच्चक्रं स्वभावेन भ्राम्यते वेगतः क्रमात् ॥३८३॥
तद्वेगतोन्तश्चक्राणां भ्रमणं स्याद् यथाक्रमम् ।
तथा कीलकसन्धानं कारयेद् विधिवत् ततः ॥३८४॥
आवृत्ततन्त्रि तन्मध्ये कुण्डलीवत् प्रकल्पयेत् ।
तन्मध्ये सप्तषष्टिशङ्खं (शङ्कं?)†सिंहिकाभिधम् ॥३८५॥

३ अंगुल चौड़े बड़े दान्तों वाले चक्र लगावे, उसी भांति उसके कण्ठ देश में बड़ा चक्र स्थापित करे, कर—शूण्ड से आई हुई शक्ति के चलनवेग—गतिवेग से बडा चक्र स्वभाव से वेग से घूमता है उसके वेग से अन्दर के चक्रों का भ्रमण यथाक्रम हो जावे इस प्रकार कील जोडना चाहिए। घूमने वाला तार उसके मध्य में कुण्डली की भांति रखे उसके मध्य में शङ्ख सिंहिक नाम का ऊपर से पीठ वाला हो ॥३८२—३८५॥

क्रव्यादलोहावरणसंयुक्तं स्थापयेद् दृढम् ।
जीवावकद्रावकं च पञ्चचञ्चूप्रमाणतः ॥३८६॥
सम्पूर्य तस्मिन् सप्तदशोत्तरद्विशतात्मकम् ।
भामुखग्रामुखं नाम मणिं संयोजयेत् ततः ॥३८७॥
अङ्गुलद्वयमायामछत्रीन् पञ्च प्रकल्प्य च ।
बृहद्गुञ्जीप्रमाणान् पञ्चांशुमित्रमणीन् क्रमात् ॥३८८॥
सन्धारयेत् पञ्च छत्रीशिखरेषु यथाक्रमम् ।
एकीभूयाथ तत्पञ्चछत्रिणो भ्रामयन्त्यथा ॥३८९॥
तथा कीलकसन्धानं कृत्वा शङ्खोपरि न्यसेत् ।
अंशुपादर्शावरणं तेषामुपरि कल्पयेत् ॥३९०॥

क्रव्याद लोहे—तीक्ष्ण जाति लोहे—ताम्बा मिल लोहे के आवरण से युक्त स्थापित करे, जीवावक—शङ्ख ? के द्रावक ५ चञ्चू—चूञ्च—चमच ? या एरण्ड प्रमाण ? प्रमाण से भरकर उससे २१७ भामुख ? ग्रामुख ? मणि को लगादे। २ अंगुल लम्बी ५ छत्रियों को युक्त करे बडी गुञ्जा—रत्ति के माप की ५ अंशुमित्र—सूर्यकान्त मणियों को पांच छत्रियों के शिखर पर लगावे जड़े फिर वे छत्रियों को मिलकर घुमाती हैं उस कील को लगाकर शङ्ख के ऊपर इसे अंशुप दर्पण का आवरण उनके ऊपर रखे ॥३८६–३९०॥

तत्सूर्यकिरणान्तस्स्थशक्तिं स्वस्मिन् स्वभावतः ।
चतुरशीतिलिङ्कप्रमाणवेगं स्वशक्तितः ॥३९१॥
एकछोटिकावच्छिन्नकालेनाकृष्य तान् पिबेत् ।
पश्चादावरणादर्शस्थितशक्तिं स्वतेजसा ॥३९२॥
पूर्वोक्तछत्रीशिखरस्थिता ये मणयः क्रमात् ।

† शङ्कु या शङ्ख पाठ होना चाहिए। श्लोक ३९० में शङ्ख है, अतः शङ्ख यहां भी रखा है।

ते समाकृष्य तच्छक्ति पिबन्त्यत्यन्तवेगतः ॥३६३॥
पश्चाच्छक्तिवेगेन मणयो भ्रामयन्ति हि ।
एतद्भ्रमणतः पञ्च छत्रयोपि भ्रमन्ति हि ॥३६४॥
एतेनैकछोटिकावच्छिन्नकालेऽतिवेगतः ।
सहस्रलिङ्कप्रमाणविद्युत् संजायते क्रमात् ॥३६५॥

उन सूर्यकिरणों के अन्दर स्थित शक्ति को स्वभावतः अपने अन्दर ८४ लिङ्क (डिग्री) प्रमाण का वेग चुटकी बजाने मात्र समय में खींच कर उन्हें पी ले, पश्चात् आवरण आदर्श में स्थित शक्ति को अपने तेज से पूर्व कही छत्री शिखरों में स्थित वे मणियां उस शक्ति को खींच कर वेग से पीती हैं–लेती हैं पश्चात् शक्ति वेग से मणियां घूमती हैं एक चुटकी बजाने समय में सहस्र लिङ्क (डिग्री) की बिजुली उत्पन्न हो जाती है ॥३६१-३६५॥

शङ्खस्थद्रावकं पश्चात् तच्छक्तिमपकर्षति ।
द्रावकस्थमणिः पश्चात् स्वपूर्वमुखतः क्रमात् ॥३६६॥
समाकृष्याथ तच्छक्ति वेगात् पिबति तत्क्षणात् ।
ततस्तत्पश्चिममुखाच्छक्तिः प्रवहति स्वतः ॥३६७॥
कार्यनिर्वहणायाथ तच्छक्ति तन्त्रीभिः क्रमात् ।
समाहृत्यातिवेगेन यत्र कुत्रापि वा नरः ॥३६८॥
नियोज्य तत्तत्कार्येषु उपयोक्तुं भवेद् ध्रुवम् ।
एतद्वेगपरिज्ञाने यन्त्रं वेगप्रमापकम् ॥३६९॥
संस्थापयेत् तद्वदुष्णप्रमापकमपि क्रमात् ।
कालप्रमापकं चैव तत्तत्स्थाने यथाविधि ॥४००॥
एतद् यन्त्रत्रयं विद्युद्यन्त्रस्थानेपि योजयेत् ।

पश्चात् उस शक्ति को शङ्ख में स्थित द्रावक खींच लेता है फिर द्रावक में स्थित मणि अपने पूर्व अगले मुख से क्रमशः खींचकर उस शक्ति को वेग से तुरन्त पी लेती है फिर पिछले मुख से स्वतः निकालती है, कार्यनिर्वाह—कार्यसम्पादन के लिए उस शक्ति को तारों से लेकर वेग से मनुष्य जहां कहीं भी युक्त करके–फिट् करके कार्यों में निश्चित उपयोग करने को समर्थ हो जावे । इस वेग-परिज्ञान में वेगमापक यन्त्र रखे और उसकी उष्णता का मापक यन्त्र भी तथा कालमापक यन्त्र भी उस उस स्थान में यथाविधि रखे, ये तीन यन्त्र विद्युद्यन्त्र के स्थान में भी लगावे ॥३६६-३४०॥ इति ॥

॥ समाप्त ॥

विज्ञप्ति–यहां तक ग्रन्थ प्राप्त था आगे इसके और ग्रन्थ भाग है या नहीं यह कुछ नहीं कहा जा सकता ॥

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक

१९-९-१९५८ ई०